by Arya Samaj Foundation Chennai and e

मूल्य ४०-००

सं० सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास

Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

073803

ऋषि दयानन्द सरस्वती
के
ग्रन्थों का इतिहास

[दयानन्द-बलिदान-शताब्दी-संस्करण]

१५.१
यु-ऋ

15.1,Y9RS
073803

युधिष्ठिर मीमांसक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

73803

AS
९५.१

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

A3
१५.१
पु ह न्द

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या............ आगत संख्या 73803

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वे दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

29 APR 2013
R.B. 004

25 OCT 2005
B-72/143/23

3 JUN 2008
D-94/8/49

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

073803

ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास

[दयानन्द-बलिदान-शताब्दी-संस्करण]

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय

COMPILED

युधिष्ठिर मीमांसक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक—
युधिष्ठिर मीमांसक
रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

वितरकः—
रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)
पिन १३१०२१

AS
१५.१
यु ई म

प्रकाशन-व्यय

५१००-००	कागज २३ × ३६, ३० रिम मय सेलटैक्स आदि के
६४४०-००	मुद्रण व्यय
२०००-००	जिल्द का ४०० रु० सैंकड़ा
१३५४०-००	कुल व्यय ५०० प्रतियों का
	प्रति पुस्तक लागत व्यय २७ रु० ८ पैसे

प्रथम संस्करण ५००
दीपावली २०४०
नवम्बर, सन् १९८३
मूल्यम् ४०-००

मुद्रक—
शान्तिस्वरूप कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्पण

जिन्होंने इस आत्म-प्रकाशन के युग में सर्वदा विज्ञापन
से दूर रह कर आर्ष-पाठविधि के प्रचार और
वैदिक-वाङ्मय के प्रसार के लिये
निष्पक्ष वेदज्ञ विद्वानों की
आजीवन सहायता की,
जिनका पितृतुल्य स्नेह
और सत्प्रेरणायें मेरे
जीवन की अमूल्य
निधि हैं
उन

**स्व० ऋषि-भक्त श्री बाबू रूपलालजी कपूर
की पवित्र स्मृति में ग्रन्थकार द्वारा
सादर समर्पित**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक के अन्य ग्रन्थ

लिखित ग्रन्थ—

१–संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास (तीन भागों में) ७५-००
२–वैदिक-स्वर-मीमांसा अप्राप्य
३–वैदिक-छन्दोमीमांसा १५-००
४–वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा ३०-००
५–मीमांसा-शाबर-भाष्य—आर्षमतविमर्शिनी हिन्दी व्याख्या सहित
प्रथम भाग ४०-००; द्वितीय भाग ३०-००, तृतीय भाग ५०-००
६–**वैदिकनित्यकर्मविधि**—पदार्थ-भावार्थ व्याख्या सहित ४-००
७–**महाभाष्य**—हिन्दी व्याख्या
प्र० भाग ५०-००; द्वि० भाग २५-००; तृ० भाग २५-००
८–**काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यानम्**—संस्कृत रूपान्तर १५-००
९–**विदुरनीति**—पदार्थ तथा विस्तृत व्याख्या । २०-००
१०–**दयानन्द की पद-प्रयोग-शैली**—अपाणिनीय शब्दों का साधुत्व निदर्शन २-५०

सम्पादित ग्रन्थ—

१–**ऋग्वेद-भाष्य**—ऋ० द० कृत । टिप्पणियों और परिशिष्टों के साथ । प्रथम भाग ३५-००; द्वितीय भाग ३०-००, तृतीय भाग ३५-००
२–**माध्यन्दिन-पदपाठ**—टिप्पणियों और परिशिष्टों के साथ । २५-००
३–**शिक्षासूत्राणि**—आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र शिक्षासूत्र । ५-००
४–**निरुक्त-समुच्चय**—आचार्य वररुचि । १५-००
५–**दैवम्-पुरुषकारव्याख्योपेतम्**—लीलाशुक मुनि । १०-००
६–**भागवृत्ति-संकलनम्**—अष्टाध्यायी की प्राचीनवृत्ति ६-००
७–**संस्कृत धातुकोश**—धातुओं का हिन्दी में अर्थ निर्देश १०-००
८–**कात्यायन-गृह्यसूत्रम्** २०-००
१–**तैत्तिरीय-संहिता** ४०-००, २–**ऋग्वेदानुक्रमणी** ३०-००,
३–**बौधायन-श्रौतसूत्र** (दर्शपूर्णमास दो व्याख्या सहित) ४०-००
४–**दर्शपूर्णमास-पद्धति**—पं० भीमसेन कृत भाषार्थ सहित २५-००

प्राप्ति-स्थान—रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋ० द० सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास
की
विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
भूमिका द्वितीय तथा प्रथम संस्करण की		१–१६
१—महान् दयानन्द का प्रादुर्भाव		३
२—संवत् १९२०—१९३० के ग्रन्थ		१०

(१) संन्ध्या, (२) भागवत-खण्डन, (३) अद्वैतमत-खण्डन, (४) गर्दभतापिनी उपनिषद् ।

३—संवत् १९३१-(५) सत्यार्थप्रकाश — २०

प्रथम संस्क०—रचना का आरम्भ और समाप्ति, महत्ता, मुद्रण, १३, १४ समुल्लास न छपने का कारण, लेखक या शोधक की धूर्तता, स्वामीजी का विज्ञापन ।

द्वितीय संस्क०—संशोधन काल, स० प्र० सम्बन्धी पत्रों के उद्धरण, ११-१४ समुल्लास सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएं, हिन्दी कुरान ।

४—संवत् १९३१-३२ के ग्रन्थ — ६९

(६) पञ्चमहायज्ञविधि—सं० १९३१ का संस्करण, लेखन-काल, महर्षि के नाम से छपे तीन नकली संस्करण, सं० १९३४ का संशोधित संस्क० सन्ध्या-मन्त्रों के क्रम की प्रामाणिकता पर विचार केवल संस्कृत संस्करण अंग्रेजी अनुवाद ।

(७) वेद-भाष्य का नमूना (प्रथम) (८) वेदविरुद्धमत-खण्डन, (९) वेदान्तिध्वान्त-निवारण, (१०) शिक्षा-पत्रीध्वान्त-निवारण ।

५—संवत् १९३२ के ग्रन्थ — ९०

(११) आर्याभिविनय—रचना काल, ग्रन्थ की अपूर्णता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम संस्करण, द्वितीय संस्करण, द्वि० संस्क० में भाषा का संशोधन, मुक्ति की अनन्तता या सान्तता, अजमेरीय संस्करणों में परिवर्तन, रामलाल कपूर ट्रस्ट का संस्करण, गुजराती अनुवाद, अंग्रेजी अनुवाद।

(१२) संस्कारविधि—प्रथम संस्करण—रचना काल, **'कार्तिकस्यान्तिमे दले'** पाठ में परिवर्तन, लेखन की समाप्ति, मुद्रण, संशोधक, प्रकाशक, प्रथम संस्करण का महत्त्व। द्वि० संस्क० =संशोधन का आरम्भ और अन्त, मुद्रण का आरम्भ और समाप्ति, संशोधक, द्वि० संस्क० के हस्तलेख, वैदिक यन्त्रालय के संस्करणों में पाठों का घोटाला, वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश, दोनों ग्रन्थों की तुलना।

६—वेदभाष्य—सं० १९३२-१९४० ११४

वेदभाष्य का प्रथम नमूना। (१३) चतुर्वेद-विषय-सूची। (१४) दूसरा नमूना—रचना और मुद्रणकाल, महेशचन्द्र न्यायरत्न के आक्षेप। (१५) ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका—रचना का आरम्भ और समाप्ति, भाषानुवाद ऋ० भा० भूमिका के मुद्रण-प्रमाद, भाषानुवाद का संशोधन, उर्दू अनुवाद। ऋ० भा० भूमिका पर आक्षेपात्मक ग्रन्थ, ऋ० भा० भूमिका की महत्ता (१६) ऋग्वेद-भाष्य—रचना का आरम्भ, ऋग्वेद के दो भाष्य, ऋग्भाष्य का परिमाण, मुद्रण का आरम्भ और समाप्ति, ऋग्भाष्य के सम्बन्ध में महती भ्रान्ति, ऋग्वेदभाष्य में अशुद्धियां, ऋग्वेदभाष्य की एक और समस्या (हस्तलेखों का विवरण)। (१७) यजुर्वेद-भाष्य—आरम्भ और समाप्ति, मुद्रण का आरम्भ और समाप्ति, हस्तलेखों का विवरण, शुद्ध संस्करण और उस पर विवरण, वै० य० मुद्रित यजुर्वेद-भाष्य, वेद-भाष्यों का भाषानुवाद, वेदभाष्य का संशोधन।

७—संवत् १९३४-१९३५ के शेष ग्रन्थ १५८

(१८) आर्योद्देश्यरत्नमाला। (१९) भ्रान्तिनिवारण—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्न्यादि शब्दों का परमात्मा अर्थ, इसमें शङ्कराचार्य की सम्मति, ऋषि की बहुश्रुतता, ग्रन्थ रचना और मुद्रण काल। (२०) अष्टाध्यायीभाष्य--हस्तलेख, आक्षेप और समाधान, अशुद्धियों का कारण, पाणिनीय शिक्षा के श्लोक, अष्टाध्यायीभाष्य सम्बन्धी विज्ञापन तथा पत्र, परोपकारिणी सभा की घोर उपेक्षा।

८—संवत् १९३६-१९३८ के ग्रन्थ १७४

(२१) आत्मचरित्र—दयानन्दचरित्र और मैक्समूलर, ऋषि दयानन्द के चरित्र, ऋ० द० के हस्तलिखित पाठ का मुद्रण। (२२) संस्कृतवाक्यप्रबोध प्रथम संस्करण में अशुद्धियां, काशी के पण्डितों का आक्षेप और उनका उत्तर, अबोधनिवारण के आक्षेपों का उत्तर। (२३) व्यवहारभानु। (२४) गोतम अहल्या की कथा। (२५) भ्रमोच्छेदन—रचना काल, उसमें अशुद्धि, एक और अशुद्धि, रचना स्थान, ऋषि के भ्रमोच्छेदन विषयक पत्र, विशेष निर्देश, राय कन्हैयालाल का आक्षेप और उसका उत्तर, पौराणिक पत्र की समालोचना और उसका उत्तर। (२६) अनुभ्रमोच्छेदन--रचना काल, रचयिता, स्वामी जी का अपना नाम न देने का कारण, विज्ञापन। (२७) गोकरुणानिधि—रचना काल, द्वितीय संस्करण, अंग्रेजी अनुवाद लाला मूलराज का अंग्रेजी अनुवाद न करने का कारण, मांस भक्षण और उसका छिपाना।

९—वेदाङ्गप्रकाश और उनके रचयिता २०१

रचना का प्रयोजन, रचयिता, भयङ्कर भूलें, वेदाङ्गप्रकाश की शैली, भीमसेन के पत्र, ज्वालादत्त के पत्र, स्वामीजी के पत्र, कुछ भागों में परिवर्तन, प्र०संस्क०के संशोधक, वेदाङ्गप्रकाश के भागों का क्रम और उनकी अशुद्धि।

१०—वेदाङ्गप्रकाश के चौदह भाग २१८

(१) वर्णोच्चारणशिक्षा—ग्रन्थ रचना का काल, पाणि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीय शिक्षा की उपलब्धि का काल, क्या पाणिनि ने कोई शिक्षा रची थी ?, उपलब्ध शिक्षा-सूत्रों की अपूर्णता, डा० मनोमोहनघोष का शिक्षा सूत्रों पर आक्षेप, आक्षेप का उत्तर, शिक्षा के दो पाठ, प्रथम संस्करण। (१) सन्धिविषय—लेखक, रचना या मुद्रण का काल, संशोधन, द्वि० संस्क० का संशोधन, वै० यं० का सं० १९९६ का भ्रष्ट संस्करण, हमारा संशोधित संस्करण। (३) नामिक—लेखक, रचना काल, प्र० संस्क० में अशुद्धि। (४) कारकीय—लेखक, रचना काल, मुद्रण काल। (५) सामासिक—लेखक, लेखन काल, संशोधक। (६) स्त्रैणतद्धित—लेखन, संशोधक, स्वामीजी का विशेष पत्र, लेखन काल। (७) अव्ययार्थ—रचना काल, संशोधक। (८) आख्यातिक—लेखक, आख्यातिक विषयक स्वामीजी के दो पत्र, मुद्रण। (९) सौवर—रचना काल। (१०) पारिभाषिक—रचना तथा मुद्रण काल, संशोधक। (११) धातुपाठ—मुद्रण काल, एक अशुद्धि। (१२) गणपाठ—मुद्रण-काल। (१३) उणादिकोष—वृत्ति का रचयिता, रचना काल, हमारा शुद्ध संस्करण। (१४) निघण्टु—ऋ० द० द्वारा हस्तलेखों से मिलान, संशोधन काल, मुद्रण-काल।

११—प्रसिद्ध शास्त्रार्थ २४५

(१) प्रश्नोत्तर हलधर। (२) काशी शास्त्रार्थ। (३) हुगली शास्त्रार्थ और प्रतिमापूजन-विचार। (४) सत्यधर्म विचार मेला चांदापुर। (५) जालन्धर शास्त्रार्थ। (६) सत्यासत्यविवेक—शास्त्रार्थ बरेली। (७) उदयपुर शास्त्रार्थ। शास्त्रार्थ अजमेर और मसूदा।

१२—प्रवचन-संग्रह २७०

पूना-प्रवचन—मराठी में प्रथम प्रकाशन, गुजराती अनुवाद, आर्यभाषा-अनुवाद, मराठीपाठ की उपलब्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हमारा मराठी से भाषानुवाद), उर्दू अनुवाद। बम्बई प्रवचन ।

१३—पत्र और विज्ञापन २७७

पत्रों और विज्ञापनों के संग्राहक—(१) पं० लेखराम जी, (२) म० मुन्शीराम जी, (३) पं० भगवद्दत्त जी, (४) महाशय मामराज जी (५) पं० चमूपति जी।

समस्त उपलब्ध पत्र-विज्ञापन का संग्रह, पत्रों की महत्ता, पत्र विज्ञापन का द्वितीय संस्करण, तृतीय संस्करण।

१४—ऋषि दयानन्द के बनाये या बनवाये कुछ अमुद्रित ग्रन्थ २८४

(१) कुरान का हिन्दी अनुवाद। (२) शतपथ क्लिष्ट (?) प्रतीक सूची। (३) निरुक्त शतपथ की मूल सूची। (४) वार्तिकपाठ-संग्रह। (५) महाभाष्य का संक्षेप। (६) ऋग्वेद के ६१ सूक्तों का अनेकार्थ।

तृतीय अध्याय का शेष—बम्बई आ० स० के नियमों की व्याख्या २९०

परिशिष्ट

१—ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के हस्तलेखों का विवरण २९१

२—ऋषि दयानन्द विरचित ग्रन्थों के प्रथम और द्वितीय संस्करणों के ४० मुख पृष्ठों की प्रतिलिपि ३१८

३—सत्यार्थप्रकाश प्रकरण का अवशिष्ट अंश ३५६

४—संस्कारविधि के पाठ भेद ३६४

५—वेदोक्त-संस्कार प्रकाश का परिचय ३७९

६—वेदभाष्य और सत्यार्थप्रकाश (सं० २) में मांस प्रकरण ३८८

७—ऋ० द० कृत ग्रन्थों पर छपे कतिपय आवश्यक विज्ञापन ४००

८—ऋषि दयानन्द की सम्मति से छपे ग्रन्थ ४०७

९—ऋ० द० के सहयोगी पण्डित ४१४

१०—वैदिक यन्त्रालय का प्रारम्भिक वृत्तान्त ४१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ निर्देश-पुरःसर उद्धृत ग्रन्थों का विवरण

अनुभ्रमोच्छेदन—दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत। पृष्ठ २७२–२९१।

आर्याभिविनय—प्रथम संस्करण, बम्बई मुद्रित। सन् १८७६

आर्योद्देश्यरत्नमाला—चश्मनूर (लीथो) प्रेस अमृतसर की छपी। सन् संवत् नहीं छपा।

आर्योद्देश्यरत्नमाला — दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, पृष्ठ ५६९–५८२।

आर्याभिविनय— दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत। पृष्ठ ३९–१३३।

ऋग्वेदभाष्य (नमूने का अंक) देखो 'वेदभाष्य नमूने का अंक। सं० १९३३

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित। प्रथम संस्करण। संवत् २०२४।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—दो भाग। रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित। संवत् २०३७–२०३८।

ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्र और विज्ञापन—दो भाग। पूर्ववत् सं० २०३९–२०४०।

गोकरुणानिधि—दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, पृष्ठ ५४३-५६८।

चतुर्वेद-विषय-सूची – दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, पृष्ठ ५८३–७०४।

दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रह—चौदह लघुग्रन्थों का संग्रह। रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित। संवत् २०३१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमहायज्ञविधि—संस्कृत भाष्य सहित । बम्बई मुद्रित । शकाब्द १७९६ (=सन् १८७४) ।
इस का सन्ध्या और अग्निहोत्र भाग को छोड़ कर शेष भाग

दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रह में पृष्ठ ३४४–३६४ तक छपा है ।

पञ्चमहायज्ञविधि—दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, पृष्ठ १३५–१९१ ।

पत्र और विज्ञापन—'भाग १, २' से 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' भाग १,२ का निर्देश और 'भाग ३–४' से ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्र विज्ञापन (१-२) का निर्देश किया है ।

भागवत-खण्डनम्—दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, पृष्ठ ४६३–४९० ।

भ्रमोच्छेदन—दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, पृष्ठ २४१–२७१ ।

भ्रान्तिनिवारण—आर्यभूषण प्रेस शाहजांपुर में छपा । सन् संवत् नहीं छपा हैं ।

भ्रान्तिनिवारण—दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, पृष्ठ १९६–२४० ।

वेदविरुद्धमत खण्डन—गुजराती अनुवाद सहित बम्बई में छपा । संवत् १९३० ।

वेदभाष्य (नमूने का अङ्क)—लाजरस कम्पनी काशी का छपा । संवत् १९३३ ।

वेदभाष्य (नमूने का अङ्क)—'ऋग्वेदभाष्य नमूने का अंक' नाम से दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत पृष्ठ १३५–१९२ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदविरुद्धमत खण्डन—दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, पृष्ठ ३८५-४३२ ।

वेदान्तिध्वान्त-निवारण—बम्बई मुद्रित । संवत् १९३२, सन् १८७६

वेदान्तिध्वान्त-निवारण—दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, पृष्ठ ३६५-३८४ ।

व्यवहारभानु—दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, पृष्ठ ४६१-५४२ ।

शताब्दी संस्करण—परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा दो भागों में सन् १९२४ में प्रकाशित ।

शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण—गुजराती अनुवाद सहित बम्बई में छपा । सन् १८७६ ।

शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण—दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रहान्तर्गत, ४३३-४६२ ।

संस्कारविधि—(प्रथम संस्करण)— बम्बई में मुद्रित । संवत् १९३२ ।

संस्कारविधि—आर्यसमाज शताब्दी संस्करण । रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित । संवत् २०३१ ।

सत्यार्थप्रकाश—राजा जयकृष्णदास द्वारा काशी में छपवाया हुआ प्रथम संस्करण । सन् १८७५ ।

सत्यार्थप्रकाश—आर्यसमाज शताब्दी संस्करण । द्वितीय संस्करण । रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित । संवत् २०३२ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15.1,Y9RS
073803

भूमिका

(नये परिवर्धित संस्करण)

'ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास' का प्रथम संस्करण सं० २००६ (सन् १९४९) में प्रकाशित किया था। इसे आज लगभग ४४ वर्ष हो रहे हैं। इस सुदीर्घ काल में ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के सम्बन्ध में बहुत सी ऐतिहासिक नई सामग्री उपलब्ध हुई, नये ग्रन्थप्रकाश में आये। उन सब का यथास्थान निवेश, तथा पुराने संस्करण में हुई कतिपय भूलों का परिमार्जन करके तथा २-३ अत्यावश्यक नये परिशिष्ट जोड़ कर यह संस्करण प्रकाशित किया जा रहा हैं। इस कारण यह ग्रन्थ पूर्वापेक्षया डचोढ़ा हो गया है।

प्रथम संस्करण आर्थिक ऋण लेकर भी क्यों प्रकाशित किया उस का वर्णन आगे छप रही प्रथम संस्करण की भूमिका के पृष्ठ १४ पर किया गया है। इस संस्करण को भी मैं अपने जीवन के सन्ध्याकाल में इसीलिये पुनः छाप रहा हूं कि ऋ० द० के ग्रन्थों के सम्बन्ध में जो नये ऐतिहासिक तथ्य मुझे ज्ञात हुए हैं, वे सुरक्षित हो जायें।

प्रथम संस्करण पर उस समय दो हजार रुपया व्यय हुआ था। उस की इतने सुदीर्घ काल में भी केवल चार सौ प्रतियां ही बिकीं, जब कि उस का सजिल्द का मूल्य प्रचारार्थ छ रुपया रखा था। इस प्रकार इस ग्रन्थ के प्रकाशन का भी पूरा व्यय भी प्राप्त नहीं हुआ। यही दशा इस संस्करण की भी होगी, यह जानते हुए भी ऋषि-ऋण से उऋण होने की दृष्टि से इस का पुनः प्रकाशन कर रहा हूं।

इस समय कागज छपाई आदि का व्यय अत्यधिक बढ़ गया है तथा पूर्व संस्करण की विक्री को देखते हुए केवल पांच सौ प्रतियां ही छापी गई हैं। ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से सम्बद्ध ग्रन्थों की बिक्री पर न्यून मूल्य अथवा अधिक मूल्य होने का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता यह रामलाल कपूर ट्रस्ट के प्रकाशन कार्य से सम्पुष्ट हो चुका है। आर्यसमाज शताब्दी (सन् १९७५) के अवसर पर सत्यार्थप्रकाश का लगभग १४०० पृष्ठों का ३५०० टिप्पणियों और १४ विविध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्टों से युक्त अतिमहत्त्वपूर्ण संस्करण दो सहस्र की संख्या में निकाला था, जिस पर प्रति पुस्तक १७ रुपया व्यय हुआ। कमीशन काट कर शताब्दी के अवसर पर १८ रुपये में दिया गया। इतने पर भी शताब्दी के महामेले में केवल २५ प्रतियां बिकीं। पुस्तक निकालने की दृष्टि से लागत से कम मूल्य १६ रुपयों में देने की बार-बार घोषणा करने पर भी २०० प्रतियों से अधिक नहीं विकीं। विगत ७-८ वर्षों में सब मिला कर १००० प्रतियां निकली और शेष पड़ी हुई हैं। इस दृष्टि से ऋ० द० के ग्रन्थों के इतिहास की बिक्री कितनी होगी, यह जानते हुए भी **इदं दयानन्दाय इदं न मम** की भावना से ही मैं इसे प्रकाशित कर रहा हूं। इस से ऋ० द० के ग्रन्थों से सम्बद्ध सामग्री तो कम से कम ५० वर्ष के लिये सुरक्षित हो जायेगी। यदि किन्हीं २-४ इतिहासज्ञ व्यक्तियों को भी इस से सहायता प्राप्त होगी तो मैं अपने परिश्रम और धन-व्यय को सार्थक समझूंगा।

रामलाल कपूर ट्रस्ट — विदुषां वशंवदः—

सं० २०४०, भाद्र पूर्णिमा — युधिष्ठिर मीमांसक

57
1983

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

(प्रथम संस्करण)

युग-प्रवर्तक ऋषि दयानन्द

विक्रम की २० वीं शताब्दी के युगप्रवर्तक भारतीय महापुरुषों में ऋषि दयानन्द का स्थान बहुत ऊँचा है। भारत जैसे रूढ़िवादी पद-दलित और पिछड़े हुए देश को विचार-स्वातन्त्र्य और आत्मसम्मान की गौरवमयी भावना से भरकर स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर करने वालों में वे अग्रणी थे। उन्होंने आसेतु-हिमाचल प्रदेश को अपने अविश्रान्त प्रचार, भाषण और लेखन द्वारा हिला दिया।

महर्षि का जन्म काठियावाड़ प्रान्त के मौरवी प्रदेशान्तर्गत टङ्कारा नामक ग्राम में सं० १८८१ में हुआ था। उनके पिता कर्शन-जी तिवारी एक सम्पन्न और सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। किशोरावस्था में ही उनके हृदय में मूर्तिपूजा पर अनास्था हो गई थी। भगवान् बुद्ध की भांति वे भी युवावस्था के प्रारम्भ में ही अमरत्व और सच्चे शिव की खोज में घर से निकल पड़े। उसकी प्राप्ति के लिये संवत् १९०१-१९२० तक प्राय: बीस वर्ष हिमाच्छादित दुर्लङ्घ्य पर्वत-शिखरों, बीहड़ वन-प्रान्तों और तीर्थों में भ्रमण करते रहे। इस विशाल भ्रमण में उन्हें भारत के कोने-कोने में जाने और सधन निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित तथा शज्जन-दुर्जन प्रत्येक प्रकार के व्यक्तियों से मिलने और उन्हें वास्तविक रूप में देखने का अवसर मिला। इसीलिये ऋषि दयानन्द विदेशी साम्राज्य-विरोधी विचारधारा को जन्म देने में समर्थ हो सके और तत्कालीन भारतीय जनता की आशा-अभिलाषाओं का सफल प्रतिनिधित्व कर सके।

गुरु विरजानन्द द्वारा संस्कृतवाङ्मयरूपी समुद्र के मन्थन से समुपलब्ध आर्ष ज्ञान रूपी अमृत को प्राप्त कर ऋषि प्रचार के महान् कार्य-क्षेत्र में उतरे, उन्होंने मौन रहने की अपेक्षा सत्य का प्रचार करना श्रेष्ठ समझा। उनका प्रचार कार्य प्राय: बीस वर्ष तक चला। इस काल के पहले दस वर्ष उन्होंने अवधूत अवस्था में बिताए। इन दिनों वे सस्कृत भाषा का ही व्यवहार करते थे। इस कारण साधारण जनता उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार-धारा को पूर्णतया हृदयङ्गम नहीं कर पाती थी। यह अनुभव करके तथा ब्राह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता केशवचन्द्रसेन के सत्परामर्श से ऋषि दयानन्द ने अपने प्रचार कार्य का माध्यम आर्य (हिन्दी) भाषा को बनाया।

ऋषि का कार्य

इस महान् क्रान्तदर्शी मनीषी ने समस्त भारत में एक भाषा, एक धर्म और एक राष्ट्र की उदात्त कल्पना को चरितार्थ करने के लिये अपना अशेष जीवन अर्पित कर दिया। आर्यों के विभिन्न सम्प्रदायों तथा ईसाई और मुसलमानों के धार्मिक नेताओं से वाद-विवाद किये। उनके प्रचण्ड खण्डन-मण्डन से समस्त सम्प्रदायों और मतों को युग के अनुरूप अपनी साम्प्रदायिक विचारधारा में परिवर्तन करने पड़े। इस से मध्यकालीन रूढ़िवादी विचारधारा को गहरा धक्का लगा।

विदेशी सभ्यता और संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव से रक्षा करने के लिये उन्होंने एतद्देशवासियों में भारत के अतीत गौरव के प्रति आत्माभिमान को जागृत किया। भविष्यत् में इसी भावना ने विकसित होकर राष्ट्रवादी विचारधारा और स्वराज्यान्दोलन को आगे बढ़ाया।

ऋषि की जन्मभाषा गुजराती थी और उन्होंने वर्षों तक केवल संस्कृत भाषा में भाषण, वार्तालाप और शास्त्रार्थ आदि किये थे, किन्तु जन साधारण को उससे विशेष लाभ होता न देख कर उन्होंने जन्मभाषा गुजराती और वर्षों से व्यवहृत देव-वाणी का मोह त्यागकर भाषण तथा लेखन का माध्यम आर्य (हिन्दी) भाषा को बनाया। उन्होंने अपने अनेक पत्रों में हिन्दी भाषा के लिये मातृभाषा और राष्ट्रभाषा शब्दों का प्रयोग उस समय किया, जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का ध्यान किसी को स्वप्न में भी नहीं आ सकता था। इस से ऋषि की दूरदर्शिता सूर्य की भांति विस्पष्ट है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का जो आन्दोलन आज चल रहा है, उसका मूल स्रोत ऋषि दयानन्द ही थे।

ऋषि ने अपना महान् क्रान्तिकारी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में ही लिखा। सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण संवत् १९३२ में प्रकाशित हुआ था। उसमें अनेक प्रक्षेप होते हुए भी वह ऋषि की राष्ट्रिय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आर्थिक विचारों को जानने की महत्त्वपूर्ण कुन्जी है। उदाहरण के लिये प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ २६-२८ पर दिये गये उद्धरणों को देखें। इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा को उनकी सबसे बड़ी देन ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाष्य हैं। वह प्रथम अवसर था, जब सर्वसाधारण हिन्दी-भाषाभाषी वेद जैसे प्राचीन, महत्त्वपूर्ण और धार्मिक ग्रन्थ को पढ़ने और जानने के लिये प्राप्त कर सके। उन्होंने वेद को केवल जन्मना ब्राह्मणों या पण्डितों की बपौती न रहने देकर सर्वसाधारण को सुलभ करने के लिये यह पग उठाया था। वस्तुतः उनके इस कार्य का प्रमुख लक्ष्य था, जन साधारण को वैदिक-शिक्षा-दीक्षित करके उनकी कूपमण्डूकता को दूर करना। कहना न होगा कि इसमें उनको पर्याप्त सफलता मिली।

ऋषि के ग्रन्थों की भाषा खड़ी बोली है। उसमें यद्यपि आज जैसी व्याकरण-शुद्धता भले ही न मिले, तथापि वह ओजपूर्ण, व्यङ्ग-प्रबलता और प्रवाह से भरपूर है, पण्डिताऊपन उसमें नहीं है। भाषा में अविवेकपूर्ण कृत्रिम संस्कृत-निष्ठता की प्रवृत्ति का भी अभाव है। उसमें सरलता है, प्रसाद है और प्रवाह है, जो भाषा के सर्वोपरि गुण माने गये हैं।

स्वामीजी के भाषण और लेखन से ही भारतेन्दु-युग के साहित्य-मनीषियों को प्रेरणा मिली। उस समय के सभी साहित्यकों की रचनाएं प्रायः समाज-सुधार और राष्ट्रियता की भावना से ओतप्रोत हैं। यदि कोई आर्य विद्वान् उस समय की प्रकाशित आर्य पत्र-पत्रिकाओं और आर्य साहित्य का अन्वेषण करके इस सम्बन्ध में प्रकाश डाले तो सहज ही में पता चल जायगा कि राष्ट्रभाषा के प्रचार में ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है।

इस काल के समस्त वाङ्मय में मध्यकालीन रूढ़िवादी विचारधारा का नवीन प्रगतिशील सुधारवादी विचारधारा से संघर्ष परिलक्षित होता है। नवीन राष्ट्रभाषा और उसका वाङ्मय नवीन प्रगतिशील सुधारवादी विचारधारा को व्यक्त करने का साधन बना। ऋषि दयानन्द इस संघर्ष के उन्नायकों में अग्रणी थे। इसलिये हम ऋषि को युग-प्रवर्तक के साथ-साथ युग-परिवर्तक भी मानते हैं।

इन सब बातों के साथ-साथ देश की शोचनीय आर्थिक परिस्थिति को दूर करने के लिये ऋषि ने गोरक्षा का महान् आन्दोलन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी इच्छा थी कि भारत के तीन करोड़ नरनारियों के हस्ताक्षर कराकर महारानी विक्टोरिया की सेवा में एक शिष्ट-मण्डल भेजा जावे। इसके लिये उन्होंने लाखों व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराये, जिनमें राजा[1] से लेकर रङ्क तक सभी वर्ण के व्यक्ति थे। महर्षि की असामयिक मृत्यु से यद्यपि उनका यह कार्य पूर्ण न हो सका, तथापि जनता में इसके लिये महती जागृति उत्पन्न हो गई। इसी प्रकार वे एतद्देशवासियों की निर्धनता को दूर करने के लिये भारतीय व्यक्तियों को जर्मनी आदि कला-कौशल-प्रवीण देशों में औद्योगिक शिक्षा दिलाने का भी प्रयत्न कर रहे थे[2]। उन्होंने वेदभाष्य में स्थान-स्थान पर यन्त्रों को उपयोग में लाने और उनके द्वारा सम्पत्ति बढ़ाने का उल्लेख किया है। इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने साम्राज्यवादी शोषण व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष के लिये राष्ट्र को चैतन्य करने का महान् प्रयत्न किया।

आगे चलकर आर्यसमाज ने गुरुकुल और कालेज आदि शिक्षा-संस्थाएं खोलकर ऋषि के कार्य को कुछ आगे बढ़ाया। इनमें शिक्षित व्यक्ति ही प्रायः राष्ट्रिय आन्दोलन के वाहक बने।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋषि दयानन्द अपने युग की असाधारण विभूति थे। उन्होंने इस प्राचीन महान् देश के पिछड़े हुए जनसमाज को चहुँमुखी प्रगति के पथ पर अग्रसर करने का महान् ऐतिहासिक कार्य किया।

ऋषि का लेखन-कार्य

मौखिक भाषणों, शास्त्रार्थों और विचार-चर्चाओं के अतिरिक्त ऋषि को जो अवकाश मिलता था, उसका उपयोग वे ग्रन्थ-लेखन कार्य में करते थे। ऋषि ने प्रायः सम्पूर्ण लेखन कार्य अपने जीवन की अन्तिम दशाब्दी में किया। इस स्वल्प काल में लगभग २५ ग्रन्थ स्वयं लिखे और ३५ ग्रन्थ अपने निरीक्षण में

---

१. उदयपुर, जोधपुर और बूँदी के महाराजाओं ने उस पर हस्ताक्षर किये थे। देखो यही ग्रन्थ, पृष्ठ १९४-१९५ तथा पत्र और विज्ञापन, भाग ४, प्राक्कथन पृष्ठ ५०-५२।

२. देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ–३७४, ३७६, ३७९, ४०३, ४१२, ४१३, ४५०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयार कराये। इन ग्रन्थों में यजुर्वेदभाष्य और ऋग्वेदभाष्य जैसे विशालकाय ग्रन्थ भी हैं। ऋषि ने जो ग्रन्थ स्वयं लिखे वे लगभग १५ सहस्र पृष्ठों में छपे हैं। ऋषि ने दस वर्ष के स्वल्प काल में वाणी और लेखनी द्वारा जो कार्य किया वह मात्रा और प्रभाव की दृष्टि से अतीत के समस्त महापुरुषों को अतिक्रमण कर गया। इसका एक कारण यह भी है कि ऋषि के समय यातायात और समाचारों के आदान-प्रदान के आधुनिक साधनों तथा प्रेस का आरम्भ हो चुका था। ऋषि ने अपने कार्य में इनका पूरा-पूरा उपयोग लिया। इस नवीन व्यवस्था ने, जिसे ब्रिटिश शासकों ने इस देश की सम्पत्ति को लूटने के लिये स्थापित किया था, भारत की मध्यकालीन अर्थ-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था के विध्वंस के साथ-साथ रूढ़िवादी विचारों के नाश में भी सहयोग दिया। इसलिये यह कुछ आकस्मिक नहीं है कि आर्यसमाज की ओर आकर्षित होने वालों में अंग्रेजी नव-शिक्षितों की बड़ी संख्या थी। यही वर्ग जो उस समय ब्रिटिश सभ्यता का वाहक था, भविष्यत् में राष्ट्रिय आन्दोलन का भी वाहक बना।

ऋषि के ग्रन्थों में लिपिकर आदि की भूलें

ऋषि का ग्रन्थ-निर्माण कार्य उनके कार्य-बाहुल्य में भी निरन्तर चलता रहता था। इस ग्रन्थ-निर्माण कार्य में लेखन आदि कार्यों की सहायता के लिये ऋ० द० ने कुछ पण्डित भी रक्खे थे। पं० भीमसेन ज्वालादत्त और दिनेशराम आदि स्वामीजी के वेदभाष्यादि के हिन्दी अनुवाद और प्रूफ संशोधन आदि का कार्य किया करते थे। ये लोग रूढ़िवादी समाज के वातावरण से प्रायः ग्रस्त थे। अतः स्वामीजी की विचारधारा के साथ उनका पूरा सामंजस्य नहीं था। इसलिये वे स्वामीजी के ग्रन्थों में न केवल अज्ञान और उपेक्षा के कारण ही भद्दी भूलें करते थे, अपितु जानबूझ कर भी। स्वामीजी के पत्र-व्यवहार और विज्ञापनों से इसके बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं[1]। इस ग्रन्थ में भी यथास्थान इन का उल्लेख किया है।

ऋषि के जीवन काल में उनकी सम्पूर्ण कृतियों का प्रकाशन नहीं हो सका। उनका ऋग्वेदभाष्य अपूर्ण ही रह गया, और भी अनेक

१. देखो 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' भाग १ पृष्ठ ३८७, ३९०, भाग २, पृष्ठ ६१२, ६६६, ६७०, ६७४, ७२६, ७६७ इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ जिन्हें स्वामीजी लिखना चाहते थे, लिखे न जा सके। ऋग्वेद-भाष्य और यजुर्वेदभाष्य के कुछ अंशों को छोड़कर शेष भाग में वे अपना अन्तिम संशोधन भी न कर सके[1]। अष्टाध्यायी-भाष्य सारा ही असंशोधित रह गया[2]। यह कौन नहीं जानता कि प्रत्येक लेखक ग्रन्थ छपने के समय तक और बहुधा बाद में भी अनेक परिवर्तन और परिवर्धन करता रहता है। इस कार्य के लिये मृत्यु ने ऋषि को अवकाश नहीं दिया। इस कारण उनके ग्रन्थों में अनेकविध भूलें यत्र तत्र उपलब्ध होती हैं।

ऋषि के ग्रन्थों का शुद्ध सम्पादन

ऋषि के स्वर्गवास के अनन्तर इस महान् ग्रन्थ-राशि के सम्पादन का भार उनकी उत्तराधिकारिणी सभा पर था। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि उक्त संस्था ने इस कार्य के महत्त्व को कुछ नहीं समझा, और इतने सुदीर्घकाल में इस ओर यत्किञ्चित् ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत उपेक्षा का परिणाम यह हुआ कि उनके ग्रन्थों में उत्तरोत्तर भूलों की अधिकता होती गई[3]।

आज आर्य विद्वानों के समक्ष ऋषि के ग्रन्थ-राशि का शुद्ध सम्पादन और प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस कार्य के विना हम आर्ष साहित्य के प्रचार को आगे बढ़ाने में कदापि सफल न हो सकेंगे और न इस साहित्य के महत्त्व को आगे आने वाली पीढ़ियां ही जान सकेंगी।

ऋषि के ग्रन्थों की उपेक्षा

परोपकारिणी सभा और आर्यसमाज के द्वारा ऋषि के ग्रन्थों की उपेक्षा का यह परिणाम है कि आज किसी भी नगर के किसी भी पुस्तकालय में ऋषि के समस्त ग्रन्थों के सब संस्करण उपलब्ध नहीं होते, और तो क्या, जिस वैदिक यन्त्रालय में ऋषि के ग्रन्थ छपते हैं और जो परोपकारिणी सभा इनका प्रकाशन करती है, उसके संग्रह में भी ऋषि के सब ग्रन्थों के सम्पूर्ण संस्करण नहीं हैं। भला इस उपेक्षा और प्रमाद की भी कोई सीमा है ?

---

१. परिशिष्ट १, पृष्ठ २६६-२६७। २. यही ग्रन्थ, पृष्ठ १६६-१६७।

३. आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु विरचित यजुर्वेदभाष्य-विवरण (संस्क० २) की भूमिका पृष्ठ १२९-१३०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भारी भ्रम

हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग से "हिन्दी पुस्तक साहित्य" नाम की एक पुस्तक कुछ समय हुआ प्रकाशित हुई है। उसमें सन् १८६६ मे १९४२ तक की प्रसिद्ध तथा उपयोगी हिन्दी पुस्तकों का विवरण छपा है। इसके लेखक हैं श्री डा० माताप्रसाद गुप्त। यह ग्रन्थ हिन्दी में अपने ढङ्ग का एक ही है। लेखक ने निस्सन्देह इस ग्रन्थ के लेखन में महान् परिश्रम किया है, परन्तु उसमें कुछ भयानक भूलें हो गई हैं। उसमें ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में भी एक महती भ्रान्ति हुई है।

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता ने ऋषि दयानन्द तथा उनसे उत्तरवर्ती भारतधर्म-महामण्डल काशी के प्रतिष्ठापक स्वामी दयानन्द का एक व्यक्ति मान लिया है और दोनों की पृथक्-पृथक् रचनाओं को एक में मिला दिया है। वस्तुतः ये दोनों विभिन्न व्यक्ति हैं, इनकी विचार-धारा भी भूतलाकाश के समान परस्पर भिन्न-भिन्न है। इसी प्रकार इसमें ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाषा-भाष्य जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का भी उल्लेख छोड़ दिया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना में निमित्त

संवत् २००० की बात है, मैं परोपकारिणी सभा अजमेर में अथर्व-वेद का संशोधन-कार्य कर रहा था। सभा के दैनिक कार्य के अतिरिक्त अपने गृह पर "संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास" ग्रन्थ की रूप-रेखा तैयार करने के लिये चिरकाल से संगृहीत टिप्पणियों को व्यव-स्थित और लेखबद्ध करने में लगा हुआ था। तभी एक दिन मन में विचार उत्पन्न हुआ कि ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के सम्बन्ध में लोक में अनेक भ्रमपूर्ण धारणाएं फैल रही हैं, उनकी निवृत्ति के लिये ऋषि के ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी यदि ऐतिहासिक दृष्टि से कोई पुस्तक लिखी जाय तो उस से उनके सम्बन्ध में फैले हुए अनेक मिथ्या भ्रम अनायास दूर हो जायेंगे। उन्हीं दिनों परोपकारिणी सभा के मन्त्री वयोवृद्ध श्री दीवान बहादुर हरविलासजी शारदा अंग्रेजी में ऋषि का जीवनचरित लिखने का उपक्रम कर रहे थे। उन्होंने ऋषि दयानन्द के प्रत्येक ग्रन्थ के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण लिख कर देने का मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश दिया[१]। इस प्रसङ्ग से मुझे एक बार ऋषि के समस्त ग्रन्थों और उनके जीवन-चरितों का पुनः पढ़ने को अवसर प्राप्त हुआ। इस बार मैंने ऋषि के ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पढ़े। मुझे उनमें से बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई। उस से ऋषि कृत ग्रन्थों का इतिहास लिखने की धारणा और बलवती हो गई और मन में यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि ऋषि के ग्रन्थों के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री अभी तो बहुत कुछ उपलब्ध है, यदि कुछ काल और बीत गया तो बहुत सी सामग्री के नष्ट होने की सम्भावना है।

३० मई सन् १९४३ में हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के प्राध्यापक श्री० पं० महेशप्रसादजी मौलवी आलम फ़ाज़िल सत्यार्थप्रकाश के हस्तलेख देखने के लिये अजमेर पधारे। उन से इस विषय में बातचीत हुई। उन्होंने इस कार्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए मुझे इसको शीघ्र पूर्ण करने का परामर्श और अपना पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया। उनके परामर्श और सहयोग से उत्साहित होकर मैंने इस ग्रन्थ को लिखने का सङ्कल्प कर लिया। परोपकारिणी सभा में ७ घण्टे संशोधन कार्य करने के अनन्तर गृह पर निरन्तर कई घण्टे कार्य करते हुए लगभग १।। वर्ष में इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि-रफ़ कापी तैयार की।

श्री० पं० महेशप्रसादजी का सहयोग

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार करके जनवरी सन् १९४५ में मैंने श्री० पण्डितजी की सेवा में उसे अवलोकनार्थ भेजा। उन्होंने उसे भले प्रकार देख कर ५ तथा १० फरवरी सन् १९४५ के पत्रों में अनेक आवश्यक परामर्श दिये और कापी में कई स्थानों में उचित संशोधन तथा परिवर्धन किये। तदनन्तर उनके परामर्श तथा नूतन उपलब्ध सामग्री के आधार पर इसको पुनः संशोधन करके आप की सेवा में दूसरी बार अवलोकनार्थ भेजा। इस बार भी आपने

---

१. मेरे लिखे हुए विवरण के आधार पर ही श्री दीवान बहादुरजी ने जीवनचरित का इक्कीसवां और बाईसवां अध्याय लिखा। इसी प्रकार २० वां अध्याय (दि वेदास्) भी प्रायः मेरे हिन्दी में लिखकर दिये हुए प्रकरण का अंग्रेजी अनुवाद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक संशोधन किये। इस प्रकार माननीय पण्डितजी के सहयोग से लगभग ढाई वर्ष के परिश्रम से यह ग्रन्थ सन् १९४५ के अन्त में पूर्ण तैयार हुआ।

आकस्मिक सहायता

जिस समय मैं इस ग्रन्थ को लिख रहा था, उसी समय सौभाग्य से श्री माननीय पं० भगवद्दत्तजी ने रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर की ओर से ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापनों का बृहत् संग्रह छपवाना आरम्भ किया।[1] मुझे उसके छपे फार्म बराबर मिलते रहे। इस ग्रन्थ से मुझे अपने कार्य में बहुत साहाय्य प्राप्त हुआ। इसके विना ग्रन्थ का लिखा जाना ही असम्भव था। इसके लिये श्री माननीय पण्डितजी और ट्रस्ट के अधिकारियों का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक के तैयार करने में ऋषि दयानन्द के पत्र और उनके जीवन सम्बन्धी अनेक घटनाओं के अन्वेषक श्री महाशय मामराजजी खतौली (जि० मुजफ्फरनगर) निवासी ने भी अपने कई पत्रों में अनेक उचित परामर्श दिये और अपने संग्रह से कुछ दुर्लभ पुस्तकों के मुखपृष्ठ की प्रतिलिपियां भी भेजीं। उनका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्र अभी-अभी प्राप्त हुआ है। इसमें उन्होंने सं० १९३२ (सन् १८७५) के सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण की हस्तलिखित प्रति का विस्तृत विवरण भेजा है। विलम्ब से प्राप्त होने के कारण हमने उसे चतुर्थ[2] परिशिष्ट में दिया है। इसके लिये मैं इनका अत्यन्त ऋणी हूँ।

लेखक का दृष्टिकोण

इस ग्रन्थ को लिखते समय मैंने किन्ही स्वकल्पित विचारों को यत्किञ्चित् स्थान नहीं दिया। ऐतिहासिक बुद्धि से ऋषि के ग्रन्थों के सम्बन्ध में जो कुछ भी ऐतिहासिक सत्यांश मुझे विदित हुआ उसे

---

१. पहले संस्करण की आधी प्रतियां सन् १९४७ के देशविभाजन काल में लाहौर में जला दी गई। तत्पश्चात् इस का दूसरा परिशोधित और परिवर्धित संस्करण काशी से सन् १९५५ में छपा। अब उस का तृतीय परिवर्धित संस्करण भी छप गया है।

२. प्रस्तुत सं० में तृतीय परिशिष्ट में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निः-सङ्कोच प्रकट कर दिया। सम्भव है, कई महानुभाव मेरे द्वारा प्रकट किये गये परिणामों को स्वीकार न करें, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी लेख से विभिन्न प्रकार के परिणाम निकालने में स्वतन्त्र है[1]। इसी विचार से मैंने इस ग्रन्थ में संक्षेप से कार्य न लेकर सब प्राचीन विप्रकीर्ण सामग्री को पूरे रूप में उद्धृत कर दिया है। इस से प्रत्येक पाठक इन उद्धरणों पर स्वतन्त्र रूप से विचार करने में समर्थ होंगे, साथ ही यह ऐतिहासिक सामग्री भी चिरकाल के लिये सुरक्षित हो जायगी।

कार्य में न्यूनता

इस कार्य में मुझे तीन न्यूनता अखरती हैं। **पहली**–इस ग्रन्थ को लिखते समय मुझे ऋषि के हस्तलिखित ग्रन्थों को सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने की सुविधा प्राप्त नहीं हुई। श्री आचार्यवर पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने कई बार अजमेर आकर ऋषि के हस्तलेखों का अवलोकन तथा उनको सुव्यवस्थित किया था और समय-समय पर उन हस्तलेखों के सम्बन्ध में साधारण टिप्पणियां अपनी कापी में लिखी थीं। उनके साथ प्रायः मुझे भी ऋषि के हस्तलेख देखने का अवसर अनेक बार प्राप्त हुआ। अतः हस्तलेखों के विवरण के सम्बन्ध में मुझे श्री आचार्यवर की लिखी हुई टिप्पणियों पर ही निर्भर रहना पड़ा। इस कारण हस्तलेखों के विवरण में कुछ न्यूनता वा विपर्यास होना सम्भव है। यद्यपि आचार्यवर ने ये टिप्पणियां किसी विशेष विचार से नहीं लिखी थीं, पुनरपि वे बहुत सीमा तक पूर्ण हैं, यह प्रथम परिशिष्ट में लिखे गये हस्तलेखों के विवरण से स्पष्ट है। यदि इस समय इन हस्तलेखों को देखने का अवसर प्राप्त होता तो इनके विषय में कुछ अधिक और पूर्णता से लिखा जा सकता था। **दूसरी**–स्वर्गीय श्री पं० लेखरामजी द्वारा संकलित ऋषि का जीवनचरित उर्दू भाषा में प्रकाशित हुआ। यद्यपि श्री पं० घासीरामजी द्वारा प्रकाशित जीवनचरित में श्री पं० लेखराम जी द्वारा

---

१. इस ग्रन्थ के प्रथम परिशिष्ट में ब्र० रामानन्द का एक पत्र उद्धृत किया है, उसमें ऋषि के वेदभाष्यों के हस्तलेखों की वास्तविक परिस्थिति का निर्देश है। उसे सन् १९४९-५० में कुछ व्यक्तियों ने विना किसी प्रमाण के इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्र को नकली कहने का दुःसाहस किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकलित जीवनचरित से पर्याप्त सहायता ली है, तथापि उसमें बहुत सी महत्त्वपूर्ण सामग्री ऐसी विद्यमान है, जो अन्य आर्यभाषा में लिखे गये जीवनचरितों में नहीं मिलती। मुझे उर्दू भाषा का ज्ञान न होने से मैं श्री पं० लेखरामजी द्वारा संकलित जीवनचरित से पूर्णतया लाभ नहीं उठा सका[1]। **तीसरी**–ऋषि दयानन्द के समय प्रकाशित होने वाली देशहितैषी, और आर्यदर्पण आदि पत्रों की पुरानी फाइलें पूर्णतया उपलब्ध नहीं हुईं, इसलिये उनका भी पूरा उपयोग न ले सका। हो सका तो इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण में इन न्यूनताओं को दूर करने का प्रयत्न किया जायगा।

प्रकाशन की व्यवस्था

बहुत प्रयत्न करने पर भी कोई व्यक्ति या संस्था इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिये तैयार नहीं हुई। अतः यह ग्रन्थ लगभग साढ़े तीन वर्ष तक पड़ा रहा। गतवर्ष (सन् १९४८) जून मास में मेरे सुहृत् कोटा निवासी श्री प्रो० भीमसेनजी शास्त्री एम० ए० अजमेर पधारे। उन्होंने परामर्श दिया कि यदि इस ग्रन्थ के प्रकाशन की कोई व्यवस्था न बनती हो तो आप इसे क्रमशः देहली के प्रसिद्ध "दयानन्द-सन्देश" पत्रिका में प्रकाशित करें। उनका परामर्श स्वीकार करके मैंने दयानन्द संदेश के सम्पादक श्री पं० राजेन्द्रनाथजी शास्त्री को अपना विचार लिखा और उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से प्रतिमास इस पुस्तक का एक फार्म छापना स्वीकार किया। सन्देश में केवल चार फार्म ही छपे थे कि किन्हीं कारणों से सन्देश की व्यवस्था ढीली पढ़ गई। अतः उसमें चार फार्म से आगे न छप सका।

इस वर्ष के प्रारम्भ में श्री माननीय पण्डित भगवद्दत्तजी के उद्योग से मेरा "संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास" ग्रन्थ छपने लगा। उसको छपते देखकर ऋषि के ग्रन्थों के सम्बन्ध में लिखे गये इस महान् ग्रन्थ को छापने की तथा वर्षों से मस्तिष्क पर पड़े हुए बोझ

---

१. पं० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित का 'आर्यसमाज नयाबांस देहली' के सत्प्रयास से सं० २०२८ में इस का हिन्दी अनुवाद छप गया है। अतः प्रस्तुत द्वितीय संस्करण में इस का पूरा उपयोग करके यथोचित सामग्री यथास्थान जोड़ दी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उतारने की उत्कण्ठा हुई। अन्य किसी व्यक्ति का आर्थिक सहयोग प्राप्त न होने पर मैंने इसे अपने व्यय से ही छापने का सङ्कल्प किया और पास में द्रव्य न होने पर ऋण लेकर ही इसे प्रकाशित करने का दुःसाहस किया। इस बीच में मुझ, मेरी पत्नी और ज्येष्ठ पुत्र को चिरकालीन रुग्णता भोगनी पड़ी, उनकी चिकित्सा में भी अत्यधिक व्यय हुआ। ग्रन्थ का मुद्रण आरम्भ करते समय इसका आकार अधिक से अधिक २५ फार्म (२०० पृष्ठ) का आंका था, परन्तु जब पुरानी लिखी कापी को मुद्रण के साथ-साथ पुनः परिशोधित करके लिखा तो यह ग्रन्थ पूर्वापेक्षया ड्योढ़े से भी अधिक बढ़ गया। लगभग १०० पृष्ठ तो विविध परिशिष्टों के ही बन गये। विगत युद्ध-काल से देशी कागज पर नियन्त्रण होने से इसमें महार्घ विदेशी कागज लगाना पड़ा, इस से इस का प्रकाशन-व्यय और बढ़ गया। इन कारणों से इस ग्रन्थ के प्रकाशित करने में लगभग २०००) रुपये व्यय हुए। इस प्रकार इस पुस्तक के प्रकाशन से आर्थिक बोझ से बहुत दब जाने पर भी ऋषि-ऋण से मुक्त होने के कारण मैं अपने आप को पूर्वापेक्षया बहुत हलका अनुभव करता हूँ। मेरे चिर-काल के परिश्रम से लिखा गया यह महान् ग्रन्थ किसी प्रकार प्रकाशित हो गया, इसका मुझे बहुत हर्ष है।

यद्यपि मेरे दोनों ग्रन्थ "संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास" और "ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास" कई वर्षों से लिखे हुए तैयार पड़े थे, तथापि इसके विषय में जो नित नई सामग्री उपलब्ध होती रही, उसका मुद्रण के समय यथास्थान सन्निवेश करना आवश्यक था। इसलिये मुझे इन ग्रन्थों की प्रेस कापी आमूलचूल पुनः लिखनी पड़ी। इस कार्य से दोनों ही ग्रन्थ पूर्वापेक्षया बहुत परि-मार्जित तथा आकार में लगभग ड्योढ़े हो गये। आठ घण्टे की प्रेस की नौकरी करते हुए इन दोनों महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रेस की कापी तैयार करने और उनको छपवाने में मुझे जो असीम परिश्रम करना पड़ा, उसका अनुमान विज्ञ लेखक ही कर सकते हैं।

ब्रिटिश राज्य-काल के दासता के युग में ज्ञान-प्रसार के मुख्य साधन पुस्तक प्रकाशन पर लगे हुए प्रतिबन्ध देश के स्वतन्त्र होने पर अभी तक उसी प्रकार लगे हुए हैं। इस कारण कोई अनरजिस्टर्ड पब्लिशर सम्प्रति किसी प्रकार के कागज पर पुस्तक प्रकाशित नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकता। इसलिये मेरे मित्र श्री० बाबू दीनदयालुजी "दिनेश" बी० ए० ने "मीरा-कार्यालय" द्वारा इसके प्रकाशन की व्यवस्था कर दी। इसके लिये मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। अन्यथा ग्रन्थ छप जाने पर भी उसका प्रकाशन करना दुष्कर हो जाता।

आचार्यवर श्री पूज्य पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, जिनके चरणों में बैठ कर निरन्तर १४ वर्ष प्राचीन आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया और श्री माननीय पं० भगवद्दत्तजी, जिनके समीप्य में रहकर भारतीय प्राचीन इतिहास का ज्ञान प्राप्त किया और जिनकी अहर्निश प्रेरणा से इतिहास लेखन-कार्य में प्रवृत्त हुआ। इन दोनों महानुभावों को अनेकधा भक्ति पुरःसर नमस्कार करता हूँ।

श्रीमान् पं० महेशप्रसादजी मौलवी आलम फ़ाज़िल प्राध्यापक हिन्दू-विश्वविद्यालय काशी, जिनकी प्रेरणा तथा असकृत् ग्रन्थ-परिशोधन-रूपी साहाय्य से यह ग्रन्थ निष्पन्न हो सका तथा ऋषिभक्त श्री महाशय मामराजजी और श्री पं० याज्ञवल्क्यजी जिनसे इस ग्रन्थ के लिखने में मुझे बहुत साहाय्य प्राप्त हुआ तथा श्रीमती परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री माननीय दीवान बहादुर हरविलासजी शारदा, जिन की कृपा से वैदिक यन्त्रालय से प्रकाशित ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के विभिन्न संस्करणों और मुद्रित प्रतियों की संख्या की सूचना प्राप्त हुई[1], इस के लिये मैं इन सब का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इनके अतिरिक्त अपने बचपन के साथी भाई श्री वैद्य महादेवजी आर्य का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने इस महान् कार्य की पूर्त्ति के लिये एक बड़ी धनराशि ऋण रूप में देने की कृपा की।

भूल चूक

मनुष्य अल्पज्ञ है और भूलनहारा है। इसलिये इस ग्रन्थ में निःसन्देह अनेक भूले हुई होंगी। पुनरपि मुझ से जहां तक बन सका इस ग्रन्थ को उत्तम और पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। इतना प्रयत्न करने पर भी मानुष अल्पज्ञता, प्रमाद और दृष्टि-दोष आदि से जो न्यूनताएं रह गईं हों, उनके लिये क्षमा चाहता हुआ पाठकों से

१. ऋ० द० के ग्रन्थ सन् १९४९ तक कहां-कहां से कब और कितनी संख्या में छपे इस का विवरण तृतीय परिशिष्ट में छापा था। उसे प्रस्तुत द्वितीय संस्करण निकाल दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें इस ग्रन्थ में जो न्यूनता अथवा अन्यथा लेख प्रतीत हो उसकी सूचना मुझे देने की अवश्य कृपा करें। मैं उनके उचित परामर्श को अवश्य स्वीकार करूंगा और अगले संस्करण में नामोल्लेख पूर्वक उनका धन्यवाद करूंगा।

आशा है मेरा यह कार्य ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ सम्बन्धिनी ऐतिहासिक सामग्री को सुरक्षित रखने और भविष्यत् में एतद्विषयक कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिये मार्ग प्रदर्शन में सहायक होगा।

[1]ऐतिह्यप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥

प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान
श्रीनगर रोड, अजमेर,
कार्तिक पूर्णिमा सं० २००६

विदुषां वशंवदः—
युधिष्ठर मीमांसक

१. तन्त्रवार्तिक (चौखम्ब संस्कारण पृष्ठ ३) के श्लोक का प्रकरणानुकूल ऊहित पाठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि दयानन्द सरस्वती
के
ग्रन्थों का इतिहास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक सूचना

प्रस्तुत 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' संज्ञक ग्रन्थ में **'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन'** तथा **'ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्र और विज्ञापन** नामक संग्रह से ऐतिहासिक तथ्य के निरूपण के लिये प्रमाणरूप में बहुत से उद्धरण उद्धृत किये हैं। 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' नामक संग्रह के वर्त्तमान तृतीय संस्करण के अवसर पर ऋ० द० को लिखे गये पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह भी साथ में छापा है। प्रत्येक संग्रह दो-दो भागों में मुद्रित हुआ है। इन पर भागों की क्रम संख्या क्रमशः १-२-३-४ दी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में इन दोनों सग्रहों का निर्देश **'पत्र और विज्ञापन'** इस सामान्य नाम करके भाग संख्या १-२-३-४ का निर्देश करके पृष्ठ संख्या लिखी है। अतः जहां 'पत्र और विज्ञापन' के निर्देश के आगे भाग संख्या १ या २ लिखी हो वहां **'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन'** का निर्देश समझें तथा जहां भाग संख्या ३ या ४ का निर्देश हो, वहां **'ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्र और विज्ञापन'** का निर्देश जाने। प्रतिसंग्रह दोनों भागों पर क्रमिक पृष्ठ संख्या छापी गई है। उक्त पृष्ठ संख्या किस भाग में है, इस के निर्देश के लिये भाग संख्या १-२-३-४ का निर्देश किया है। अतः उस-उस भाग की संख्या देख कर निर्दिष्ट पृष्ट पर उद्धरण देखें। अत्यावश्यक स्थलों पर सुगमता के लिये पङ्क्ति संख्या का भी निर्देश किया है।

युधिष्ठिर मीमांसक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओम्

ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास

प्रथम अध्याय

महान् दयानन्द का प्रादुर्भाव

जिस समय ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ उस समय आर्य जाति की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अवस्था अत्यन्त हीन थी। आर्यजाति वेदशास्त्र-प्रतिपादित सनातन वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप को भूलकर, एक ईश्वर की उपासना को छोड़ कर, विभिन्न वेदविरुद्ध-मतों का अवलम्बन करके काल्पनिक देवी-देवताओं की पूजा और गङ्गा-स्नानादि कार्यों से परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति मान बैठी थी। ईसाई, मुसलमान आदि वाह्य सम्प्रदायों की बात तो क्या कहना, आर्यों में ही इतने अधिक सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये थे, जिनके भेद-प्रभेद की गणना करना भी दुष्कर कार्य था। इन विविध सम्प्रदायों के मतभेद के कारण आर्यजाति **'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्'** (अथर्व० ३।३०।३) **'सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'** (ऋ० १०।१९१।२) के वैदिक आदर्श तथा आज्ञा से सर्वथा विपरीत आचरण करने लग गई थी। यहां तक कि आर्यजाति के प्रातः-स्मरणीय राम और कृष्ण का नामस्मरण भी साम्प्रदायिक मतभेद के कारण बंट चुका था। रामभक्त कृष्ण के और कृष्णभक्त राम के नामोच्चारण में पातक मानने लग गये थे। वैदिक सामाजिक मर्यादा के नष्ट हो जाने से ऊँच-नीच के भेद के कारण सामाजिक बन्धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वथा जर्जरित हो चुके थे। इधर हम लोगों की तो यह दुरवस्था थी, उधर हमारी दीन-हीन परिस्थिति से लाभ उठाने के लिये ईसाई और मुसलमानों में होड़ लग रही थी। यद्यपि उनका कार्य 'जले पर नमक छिड़कने' के तुल्य था, तथापि आर्य जाति अपनी इस भयानक परिस्थिति तथा ह्रास से सर्वथा बेसुध थी। राजनीतिक अवस्था उससे भी अधिक शोचनीय थी। आर्यों ने यवनराज्य के अन्तिम समय में जिस स्वातन्त्र्य-प्रेम, शौर्य और पराक्रम से मुगल-साम्राज्य पर विजय प्राप्त कर पुनः आर्य-साम्राज्य की स्थापना की थी, वह भी प्रातः-स्मरणीय नरपुङ्गव शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह जैसे दूरदर्शी और राजनीतिक नेता के अभाव तथा साम्प्रदायिक और प्रादेशिक पारस्परिक विद्वेष के कारण छिन्न भिन्न हो चुका था। उसके स्थान में ब्रिटिश-शासन के रूप में पुनः पराधीनता की सुदृढ़ शृङ्खला पैरों में पड़ चुकी थी। यह पराधीनता वास्तव में यवन-राज्य की पराधीनता की अपेक्षा कहीं अधिक भयानक और सुदृढ़ थी। भारत की ऐसी दीन-हीन दुरवस्था में ऋषि का प्रादुर्भाव हुआ। उनके कार्य-क्षेत्र में उतरने से कुछ पूर्व ही सं० वि० १९१४ (= सन् १८५७) का स्वतन्त्रता का अन्तिम प्रयास भी विफल हो चुका था और भारत चिरकाल के लिए ब्रिटिश-शासन की सुदृढ़ जञ्जीरों में जकड़ा जा चुका था।

वेद, ब्राह्मण, मनुस्मृति, रामायण और महाभारत आदि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के अनेक वार के अनुशीलन से ऋषि दयानन्द के मस्तिष्क में आर्यों के भूतकालीन सुख-समृद्धि के दिन चक्कर लगाया करते थे। वे वर्षों तक आर्यों की दुरवस्था के कारणों पर विचार करते रहे, अन्त में उन्हें इस सारी दुरवस्था का एक ही कारण समझ में आया। वह था—**आर्य जाति का वेद की शिक्षा से विमुख होना**। अत एव उन्होंने अपना समस्त जीवन वैदिक-शिक्षा के प्रचार के लिये लगा दिया। वैदिक-शिक्षा के विस्तार के लिये महर्षि ने **"स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्"**[1] इस आर्षप्रवचनानुसार आर्यसमाज के तृतीय नियम में **"वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है"** लिखा। परन्तु शोक है कि आर्य समाज में वेद के स्वाध्यायी ढूंढने पर भी कठिनता से मिलते हैं।

१. तैत्तिरीय उपनिषद् शिक्षावल्ली ११।१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि दयानन्द ने जितने ग्रन्थ रचे, पत्र लिखे, व्याख्यान दिये, शास्त्रार्थ किए, उन सब पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर हमें ऋषि के सर्वाङ्गपूर्ण जीवन की एक ऐसी उत्कृष्ट तथा स्पष्ट झलक दिखाई देती है, जिसकी तुलना हम पूर्णरूप से संसार के किसी भी बड़े से बड़े व्यक्ति के जीवन के साथ करने में असमर्थ हैं। हम ऋषि के जीवन को जिस भी पहलू से देखते हैं, उसी में उसे सर्वाङ्गपूर्ण पाते हैं। आर्यों की इस अधोगति का निदान और उसकी चिकित्सा का जैसा सर्वाङ्गीण निर्णय दयानन्द ने किया, वैसा आज तक किसी भी महापुरुष ने नहीं किया। अन्य सब महापुरुष दोषों के मूल कारण को न समझ कर विभिन्न शाखारूप में व्याप्त दोषों में से एक-एक दोष की चिकित्सा में लगे रहे। इसी कारण उनकी चिकित्सा से कतिपय दोषों का कुछ मात्रा में प्रशमन होने पर भी मूलच्छेद न होने से नये-नये दोषों की उत्पत्ति होती रही। अत एव मानना पड़ता है कि दयानन्द एक महान् ऋषि=असाधारण तत्त्ववेत्ता था। परन्तु दुर्भाग्य है आर्य-जाति का, जो उसने अपने उद्धारक दयानन्द को भली भाँति नहीं पहचाना और उसकी सर्वाङ्गीण शिक्षा पर पूर्ण रूप से ध्यान नहीं दिया। फिर भी उनकी शिक्षा को जितना थोड़े बहुत अंश में समझा है, उसके कारण तदनुयायी आर्यजन प्रायः सभी धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक कार्यों में अग्रेसर होते रहे, परन्तु सम्प्रति आर्य कहलाने वाले व्यक्तियों में आर्यत्व का प्रायः अभाव ही देखा जाता है। अन्यथा **अजर्यमार्यसङ्गतम्**' (=आर्यों की मित्रता अटूट होती है) के स्थान में प्रत्येक समाज, प्रत्येक प्रादेशिक सभा और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि में परस्पर राग-द्वेष एवं गुटबाजी का बोला-बाला न होता।

धर्म की व्याख्या

वैदिक धर्म के सिद्धान्तों और ऋषि दयानन्द के कार्यों को समझने के लिये धर्म शब्द का क्या अर्थ है, यह समझना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उस को समझे विना वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द के कार्यों को हम पूर्णतया कभी नहीं समझ सकते। आजकल धर्म को सामाजिक नियम और राजनीति से पृथक् माना जाता है। इसी कारण हमने भी

१. अष्टाध्यायी ३।१।१०५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ में धर्म, समाज और राजनीति का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है, परन्तु धर्म की प्राचीन ऋषियों की आर्ष-व्याख्यानुसार सामाजिक नियम और राजनीति धर्म से पृथक् नहीं हैं, अपितु उसके प्रमुख अंग हैं। धर्म का लक्षण प्राचीन ऋषियों ने निम्न प्रकार किया है:—

'धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजा:।' महाभारत।

'यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म:।' वैशेषिक दर्शन।

अर्थात् जिन नियमों के अनुसार समस्त संसार का नियन्त्रण तथा सांसारिक और पारलौकिक उभयविध सुख की प्राप्ति हो, वे सब धर्म कहाते हैं।

इस लक्षण के अनुसार प्रत्येक धर्मशास्त्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र इन चारों वर्णों और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास इन चारों आश्रमों के कर्तव्य-कर्मों का विशदरूप से निरूपण किया गया है। इन्हीं के अन्तर्गत समस्त सामाजिक तथा राजनीतिक नियमों का उल्लेख मिलता है। साम्प्रतिक आर्य नेता धर्म और राजनीति को प्राचीन परम्परा के विरुद्ध परस्पर पृथक्-पृथक् मानते हैं। उन्हें देखना चाहिए कि क्या धर्मशास्त्रों में मूर्धाभिषिक्त मनुस्मृति में राज-नीति का बहिष्कार किया गया है? क्या तदनुयायी याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों के द्वारा प्रोक्त स्मृतियों एवं धर्मशास्त्रों में राजनीतिक प्रकरण का परित्याग किया है? दूर जाने की क्या आवश्यकता है आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द के प्रसिद्धत्तम ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश' को ही उठाकर देख लो, क्या उसमें राजनीतिक प्रकरण का उल्लेख नहीं है? जब हमारी सम्पूर्ण प्राचीन परम्परा ही इस बात की परिचायिका है कि आर्यों का वैदिक धर्म ऐसा नहीं है कि उस से सामाजिक और राजनीतिक अङ्ग को पृथक् किया जा सके, तब आजकल के कई आर्य नेता कहलाने वाले व्यक्तियों के मुँह से यह सुन कर कि **'आर्यसमाज एक विशुद्ध धार्मिक संस्था है, उसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं'** महान् आश्चर्य होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों के विचार में आर्यसमाज का धर्म समाजमन्दिर में बैठकर सन्ध्या हवन-मात्र कर लेने तक ही सीमित है। क्या ये आर्यनेता कहाने वाले व्यक्ति यह नहीं जानते कि 'सत्यार्थप्रकाश' का षष्ठ समुल्लास क्या वस्तु है? क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आर्याभिविनय' में प्रभु से '**अखण्ड तथा निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य**'[1] और '**स्वराज्य**'[2] के लिये की गई प्रार्थनाएं किसी वैदिक मतानुयायी को राजनीति से पृथक् रहने की अनुमति दे सकती हैं ? हम चाहे अपनी व्यक्तिगत निर्बलताओं, संस्थाओं के मोह और उनकी सम्पत्ति के लोभ के कारण राजनीति से मुंह मोड़ लें; परन्तु इन नेताओं ने आर्यसमाज की, विशेष कर क्षत्रिय वर्ण को, जिसका धर्म ही राजनीति है, विरुद्ध मार्ग पर चला कर देश-जाति की महती हानि की है। यदि यह भयानक भूल न होती तो भारत की सामाजिक और राजनीतिक वागडोर आज प्रधानतया आयसमाज के हाथ में होती, और भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक उन्नति के अभिलाषुक आर्यों को कांग्रेस और हिन्दु-सभा आदि में न घुसना पड़ता।

इस भूल पर विचार करने पर विदित कि इसका मुख्य कारण यह है—हमारे नेता माने जाने वाले महानुभाव प्रायः पाश्चात्य सभ्यता[3] में दीक्षित और भारतीय प्राचीन आर्ष ग्रन्थों और उसकी प्राचीन संस्कृति से अनभिज्ञ हैं। पाश्चात्य देशों में वर्ण-विभाग और आश्रम-विभाग की कोई व्यवस्था नहीं है। अत एव उनके पृथक्-पृथक् कर्तव्यों का निरूपण भी उनके साहित्य में नहीं मिलता। उनके यहां क्षत्रिय वर्ण की पृथक् सत्ता न होने से राजनीति को धर्म से पृथक् माना जाता है। पाश्चात्य देशों में केवल पारलौकिक सुख की प्राप्ति के हेतुभूत विश्वास वा विशिष्ट उपासना पद्धति को ही धर्म माना जाता है, परन्तु वैदिक धर्म इतना संकुचित नहीं है। यहां तो धर्म का लक्षण ही '**यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः**' (वैशे० १।१।२) माना है और पारलौकिक सुख की अपेक्षा ऐहलौकिक सुख को प्रधान माना है। अत

---

१. आर्याभिविनय, पृष्ठ २१४, १३१, १०१, रामलाल कपूर ट्रस्ट, लाहौर संस्करण।

२, आर्याभिविनय, पृष्ठ ५३, पूर्वोक्त संस्करण।

३. संस्कृति और सभ्यता में आकाश पाताल का अन्तर है। संस्कृति मानव-जीवन के उन्नायक संस्कारों से युक्त होती है। अतः वह संस्कृति सम्पूर्ण विश्व में एक ही हो सकती है। सभ्यता मानवों की विभिन्न सभा= समुदायों के विशिष्ट नियम तथा आचरणरूप होती है। इस प्रकार चोरों, डाकुओं, भंगेड़ीः अफीमीची आदि की भी अपनी अपनी सभ्यता होती है, जो ५०-६० वर्ष पूर्वक तक विद्यमान रही। सम्प्रति यह सभ्यता भी नष्ट हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एव उस की प्राप्ति के लिये चारों वर्णों और चारों आश्रमों की व्यवस्था बांधी गई है। इस कारण समष्टिरूप शरीर के बाहुस्थानीय क्षत्रिय वर्ण का राजनीतिक कर्म सामूहिक आर्य-धर्म का एक बाहुस्थानीय प्रधान अंग है। उसे भारतीय परम्परा के अनुसार धर्म से पृथक् नहीं कर सकते।

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में जितना भी कार्य किया है, उसे हम तभी पूर्णतया समझ सकेंगे जब 'धर्म' की प्राचीन आर्ष अति-विस्तृत व्याख्या हमारी समझ में आ जायगी। अन्यथा हम ऋषि के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के महत्व को पूर्णतया कदापि नहीं समझ सकते।

ऋषि दयानन्द का लेखन-कार्य

ऋषि दयानन्द गुरुवर्य श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती के पास (सं० १९१७—१९२० वि०) तक लगभग ढाई वर्ष अध्ययन करके सं० १९२० वि० के अन्त में कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए और सं० १९४० वि० तक लगभग २० बीस वर्ष कार्य किया। किन्तु इन बीस वर्षों में भी उनका वास्तविक कार्यकाल अन्तिम दश वर्ष (सं० १९३१—१९४० वि० तक) हैं। प्रारम्भिक दस वर्षों में वे केवल कौपीनमात्रधारी निःसङ्ग और निर्लेप होकर परमहंसावस्था में ही विचरते रहे, तथा करिष्यमाण महान् कार्य के योग्य अपने को बनाने के लिए कठोर तप करते रहे। यद्यपि इन दस वर्षों में भी प्रायः मौखिक धर्मोपदेश और मूर्तिपूजा आदि पौराणिक मतों का खण्डन करते रहे, तथापि यदि इस काल को कार्यकाल न कह कर तपस्या-काल कहा जावे तो अधिक उपयुक्त होगा। इन प्रारम्भिक दस वर्षों में उन्होंने जो कुछ भी उपदेश कार्य किया, वह सब संस्कृत भाषा में ही किया और संस्कृत में ही ४,५ छोटे-छोटे ग्रन्थ प्रकाशित किये। अन्त के दस वर्षों में ऋषि ने केवल लेखन कार्य ही इतना अधिक, किया, जिसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता है। उनके द्वारा तैयार किया हुआ समस्त साहित्य फुलस्केप आकार के लगभग २० सहस्र पृष्ठों में परिसमाप्त हुआ हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन अभ्यागतों से मिलना, उनसे विचार-विनिमय करना, बाहर से आये हुए शतशः पत्रों का प्रत्युत्तर लिखना-लिखाना, व्याख्यान देना, और विपक्षियों के साथ शास्त्रार्थ करना आदि सब कार्य पृथक् हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि के किये हुए प्रत्येक कार्य का पूर्ण विवरण प्रकाशित किया जाय। तो उसके लिए अनेक महान् ग्रन्थों की आवश्यकता होगी।

इतिहास की महत्ता

इतिहास एक सत्य विद्या है। इस का शब्द-प्रमाण में अन्तर्भाव होता है। प्रमाण के द्वारा ही प्रमेय वस्तु का परीक्षण होता है। अतः इतिहास छिपे हुए तत्त्व को दिखानेवाला दिव्य-चक्षु है। महाभारत में लिखा है—

इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् संप्रकाशितम्। आदिपर्व १।८७

इस का भाव यह है कि महामुनि कृष्ण द्वैपायन ने संसार के प्राचीन प्रत्यक्षतः अदृश्य घटना-चक्ररूप गर्भगृह (=घर का भीतर का भाग) को अज्ञानरूप आवरण (=ढकनेवाले अन्धकार) को हटाकर यथावत् प्रकाशित (=उद्घाटित) किया है।

इसी दृष्टि से ऋषि दयानन्द के वाङ्मय के सम्बन्ध में अज्ञानी लोगों द्वारा प्रवर्त्तित भ्रान्त धारणाओं को दूर करने और ऋषि-कृत लेखन कार्य की महत्ता को प्रदर्शित करने के लिये हमने इतिहास का आश्रय लिया है। इस के लिये हमने ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रस्तुत इतिहास में प्रत्येक ग्रन्थ के विषय में उनके जीवन-चरित्र, पत्र-व्यवहार, वेदभाष्य के अङ्कों पर प्रकाशित विज्ञापन, प्रत्येक ग्रन्थ के प्रथम संस्करण और उनके ग्रन्थों में से ग्रन्थ-लेखन-सम्बन्धी विप्रकीर्ण ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह किया है। हमारे इस कार्य से ऋषि के ग्रन्थों की रचना और उनके मन्तव्यों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

हमने ऋषि के सम्पूर्ण वाङ्मय को पांच भागों में वाँटा है।

१—ऋषि दयानन्द के बनाये हुये मुद्रित ग्रन्थ।

२—ऋषि दयानन्द की प्रेरणा और निर्देश से बनवाये गये मुद्रित ग्रन्थ।

३—ऋषि दयानन्द के उपलब्ध प्रामाणिक शास्त्रार्थ ग्रन्थ।

४—ऋषि दयानन्द के बनाये या बनवाये गये अप्रकाशित ग्रन्थ।

५—ऋषि के पत्र, विज्ञापन और प्रवचन संग्रह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने उपर्युक्त विभागों में वर्णित ग्रन्थों का इतिहास यथा-सम्भव काल-क्रमानुसार लिखा है, परन्तु सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, पञ्चमहायज्ञविधि आदि जिन ग्रन्थों का पुनः संशोधन ऋषि ने अपने जीवनकाल में कर दिया था, उनका वर्णन सुगमता की दृष्टि से प्रथम संस्करण के साथ ही किया है। चतुर्वेद-विषयसूची, वेदभाष्य के नमूने का अंक, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, यजुर्वेद तथा ऋग्वेद के भाष्यों का वर्णन भी एक ही अध्याय में किया है।

अब अगले अध्याय में ऋषि दयानन्द के विक्रम सं० १९२०–१९३० तक लिखे गये ग्रन्थों का वर्णन करेंगे।

—:o:—

द्वितीय अध्याय

संवत् १९२०—१९३० के ग्रन्थ

१–संध्या (सं० १९२० वि०)

लगभग तीन वर्ष (सं० १९१७—१९२० वि०) मथुरा में दण्डी श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती से विद्याध्ययन करके स्वामी दयानन्द सरस्वती सं० १९२० वि० आगरा पधारे। यहाँ लगभग डेढ़ वर्ष तक[1] निवास किया। यहां पर स्वामी जी ने सर्वप्रथम **'सन्ध्या'** की एक पुस्तक लिखी। इसे आगरे के महाशय रूपलाल जी ने छपवाकर प्रकाशित किया। इसके विषय में श्री पं० लेखराम जी द्वारा संगृहीत जीवनचरित्र (हिन्दी सं० पृष्ठ ५०) में लिखा है—

---

१. वैशाख सं० १९२० (=अप्रेल-मई १८६३) से आश्विन सं० १९२१ (=सितम्बर-अक्टूबर १८६४) तक। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३३ तथा पूना प्रवचन के १५वें व्याख्यान 'अपना पूर्वचरित्र' पृष्ठ ४४० (दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन) पर आगरा में **दो वर्ष** रहने का उल्लेख मिलता है; हमारे विचार में दो वर्ष का निर्देश सामान्यरूप से किया होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीजी के उपदेश से एक **सन्ध्या** की पुस्तक, जिस के अन्त में **लक्ष्मी-सूक्त** था, छपवाई गयी और एक आने में बेची गई। समस्त नगर के लोगों ने विना किसी पक्षपात के उन पुस्तकों को मोल लिया। कुछ पण्डितों ने इतना आक्षेप किया कि इस में विनियोग नहीं रखे गये, परन्तु सब ने ली और बाल-बच्चों को पढ़ाई। छपाई आदि का रुपया रूपलाल ने दिया। **तीस हजार** के लगभग इस की कापी छपी थी। और डेढ़ हजार रुपया व्यय हुआ था। यह तीन वर्णों के लिये थी।"

श्री पं० महेशप्रसाद[२] जी ने "महर्षि दयानन्द सरस्वती" नामक पुस्तक के पृष्ठ १६ पर लिखा है—

"श्री स्वामी जी ने संवत् १९२० वि० (सन् १८६३ ई०) में सबसे पहिले संध्या की पुस्तक आगरे में लिखी थी। वहीं के एक सज्जन म० रूपलाल जी ने डेड़ सहस्र रुपया व्यय करके इसकी तीस सहस्र प्रतियां छपवाई थी और मुफ्त बाँटी गईं थीं।

इस उद्धरण में सन्ध्या की पुस्तक छपवाने का काल सं० १९२० (सन् १८६३ ई०) लिखा है। आगरा में ऋषि दयानन्द लगभग डेढ़ वर्ष रहे थे। इस अवधि में सन्ध्या की पुस्तक कब छपवाई यह निश्चित रूप में कहना कठिन है। इसी प्रकार अन्त में 'पुस्तक को मुफ्त बांटने का उल्लेख है। पं० लेखराम जी ने एक आने में बेचने का निर्देश किया है। हमारे विचार में यह सम्भव है कि कुछ हजार प्रतियां बेची गईं हों और कुछ मुफ्त बांटी गईं हों।

यह पुस्तक स्वामी दयानन्द की सर्वप्रथम कृति है। स्वामी जी महाराज-ईश्वर-भक्ति पर विशेष बल देते थे, अत एव उन्होंने अपने जीवन-काल में सन्ध्या की कई पुस्तकें प्रकाशित कीं। अन्य पुस्तकों का वर्णन हम 'पञ्चमहायज्ञविधि' के प्रकरण में करेंगे।

सन्ध्या की उक्त पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। यह पुस्तक आगरे के 'ज्वालाप्रकाश प्रेस' में छपी थी। इसका आकार प्रकार क्या था, यह अज्ञात है।

---

२. इस में पुस्तक जहां कहीं पं० 'महेशप्रसाद' नाम आवे वहां हिन्दूविश्वविद्यालय काशी के अरबीफारसी विभाग के अध्यक्ष 'श्री महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाजिल' का निर्देश जानें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. भागवत-खण्डन (द्वि० ज्येष्ठ सं० १९२३)

श्री स्वामीजी महाराज ने संवत् १९२३ के आरम्भ में **भागवत-खण्डनम्** नामक दूसरी पुस्तक लिखी थी। 'भागवत' नामक के दो पुराण हैं। एक 'श्रीमद्भागवत' (वैष्णवों का) और दूसरा 'देवीभागवत'। यह भागवत-खण्डन 'श्रीमद्भागवत' नामक पुराण के खण्डन में लिखा लिखा गया था। 'श्रीमद्भागवत' वैष्णव संप्रदाय का प्रमुख ग्रन्थ है। अतः इसका दूसरा नाम "**वैष्णवमतखण्डन**" भी है। श्री पं० लेखराम जी ने ऋषि के जीवनचरित्र में इसका उल्लेख "**भड़वाभागवत**" और "**पाखण्ड-खण्डन**" नाम से किया है। पं० लेखराम जी द्वारा संकलित जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१६ पर इस पुस्तक के विषय में निम्न परिचय उपलब्ध होता है।

पाखण्ड-खण्डन—(सात) पृष्ठ की यह पुस्तक संस्कृत भाषा में स्वामीजी ने भागवत-खण्डन विषय पर लिखी। सं० १९२१ व १९२२ में जब वे दूसरी बार आगरा में रहे[1] उसी समय का मालूम होता है। सब से पुरानी हस्तलिखित प्रति इसकी **ज्येष्ठ** द्वितीय ९ बृहस्पतिवार[2] १९२३ तदनुसार ७ जून सन् १८६६ की लिखी हुई पं० छगनलालजी[3] शास्त्री किशनगढ़ के पास विद्यमान है। अजमेर से वापस लौटकर सं० १९२३ के अन्त में आगरे में 'ज्वालाप्रकाश प्रेस' में पण्डित ज्वालाप्रसाद[4] भार्गव के प्रबन्ध में इसकी कई हजार प्रतियां छपवायीं और १ वैशाख[5] सं० १९२४ तदनुसार १२ अप्रेल सन् १८६७ के मेला हरिद्वार पर इसे विना मूल्य वितरण किया। यह

---

१. यह लेख अशुद्ध है। आगरा में दूसरी बार ऋषि दयानन्द का पदार्पण सं० १९२३ कार्त्तिक मास के कृष्णपक्ष में हुआ था।

२. हिन्दी संस्करण में 'बृहस्पतिवार' के स्थान में 'वा नक्षत्र' पाठ छपा है, वह अशुद्ध है।

३. हिन्दी संस्करण में 'किशनलाल शास्त्री' नाम छपा है, वह अशुद्ध है।

४. ज्वालाप्रसाद भार्गव ने कोई वेदभाष्य छपवाना आरम्भ किया था। द्र० २५-९-१८८२ का कमलनयन शर्मा का पत्र (ऋ० द० को लिखे गये पत्र और विज्ञापन' (२) भाग ४ पृष्ठ ५२१, पं० १४)।

५. यह सौर मास की पञ्जाबी तिथि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त सुन्दर और समयोचित ट्रैक्ट (पुस्तिका) उच्चकोटि की शुद्ध और ललित संस्कृत में है। यह पुनः प्रकाशित नहीं हुआ।"

इस उद्धरण में स्वामीजी के दूसरी वार आगरा जाने का उल्लेख सं० १९२१ व १९२२ में किया है। वह अशुद्ध है, क्योंकि स्वामीजी महाराज का आगरा में द्वितीय बार आगमन सं० १९२३ के उत्तरार्ध में हुआ था। ऊपर निर्दिष्ट पं० छगनलाल शास्त्री की हस्तलिखित प्रति पर जो तिथि दी है, उस समय स्वामीजी महाराज राजपूताना के अजमेर आदि नगरों में भ्रमण कर रहे थे। अतः यह पुस्तक कहां लिखी गई, यह अज्ञात है। पं० छगनलालजी की हस्तलिखित प्रति निश्चय ही स्वामीजी की हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि थी। अतः उपर्युक्त लेखन काल प्रतिलिपि करने का है वा मूल ग्रन्थ लिखने का, यह भी अज्ञात है। परन्तु इससे इतना स्पष्ट है कि यह पुस्तक उक्त तिथि से पूर्व लिखी जा चुकी थी।

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित में इसका वर्णन दो स्थानों पर आया है। यथा—

१. "एक पुस्तक ७, ८ पृष्ठ की श्री वैष्णवों के खण्डन में लिख कर छपवाई और उसकी कई सहस्र प्रतियां आगरे में बाँटी और शेष हरिद्वार में बाँटने के अभिप्राय से साथ ले गये।" (भाग १ पृष्ठ ९८)

२ "स्वामी जी ने एक पुस्तक भागवत के खण्डन में लिखी थी उसकी सहस्रों प्रतियां छपवाकर (हरिद्वार) साथ लाये थे और वह (कुम्भ के) मेले में बाँटी गई थीं।

अजमेर (संवत् १९२३) के वर्णन में बाबू देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित (भाग १, पृष्ठ ९४) में लिखा है—

"ब्राह्मणों ने कहा कि आप भागवत का खण्डन करते हैं। उसकी अशुद्धियां लिखकर दीजिये। स्वामीजी ने तीन-चार पत्रों पर उसकी अशुद्धियां संस्कृत में लिखकर दी थी।"

सम्भव है ये पत्रे प्रस्तुत 'भगवत-खण्डन' के ही रहे होंगे, अथवा उसके प्रारूप के होंगे। छगनलाल शास्त्री के पास वर्त्तमान पुस्तक पर अङ्कित तिथि से भी इसकी पुष्टि होती है। यदि हमारा अनुमान ठीक हो, तो इस पुस्तक की रचना का श्रेय अजमेर नगर को ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसकी रचना का काल वही है, जो छगनलाल शास्त्री की पुस्तक पर अङ्कित है।

यह पुस्तक १८×२२ के अठपेजी आकार के ७ पृष्ठों में ज्वाला-प्रकाश प्रेस आगरे में मटियाले रंग के कागज पर छपी थी। इसकी एक प्रति श्री० भगवद्दत्त जी बी० ए० माडलटाऊन—लाहौर के संग्रह में विद्यमान थी, जो देश-विभाजन के समय साम्प्रदायिक कलह में नष्ट हो गई। उन्होंने 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' की भूमिका (भाग १ पृष्ठ ४४-४५) में इसका उल्लेख और उसके आदि और अन्त का पाठ उद्धृत किया है। हम वहीं से ले कर वह आद्यन्त का पाठ उद्धृत करते हैं—

(आदि) "श्रीमद्भागवतं पुराणं किमस्ति। कुतः सन्देहः॥ द्वे भागवते श्रूयते। एकं देवीभागवतं द्वितीयं कृष्णभागवतं च॥ अतो जायते सन्देहोऽन्यतोः किमस्ति व्यासकृतमिति॥ देवीभागवतं श्रीमद्-भागवतमस्ति व्यासकृतं च नान्यत्। कुत एतत्। शुद्धत्वाद् वेदादिभ्यः अविरुद्धत्वाच्च अत एव देवीभागवतस्य श्रीमद्भागवतसंज्ञा नान्यस्य च भागवतस्य। कुत एतदशुद्धत्वात् प्रमत्तगीतत्वाच्च। किं च तत्..."

(अन्त) "ये तु पाषण्डिमतविश्वसिनस्तेऽपि पाषण्डिनः। पाष-ण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्। हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेदित्याह मनुः। अतएव वाङ्मात्रेणापि पाषण्डि-भिस्सह व्यवहारो न कर्त्तव्यः पाषाणादिमूर्तिपूजनं पाषण्डिमतमेव॥ कुत एतत्॥ वेदादिन्यो विरोधात्, यद्वाचानभ्युदित येन वागभ्युद्यते॥ तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्॥ तदेव० ॥२॥
यत्प्राणेन न प्राणते येन प्राणः प्रणीयते॥ तदेव ॥३॥

इत्यादिश्रुतिभ्यः॥ अतएव पाषाणादिकर्त्रिममूर्तिपूजनं वृथैव॥ अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः। इति भागवद्गीता वचनात्॥ कि वहुना लेखेनैतावतैव सज्जनैर्वेदितव्यं विदित्वाचरणीय-मेव॥

दयानन्द सरस्वत्याख्येन स्वामिना निर्मितमिदं पत्रं वेदितव्यं विद्व-भिरिति शुभं भवतु वक्तृभ्यश्श्रोतृभ्यश्च। वेदोपवेदवेदाङ्ग-मनुस्मृति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत-हरिवंशपुराणानां वाल्मीकिनिर्मितस्य रामायणस्य चाध्यापनमध्ययनं च कर्त्तव्यं कारयितव्यं च ।। एतेषामेव श्रवणं कर्त्तव्यमिति ।।"

इस लेख से ज्ञात होता है कि स्वामी जी ने सं० १९२३ वि० से पहले ही मूर्तिपूजा का खण्डन खुले रूप में प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु सं० १९२३ के प्रथम चरण तक श्रीमद्भागवत् के अतिरिक्त दूसरे पुराणों को परम्परागत विश्वास के अनुसार व्यासनिर्मित और प्रामाणिक मानते थे। इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि उन्होंने उस समय तक शेष पुराणों का भले प्रकार अनुशीलन नहीं किया होगा। सं० १९२६ में कानपुर में श्री स्वामीजी ने प्रामाणिक ग्रन्थों का एक विज्ञापन छपवाया था, उसमें किसी पुराण का उल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं, उक्त विज्ञापन (पृष्ठ ५, पं० ५) में **मनुष्यकृताः सर्वे ब्रह्मवैवर्त्तपुराणादयो ग्रन्थाः प्रथमं गप्पम्** पङ्क्ति द्वारा समस्त पुराणों को त्याज्य कहा है। यह विज्ञापन "ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ १-६ तक छपा है। अतः सम्भव है सं० १९२३ से १९२६ के मध्य में किसी समय उन्होंने पुराणों का अनुशीलन करके उन्हें अप्रामाणिक माना होगा।

अकस्मात् उपलब्धि

संवत् २०१८ वैशाख मास में अपने 'संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ के द्वितीय भाग के मुद्रण की व्यवस्था के लिये मेरा काशी जाना हुआ। वहां मैं एक दिन 'रामलाल कपूर ट्रस्ट' के पुस्तकालय की पुरानी पुस्तकें टटोल रहा था। उसी समय दैवात् एक पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर दृष्टि गई, उसका नाम है—"पाषंडिमुखमर्दन"। यह पुस्तक इन्द्रप्रस्थनिवासी श्री विश्वेश्वरनाथ गोस्वामी नाम के किसी पण्डित की लिखी, और मुरादाबाद के सुदर्शन यन्त्रालय में लीथो की छपी हुई है। इसमें २०×२६ अठ पेजी आकार के ६२ पृष्ठ हैं। इसमें मुद्रण अथवा लेखनकाल का निर्देश नहीं है। इस पुस्तक के लेखक ने ऋषि दयानन्द विरचित 'भागवत-खण्डन' को अक्षरशः उद्धृत करके उसका खण्डन किया है। इसलिये इस पुस्तक में सम्पूर्ण 'भागवत-खण्डन' पुस्तक सुरक्षित उपलब्ध हो गई। उसी में से निकाल कर हमने सं० २०१८ में 'भागवत-खण्डन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्रथम बार प्रकाशित किया था। मूल पुस्तक संस्कृत-भाषा में है। संस्कृत-भाषा से अनभिज्ञ पाठकों के लिये हमने उसका भाषानुवाद भी साथ में दिया है ।

एक बात विशेष ध्यान में रखने योग्य है। इस पुस्तक में केवल कृष्णभागवत पुराण का ही खण्डन है। उस समय तक ऋषि दयानन्द शेष पुराणों को परम्परानुसार प्रामाणिक मानते थे। इस पुस्तक का महत्त्व केवल दो विषयों के लिये है—एक तो इससे स्पष्ट होता है कि ऋषि दयानन्द इसके लेखनकाल तक मूर्तिपूजा का खण्डन करने लग गये थे। और दूसरा यह है कि—ऋषि की उपलब्ध कृतियों में इसका सबसे प्रथम कृति होना ।

श्री स्वामीजी महाराज इन दिनों संस्कृत में ही बातचीत करते और व्याख्यान देते थे। सं० १९३१ में कलकत्ते से लौट कर उन्होंने आर्यभाषा में बोलना प्रारम्भ किया था। अतः उससे पूर्व के ग्रन्थ, पत्र और विज्ञापन सब संस्कृत भाषा में ही लिखे गये थे।

जिस काल में यह लघु पुस्तिका लिखी गई उस समय राजपूताना तथा उत्तर भारत में श्रीमद्भागवत की कथा का बहुत प्रचलन था, अतः सबसे प्रथम इसी पुराण के खण्डन में यह पुस्तक छपवाई गई ।

—:०:—

३—अद्वैतमत-खण्डन (ज्येष्ठ सं० १९२७वि०)

श्री स्वामीजी महाराज सं० १९२७ वि० में तीसरी बार काशी पधारे। उस समय उन्होंने एक 'अद्वैतमत-खण्डन' नामक पुस्तक लिख कर प्रकाशित की। श्री पं० लेखरामजी संगृहीत जीवन चरित्र (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१६ पर इस पुस्तक के विषय में निम्न लेख मिलता है—

"यह ट्रेक्ट (पुस्तिका) स्वामीजी ने काशीनिवास काल में शास्त्रार्थ सं० २ (अर्थात् काशी शास्त्रार्थ) के पश्चात् छपवाया और यत्न करके '**कविवचन-सुधा**' नामक हिन्दी के मासिक पत्र में संस्कृत भाषा में भाषानुवाद सहित मुद्रित कराया। देखो 'कविवचन-सुधा' जिल्द १ संख्या १४,१५ ज्येष्ठ सुदि १५ और आषाढ़ सुदि १५ सं० १९२७, तदनुसार १३ जून सन् १८७० पृष्ठ ८७,९०, ९२,९६। यह "लाइट प्रेस" (बनारस) में गोपीनाथ पाठक के प्रबन्ध से प्रकाशित हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ट्रैक्ट नवीन-वेदान्त के दुर्ग को तोड़ने के लिये सैनिक बल से अधिक बलवान् है। यह दूसरी बार प्रकाशित नहीं हुआ।[1]

श्री पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र (भाग १, पृष्ठ ५१) में इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

"इस बार दयानन्द ने इसी दुर्ग (नवीन वेदान्त) पर गोला बरसाया और उसके खण्डन में 'अद्वैतमतखण्डन' नामक पुस्तक लिख कर प्रकाशित की।"

इस बार स्वामीजी महाराज चैत्र से ज्येष्ठ मास (सं० १९२७) तक काशी में रहे थे। अतः 'अद्वैतमतखण्डन' पुस्तक इसी काल के मध्य में लिखी गई होगी। यह पुस्तक हमारी दृष्टि में नहीं आई। अतः हम इसके विषय में इससे अधिक कुछ नहीं जानते।

अद्वैतवादी दयानन्द

ऋषि दयानन्द के स्वलिखित वा स्वकथित जीवनचरित्र' में लिखा है—

"अहेमदाबाद से होता हुआ बड़ौदे के शहर में आकर ठहरा, और वहां चेतनमठ में ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारियों और सन्यासियों से वेदान्त-विषय की बहुत बातें कीं और मैं ब्रह्म हूं, अर्थात् जीव ब्रह्म एक है, मुझको ऐसा निश्चय उन ब्रह्मानन्दादि ने करा दिया। पहिले वेदान्त पढ़ते समय भी कुछ-कुछ निश्चय हो गया था, परन्तु वहां ठीक-ठीक दृढ़ हो गया कि में ब्रह्म हूं।" (देखो—सं० पृष्ठ २२ संस्करण ३)[2]।

यह घटना बड़ौदा की पौष सं० १९०३ की है। इस घटना से बहुत काल पीछे तक श्री स्वामी जी महाराज जीव ब्रह्म की एकता मानते रहे। द्वितीय ज्येष्ठ सं० १९२३ को अजमेर में श्री स्वामी जी का पादरी जान राबसन साहब से वार्तालाप हुआ था। उस के विषय

---

१. यह पुस्तक श्री० पं० भगवद्दत्तजी बी० ए० ने प्रकाशित की है। इसका विशेष वर्णन आगे यथास्थान किया जायगा।

२. दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह (रामलाल कपूर ट्रस्ट संस्करण) पृष्ठ १४, पं० १३-१८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ८ सितम्बर १९०३ ई० को पादरी साहब ने पं० देवेन्द्रनाथ को लिखा था—

"मेरा उनसे जीव ब्रह्म की एकता पर वार्तालाप हुआ, जिसका वह प्रतिपादन करते थे और मैं खण्डन करता था।" दे० सं० जीवन-चरित भाग १, पृ० ८९।

यह घटना ज्येष्ट सं० १९२३ की है। यदि रावसन साहब का उपर्युक्त लेख सत्य हो तो मानना होगा कि सं० १९२३ वि० के पूर्वार्ध तक श्री स्वामीजी जीव ब्रह्म का अभेद मानते थे।

द्वैतवादी[1] (=भेदवादी) दयानन्द

ऋषि के दयानन्द जीवनचरित्र से प्रतीत होता है कि उपर्युक्त घटना के कुछ काल बाद ही स्वामोजी का अद्वैतविषयक मन्तव्य बदल गया था और वे जीव ब्रह्म का वास्तविक भेद मानने लग गये थे। पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित्र (भाग १, पृष्ठ १०७-१०८) में कार्तिक सं० १९२४ की एक घटना लिखी है, उसका संक्षेप इस प्रकार है—

"खन्दोई ग्राम का छत्रसिंह जाट नवीन वेदान्ती था। स्वामीजी महाराज नवीन वेदान्त का प्रबल प्रतिवाद करते थे। महाराज ने उसे अनेक युक्तियों से समझाया, परन्तु उसकी समझ में नहीं। महाराज ने उसके कपोल पर एक चपत लगा दिया। इस पर उसे बहुत रोष आया और कहने लगा महाराज आप जैसे ज्ञानी को केवल मतभेद से चिढ़कर चपत लगाना उचित नहीं। महाराज ने हंसते हुए कहा चौधरीजी यह जगत् मिथ्या है और ब्रह्म के अतिरिक्त वस्तु है ही नहीं, तो वह कौन है जिसने आपके चपत लगाया। जो बात युक्तियों

१. 'अद्वैत' शब्द में 'द्वैत' शब्द भेदसामान्य का बोधक है। उसमें द्वित्व संख्यार्थ नहीं है। अत एव जो भी दार्शनिक सम्प्रदाय एक से अधिक पदार्थ मानता है वह द्वैतवादी कहाता है। यथा ईश्वर जीव प्रकृति तीन पदार्थ माननेवाला माध्व सम्प्रदाय द्वैतवादी कहाता है। पं० लेखरामकृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ २४१ पर लिखा है—"स्वामीजी—**हम द्वैत मानते हैं।**" अतः आर्यसमाज में प्रचलित द्वैतशब्द के अनुकरण पर परिकल्पित 'त्रैतवाद' प्रयोग अदार्शनिक तथा अशुद्ध होने से त्याज्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से समझ में नहीं आई, वह इस प्रकार झट समझ में आ गई। महाराज ने—कहा कि नवीन वेदान्त अनुभव-विरुद्ध बौहाड़े(पागल)मनुष्य की वड़वाड़हट है।"

इस घटना से विदित होता है कि सं० १९२४ के पूर्वार्ध से पूर्व ही स्वामीजी अपना अद्वैतवादविषयक मन्तव्य बदल चुके थे। सं० १९३१ में श्री स्वामीजी ने अद्वैतवाद के खण्डन में **'वेदान्तिध्वान्त-निवारण'** नामक एक और पुस्तक लिखी (इसका वर्णन आगे किया जायगा) और सत्यार्थप्रकाश के सं० १९३२ और सं० १९३९ वाले दोनों संस्करणों में अद्वैतवाद का प्रबल प्रतिवाद किया।

४.—गर्दभतापिनी-उपनिषद्

(आषाढ़ सं० १९३१ से पूर्व)

श्री स्वामीजी महाराज के जीवनचरित्र से विदित होता है कि उनका मुखारविन्द सदा प्रसन्न रहा करता था। वे अपने भाषणों में कभी-कभी श्रोताओं का मनोरञ्जन कराया करते थे। श्रोताओं के मनोरञ्जन के लिये उन्होंने **"रामतापिनी, गोपालतापिनी"** आदि उपनिषदों के सदृश एक **'गर्दभतापिनी-उपनिषद्' बनाई थी और** कभी-कभी उसके वचन सुनाकर श्रोताओं का मनोरञ्जन किया करते थे। इस उपनिषद् का उल्लेख पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र (भाग १, पृष्ठ २७९) में इस प्रकार किया है—

"श्री स्वामी जी ने रामतापिनी और गोपालतापिनी उपनिषदों की तरह गर्दभतापनी उपनिषद् भी बना रखी थी, जिसमें से कभी वचन उद्धृत करके सुनाया करते थे।"

यह वर्णन प्रयाग का है। इस बार श्री स्वामी जी महाराज द्वितीय आषाढ़ बदी २ सं० १९३१ को प्रयाग पधारे थे। अतः यह पुस्तक प्रयाग जाने से पूर्व ही रची गई होगी।

दुःख है कि इसकी कोई प्रतिलिपि सुरक्षित नहीं रक्खी गई; अन्यथा वह बड़े मनोरञ्जन की वस्तु होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय

सत्यार्थप्रकाश

(प्र० संस्क० सं० १९३१, द्वि० संस्क० १९३९)

जगद्विख्यात 'सत्यार्थ-प्रकाश' महर्षि दयानन्द सरस्वती की सर्वोत्कृष्ट तथा सार्वजनीन कृति है। इस ग्रन्थ में दो भाग हैं—**पूर्वार्ध** और **उत्तरार्ध**। पूर्वार्ध में दश और उत्तरार्ध में चार समुल्लास हैं प्रथम संस्करण में किसी कारण से उत्तरार्ध के अन्तिम दो समुल्लास नहीं छप सके थे।[1] पूर्वार्ध में प्रधानतया वैदिकधर्म के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों की विशद व्याख्या है, और उत्तरार्ध में क्रमशः पौराणिक, चार्वाक-बौद्ध-जैन, ईसाई और मुसलमान[2] सम्प्रदायों के मन्तव्यों की समालोचना है। अन्त में महर्षि ने '**स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश**' में वैदिकधर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का संक्षिप्त सूत्ररूप में उल्लेख किया है।[3]

---

१. प्रथम संस्करण राजा जयकृष्णदास (मुरादाबाद) ने छपवाया था। वे अंग्रेजों के पृष्ठ पोषक एवं उन की चाकरी में थे। राजा की पदवी भी उन्हें अंग्रेज शासकों से ही प्राप्त हुई थी। उधर राजा जी का मुसलमानों (सर सय्यद अहमदखां आदि) से भी विशेष संपर्क था। वे इन दोनों को रुष्ट करना नहीं चाहते थे। इस कारण उन्होंने १३वां १४वां समुल्लास छपने को प्रेस में नहीं भेजा। राजा जी के परिवार में सुरक्षित प्रथम संस्करण की हस्तलिखित प्रति में दोनों समुल्लास विद्यमान हैं। इस हस्तलेख की फोटोकापी परोपकारिणी सभा (अजमेर) ने करवा कर अपने संग्रह में भी सुरक्षित कर ली है। इसे हमने स्वयं देखा है।

२. प्रथम संस्करण की हस्तलिखत कापी में १३वें समुल्लास में मुसलमानों और १४वें में ईसाइयों के मत की आलोचना की गई थी।

३. प्रथम संस्करण के हस्तलेख में 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' नहीं है। उसके स्थान पर एक विज्ञापन है। जिसे हमने 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' (संस्क० ३) में पूर्ण संख्या ११ (भाग १, पृष्ठ ३५-४३ तक) छापा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

A S
९५.१
हु ६ =८

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

073803

महर्षि ने इस ग्रन्थ की रचना सत्य-अर्थ के प्रकाश के लिये ही की थी। अतएव उन्होंने इसका **अन्वर्थ** नाम **'सत्यार्थ-प्रकाश'** रखा।

सत्यार्थ-प्रकाश की रचना में निमित्त

सत्यार्थप्रकाश जैसे अनुपम ग्रन्थ को लिखवाने का सारा श्रेय **राजा जयकृष्णदास** को है। आप मुरादाबाद के रहनेवाले 'राणायनीय' शाखाध्यायी सामवेदीय ब्राह्मण थे। जब ज्येष्ठ संवत् १९३१ (मई सन् १८७४ ई०) में महर्षि काशी पधारे, तब राजा जयकृष्णदास वहां के डिप्टी कलक्टर थे। आपका महर्षि के प्रति अनुराग था। आपने महर्षि से निवेदन किया—

"भगवन्? आपके उपदेशामृत से वे ही व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं, जो आपका व्याख्यान सुनते हैं। जिनका स्वयं आपके मुखारविन्द से उपदेश श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता, वे उससे वंचित रह जाते हैं। इसलिये आप इन्हें ग्रन्थरूप में संकलित करके छपवा देवें, तो जनता का महान् उपकार होवे। इससे आपके उपदेश भी चिरस्थायी हो जावेंगे, और इनसे भविष्य में आनेवाली भारतसंतान भी लाभ उठा सकेगी।"

इस निवेदन के साथ ही राजाजी ने ग्रन्थ के लिखवाने और छपवाने के व्यय का सारा भार अपने ऊपर ले लिया। महर्षि ने राजाजी के युक्ति-युक्त प्रस्ताव को तत्काल स्वीकार कर लिया।

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

सत्यार्थ-प्रकाश की रचना का प्रारम्भ

महर्षि अपने स्वभावानुसार जिस कार्य को उपयोगी समझ लेते थे, उसको प्रारम्भ करने में कभी विलम्ब नहीं करते थे। अतः राजा जयकृष्णदास के उक्त प्रस्ताव को स्वीकार करके काशी में **प्रथम आषाढ़ बदि १३, संवत् १९३१ (१२ जून सन् १८७४) शुक्रवार** के दिन सत्यार्थप्रकाश लिखाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

सत्यार्थ-प्रकाश का लेखक

राजा जी ने सत्यार्थप्रकाश लिखने के लिये एक **महाराष्ट्रीय पं० चन्द्रशेखर** को नियत कर दिया। महर्षि बोलते जाते थे, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० चन्द्रशेखर लिखते जाते थे (देखो–पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन-चरित, पृष्ठ २७२, प्र० सं०) ।

सत्यार्थ-प्रकाश के लेखन की समाप्ति

सत्यार्थप्रकाश का लेखन-काय कब समाप्त हुआ, इसका ज्ञान प्रथम-संस्करण अथवा महर्षि के उपलब्ध पत्रों से नहीं होता। रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर द्वारा प्रकाशित 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' (संस्क०३), भाग १ में पृष्ठ ३५ से ४३ तक एक विज्ञापन छपा है। यह विज्ञापन सत्यार्थप्रकाश के प्रथम-संस्करण की हस्तलिखित प्रति के १४वें समुल्लास के अन्त में लिखा हुआ है। सत्यार्थप्रकाश प्रथम-संस्करण की सम्पूर्ण (१४ समुल्लासों की) हस्त-लिखित प्रति स्वर्गीय राजा जयकृष्णदास के घर में सुरक्षित है।[1]

श्रीमती परोपकारिणी सभा के मन्त्री, ऋषिभक्त श्री बाबू **हरविलासजी शारदा** ने संवत् २००४ वि० में बहुत प्रयत्न करके इस हस्तलिखित प्रति को मंगवाकर इसको प्रतिकृति (=फोटो) ले ली थी। इसके लिये मन्त्री जी सब आर्यों के धन्यवाद के पात्र हैं। पूर्व निर्दिष्ट विज्ञापन के विषय में 'पत्र और विज्ञापन' पृष्ठ ४३ के नीचे श्री पं० भगवद्दत्त जी ने टिप्पणी संख्या ३ में लिखा है–

'यह सारा लेख संवत् १९३१ के मध्य अथवा सितम्बर १८७४ में लिखा गया होगा।'

यदि श्री पं० भगवद्दत जी का उक्त लेख ठीक हो, तो मानना होगा कि 'सत्यार्थप्रकाश' जैसे महत्त्वपूर्ण और बृहत्काय ग्रन्थ की रचना में लगभग साढ़े तीन मास का काल लगा था।

'दयानन्द-प्रकाश, पृष्ठ २४१ (पञ्चम सं०) पर लिखा है—

'सत्यार्थप्रकाश तो वहां (=बम्बई) जाने के दो मास पूर्व ही लिखकर राजा जयकृष्णदास जी को छपवाने के लिये दे गये थे।'

स्वामी जी महाराज बम्बई २६ अक्तूबर १८७४ को पधारे थे। अतः दयानन्दप्रकाशकार के मतानुसार भी सितम्बर १८७४ के अन्त तक सत्यार्थ का लेखन समाप्त हो गया था। अतः उन के लेखानुसार

१. इस हस्तलेख का विवरण हम आगे दे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सत्यार्थप्रकाश के लेखन में अधिक से अधिक साढे तीन मास का काल ही लगा था।

श्री हरविलास जी शारदा की कल्पना

श्री हरविलासजी शारदा ने ऋषि दयानन्द के अंग्रेजी भाषा में लिखित जीवनचरित में लिखा है कि—'स्वामीजी ने १२ जून और ३० जून १८७४ के मध्य जो कुछ भी सत्यार्थप्रकाश में लिखना था, उसका आशय बता दिया था, और १ जुलाई को प्रयाग आ गये थे। तत्पश्चात् पण्डितों ने अपने आप ग्रन्थ पूर्ण किया।'[1]

श्री शारदा जी का यह लेख कल्पनामात्र है। आशय बतानेमात्र से पण्डित लोग ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को कभी नहीं लिख सकते थे। क्योंकि वे न तो ऋषि के मन्तव्यों से परिचित थे, और न उनका इतना विशाल ज्ञान और गम्भीर चिन्तन था। वस्तुतः सारा ग्रन्थ ऋषि का स्वयं लिखाया हुआ है (नाम-मात्र के प्रक्षेपांश को छोड़कर)। ऋषि ने ग्रन्थ लिखाना काशी में आरम्भ किया, और प्रयाग में समाप्त किया था। **पण्डितों की देखरेख में तो काशी में मुद्रणमात्र हुआ था।**

प्रथम-संस्करण के हस्तलेख का विवरण

प्रथम-संस्करण के हस्तलेख को, जो राजा श्री जयकृष्णदासजी के गृह (मुरादाबाद) में सुरक्षित है, ऋषि दयानन्द के शतशः पत्रों के अन्वेषक ऋषिभक्त स्व० श्री मामराज जी ने ६ से १४ जनवरी सन् १९३३ में देखा था। इसका विवरण हम श्री मामराजजी के १९-१०-१९४९ के पत्रानुसार संक्षेप नीचे दे रहें हैं[2]—

---

१. 'The composition of the Satyarth Parakash began on 12 th June 1874, and we find that Swamiji left Benares and reached Allahabad on lst July 1874. This shows that in two week's time, Swamiji told the pandits what he had to say, and the pandits then wrote out the book, Life of Dayanand Saraswati : p. 408.

२. शेष विवरण ग्रन्थ के अन्त में संकलित तृतीय परिशिष्ट में देख।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस हस्तलेख में दो भाग हैं। समुल्लास १—१० प्रथम, और ११—१४ तथा उसके परिशिष्ट पर्यन्त दूसरा। दोनों की पृष्ठ-संख्या पृथक्-पृथक् हैं। इनका व्यौरा इस प्रकार है:—

प्रथम समुल्लास	पृष्ठ	३७	की ५ वीं	पंक्ति तक है।
द्वितीय	"	५१	" ११	" " " "
तृतीय	"	१३७	" ६	" " " "
चतुर्थ	"	२३६	" १८	" " " "
पञ्चम	"	२७५	" २ री	" " "
षष्ठ	"	३५७	" १८ वीं	" " "
सप्तम	"	४१०	" १२	" " " "
अष्टम	"	४३५	" १५	" " " "
नवम	"	४६४	" १७	" " " "
दशम	"	५१४	"...	" " " "
एकादश	"	१-१६५	" १२	" " " "
द्वादश	"	१८६	की अन्तिम	" " "
त्रयोदश	"	३६३	" ३ री	" " "
चतुर्दश	"	४६८	" २ री	" " "

पृष्ठ ४६८-४६५ तक सब मनुष्यों का हिताहित, दिनचर्या, और संस्कृत सनातन विद्या का पठन-पाठन के क्रम का वर्णन है।

इस कापी में तेरहवां समुल्लास मुसलमान-मत की समीक्षा का है, और चोदहवां ईसाई-मत की समीक्षा का। अन्त में पृष्ठ ४६८ से ४६५ तक एक विज्ञापन है, जिसमें किञ्चित् स्ववृत्तान्त, सब मनुष्यों का हिताहित, दिनचर्या, संस्कृत सनातन विद्या के पठन-पाठन-क्रम वर्णित है।

कुरान-मत की समीक्षा (तेरहवें समुल्लास) के पृष्ठ १८७, १८८ कुछ फटे हुये हैं, और पृष्ठ २८८ है हीं नहीं, पृष्ठ ३६६-३६९ तक अधिक फटे हुये हैं। इन्हें श्री मामराजजी ने पढ़ते समय गोंद से जोड़ दिया था। आगे पृष्ठ ३७४ से ३७७ तक इस कापी में नहीं हैं। सम्भव है वे किसी कारण नष्ट हो गये हों।

लेखक—प्रथम भाग के पृष्ठ ४४८ की ७वीं पंक्ति से पृष्ठ ४५९ की ९वीं पंक्ति तक का लेखक भिन्न व्यक्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशोधन—इस कापी में १२वें समुल्लास तक ऋषि दयानन्द के हाथ के स्वल्प संशोधन कहीं-कहीं मिलते हैं। जो उत्तरोत्तर न्यून होते गये हैं।[1] तेरहवां समुल्लास अर्थात् कुरान-मत-समीक्षा संशोधनार्थ सम्भवतः मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबाद-निवासी के पास भेजा गया था।[2] उन्होंने इस समुल्लास में कई स्थानों पर लाल और काली स्याही से संशोधन किया है।

कुरान-मत-समीक्षा का तेरहवां समुल्लास पटना शहर के निवासी मुंशी मनोहरलाल की सहायता से स्वामीजी ने लिखा था। ये महाशय अरबी के अच्छे पण्डित थे। दूसरे भाग के पृष्ठ ३६२ पर सात पंक्तियों में इस बात का उल्लेख है। ये पंक्तियां पेंसिल से काट रक्खी हैं। सम्भव है ये पंक्तियां इस कारण से काट दी गई होंगी कि छपने पर मतान्ध मुसलमान मुंशी मनोहरलाल को कष्ट न देवें। ऐतिहासिक दृष्टि से ये पंक्तियां बहुमूल्य हैं। इसलिये श्री मामराजजी ने १३-१-३३ को इनकी प्रतिलिपि कर ली थी और उन्होंने ऋषि 'दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' की टिप्पणी में ये पंक्तियां छपवा दी हैं। जो निम्न प्रकार हैं—

"जितना हमने लिखा, इसका यथावत् सज्जन लोग विचार करें, पक्षपात् छोड़ के तो जैसा हमने लिखा वैसा ही उनको निश्चय होगा। यह कुरान के विषय में जो लिखा गया है, सो पटना शहर ठिकाना गुड़हटटा में रहनेवाले मुंशी मनोहरलाल जी, जो अरबी में भी पण्डित हैं, उनके सहाय से और निश्चय करके कुरान के विषय में हमने लिखा है।" द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४३।

इस हस्तलेख की परिस्थिति—यह हस्तलेख आदि से अन्त तक बहुत साफ लिखा हुआ है, कहीं भी विशेष कटा फटा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि यह वह कापी नहीं है, जिसे स्वामीजी ने लेखक को अपने सामने बैठा कर बोल कर लिखवाया था, क्योंकि इस प्रकार लिखी गई कापी में बहुत संशोधन हुआ करता है। अतः यह कापी

---

१. इस प्रति पर ऋषि दयानन्द के संशोधन होने पर भी लेखकों ने किस प्रकार मृतक-श्राद्ध वा मांस-भक्षण का प्रकरण मिला दिया, इसका विवरण आगे लिखेंगे।

२. द्र०—पत्र और विज्ञापन (सं० ३) भाग १, पृष्ठ ४६, पं० १३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे लिखी गई शुद्ध प्रति है। यह वह प्रति भी नहीं है, जिसे प्रेस में छापने के लिये भेजा गया था। क्योंकि प्रेस में गई हुई कापी पर अत्यन्त सावधानता वर्तने पर भी स्याही के चिह्न यत्र-तत्र लग ही जाते हैं। यह उससे सर्वथा, परन्तु मुक्त है [इसी कापी में ४-५ पृष्ठ अलग से धरे है, जिन पर कम्पोजीटरों के हाथ के काले धब्वे विद्यमान हैं]। अतः प्रतीत होता है कि प्रेस में इसकी प्रतिलिपि भेजी गई थी।

प्रथम संस्करण में विशेष

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम-संस्करण की परिशोधित द्वितीय संस्करण के साथ तुलना करने पर विदित होता है कि सत्यार्थप्रकाश प्रथम-संस्करण में अनेक महत्त्वपूण लेख ऐसे हैं, जो द्वितीय संस्करण में नहीं मिलते। हम उनमें से कुछ एक नीचे उद्धृत करते हैं, जिनसे उसकी महत्ता का ज्ञान हो सके। यथा—

१. 'एक तो यह वात है कि नोन [और पौन रोटी में जो कर लिया जाता है, वह मुझको अच्छा नहीं मालूम देता क्योंकि नोन के विना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं होता, किन्तु सव को नोन आवश्यक होता है। और वे मजूरी मेहनत से जैसे-तैसे निर्वाह करते हैं, उनके ऊपर भी यह नोन का [कर] दण्ड तुल्य रहता है। गांजा, भांग इन के ऊपर दुगना-चौगुना कर स्थापन होय तो अच्छी वात है। और लवणादि के ऊपर न चाहिये।...पौन रोटी से गरीव लोगों को बहुत क्लेश होता है। क्योंकि गरीब लोग कहीं से घास छेदन करके ले आये वा लकड़ी का भार? उनके ऊपर कौड़ियों के लगाने से उनको अवश्य क्लेश होता होगा। इससे पौन रोटी का जो कर स्थापन करना, सो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं।'

स० प्र०, प्रथम सं०, पृष्ठ ३८४, ३८५।

२—'सरकार कागद (स्टाम्प) बेचती है। और वहुत-सा कागजों पर धन वढा दिया है, इससे गरीब लोगों को वहुत क्लेश पहुंचता है है। सो यह बात राजा को करनी उचित नहीं। क्योंकि इसके होने से वहुत-[से] गरीव लोग दुःख पाके बैठे रहते हैं। कचहरी में विना धन के कोई बात होती नहीं। इससे कागजों के ऊपर जो वहुत धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाना है, सो मुझको अच्छा मालूम नहीं देता। इसको छोड़ने से ही प्रजा में आनन्द होता है।' स० प्र०, प्रथम सं०, पृष्ठ ३८७।

३—'वार्षिक उत्सवादिकों से मेला करना, इसमें भी हमको अत्यन्त श्रेय गुण मालूम नहीं देता। क्योंकि इसमें मनुष्य की बुद्धि वहिर्मुख हो जाती है, और धन भी अत्यन्त खर्च होता है।'
स० प्र०, प्रथम सं०, पृष्ठ ३९५।

४—'केवल अंग्रेजी पढ़ने से संतोष कर लेना, यह भी अच्छी बात उनकी नहीं, किन्तु सब प्रकार की पुस्तक पढ़ना चाहिये। परन्तु जब तक वेदादि सनातन सत्य संस्कृत पुस्तकों को न पढ़ेंगे, तब तक परमेश्वर, धर्म, अधर्म, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य विषयों को यथावत् नहीं जानेंगे। इससे सब पुरुषार्थ से इन वेदादिकों को पढ़ना और पढ़ाना चाहिये।' स० प्र०, प्रथम सं०, पृष्ठ ३९५।

इनमें से **प्रथम उद्धरण** ब्रिटिश राज्य के कानून से सम्बन्ध रखता है। जिस नमक कानून के विरुद्ध गान्धी जी ने सन् १९३० में आन्दोलन किया था, उसके तथा जंगलात कानून के विरुद्ध महर्षि ने उस (सन् १९३०) से ५५ वर्ष पूर्व कैसे दुःख-भरे शब्दों में अपनी व्यथा वा सम्मति प्रकट की है, यह देखने योग्य है। यह महर्षि की दूरदर्शिता और सर्वतोमुखी प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है।

द्वितीय उद्धरण में न्यायालय (=कचहरी) के अत्यधिक स्टाम्प-कर से निर्धन प्रजा को जो दुःख सहना पड़ता है, और वह न्याय से वञ्चित रहती है, उसका उल्लेख किया है।

अन्तिम दोनों उद्धरण ब्राह्म-समाज की समालोचना-प्रकरण के हैं। आर्य-समाज के प्रत्येक सभासद् और विशेषकर नेता कहे और माने जानेवाले व्यक्तियों को इन पर गम्भीर विचार करना चाहिये। ऋषि ने उस समय ब्राह्म-समाज में जो दोष दर्शाये थे, वे आज आर्य-समाज में उससे भी अधिक प्रबल हो रहे हैं। **आर्यसमाजों के उत्सवों पर सहस्रों रुपये व्यय करना, और केवल अंग्रेजी सिखाने के लिये दिन-प्रतिदिन नये-नये स्कूल कालिज खोलना आज-कल एक साधारणसी बात हो गई है।** आर्यसमाजों और प्रतिनिधि-सभाओं को स्कूल वा कालिज खोलने से पूर्व ऋषि के इस लेख पर, और उनके पत्रों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी एतद्विषयक सम्मति पर शान्त-हृदय से विचार करना चाहिये। इन स्कूलों और कालिजों की व्यर्थता तथा इनसे होनेवाली हानि को ऋषि ने अपनी दूरदर्शिता से बहुत काल पूर्व समझ लिया था। अतएव उन्होंने अपने अनेक पत्रों में अंग्रेजी भाषा के प्रचार के विरुद्ध अपनी स्पष्ट सम्मति लिखी है। देखो—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' (सं० ३) भाग २, पृष्ठ ५०१, पं० १३ से पृष्ठ ५०२, पं० ५ तक, पृष्ठ ६८२, पं० १-३ इत्यादि।[1]

उदयपुर के **महाराणा सज्जनसिंह को दिनचर्या और राज्यव्यवस्था** सम्बन्धी जो **विशेष नियम** ऋषि ने लिखकर दिये थे, उनमें भी अंग्रेजी आदि आर्येतर भाषाओं के प्रचार का स्पष्ट निषेध किया था। उनका लेख इस प्रकार है—

"सदा सनातन वेदशास्त्र, आर्यराज, राजपुरुषों की नीति पर निश्चित रह इनकी उन्नति तन मन धन से सदा किया करें। इनसे विरुद्ध भाषाओं की प्रवृत्ति वा उन्नति न करें, न करावें। किन्तु जितना दूसरे राज्य के सम्बन्ध में, यदि वे इस भाषा को न समझें, उतने ही के लिये उन भाषाओं का यत्न रक्खें, जो वह प्रबल राज्य हो।" 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' (सं० ३) भाग २, पृष्ठ ६२९, पं० २—६।

इसी प्रकार कुछ अन्य भी महत्त्वपूर्ण लेख सत्यार्थ-प्रकाश के प्रथम संस्करण में उपलब्ध होते हैं, जिन्हें हमने रामलाल कपूर ट्रस्ट मुद्रापित सत्यार्थप्रकाश शताब्दी संस्करण २, संवत् २०३० के अन्त में १३वें परिशिष्ट में पृष्ठ ११३७—११५८ तक छाप दिया है।

सत्यार्थ-प्रकाश (प्र० सं०) का मुद्रण

सत्यार्थ-प्रकाश (प्र० सं०) का मुद्रण कब प्रारम्भ हुआ, और कब समाप्त हुआ, इस विषय में हमें कोई साक्षात् प्रमाण उपलब्ध नहीं होता।[2] पं० गोपालराव हरि देशमुख के नाम लिखे गये पत्र से केवल

१. विशेष 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' की पं० भगवद्दत्त जी द्वारा लिखित भूमिका, भाग १, पृष्ठ ४७-४९ में देखें।

२. पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित भाग १ पृष्ठ २६४ (प्र० सं०) के अनुसार १४ मार्च १८७४ से पूर्व ही छपने को देने का उल्लेख है, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना विदित होता है कि फाल्गुन वदि २, संवत् १९३१ तक सत्यार्थ-प्रकाश (प्र० स०) के १२० पृष्ठ छपकर महर्षि के पास पहुंच गये थे। और उन्हें उन्होंने बेचना भी आरम्भ कर दिया था।[1]

संवत् १९३१, माघ वदि २, शनिवार (२३ जनवरी १८७५) को लाला हरवंशलाल के नाम लिखे गये पत्र से ज्ञात होता है कि सत्यार्थ-प्रकाश उनके 'स्टार प्रेस' (वनारस) में छप रहा था।[2]

प्रथम संस्करण में १३-१४वां समुल्लास

कई व्यक्ति आक्षेप करते हैं कि १३वां और १४ वां समुल्लास स्वामी दयानन्द के लिखे हुये नहीं है, क्योंकि प्रथम संस्करण में ये नहीं छपे थे। आर्यसमाजियों ने सत्यार्थ-प्रकाश में, जो कि स्वामी जी की मृत्यु के वाद छपा है, पीछे से जोड़ दिये। ऐसे आक्षेपों के समाधान के लिये हम ऋषि के ही लेख उपस्थित करते हैं, जिनसे इस विवाद की सर्वथा समाप्ति हो जाती है—

ऋषि ने प्रथम संस्करण के दशम समुल्लास के अन्त में पृष्ठ ३०७ पर लिखा है—

"इसके आगे आर्यावर्तवासी मनुष्य, जैन, मुसलमान और अंग्रेज़ों के आचार-अनाचार सत्याऽसत्य मतमतान्तर के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखेंगे। इनमें से प्रथम (११वें) समुल्लास आर्यावर्तवासी मनुष्यों के मतमतान्तर के खण्डन और मण्डन के विषय में लिखा जायेगा। दूसरे (१२वें) समुल्लास में जैनमत के खण्डन और मण्डन में लिखा जायेगा। तीसरे (१३वें) समुल्लास में मुसलमानों के मत के विषय में खण्डन और मण्डन लिखेंगे। और चौथे (१४वें) में

यह लेख इसी ग्रन्थ के पृष्ठ २७२ से विरुद्ध है। जीवनचरित द्वितीय संस्करण के भाग १ पृष्ठ २६५ पर यह बात हमने टिप्पणी में भी दर्शा दी है।

१. द्र०—'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' का पूर्णसंख्या १९ का पत्र, भाग १, पृष्ठ ५२, पं० १-२ तथा पृष्ठ ५३, पं० १-२। जिन्होंने प्रथम खण्ड ले लिया था। उनके लिये दूसरे खण्ड का मूल्य भी एक रुपया रखा था। देखो—**'श्री आर्यसमाज नो नियमो मुम्बई'** संवत् १९३२ माह वद, सन् १८७६ के अन्त में छपा विज्ञापन—**'सत्यार्थप्रकाश भाग बीजो १ रु०'**।

२. द्र०—'ऋ० द्र० के पत्र और विज्ञापन' पूर्णसंख्या १६ का पत्र, भाग १, पृष्ठ ४८-५०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजों के मत के खण्डन-मण्डन के विषय में लिखा जायेगा। सो जो देखा चाहे खण्डन और मण्डन की युक्ति, उन चार समुल्लासों में देख ले।"

इस लेख से इतना तो निश्चित है कि स्वामी जी १३वां और १४वां समुल्लास लिखना चाहते थे। इससे भी बढ़कर प्रमाण माघ बदि २, संवत् १९३१ (२३ जनवरी १८७५ ई०) का वह पत्र है, जो महर्षि ने स्टार प्रेस काशी के अधिपति लाला हरवंशलाल को लिखा था। उस पत्र का एतद्विषयक अंश इस प्रकार है—

"आगे मुरादाबाद में कुरान के खण्डन का अध्याय शोधने के के वास्ते गया रहा, सो शोधके आपके पास आया कि नहीं? जो न आया हो, तो राजा जयकृष्णदास जी को खत लिखो, जल्दी छपने के वास्ते भेज देवें, और बाइबिल का अध्याय सब शोधके छाप दो।"

द्र०—'पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ४९, पं० १३-१६।

इस पत्र में कुरान और बाइबिल दोनों के खण्डन-मण्डन छापने का स्पष्ट उल्लेख है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि ऋषि ने १३वां और १४वां समुल्लास अवश्य लिखा था। परन्तु किन्हीं कारणों से प्रथम संस्करण में ये दोनों समुल्लास छप नहीं सके। इस विषय में संशोधित सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका में महर्षि ने स्वयं लिखा है—

"परन्तु अन्त के दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धान्त किसी कारण[1] से प्रथम न छप सके थे, अब वे भी छपवा दिये हैं।"

सत्यार्थ-प्रकाश के प्रथम-संस्करण में लिपिकर वा मुद्रणपत्र-संशोधक की धूर्त्तता

सत्यार्थ-प्रकाश के प्रथम संस्करण के मुद्रणकाल में महर्षि ने इसके मुद्रण-पत्र (=प्रूफ) नहीं देखे थे। अतः लेखक को अथवा राजा जयकृष्णदास जी को[2] ग्रन्थ में मिलावट करने वा कराने का पूरा-पूरा अवसर मिला। उन्होंने ऋषि के मन्तव्यों के विरुद्ध अनेक बातें सत्यार्थ-प्रकाश में मिला वा मिलवा दीं। उनमें से प्रधानभूत मृत

१. द्र०—पूर्व पृष्ठ २० की टिप्पणी १-३।

२. इस विषय में आगे लिखा जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितरों के श्राद्ध और मांस-भक्षण के प्रतिवाद में ऋषि ने ऋग्वेद-भाष्य और यजुर्वेदभाष्य के प्रथम द्वितीय अङ्क, जो श्रावण और भाद्रपद संवत् १९३५ में छपे थे, के मुखपृष्ठ की पीठ पर **निम्न विज्ञापन छपवाया था** -

विज्ञापन

"सब को विदित हो कि जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं, मैं उनको मानता हूं, विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो-जो मेरे बनाये 'सत्यार्थ-प्रकाश' वा 'संस्कारविधि' आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं, उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण, और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं। जो-जो बातें वेदार्थ से निकलती हैं, उन सब को प्रमाण मानता हूं। क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है। और जो-जो ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त महात्माओं के बनाये वेदानुकूल ग्रन्थ हैं, उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं। और जो सत्यार्थ-प्रकाश पृष्ठ ४२ पंक्ति २ में **'पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो, उनका तर्पण न करें। और जितने मर गये हैं, उनका तो अवश्य करें'**। तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ में **'मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करना है'** इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है, सो लिखने और शोधनेवालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि—**'जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना, यह पुत्रादि का परम धर्म है। और जो-जो मर गये हों उनका नहीं करना। क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुये जीव के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता है, और न मरा हुआ जीव पुत्रादि से दिये हुये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है, इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है, अन्य का नहीं।'** इस विषय में वेद-मन्त्रादिकों का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अङ्क के पृष्ठ २६७ तक छपा है, वहां देख लेना।" पत्र और विज्ञापन भाग १, पृष्ठ १५४-१५५

ऋषि ने यह विज्ञापन संवत् १९३५ के श्रावण मास के आरम्भ वा उससे पूर्व लिखा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि के अनन्य भक्त पं० देवेन्द्रनाथ जी ने सत्यार्थ-प्रकाश के पूर्वोक्त प्रक्षेप के विषय में राजा जयकृष्णदास से भी पूछा था। राजा जी ने पं० देवेन्द्रनाथ जी से कहा था—

"सत्यार्थ-प्रकाश में जो मत स्वामी जी का लिखा गया, या जो कुछ पीछे से परिवर्तित हुआ, उसके लिये स्वामी जी इतने उत्तरदाता नहीं हैं। **स्वामीजी को उस समय प्रूफ देखने का अवकाश ही नहीं था। पहिले-पहल स्वामीजी सभी लोगों को अच्छा समझकर उनका विश्वास कर लेते थे। हो सकता है कि लेखक या मुद्रक द्वारा यह सब मत सत्यार्थ-प्रकाश में छप गया हो।** और यह भी हो सकता है कि उनका मत पीछे से परिवर्तित हो गया हो।"

देवेन्द्रनाथ संपादित जीवनचरित्र, पृष्ठ २७३ (प्र० सं०)।

राजा जयकृष्णदास के अन्तिम वाक्य से ध्वनित होता है कि उन्हें भी मृत पितरों के श्राद्ध के विषय में यह संदेह था कि सम्भवतः सत्यार्थ-प्रकाश लिखने के बाद महर्षि का मत बदल गया होगा। अन्य विपक्षी भी यही आक्षेप करते हैं[1] कि जब स्वामी दयानन्द का श्राद्ध के विषय में अपना मन्तव्य बदल गया, तो अपने पूर्वलिखित लेख का उन्होंने लिखने या शोधनेवालों की भूल कहना आरम्भ कर दिया। दूसरे शब्दों में ऋषि ने जो पूर्वोक्त विज्ञापन छपवाया था, वह सर्वथा मिथ्या है।

उक्त जीवनचरित्र पृष्ठ ६१९ (प्र० सं०) से विदित होता है कि किन्हीं का ऐसा भी विचार है कि—**'मृत पितरों का श्राद्ध और यज्ञ में मांस का विधान राजा जयकृष्णदास ने लिखवा दिया था'**। हमें इस विचार में कुछ सत्यता प्रतीत होती है। इसमें निम्न प्रमाण हैं—

महर्षि ने संवत् १९३१ में 'पञ्चमहायज्ञविधि' का प्रथम संस्करण बम्बई में स्वयं छपवाया था। उसके पितृतर्पण प्रकरण में लिखा है—

१—भा०—'गुर्वादिसख्यन्तेभ्यः। एतेषां सोमसदादीनां श्रद्धया तर्पणं कार्यं विद्यमानानाम्। श्रद्धया यत् क्रियते तत् श्राद्धम्। तृप्त्यर्थं

१. ऊना (हिमाचल प्रदेश) के पं० श्रीरामजी भी यही लिखते रहते है कि पहले स्वामी जी मृतक-श्राद्ध और मांस-भक्षण मानते थे। पीछे उनका एतद्विषयक मत बदल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् क्रियते तत् तर्पणम् ।[1] पृष्ठ २०, २१ ।

२—**अक्रोधन···**[मनु के दो श्लोक उद्धृत करके] भा०—**अनेन प्रमाणेन युक्त्या च विद्यमानान् विदुषः श्रद्धया सत्याचारेण तृप्तान् कुर्यादित्यभिप्रायः । श्रद्धया देवान् द्विजोत्तमान् इत्युक्तत्वात् ।**"[2] पृ० २१ ।

इसमें स्पष्टरूप से जीवितों के श्राद्ध का विधान किया है। इस पुस्तक का लेखनकाल ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार छपा है—

शशिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे त्वाश्विनस्य सिते दले ।
प्रतिपद् रविवारे च भाष्यं वै पूर्तिमागमत् ।।[3]

अर्थात्—यह ग्रन्थ **आश्विन शुक्ला १ प्रतिपद् रविवार संवत् १९३१ में पूर्ण हुआ ।**

सत्यार्थ-प्रकाश का लेखन आषाढ़ बदि ११ संवत् १९३१ से प्रारम्भ हुआ था । **उसके लगभग ३ मास पीछे सत्यार्थ-प्रकाश के लेखन की समाप्ति के लगभग साथ ही 'पञ्चमहायज्ञविधि' का लेखन** समाप्त हुआ था । इससे स्पष्ट है कि जिस समय सत्यार्थ-प्रकाश का लेखन चल रहा था, उस समय ऋषि दयानन्द मृत पितरों का श्राद्ध नहीं मानते थे । यहां पर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि सत्यार्थ-प्रकाश प्रथम-संस्करण के मुखपृष्ठ पर मुद्रणकाल सन् १८७५ छपा है ।

राजा जी के विचारों का निदर्शन—पूर्वोक्त संवत् १९३१ वाली 'पञ्चमहायज्ञविधि' का संशोधित संस्करण ऋषि ने संवत् १९३४ में पुनः प्रकाशित किया । उसमें अन्त के चार यज्ञों में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया, **परन्तु उसके लगभग ५ वर्ष पश्चात् राजा जयकृष्णदास ने लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस में संवत् १९३९ में 'पञ्चमहायज्ञविधि' का जो संस्करण महर्षि के नाम से पुनः छपवाया था,** इसका मुखपृष्ठ इस प्रकार है—

---

१. द्र०—'दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रह' पृ० ३४४-३६४ तक 'पञ्चमहायज्ञविधि' के परिशिष्टरूप में मुद्रित अंश में पृष्ठ ३४८, पं० ११-१३ ।

२. दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रह, पृष्ठ ३४८, पं० २८-३० ।

३. दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रह, पृष्ठ ३६४ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"श्री सच्चिदानन्दमूर्तये परमात्मने नमः

सन्ध्योपासना पञ्चमहायज्ञविधिः

प्रथमं संस्करणं[1]

वेदविहिताचारधर्म्मनिरूपक श्री दयानन्द
स्वामी विरचितेन भाष्येनानुगतः
वेदमतानुयायी राजा जयकृष्णदासाज्ञया लक्ष्मणपुरस्थ
मुन्शी नवलकिशोरयंत्रे मुद्रितः
विक्रमादित्यराज्यतो गताब्दाः १९३९ जुलाई सन्
१८८२ ई०
पुस्तक संख्या ५००० प्रति पुस्तक मूल्य =)"

इस के भीतर के पृष्ठ पर ग्रन्थारम्भ में **श्रीगणेशाय नमः** छपा है।

विशेष—यह पुस्तक २०×२६ अठपेजी आकार के ३८ पृष्ठों में हल्के पीले रंग के कागज पर छपी है।

हम पूर्व लिख चुके हैं कि राजाजी द्वारा प्रकाशित उक्त संस्करण प्रकाशित करने से लगभग पांच वर्ष पूर्व ऋषि दयानन्द ने 'पञ्चमहायज्ञविधि' का एक और संशोधित संस्करण प्रकाशित कर दिया था। परन्तु राजा जी ने उसे न छपवाकर पूर्वोक्त संवत् १९३१ वाले संस्करण को ही छपवाया, और **उसके अन्त में भी पृष्ठ ३३-३८ तक पौराणिक वैष्णवी संध्या छपवा दी**। इससे स्पष्ट विदित होता है कि **सत्यार्थ-प्रकाश के उपर्युक्त मृतपितरों के श्राद्धतर्पणविषयक लेख के छपवाने में भी राजाजी का कुछ हाथ अवश्य रहा होगा**। संवत् १९३१ वाली 'पञ्चमहायज्ञविधि' ऋषि ने स्वयं अपने बम्बई निवास-काल में छपवाई थी, जब कि 'सत्यार्थ-प्रकाश' (प्र० सं०) उनकी अनुपस्थिति में काशी में छपता रहा। अतएव इस विषय में पञ्च-महायज्ञविधि के प्रथम संस्करण का उल्लेख अधिक प्रामाणिक है, सत्यार्थ-प्रकाश (प्र० सं०) का नहीं।

१. श्री पं० लेखराम जी के द्वारा संगृहीत जीवनचरित्र पृष्ठ ८१७ (हिन्दी सं०) से विदित होता है कि सन् १८७४ (संवत् १९३१) में नवल-किशोर प्रेस से 'सन्ध्योपासना-पञ्चमहायज्ञविधि' का एक संस्करण २००० का संख्या में छपा था और दूसरा सन् १८८२ (संवत् १९३९) में प्रकाशित हुआ था। परन्तु हमारे पास विद्यमान १९३९ के संस्करण के मुखपृष्ठ पर 'प्रथमं संस्करणम्' ही छपा है। सन् १८७४ का संस्करण हम देखने को नहीं मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमहायज्ञविधि के अन्य संस्करणों में मिलावट

ऋषि दयानन्दकृत 'सन्ध्योपासनादि-पञ्चमहायज्ञविधि' के दो और संस्करण बनारस (वाराणसी) में लीथो पर छपे थे। दोनों संस्करण बम्बईवाली 'पञ्चमहायज्ञविधि' के अनुसार हैं। इनमें मन्त्रों का भाष्य नहीं है। इनमें से एक 'बाबू अविनाश' की आज्ञानुसार 'विद्यासागर प्रेस' में छपा था। ये दोनों संस्करण संवत् १९३२ वाले 'सत्यार्थ-प्रकाश' के बाद छपे।[1] इनके आदि और अन्त में स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम है। **इनमें भी मृत-पितरों के तर्पण का उल्लेख है**। इससे भी स्पष्ट है कि महर्षि के ग्रन्थों में प्रकाशक वा लेखक आदि जानबूझकर अदला-बदली करते रहे।

अब हम कतिपय ऐसे प्रमाण उपस्थित करते हैं, जिनसे विदित हो जायेगा कि ऋषि दयानन्द संवत् १९३२ से बहुत पूर्व से ही मृतक-श्राद्ध का खण्डन करते थे।

मृतक-श्राद्ध-खण्डन (सं० १९२४)

(१) महर्षि के जीवनचरित से व्यक्त है कि महर्षि ने संवत् १९२४ वि० से ही मृतक-श्राद्ध का खण्डन और जीवित पितरों के श्राद्ध का उपदेश करना आरम्भ कर दिया था। ऋषि के जीवनचरित में कार्तिक संवत् १९२४ की एक घटना इस प्रकार लिखी है—

"चासी में स्वामी जी ने शफीपुर के मायापुर जाट से कहा कि जीवित पितरों का ही श्राद्ध किया करो, और इसकी पद्धति बनाकर वह पण्डित ज्वालाप्रसाद को दे गये थे।" पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित, पृष्ठ १०८।

---

१. श्री पं० लेखराम जी द्वारा संगृहीत जीवनचरित पृष्ठ ७९१ में 'विद्यासागर प्रेस' में छपी 'पञ्चमहायज्ञविधि' का काल संवत् १९३० श्रावण शुक्ला लिखा है, वह अशुद्ध है। क्योंकि हमारे पास जो संस्करण है उस पर सन् संवत् का निर्देश न होने पर भी उसमें संवत् १९३२ में छपे 'सत्यार्थ-प्रकाश' का नाम मिलता है। इसी प्रकार लाइट प्रेस बनारस की छपी हुई का समय संवत् १९३० और १९३१ दिया है, वह भी अशुद्ध है। क्योंकि उसमें भी 'सत्यार्थ-प्रकाश' का नाम मिलता है। इन दोनों संस्करणों के विषय में आगे 'पञ्चमहायज्ञविधि' के प्रकरण में विस्तार से लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) "कार्तिक कृष्ण पक्ष संवत् १९२६ में भागलपुर में भी ऋषि दयान्द ने जीवित पितरों के श्राद्ध का मण्डन और मृत पितरों के श्राद्ध का खण्डन किया था।" वही, जीवनचरित, पृष्ठ २२० ।

(३) ऋषि दयानन्द के भक्त ठा० मुकुन्दसिंह रईस छलेसर (अलीगढ़) निवासी ने एक पत्र द्वारा निवेदन किया—

"मैं पार्वण श्राद्ध करना चाहता हूं, उसके लिये एक बकरा भी तैयार है। आप ही इस श्राद्ध को कराइये।"[1]

इस पत्र को पढ़कर महर्षि के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, और उन्होंने बनारस से उत्तर दिया कि—

यह संस्करण राजा जयकृष्णदास द्वारा मुद्रित हुआ है, इसमें बहुत अशुद्धियां रह गई हैं। शाके १७९६ में मैंने जो 'पञ्चमहायज्ञ-विधि' प्रकाशित कराई थी, जो कि राजाजी के सत्यार्थप्रकाश से एक वर्ष पूर्व छपी थी, उसमें जबकि मृतक-श्राद्ध आदि का खण्डन है,[2] तो फिर सत्यार्थ-प्रकाश में मण्डन कैसे हो सकता है? अतः श्राद्धविषय में जो मृतक-श्राद्ध और मांस-विधान का वर्णन है, वह वेद-विरुद्ध होने से त्याज्य है।[3]

इस उत्तर को पाकर ठाकुर साहब ने अपना विचार छोड़ दिया। इसके पश्चात् महर्षि के लिये वह आवश्यक हो गया कि वे एक विज्ञा-पन के द्वारा अपनी स्थिति को स्पष्ट कर दें, और वैसा ही उन्होंने किया भी।

ठा० मुकुन्दसिंह का पत्र और उसका उत्तर पं० भूमित्र शर्मा द्वारा लिखित और भास्कर प्रेस मेरठ में सं० १९७४ में छपी 'पितृयज्ञ-समीक्षा' के पृष्ठ २८ के अनुसार सं० १९३३ के ऋ० द० के काशीवास के समय के हैं।

---

१. द्र०—ऋ० द० को लिखे पत्र विज्ञापन, पूर्णसंख्या ११०, भाग ३, पृष्ठ ७८। मांस से यज्ञ करने के विषय में भिनगा जिला बहराईच (अवध) के श्रीयुत भाया राजेन्द्र बहादुरसिंह ने भी एक पत्र स्वामी जी को लिखा था। देखो—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृ० २८७-२८८।

२. 'पञ्चमहायज्ञविधि' का यह अंश हम पूर्व पृष्ठ ३२-३३ पर उद्धृत कर चुके हैं।

३. द्र०—पत्र और विज्ञापन, पुर्ण संख्या २७७, भाग १, पृष्ठ ३२६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि दयानन्द का यह महत्त्वपूर्ण पत्र सन् १९७८ तक किसी 'पत्रव्यवहार' में प्रकाशित नहीं हुआ। हमने इन दोनों पत्रों को 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' और 'ऋ० को लिखे गये पत्र और विज्ञापन' के इस बार चार भागों में इकट्ठे छपे पत्र और विज्ञापन संग्रह में प्रथमवार यथास्थान जोड़ा है।[२]

हस्तलेख में मिलावट कैसे की गई

हम पूर्व लिख चुके है कि राजा जयकृष्णदास जी के घर में सुरक्षित स० प्र० प्रथम-संस्करण की हस्तलिखित प्रति में १२वें समुल्लास तक कहीं-कहीं ऋषि दयानन्द के स्वहस्त-कृत संशोधन विद्यमान हैं। ऐसा होने पर भी हस्तलेख में मृतक-श्राद्ध एवं मांस भक्षण के प्रकरण कैसे मिलाये गये ? इसके लिये हमने सितम्बर १९७२ में उक्त हस्त-लेख की फोटो कापी, जो परोपकारिणी सभा के पास सुरक्षित है, को सूक्ष्म दृष्टि से देखा। उस को देखने से स्पष्ट प्रतीत हुआ कि जिन पृष्ठों में मृतक-श्राद्ध और मांस-भक्षण का लेख है, उन पर तथा उसके आगे-पीछे कुछ पृष्ठों पर ऋषि दयानन्द के संशोधन नहीं हैं। पूर्व उद्धृत प्रमाणों से यह तो स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द 'सत्यार्थ-प्रकाश' के लिखवाने से बहुत वर्ष पूर्व से मृतक श्राद्ध का खण्डन कर रहे थे। 'सत्यार्थ-प्रकाश' के लेखन-समकाल में लिखी गई, और संवत् १९३१ में प्रकाशित 'पञ्चमहायज्ञविधि' में जीवित पितरों के श्राद्धतर्पण का साक्षात् विधान होने से स्पष्ट है कि 'सत्यार्थ-प्रकाश' के हस्तलेख में उक्त प्रकरण पीछे से मिलाया गया है। और उसके लिये **आगे-पीछे के कुछ पृष्ठ पुनः लिखवाये गये**। इसी कारण इन पर ऋषि दयानन्द के संशोधन नहीं हैं।

उक्त लेखों से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द 'सत्यार्थ-प्रकाश' के लिखने से बहुत वर्ष पूर्व से ही मृतक-श्राद्ध का खण्डन करते थे। अतः 'सत्यार्थ-प्रकाश' में मृतक-श्राद्ध का होना निश्चय ही लेखक आदि के प्रक्षेप को सिद्ध करता है।

सत्यार्थ-प्रकाश का द्वितीय परिशोधित संस्करण

'सत्यार्थ-प्रकाश' का प्रथम संस्करण कुछ वर्षों में ही समाप्त हो

२. द्र०—पूर्व पृष्ठ की टिप्पणी १, ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। परन्तु वेदभाष्य के कार्य में विशेषरूप से लगे रहने के कारण महर्षि चाहते हुए भो इसका परिशोधित संस्करण शोघ्र प्रकाशित न कर सके। द्वितीय-संस्करण के प्रकाशित करने की सब से प्रथम सूचना '**वर्णोच्चारणशिक्षा**' के अन्तिम पृष्ठ पर उपलब्ध होती है। 'वर्णोच्चारणशिक्षा' संवत् १९३६ के उत्तरार्ध में छपकर प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त सत्यार्थ-प्रकाश के दूसरी बार छपवाने की सूचना संवत् १९३८ में छपे "**सन्धिविषय**" के अन्त में भो छपी है।

संशोधन-काल

'सत्यार्थ-प्रकाश के संशोधन का काल संशोधित 'सत्यार्थ-प्रकाश' की भूमिका के अन्त में इस प्रकार लिखा है—'**स्थान राणा जी का उदयपुर, भाद्रपद शुक्लपक्ष संवत् १९३९।**'

'सत्यार्थ-प्रकाश' के संशोधन की समाप्ति इससे भी पूर्व हो गई थी। भाद्रपद बदि १ मंगलवार संवत् १९३९ (१९ अगस्त १८८२) के ऋषि के पत्र से विदित होता है कि उन्होंने भाद्रपद बदि १ को भूमिका और प्रथम समुल्लास को प्रेस-कापी एक साथ प्रेस में भेजी थी। उनका लेख इस प्रकार है—

'आज सत्यार्थ-प्रकाश के शुद्ध[1] करके ५ पृष्ठ भूमिका के, और ३२ पृष्ठ प्रथम समुल्लास के भेजे हैं, पहुंचेगे।

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृ० ६०९।

प्रतीत होता है 'सत्यार्थ-प्रकाश' की भूमिका के अन्त में छपा काल उनके प्रूप संशोधन के समय लिखा गया होगा। ९ दिसम्बर १९६१ को हमने 'सत्यार्थ-प्रकाश' की प्रेसकापी की फोटोकापी देखी थी। उस में '**भाद्रपद संवत् १९३९**' इस प्रकार भाद्रपद के आगे स्थान रिक्त मिलता है। सम्भव है '**शुक्लपक्ष**' शब्द मुद्रण के समय मुंशी समर्थदान ने बढाया हो। इसी संस्करण में समर्थदान ने जो निवेदन छापा था[2], उस पर 'आश्विन कृष्णपक्ष' का निर्देश है।

इन उपर्युक्त उद्धरणों से विस्पष्ट है कि **ऋषि ने अपने निर्वाण**

---

१. यहां तथा अगले पत्रों में '**शुद्ध करके**' शब्द का अर्थ 'प्रेस कापी बनाकर' है। क्योंकि भूमिका का लेखन सदा ग्रन्थ-निर्माण के अनन्तर होता है।

२. द्र०—ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लगभग १४ मास पूर्व **संशोधित सत्यार्थ-प्रकाश की सम्पूर्ण पाण्डु-लिपि (रफ कापी) तैयार कर ली थी,** और उसकी प्रेसकापी बना-कर उसे प्रेस में भेजना आरम्भ कर दिया था, किन्तु वैदिक-यन्त्रालय के प्रवन्ध की अव्यवस्था के कारण 'सत्यार्थ-प्रकाश' ऋषि के जीवन-काल में छपकर प्रकाशित न हो सका। इसी कारण विपक्षियों को यह आक्षेप करने का अवसर मिल गया कि संवत् १९४० वाला 'सत्यार्थ-प्रकाश' असली नहीं है, स्वामी जी की मृत्यु के अनन्तर आर्य-समाजियों ने वनाकर उनके नाम से छाप दिया है। विपक्षियों के इस आक्षेप के निराकरण के लिये हम ऋषि दयानन्द के तथा वैदिक-यन्त्रालय के तात्कालिक प्रवन्धकर्त्ता मुंशी समर्थदान के लिखे हुए पत्रों से वे आवश्यक उद्धरण नीचे उद्धृत करते हैं, जिनमें 'सत्यार्थ-प्रकाश' के विषय में उल्लेख मिलता है—

१—भाद्र बदि १, मंगलवार, संवत् १९३९ (२९ अगस्त १८८२) का मुंशी समर्थदान के नाम ऋषि का पत्र—

"आज सत्यार्थ-प्रकाश को शुद्ध करके ५ पृष्ठ भूमिका के और ३२ पृष्ठ प्रथम समुल्लास के भेजे हैं, पहुंचेगे।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६०९।

२—भाद्र शुदि [६] संवत् १९३९ (१८ सितम्बर १८८२) का मुन्शी समर्थदान के नाम ऋषि का पत्र—

"थोड़े दिनों के पश्चात् सत्यार्थ-प्रकाश के पत्रों को शुद्ध करके भेज देंगे। तुम सत्यार्थ-प्रकाश को छापने का आरम्भ कर दो।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६१५।

३—आश्विन शुदि ३, रविवार संवत् १९३९ (१५ अक्टूबर १८८२) का मुन्शी समर्थदान के नाम ऋषि का पत्र—

"कल तुम्हारे पास ३३ पृष्ठ से ५७ पृष्ठ तक सत्यार्थ-प्रकाश के पत्र…भेजेंगे। पत्र और विज्ञापन, भाग २ पृष्ठ ६२०।

४—मार्गशीर्ष शुदि १०, मंगलवार, संवत् १९३९ (१९ दिसम्बर १८८२) का मुन्शी समर्थदान के नाम पत्र—

"५ [पृष्ठ] भूमिका और सत्यार्थ-प्रकाश के [छपे] फारम भेजे थे, सो पहुंच गये। परन्तु सत्यार्थ-प्रकाश अक्षरों के घिस जाने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा नहीं छपता।"—पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६३८।

५—वैशाख शुदि ३ संवत् १९४० (९ मई १८८३) का मुन्शी समर्थदान के नाम पत्र—

"क्योंकि 'वेदाङ्ग-प्रकाश' और 'सत्यार्थ-प्रकाश' बहुत जल्द छापना चाहिये।…'सत्यार्थ-प्रकाश' और वेदाङ्ग-प्रकाश' के छपने में देर होने का कारण बाहर का काम है। ‥ ‥यह यन्त्रालय रोजगार के वास्ते नहीं है, केवल सत्य-शास्त्रों को छापकर प्रसिद्ध करने के लिये है, न कि व्यापार के लिये।" — पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६९६।

६. वैशाख शुदी ४ संवत् १९४० (१४ मई १८८३) का बाबू विश्वेश्वर सिंह के नाम पत्र—

"अब देखो एक सप्ताह में तो 'प्रयाग-समाचार' छपता है, और मासिक ये दो ले लिये, और आठ फारम वेद वेदभाष्य का छपता है। और यह सब मिलाकर महीने में १० फारम तथा १२ यह हो जाते हैं। इस हिसाब से २० तो हो गये। अब कहो सत्यार्थ-प्रकाश आदि कैसे छपें।……यह छापाखाना केवल सत्यशास्त्र के लिये किया [है] रोजगार के लिये नहीं।" पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ७०१।

७—ज्येष्ठ बदि १० संवत् १९४० (३१ मई १८८३) का मुन्शी समर्थदान के नाम पत्र—

"…और 'प्रयाग-समाचार' भी बन्द कर दो, यदि बन्द न करोगे तो हम दण्ड कर देंगे। क्योंकि बहुत वक्त हम लिख चुके हैं।[1] ‥ ‥ जो छापने को सत्यार्थ-प्रकाश है, उसको एक मास पहले लिख भेजोगे, तब ठीक समय पर तुम्हारे पास पहुंचेंगे।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ७१२, पं० ८-१०; पृष्ठ ७१३, पं० १६-१७।

८—ज्येष्ठ शुदि २ संवत् १९४० (७ जून १८७३) का बाबू विश्वेश्वर सिंह के नाम पत्र—

"…हम कई बार मुन्शी समर्थदान को लिख चुके हैं कि बाहर का छापना बिल्कुल बन्द कर दो', परन्तु उसने अब तक बन्द नहीं किया ‥…। यदि बन्द न करेगा, तो हम उस पर दण्ड कर देंगे।

१. द्र०—उद्धरण संख्या ५, ६ तथा अन्यपच।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"......कितनी हानि निघण्टु, उणादिगण, और धातुपाठ, सत्यार्थ-प्रकाश के न छपने से हो रही है।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ७१८, पं० ३-६, १२-१४।

९—आषाढ़ वदि ९, संवत् १९४० (२५ जून १८८३) का बाबू विश्वेश्वर सिंह के नाम पत्र—

"...सत्यार्थ-प्रकाश छपने में विलम्ब होना नहीं चाहिये।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ७१९।

१०—आश्विन वदि १, संवत् १९४० (१७ सितम्बर १८८३) का मुन्शी सामर्थदान के नाम पत्र—

"आर्यराज-वंशावली के पत्रे तुमने भेजे, सो पहुंचे। उसी समय हम सत्यार्थ-प्रकाश १२ समुल्लास को भेजना चाहते थे। इसलिये शोध नहीं सके। **और तुम इसका जोड़मात्र शोध लेना**। जो राजाओं के वर्ष मास दिन हैं, उनको वैसे ही रखना, क्योंकि अन्य पुस्तकों से भी हमने इनको मिलाया है, जो कि जोधपुर में एक मुन्शी[1] के पास और इसके साथ **मोहनचन्द्रिका १९-२० किरण** भेजते हैं, परन्तु वह भी अशुद्ध छपा है, इसलिये नीचे ऊपर के जो जोड़ हैं वही शुद्ध कर लेना। आयु के वर्ष मास दिन वैसे ही रहने देना जैसे कि हैं। पृष्ठ २७२ से लेकर ३१९ तक १२ समुल्लास 'सत्यार्थ-प्रकाश' का छापने के लिये भेजते हैं। जो जोधपुर के मुन्शी[1] की पुस्तक से मिलाई है, वह भी भेजते हैं।"— पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ७८६-७८७।

११—आश्विन वदि ८ संवत् १९४० (२४ सितम्बर १८८३) का मुन्शी समर्थदान के नाम पत्र—

"......और सत्यार्थ-प्रकाश, जो कि १३ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है, वह यहां से चले पूर्व अथवा मसूदे पहुंचते समय भेज देंगे।— पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ७९२।

१२—आश्विन वदि १३ संवत् १९४० (२९ सितम्बर १८८३)। का मुन्शी समर्थदान के नाम पत्र—

"एक [अनु] भूमिका का पृष्ठ और ३२० से लेके ३४४ तक

१. हमारा विचार है कि यह संकेत जोधपुर के प्रसिद्ध ऐतिहासिक मुन्शी देवीप्रसाद जी की ओर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तौरेत और जबूर का विषय 'सत्यार्थ-प्रकाश' का भेजते हैं, सम्भाल लेना।"—पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ८०६-८०७।

१३—श्रावण शुदि ६ संवत् १६४० (६ अगस्त १८८३) के पश्चात् सम्पादक **'भारतमित्र'** के नाम लिखा गया पत्र—

"महाशय! आपके संवत् १६४० मिति श्रावण शुद्धि ६ गुरुवार के दिन छपे हुये पत्र में जो विविध समाचार के दूसरे कोष्ठ में यह छपा है कि मुसलमानों के मझब का मूल अथर्ववेद में है, सो बात नहीं है। क्योंकि उनके नाम-निशान का एक अक्षर अथर्ववेद में नहीं है। जो शब्द कर्तृम (?, कृत्रिम) अल्लोपनिषद् नामक, जो कि मुसलमानों की पादशाही के समय किसी थोड़ी-सी संस्कृत और अरबी फारसी के पढ़नेवाले ने छोटा सा ग्रन्थ बनाया था, वह वेद व्याकरण निरुक्त के नियमानुसार शब्द अर्थ और सम्बन्ध के अनुकूल नहीं है। और अल्ला, रसूल, अकबर आदि शब्द चारों वेद में नहीं हैं। किन्तु जो अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है, उसमें भी यह उपनिषद् तो क्या परन्तु पूर्वोक्त शब्दमात्र भी नहीं है। पुनः जो कोई इस बात का दावा करता है, वह अथर्ववेद की संहिता जो कि २० काण्ड से पूर्ण है, अथवा उसके गोपथ ब्राह्मण में एक शब्द भी दिखा देवे, वह कभी न दिखला सकेगा। यदि ऐसा हो तो उस पुरुष का कहना भी सत्य होता, अन्यथा कथन सच क्योंकर हो सकता है?......।"

पत्र और विज्ञापन भाग २, पृष्ठ ७५१।

१४—ता० २०-८-१८८३ का स्वामी जी के नाम मुन्शी समर्थ-समर्थदान का पत्र—

"बीच-बीच में 'सत्यार्थ-प्रकाश' भी छपता है। कुल ३८ फार्म छपे हैं, ११वां समुल्लास छप रहा है।"

पत्र और विज्ञापन, भाग ४, पृष्ठ ४५४।

१५—ता० २७—८—१८८३ का स्वामी जी के नाम मुन्शी समर्थदान का पत्र—

"भाषा मुझे देखने के लिये लिखा[1],सो ठीक है। 'सत्यार्थ-प्रकाश'

---

१. देखो—आश्विन शुदि ३ रविवार सं० १६३६ का स्वामी जी का पत्र। उपर्युक्त पत्र का संकेत किसी और पत्र की ओर है। वह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का फार्म अन्त में मैं एक बार देखता हूं, सो भी कामा (,) आदि चिन्हों के लिये देखता हूं। इसमें कोई भूल और दीख पड़ती है, तो निकाल देता हूं।...'सत्यार्थ-प्रकाश' की कापी भेजिये— 'सत्यार्थ-प्रकाश' ३२० पृष्ठ तक छप चुका है।"

पत्र और विज्ञापन भाग ४, पृष्ठ ४६३, पं० ४, ९-११; पृष्ठ ४६४, पं० १२-१३।

हमने कई बातों को लक्ष्य में रखकर ऋषि के 'पत्र-व्यवहार' में आये हुये 'सत्यार्थ-प्रकाश' सम्बन्धी १५ उद्धरण उद्धृत किये हैं। इन पत्रांशों से अनेक महत्त्वपूर्ण बातें व्यक्त होती हैं। जो इस प्रकार हैं—

प्रथम—उद्धरण संख्या १ से विदित होता है कि ऋषि ने **'सत्यार्थ-प्रकाश'** के **मुद्रण के लिये संशोधित प्रेस-कापी भाद्र बदि १ संवत् १९३९ (१९ अगस्त १८८२) से प्रेस में भेजनी आरम्भ कर दी थी।**

द्वितीय—उद्धरण संख्या ४ से व्यक्त होता है कि संशोधित **'सत्यार्थ-प्रकाश'** का **छपना मार्गशीर्ष शुदि १० संवत् १९३९ से पूर्व आरम्भ हो चुका था।**[1]

तृतीय—उद्धरण संख्या, ५, ६, ८ से प्रतीत होता है कि **'सत्यार्थ-प्रकाश' के छपने में विलम्ब होने का प्रधान कारण वैदिक यंत्रालय में बाहर का कार्य छपना था।** ऋषि ने अनेक बार बाहर के कार्य को छापने के लिये मना किया था, परन्तु तात्कालिक प्रबन्धकर्त्ता ने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

चतुर्थ—उद्धरण संख्या १२ से व्यक्त होता है कि आश्विन कृष्ण

---

१. संवत् १९४० वाले संशोधित 'सत्यार्थ-प्रकाश' के आरम्भ में मुन्शी समर्थदान ने एक निवेदन छापा था, जिसके नीचे 'आश्विन कृष्णपक्ष संवत् १९३९' लिखा है। यह निवेदन 'सत्यार्थ-प्रकाश' के प्रथम फार्म के आरम्भ के पृष्ठ पर छपा है, अर्थात् १ पृष्ठ निवेदन, १ पृष्ठ खाली (निवेदन की पीठ का,) ६ पृष्ठ 'सत्यार्थ-प्रकाश' की भूमिका के, इस प्रकार मिलाकर ८ पृष्ठ का एक फार्म बना था। यह निवेदन प्रथम फार्म के छपने से कुछ दिन पूर्व लिखा गया होगा। इस प्रकार स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि संशोधित 'सत्यार्थ-प्रकाश' का मुद्रण मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष संवत् १९३९ में आरम्भ हो गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३ सवत् १९४० (२९ सितम्बर १८८३ (२९ सितम्बर १८८३) अर्थात् ऋषि के निर्वाण से एक मास पूर्व **'सत्यार्थ-प्रकाश' के १३वें समुल्लास की प्रेसकापी छापने के लिये प्रेस में भेजी गई ।**

पञ्चम—उद्धरण संख्या १४, १५ से विदित होता है कि २७ अगस्त सन् १८८३ ई०, अर्थात् ऋषि के निर्वाण से दो मास पूर्व तक 'सत्यार्थ-प्रकाश' के ३२० पृष्ठ (=४० फार्म) छप चुके थे ।

इन दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि उस समय ११वां समुल्लास छप रहा था ।

पं० लेखराम जी ने जीवचरित में लिखा है—

"मैंने[1] स्वामी जी से नया सत्यार्थप्रकाश जो उस समय ३६४ पृष्ठ[2] तक छप चुका था, ठाकुर गिरधारीसिंह के लिये मोल लिया और पांच रुपया उस का मूल्य दिया ।" हिन्दी सं० पृष्ठ ९१० ।

अगले दो मासों में अर्थात् ऋषि के निर्वाण तक सम्भवतः १२वां समुल्लास छप कर पूरा हो गया होगा । इस प्रकार अधिक से अधिक केवल दो समुल्लास (लगभग २०० पृष्ठ) ऋषि के निर्वाण के बाद छपे होंगे । स्मरण रहे कि 'सत्यार्थ-प्रकाश' का यह संस्करण ५९२ पृष्ठों में छपा था ।

षष्ठ—उद्धरण संख्या १३ के अनुसार 'सत्यार्थ-प्रकाश' १४वें समुल्लास के अन्त में **'अल्लोपनिषद् की समीक्षा'** प्रकरण **'भारतमित्र'** के श्रावण शुक्ला ६ संवत् १९४० के अङ्क को देखकर बढ़ाया था । 'सत्यार्थप्रकाश' के इस प्रकरण का प्रारम्भिक वाक्य इस प्रकार है—

"अब एक बात यह शेष है कि बहुत से मुसलमान ऐसा कहा करते हैं, और लिखा वा छपवाया करते हैं कि हमारे मजहब की बात अथर्ववेद में लिखी है"

—'सत्यार्थ-प्रकाश', पृष्ठ ९४७, पृष्ठ पं० २४—पृष्ठ ९४८, पं० २ (शताब्दी सं० २)

---

१. 'मैंने' शब्द से कौन व्यक्ति अभिप्रेत है, ज्ञात नहीं ।

२. यहां ३६० अथवा ३६८ पृष्ठ होना चाहिये, क्योंकि एक बार में एक फार्म अर्थात् ८ पृष्ठ छपते थे । ४५ वां फार्म पृष्ठ ३६० पर पूरा होता है और ४६ वां फार्म ३६८ पर । अतः पृष्ठ ३६४ तक छपना उपपन्न नहीं होता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वाक्य में **'लिखा वा छपवाया करते हैं'** इन पदों को संकेत निश्चय हो **'भारतमित्र'** के पूर्वोक्त अङ्क में प्रकाशित लेख की ओर है। चौदहवें समुल्लास की पाण्डुलिपि (रफ कापी) इस समीक्षा से पूर्व लिखी जा चुकी थी। इसका संकेत 'सत्यार्थ-प्रकाश' के 'अल्लोप-निषद् समीक्षा' प्रकरण से पूर्व के वाक्य में उपलब्ध होता है।

'अल्लोपनिषद्-समीक्षा' प्रकरण से पूर्व १४ वें समुल्लास का उप-संहारात्मक वाक्य इस प्रकार है—

"यह थोड़ा सा कुरान के विषय में लिखा, इसको बुद्धिमान् धार्मिक लोग ग्रन्थकार के अभिप्राय को समझ लाभ लेवें। यदि कहीं भ्रम से अन्यथा लिखा गया हो, तो उसको शुद्ध कर लेवें।"

—'सत्यार्थ-प्रकाश', पृष्ठ ६४७, पं० २१-२३ (श० सं० ३)

हमने 'सत्यार्थ-प्रकाश' के दोनों हस्तलेखों का यह भाग भले प्रकार देखा है। उसकी पाण्डुलिपि (रफ़ कापी) में उपर्युक्त वाक्य के अनन्तर-"इसके आगे स्वमन्तध्यामन्तव्य प्रकरण का प्रकाश संक्षेप से लिखा जायेगा"। और "इति चतुर्दशः समुल्लासः सम्पूर्णः" लिखकर १४ वें समुल्लास की पूर्ति कर दी गई थी। तदनन्तर स्वमन्तव्या-मन्तव्य प्रकरण का आरम्भ होता है। किन्तु महर्षि ने श्रावण शुक्ला ६ संवत् १९४० के भारतमित्र में अल्लोपनिषद् सम्बन्धी लेख देखकर उसकी समीक्षा करनी आवश्यक समझी, और उसे पृथक् पृष्ठ पर लिखकर 'स्वमन्तव्यामन्तव्य-प्रकाश' से पूर्व लगाया।

इन सब उद्धरणों से यह बात सर्वथा विस्पष्ट हैं कि 'सत्यार्थ-प्रकाश' के संशोधित संस्करण की पाण्डुलिपि (रफ़ कापी) ऋषि के निर्वाण से बहुत पूर्व लिखी जा चुकी थी। और १३ वें समुल्लास तक की प्रेस-कापी ऋषि के निर्वाण से लगभग १ मास पूर्व प्रेस में पहुंच गई थी। अतः विपक्षियों का यह आक्षेप करना कि 'सत्यार्थ-प्रकाश' का संशोधित संस्करण स्वामी जी का बनाया हुआ नहीं है, सर्वथा मिथ्या है।

'सत्यार्थ-प्रकाश का यह परिशोधित संस्करण ऋषि के निर्वाण के कई बास के अनन्तर छपकर प्रकाशित हुआ था। ऋषि के निर्वाण के अनन्तर बहुत काल तक प्रेस का कार्य बन्द रहा, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि ऋषि-निर्वाण के अनन्तर ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेदभाष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अङ्क चैत्र मास में छपकर प्रकाशित हुआ था। अत एव सत्यार्थ-प्रकाश' के प्रकाशित होने में विलम्ब होना स्वभाविक था।

द्वितीय संस्करण का प्रकाशन

यजुर्वेदभाष्य अंक ६०-६१ (पौष शुक्ल पक्ष संवत् १९४१ = जनवरी १८८५)के अन्त में एक विज्ञापन छपा था। उसके प्रारम्भ में 'सत्यार्थ-प्रकाश' शीर्षक के नीचे कोष्ठक में छपा है— **(जो दिसम्बर सन् ८४ के प्रारम्भ से बिकता है।)**

सत्यार्थ-प्रकाश की विषय-सामग्री

१–१० समुल्लास

पूर्वार्द्ध के दश समुल्लासों में प्रधानतया वैदिकधर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। इन में अन्य मत-वालों के मन्तव्यों का खण्डन कहीं-कहीं प्रसङ्गवश किया है। ये समुल्लास वेद ब्राह्मण षड्दर्शन और मनुस्मृति आदि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के आधार पर लिखे गये हैं। इनमें तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ और दशम समुल्लासों में मनुस्मृति की प्रधानता है।

११ वां समुल्लास

इस समुल्लास में आर्यावर्तीय आस्तिक मतमतान्तरों के अवैदिक मन्तव्यों की समलोचना की है। आर्यावर्त में जितने आस्तिक मत-मतान्तर हैं, उनका प्रधान आधार महर्षि वेदव्यास के नाम पर लिखे गये आधुनिक १८ पुराण हैं। उन्हीं के आधार पर मूर्त्ति-पूजा, मृतक-श्राद्ध तथा अन्य साम्प्रदायिक मन्तव्यों की पुष्टि की जाती है। अतः इस समुल्लास में इन पुराणों का खण्डन विशेष रूप से किया है। और दर्शाया है कि इनकी शिक्षा जहां वेद से विरुद्ध है, वहां इनमें अनेक असम्भव, सृष्टिक्रम-विरुद्ध और युक्तिशून्य बातों का भी संकलन है। इसलिये ये ग्रन्थ महर्षि वेदव्यास के बनाये तो क्या, किसी मेधावी पण्डित के रचे हुये भी नहीं हैं।

१२ वां समुल्लास

१२ वें समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध और जैन इन भारतीय नास्तिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की समीक्षा की गई है। चार्वाक और बौद्धमत के ग्रन्थ ऋषि के काल में प्रायः अनुपलब्ध थे। क्योंकि इन सम्प्रदायों के माननेवाले भारत में नहीं रहे। अतः इनके सिद्धान्तों की समीक्षा प्रधानतया सायणाचार्य-विरचित **'सर्वदर्शन-संग्रह'** नामक ग्रन्थ पर अवलम्बित है।

जैन सम्प्रदाय के माननेवाले भारतवर्ष में लाखों की संख्या में विद्यमान हैं; परन्तु उनके ग्रन्थ ऋषि के काल में दुर्लभ थे। उन्हें जैन ग्रन्थों की उपलब्धि में बहुत श्रम करना पड़ा था। इस विषय में महर्षि ने स्वयं १२ वें समुल्लाल की अनुभूमिका में इस प्रकार लिखा है।

"और यह बौद्ध जैनमत का विषय विना इनके अन्य मत-वालों को अपूर्व लाभ और बोध करानेवाला होगा, क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकों को किसी अन्य मत-वालों को देखने पढ़ने वा लिखने को कभी नहीं देते। बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष आर्यसमाज मुम्बई के मन्त्री 'सेठ श्री सेवकलाल कृष्णदास' के पुरुषार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं।"—सत्यार्थ-प्रकाश, पृष्ठ ६२८।

'सत्यार्थ-प्रकाश' की भूमिका में महर्षि ने लिखा हैं—

"इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते हैं, और दूसरे मतस्थ को न देते न सुनाते और न पढ़ाते……।"

—सत्यार्थ-प्रकाश, पृष्ठ ११, पं० १४-१५।

१२ वें समुल्लास की अनुभूमिका के उपर्युक्त लेख से यह स्पष्ट है कि ऋषि को जैनमत के बहुत से ग्रन्थ श्री सेठ सेवकलाल कृष्णदास मन्त्री आर्यसमाज बम्बई द्वारा प्राप्त हुये थे। इस विषय में सेठ जो का ऋषि के नाम भेजा हुआ पूर्णसंख्या १८१ (पत्र और विज्ञापन भाग ३ पृष्ठ १७४-१७९) का पत्र विशेष महत्त्व रखता है। सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका पृष्ठ १०-११ (श० सं० २) में जैनमत के ग्रन्थों का जो विवरण छपा है, वह सेठ श्री सेवकलाल कृष्णदास के १५ जनवरी सन् १८८१ ई० के पत्र से पूर्णतया मिलता है (पत्र विज्ञापन भाग ३, पृष्ठ १७५-१७६)।

ऋषि के जीनवकाल में जैन-ग्रन्थों की उपलब्धि में जो कठिनाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, वह शनैः शनैः दूर हो गई। आज जैन सम्प्रदाय के अनेक योग्य विद्वान् अपने मत के ग्रन्थों के प्रकाशन में पूरे प्रयत्न से लगे हुए हैं। उनके परिश्रम से आज उनके शतशः ग्रन्थ छपे हुए उपलब्ध हैं।

बौद्ध जैन की एकता—ऋषि के समय में प्राचीन वाङ्मय सम्बन्धी जितना अन्वेषण हुआ था, उसके अनुसार बौद्ध और जैन का मूल एक माना जाता था। यह बात राजा शिवप्रसाद काशी निवासी ने, जो कि स्वयं जैनमतावलम्बी थे, अपने **'इतिहासतिमिर-नाशक'** ग्रन्थ (खण्ड ३, पृष्ठ ८ पं० २१ से पृष्ठ ९, पं० ३२ तक) में लिखी थी। अत एव स्वामी जी ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' पृष्ठ ६५६-६५७ में इन दोनों को एक ही लिखा है। ऐसा ही उल्लेख उनके 'पत्र और विज्ञापन' भाग १ पृष्ठ ४३५ में भी मिलता है।[1] परन्तु आधुनिक नये अन्वेषण द्वारा यह प्रायः निश्चित हो चुका है कि बौद्ध और जैन दोनों मत प्रारम्भ से ही पृथक्-पृथक् थे। इनके प्रवर्तक गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी भी पृथक्-पृथक् व्यक्ति थे। इसलिये 'सत्यार्थ-प्रकाश' के इस समुल्लास को पढ़ते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये।

जवाहरसिंह प्रधान आर्यसमाज लाहौर के १३ अक्टूबर सन् १८८३ के पत्र से ज्ञात होता है कि स्वामी जी महाराज ने 'जैनमत-खण्डन' पर कुछ लिखा था, वह सत्यार्थप्रकाश का ही अंश था, अथवा कोई स्वतन्त्र लेख, यह अज्ञात है। जवाहरसिंह का लेख इस प्रकार है—

'जैनमत-खण्डन की २०० अलग प्रति छपवाई जावें, उसकी अलग कीमत दे दी जावेगी।"—

पत्र और विज्ञापन, भाग ४, पृष्ठ ५३६, पं० २६-२७।

१३ वां समुल्लास

सत्यार्थ-प्रकाश के १३ वें समुल्लास में बाइबिल की समीक्षा है।

---

१. राजा शिवप्रसाद से उन के बौद्ध और जैन मत की एकता विषयक लेख के विषय में ठाकुरदास जैनी द्वारा पूछने पर राजा शिवप्रसाद ने उत्तर में जो पत्र लिखा, उसे 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग २ के पृष्ठ ९२८—९२९ पर देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाइबिल के दो प्रधान भाग हैं—**पुराना समाचार**, और **नया समाचार**। प्रोटेस्टेण्ट ईसाई सम्पूर्ण बाइबिल में ६६ ग्रन्थ मानते हैं। स्वामीजी महाराज ने उनमें से केवल १४ ग्रन्थों पर १३३[१] समीक्षाएं लिखी हैं। यद्यपि तेरहवें समुल्लास के आरम्भ में—"**अथ कृश्चीन-मत-विषयं समीक्षयिष्यामः, अब इसके आगे ईसाइयों के मत-विषय में लिखते हैं**" ऐसा लिखा है, तथापि यह समीक्षा केवल ईसाईमत की हो नहीं है, अपितु पुरानी बाइबिल को अपना धर्म-ग्रन्थ माननेवाले यहूदी आदियों की भी जाननी चाहिये। ऋषि ने स्वयं १३वें समुल्लास की अनुभूमिका पृष्ठ ७४१ में लिखा है—

"जो यह बाइबिल का मत है, सो केवल ईसाइयों का नहीं है, किन्तु इससे यहूदी आदि भी गृहीत होते हैं।"

तेरहवें समुल्लास में बाइबिल की आयतों का जो भाषान्तर है, वह आजकल की छपी हिन्दी बाइबिल से पूर्णतया नहीं मिलता। ईसाई-मत की दो प्रधान शाखाएं हैं। एक—प्रोटेस्टेण्ट, और दूसरी—रोमन कैथोलिक। इन दोनों की ओर से समय-समय पर जो हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं, उनमें भी कुछ-कुछ भेद है। इस समुल्लास की अनुभूमिका पृष्ठ ७४१ में महर्षि ने लिखा है—

"इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत से हुए, जो इनके मत में बड़े-बड़े पादरी हैं जो उन्होंने किये हैं। उनमें से देवनागरी व संस्कृत भाषान्तर देखकर मुझको बाइबिल में बहुत-सी शंकाएं हुईं, उनमें से कुछ थोड़ी-सी १३वें समुल्लास में सबके विचारार्थ लिखी हैं।"

इस लेख से स्पष्ट है कि स्वामी जी के द्वारा उद्धृत भाषान्तर किसी देवनागरी अनुवाद से वा संस्कृत बाइबिल से लिया गया है।

---

१. परोपकारिणी सभा द्वारा मुद्रापित संस्करण ३३ तक १३० समीक्षाएं ही छपती रहीं। द्वितीय संस्करण छपते समय प्रेषकापी का १ पृष्ठ छपने से रह गया था। उसकी ओर सन् १९४४ में वैदिक यन्त्रालय के संशोधक श्री पं० महेन्द्र शास्त्री ने प्रबन्धकर्त्ता श्री चांदमल चण्डक का ध्यान आकृष्ट किया था, परन्तु उन्होंने उसे उस समय छपवाना उचित नहीं समझा। वह वै० य० के ३४ संस्करण में छपा है। इसी कारण समीक्षा की संख्या में भेद हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां एक बात और भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि बाइबिल के कुछ भाग का अनुवाद सम्भवतः स्वामी जी महाराज ने भी करवाया था। वह श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर के अधीन स्वामी जी महाराज के ग्रन्थों की हस्तलिखित पुस्तकों में **नीले फुलस्केप आकार के कागज** पर लिखा हुआ सुरक्षित रखा है। यह भाषानुवाद कब कराया गया, यह अज्ञात है। सम्भव है, यह 'सत्यार्थ-प्रकाश' के प्रथम संस्करण के लिये कराया गया होगा। पं० नीलकण्ठ शास्त्री, जो ईसाई बन गये थे, का बाइबिल का संस्कृत अनुवाद सन् १८२२ (संवत् १८७९) में छपा था।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय श्री पं० महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फ़ाज़िल ने **'महर्षि दयानन्द सरस्वती'** नामक अपने ग्रन्थ के दूसरे खण्ड के प्रथमाध्याय में १३ वें समुल्लास के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। पाठक महानुभावों को वह ग्रन्थ अवश्य देखना चाहिये। उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ १०० पर बाइबिल के भाषानुवाद के भेद के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"किन्तु मूल बात यह है कि हिन्दी-अनुवादों का समय-समय पर संशोधन हुआ है। इस विषय में छानबीन करने से मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि जो नया या पुराना नियम अथवा पूर्ण बाइबिल के जो हिन्दी संस्करण सन् १८७४ ई० और सन् १८९९ ई०, अथवा इन सालों के बीच के हैं, उनका पाठ सत्यार्थ-प्रकाश के तेरहवें समुल्लास में उद्धृत पाठों से मिलता है। अतः लोगों को चाहिये कि उक्त काल की छपी हुई हिन्दी बाइबिल अथवा नया व पुराना नियम संभाल कर रक्खें, ताकि आवश्यकता पड़ने पर यह साबित कर सकें कि 'सत्यार्थ-प्रकाश' के जो उद्धरण हैं, वे ठीक हैं।"

उक्त उद्धरण श्री पं० महेशप्रसाद जी द्वारा लिखित और सन् १९४१ ई० (संवत् १९९८) में प्रकाशित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती' ग्रन्थ का है। इसके पश्चात् जब वे सन् १९४३ में अजमेर आये, और श्री स्वामी जी की उस सामग्री को देखा जो तेरहवें और चौदहवें समुल्लासों से सम्बन्ध रखनेवाली है, तो आपने ईसाइयों के धर्मग्रन्थ 'पुराने नियम' और 'नये नियम' के विषय में लिखा था—

"तेरहवां समुल्लास **मिशन प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित** इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थों के आधार पर है—पुराना नियम प्रथम भाग (इसमें 'उत्पत्ति' से लेकर 'राजाओं की दूसरी पुस्तक' तक है) प्रकाशित सन् १८६६ ई०, नया नियम प्रकाशित सन् १८७४ ई०।" देखो—'**दयानन्द और कुरान**' दूसरी आवृत्ति, पृष्ठ २२।

श्री पं० महेशप्रसाद जी का यह भी कथन है—

१—"तेरहवें समुल्लास में बाइबिल के जो उद्धरण हैं, वे प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों द्वारा कराये गये हिन्दी अनुवाद के आधार पर हैं, क्योंकि रोमन कैथोलिक ईसाइयों द्वारा बाइबिल का कोई हिन्दी अनुवाद श्री स्वामी जी के समय तक प्रकाशित नहीं हुआ था।"

२—"प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयों के अनुवाद भिन्न-भिन्न समयों में संशोधित होकर छपे हैं। इस कारण जो अनुवाद सन् १९४५ या इस समय के आस-पास के पाये जाते हैं, उनसे तेरहवें समुल्लास के उद्धरण ठीक-ठीक नहीं मिलते। हां, साथ-ही-साथ यह भी ज्ञात रहे कि पूर्ण या बाइबिल के कुछ खण्डों का अनुवाद कई प्रकार की हिन्दी अर्थात् अवधी, छत्तीस-गढ़ी, कन्नौजी आदि में भी हुआ है।"

विशेष—यहां यह भी स्पष्ट रहे कि उन्हीं दिनों में अमेरिका से '**सेल्फ कण्ट्रेडिक्शन्स् आफ दी बाइबिल**' नामक एक पुस्तक अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुई थी। स्वामीजी महाराज ने उसका भाषानुवाद करने के लिये बाबू नन्दकिशोरसिंह जयपुर-निवासी को आषाढ़ बदि १० संवत् १९४० के पत्र में लिखा था—

"और जो अंग्रेजी में बाइबिल की पूर्वापर विरुद्ध आयतें लिखी हैं, उनका देवनागरी ठीक-ठीक कराके शीघ्र जोधपुर में हमारे पास भेज देना।" पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ७३१।

बाबू नन्दकिशोर के आषाढ़ सुदि ३ संवत् १९४० तथा २४ जुलाई सन् १८८३ ई० के पत्रों में भी उपर्युक्त अंग्रेजी पुस्तक के भाषानुवाद के विषय में लिखा है।

द्र०—पत्र और विज्ञापन; भाग ३, पूर्णसंख्या ४०० (पृष्ठ ४०८) तथा ४२० (पृष्ठ ४२४) के पत्र।

उपर्युक्त अंग्रेजी पुस्तक का भाषानुवाद स्वामीजी महाराज के पास पहुंचा वा नहीं, इसका उल्लेख उनके उपलब्ध पत्रों में नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता। अतः हम नहीं कह सकते कि १३वें समुल्लास की रचना वा संशोधन में इस पुस्तक से कुछ सहायता प्राप्त हुई वा नहीं।

अमेरिका से प्रकाशित उक्त अंग्रेजी पुस्तक में बाइबिल की परस्पर विरुद्ध आयतों का संग्रह है। इसका भाषानुवाद उक्त बाबू नन्दकिशोरसिंह ने प्रकाशित किया था। उसकी एक प्रति परोपकारिणी सभा के 'वैदिक पुस्तकालय अजमेर' के संग्रह में सुरक्षित है। देखो—पुस्तक संख्या ३१५।२००। इसकी द्वितीयावृत्ति की एक पुस्तक 'आर्य साहित्य मण्डल अजमेर' के संग्रह में भी है।

१४ वां समुल्लास

कुछ वर्षों से (संवत् १९९८ से) मुसलमान 'सत्यार्थ-प्रकाश' के १४ वें समुल्लास के विरुद्ध तीव्र और व्यापक आन्दोलन कर रहे हैं।[1] यद्यपि इस आन्दोलन के मूल में केवल राजनीतिक चाल है, तथापि वे इसे धार्मिकता का वेश पहनाकर शिक्षित अशिक्षित सब मुसलमानों को इसके विरुद्ध भड़का रहे हैं। सिन्ध प्रान्त के मुस्लिम लीगी मन्त्रिमण्डल ने भारतरक्षा कानून का दुरुपयोग करके उसके अन्तर्गत 'सत्यार्थ-प्रकाश' के १४ वें समुल्लास का प्रकाशन सन् १९४३ ई० से बन्द कर दिया। इसी से इस आन्दोलन के साम्प्रदायिक होने का ज्ञान भले प्रकार हो सकता है। उक्त आदेश के विरुद्ध आर्यसमाज द्वारा सत्याग्रह करने पर सिन्ध के मन्त्रिमण्डल ने पर इसे वापिस ले लिया।

इस १४ वें समुल्लास के विषय में आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फ़ाज़िल ने **'महर्षि दयानन्द सरस्वती'** नामक पुस्तक के दूसरे खण्ड के द्वितीय अध्याय, और **'स्वामी दयानन्द और कुरान'** नामक पुस्तक में प्रायः सभी ज्ञातव्य विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अतः उनका यहां पुनः लिखना पिष्टपेषणवत् होगा। इसलिये हम पाठक महानुभावों से अनुरोध करेंगे कि वे १४ वें समुल्लास के विषय में अधिक जानने के लिये उक्त ग्रन्थों को पढ़ें। यहां हम उनसे अतिरिक्त विषय पर ही लिखेंगे।

---

१. यह अंश संवत् २००१ में लिखा गया था, अतः उस समय की परिस्थिति का यहां निर्देश किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४ वें समुल्लास का आधारभूत 'हिन्दी कुरान'

१४ वें समुल्लास में कुरान की आयतों का जो नागरी अनुवाद उद्धृत किया गया है, उसका आधार महर्षि के द्वारा कराया हुआ 'कुरान का हिन्दी अनुवाद' है। यह नागरी हस्तलिखित अनुवाद परोपकारिणी सभा अजमेर के पुस्तकालय में अभी तक सुरक्षित है। इसका लेखनकाल ग्रन्थ से अन्त में इस प्रकार लिखा हुआ है—

"सं० १९३५ कार्तिक शु० ९ रविवासरे कुराणाख्योऽयं ग्रन्थः सम्पूर्णः। इन्द्रप्रस्थनगरे......"

तदनुसार यह अनुवाद ३ नवम्बर १८७८ में पूर्ण हुआ था। यह अनुवाद महर्षि ने किस व्यक्ति से कराया, यह अज्ञात है। परन्तु माघ वदि ३० संवत् १९३६ को लिखे गये महर्षि के पत्र से ज्ञात होता है कि इस नागरी कुरान का संशोधन **मुहल्ला गुड़हट्टा (पटना) निवासी मुन्शी मनोहरलालजी रईस ने किया था**। वे अरबी के अच्छे विद्वान थे (देखो—'पत्र और विज्ञापन', भाग १, पृष्ठ ३२०, टि० १)। संवत् १९३१ के 'सत्यार्थप्रकाश' के कुरान-मत समीक्षा नामक १३ वें समुल्लास[1] के लिखने में भी उक्त महानुभाव से पर्याप्त सहायता मिली थी। यह हम पूर्व लिख चुके हैं[2]।

उक्त नागरी कुरान के विषय में महर्षि ने २४ अप्रैल सन् १८७९ के पत्र में दानापुर के बाबू माधोलाल जी को इस प्रकार लिखा था—

"कुरान नागरी में पूरा तैयार है, परन्तु छापा नहीं गया।"

—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ २५९, २६०।

इस लेख से ध्वनित होता है कि महर्षि कुरान के उक्त नागरी अनुवाद को छपवाना चाहते थे।[3]

---

१. संवत् १९३१ वाले संस्करण में कुरान-मत का खण्डन १३वें समुल्लास में था, और ईसाई-मत का खण्डन १४ वें समुल्लास में, यह हम पूर्व पृष्ठ २४, पं० २०–२२ पर लिख चुके हैं। २.—द्र०—पूर्व पृष्ठ २५, पं० २०–२१।

३. धर्मयुग के १५ फरवरी १९८० के अंक में के 'आपका पत्र मिला' स्तम्भ में 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' कृत कुरान के हिन्दी अनुवाद का उल्लेख है। इस का लेखनकाल सन् १८७७ है। यह प्रारम्भिक स्वल्प भाग का अनुवाद है। डा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४ वें समुल्लास में उद्धृत कुरान का भाषानुवाद कहीं-कह इस अनुवाद से अक्षरशः नहीं मिलता। अतः विदित होता है कि 'सत्यार्थ-प्रकाश' में उद्धृत अनुवाद में 'सत्यार्थप्रकाश' लिखते समय कुछ स्वल्प संशोधन अवश्य हुआ हैं। परन्तु इतनी बात अवश्य माननी पड़ेगी कि **१४ वें समुल्लास का मुख्य आधार यही 'कुरान का हिन्दी अनुवाद' था।**

अब हम इस विषय में एक ऐसा प्रमाण उपस्थित करते हैं, जिससे इस बात की पुष्टि हो जायगी कि १४ वें समुल्लास का मुख्य आधार यही हस्तलिखित नागरी कुरान है—

सत्यार्थ-प्रकाश में समीक्षा-संख्या १ से १३ तक कुरान की क्रमशः आयतों की समीक्षा है। तत्पश्चात् समीक्षा संख्या १४ में कुरान की ५० तथा ६१ दो आयतों की समीक्षा की है, अर्थात् यहां बीच में १० आयतों में से किसी की भी समीक्षा नहीं मिलती। पुनः समीक्षा संख्या १५ से २१ तक कुरान की ६७ से ९० तक आयतों की क्रमशः समीक्षा मिलती है। किन्तु समीक्षा संख्या २२ में ५४वीं आयत की तथा समीक्षा संख्या २३ में ५६वीं आयत की समीक्षा उपलब्ध होती है। तदनन्तर समीक्षा संख्या २४ में ९७ वीं आयत की समीक्षा है। अर्थात् समीक्षा संख्या १४ में कुरान की जो क्रमिक १० आयतें छूटी थीं, उनमें से ५४ और ५६ की आलोचना समीक्षा-संख्या २२, २३ में उपलब्ध होती है, जो प्रत्यक्षरूप से अस्थान में है। इस **भूल का कारण यही उपर्युक्त हस्तलिखित नागरी कुरान है। इस कुरान की**

उषा माथुर ने इसे कुरान का प्रथम हिन्दी अनुवाद कहा है। जबकि ऋषि दयानन्द ने उससे ३ वर्ष पूर्व पूरे **'कुरान का हिन्दी अनुवाद'** कराया था। अतः **ऋ० द० द्वारा कराया गया यह हिन्दी अनुवाद संसार में सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद है। यदि यह ग्रन्थ छप जाता, तो ऋषि दयानन्द की हिन्दी-साहित्य को एक अपूर्व देन होती।** परन्तु ऋषि दयानन्द के उत्तराधिकारी इतने उदासीन निकले कि उन्होंने ऐसे महत्त्व-पूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ को प्रकाशित करना भी उचित नहीं समझा। ऋषि के साक्षात् लिखे कई ग्रन्थ भी आज (१९८३ ई०) तक प्रकाशित न हो सके, तो इसकी ओर कौन ध्यान देता ? वस्तुतः ऋषि दयानन्द के उत्तराधिकारियों ने अपने कर्त्तव्य में जैसा प्रमाद किया है, वैसा अन्य मतों के इतिहास में अन्यत्र मिलना दुर्लभ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिल्द बांधने में ८ वां तथा ९ वां पृष्ठ जिसमें ५१-६० तक आयतें थीं, भूल से १५वें पृष्ठ **के आगे लग गया, अर्थात्** पृष्ठ आगे-पीछे जुड़ गये। समीक्षा लिखते समय स्वामी जी महाराज का ध्यान इस ओर न गया। अतः जिल्द बंधी पुस्तक में जिस क्रम से आयतें उपलब्ध हुईं, उसी क्रम से उन्होंने उसकी समीक्षा कर दी।[1]

वैदिक यन्त्रालय के तत्कालीन प्रवन्धक मुन्शी समर्थदान ने इस नागरी क़ुरान के पृष्ठ १० पर एक टिप्पणी लिखी है—"**दस आयतें छूट गई है**।" इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने भी इस कुरान की पृष्ठ-संख्या मिलाकर देखने का यत्न नहीं किया।

श्री पं० महेशप्रसाद जी ने इस झगड़े को अन्य रूप से सुलझाने का यत्न किया है (देखो—लेखक की पुस्तक 'महर्षि दयानन्द' पृष्ठ १०६)। परन्तु मूल देवनागरीकुरान में पृष्ठ संख्या के आगे-पीछेलगने की प्रत्यक्ष भूल उपलब्ध हो जाने से उनका समाधान भी चिन्त्य है।

सत्यार्थ-प्रकाश में लिखी हुई आयतों की संख्या

सत्यार्थ-प्रकाश में कुरान की आयतों के जो क्रमाङ्क दिये हैं, वे प्रायः वर्तमान कुरान के अनुवादों से वरावर नहीं मिलते। मुन्शी समर्थदान ने संवत् १९४१ के 'सत्यार्थ-प्रकाश' के प्रारम्भ में एक सूचना छपवाई थीं। जिसमें लिखा था—

"१४ वें समुल्लास में जो कुरान की मञ्जिल सिपारा सूरत और आयत का ब्यौरा लिखा है, उसमें और तो सब ठीक है, परन्तु आयतों की संख्या में दो चार के आगे-पीछे का अन्तर होना सम्भव है। अत-एव पाठकगण क्षमा करें।"

यही सूचना तृतीय संस्करण में भी छपी थी।

'सत्यार्थप्रकाश' में मुद्रित आयतों की संख्या का मिलान पूर्वोक्त हस्तलिखित 'नागरी कुरान' के साथ करने पर विदित हुआ कि कुरान के हस्तलिखित भाषानुवाद में आयतों के कुछ क्रमाङ्क मुन्शी समर्थ दान ने ठीक किये हैं। यथा—

१. द्र०—वै० य० के संस्करण २-३३। ३४ वें संस्करण में उक्त भूल से आगे-पीछे हुई आयतों की समीक्षा को यथास्थान रख दिया है। हमारे संस्करण में भी इनकी समीक्षा यथास्थान छापी गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुरान पृष्ठ १ सूरत १ में पहले आयत-संख्या चार थी, उसे मुन्शी समर्थदान ने शोधकर ७ बनाया। इसी प्रकार आगे १२ वीं आयत पर १३ संख्या डालकर १४—२५ तक संशोधन किया है। पुनः पृष्ठ १६ से आयत संख्या ६३ से २६८ तक की संख्या ठीक की है।

मुन्शी समर्थदान द्वारा संशोधित आयत-संख्या ही प्रायः सत्यार्थप्रकाश में छपी है। परन्तु कहीं-कहीं असंशोधित आयत-संख्या भी रह गई है।

१४ वें समुल्लास में मुन्शी समर्थदान का संशोधन

१४ वां समुल्लास ऋषि दयानन्द के जीवनकाल के पीछे छपा था। उसे छापते समय मुन्शी समर्थदान ने इस समुल्लास में अनेक उचित संशोधन किये हैं। लगभग २८-२९ समीक्षाएं पुनरावृत्ति आदि कारणों से काट दी हैं।

यह भी ध्यान रहे कि ऋषि दयानन्द ने मुन्शी समर्थदान को सत्यार्थप्रकाश में उचित संशोधन करने तथा टिप्पणी लिखने का अधिकार भी दे रखा था।[1] उसी के अनुसार उसने ऋषि के जीवनकाल में छपे भाग में (लगभग ११ समुल्सास तक) **अनेक संशोधन किये, और अनेक टिप्पणियां दीं।**

दसवें समुल्लास का एक विवादास्पद अंश

दसवें समुल्लास की हस्तलिखित प्रेस कापी के पृष्ठ १८३ के मार्जन (हाशिये) पर तीन पङ्क्तयां लिखी हुई ऐसी उपलब्ध होती हैं जो पीछे से काट दी गईं और मुद्रित संस्करण में नहीं छपीं। इन पङ्क्तयों में चिकित्सा शास्त्र में मांसाहारियों के लिये प्रतिपादित भक्ष्य और अभक्ष्य मांस का उल्लेख है। इन पङ्क्तयों को लेकर आर्यसमाज के आरम्भ काल में बहुत विवाद उठा था।

मुंशी समर्थदान के १३-७-८३ के पत्र[2] से ज्ञात होता है कि हस्त-

१. द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६६४, पं० ३—६ पृष्ठ ६२०, पं० ४–५ तथा पृष्ठ ६१२, पं० १९; पृष्ठ ६१७, पं० १३—१४।

२. पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पूर्ण संख्या ४०९, पृष्ठ ४१३—४१४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख में उक्त कटी हुई पङ्क्तियों को समर्थदान ने महर्षि की आज्ञा प्राप्त करके उन्हें काटा था।

सत्यार्थप्रकाश के समान ही यजुर्वेद के १३वें अध्याय के कतिपय मन्त्रों के भाष्य में भी मांसभक्षण-विषयक कुछ अस्पष्टता थी। मुंशी समर्थदान की दृष्टि में वह कम्पोज किया हुआ अंश आ गया। उसने वह अंश संशोधनार्थ ऋषि दयानन्द के पास भेजा। ऋषि दयानन्द के द्वारा उन्हें शोधने पर मुंशी समर्थदान ने छपवाया। द्र० पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६६९, पं० २७—२९ तथा पृष्ठ ६७० पं० ९।

मुंशी समर्थदान के १३-७-१८८३ के पत्र[1] का प्रकृत विषय से संबद्ध अंश इस प्रकार है—

"निवेदन है कि वेदभाष्य में जो मांसभक्षण का विधान आया था उसको तो आपने निकाल दिया था और मुझ को आज्ञा दी थी कि मांस का विधान न आये इस प्रकार से छाप दो सो मैंने छाप दिया था। अब सत्यार्थप्रकाश के भक्ष्याभक्ष्य का प्रकरण पाया इस में भी आपने मांसखाने की स्पष्ट आज्ञा दी है।

प्रथम जब पुस्तक लिखा गया था तब तो मांस की आज्ञा नहीं दी पीछे से शोधते समय आपने दी है और ऊपर से आपने बनाया है। इस से मेरी शक्ति नहीं कि मैं इसे काट दूं। इसलिये आप से निवेदन किया है।"[1]

इस विषय में हम '**वेदभाष्य और सत्यार्थप्रकाश (द्वि० सं०) में मांसभक्षण प्रकरण**' शीर्षक से चतुर्थ परिशिष्ट में विस्तार से विवेचना करेंगे। जिज्ञासु पाठक उस प्रकरण को अवश्य देखें।

प्रथम १० समुल्लास में खण्डन-मण्डन क्यों नहीं लिखा

अब प्रश्न उठता है कि श्री स्वामी जी महाराज ने प्रथम १० समुल्लासों में प्रधानतया मण्डन, और अन्तिम चार समुल्लासों में प्रधानतया खण्डन अंश क्यों लिखा? इसका उत्तर श्री स्वामी जी के शब्दों में इस प्रकार है—

१. पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पूर्ण संख्या ४०९, पृष्ठ ४१३—४१४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन [१-१०] समुल्लासों में विशेष खण्डन-मण्डन इसलिये नहीं लिखा कि जब तक मनुष्य सत्यासत्य के विचार में कुछ भी सामर्थ्य न बढ़ा ले, तब तक स्थूल और सूक्ष्म खण्डनों के अभिप्राय को नहीं समझ सकते। इसलिये प्रथम सब को सत्य-शिक्षा का उपदेश करके अब उत्तरार्ध अर्थात् जिसके चार समुल्लास हैं, उसमें विशेष खण्डन-मण्डन लिखेंगे।"—स० प्र० पृष्ठ ४२३, पं० १६-२०।

'सत्यार्थ-प्रकाश के विषय में पं० महेशप्रसादजी विरचित **'सत्यार्थ-प्रकाश पर विचार'; 'सत्यार्थ-प्रकाश विषयक भ्रम'; सत्यार्थ-प्रकाश की व्यापकता'; 'अमर सत्यार्थ-प्रकाश'** और पूर्व-निर्दिष्ट **'महर्षि दयानन्द सरस्वती'**; तथा **'स्वामी दयानन्द और कुरान'** नामक पुस्तकों से बहुत कुछ जाना जा सकता है। अन्त में हम पाठकों का ध्यान एक अत्यन्त-महत्त्वपूर्ण विषय की ओर आकृष्ट करके इस प्रकरण को समाप्त करते हैं।

ऋषि दयानन्द के एकमात्र सहयोगी

ऋषि दयानन्द को अपने लेखन और मुद्रण-कार्य में जितने लेखकों (लिपिकरों) वा मुद्रकों से पाला पड़ा, वे सब प्रायः दुर्जन थे। पं० भीमसेन, ज्वालादत्त, दिनेशराम, बख्तावरसिंह प्रभृति के चरित ऋषि के पत्रों से स्पष्ट हैं। इन के सम्बन्ध में आगे हम नवम परिशिष्ट में लिखेंगे। ऋषि को अन्तिम दिनों में मुन्शी समर्थदान ही एक ऐसा सज्जन व्यक्ति मिला, जो मनसा वाचा कर्मणा सर्वथा विशुद्ध और ऋषि दयानन्द का भक्त था[1]। यह विशेष सौभाग्य का विषय है कि ऋषि के महत्त्वपूर्ण पुनः संशोधित सत्यार्थ-प्रकाश और संस्कारविधि ग्रन्थ मुंशी समर्थदान को देख-रेख में छपे, जिससे पं० भीमसेन और ज्वालादत्त आदि कुछ भी कुटिलता न कर सके। अन्यथा ये पुनः संशोधित सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि ग्रन्थ भी उस रूप में न छपते, जैसे आज छपे हुए उपलब्ध हैं। ये धूर्त लोग कहां पर क्या मिला देते, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। अतः ऋषि के जो ग्रन्थ या ग्रन्थांश मुन्शी समर्थदान के प्रबन्धकर्त्तृत्व में छपे, वे मुद्रण वा लिपिकर की भूलों को छोड़कर प्रायः प्रामाणिक हैं।

१. मुन्शी समर्थदान सेठों का रामगढ़, सीकर (भू० पू० जयपुर राज्य) के पं० कालूरामशर्मा के भक्त थे। उन्हीं की कृपा से ये ऋ० द० को प्राप्त हुये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

संवत् १९३१-३२ के ग्रन्थ

९—सन्ध्योपासनादि-पञ्चमहायज्ञविधि

(प्र० सं० सं० १९३१, संशोधित[1] सं० १९३४)

'पञ्चमहायज्ञविधि' में **ब्रह्मयज्ञ**=**सन्ध्या, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ** और **अतिथियज्ञ** इन पांच महायज्ञों का विधान है। ये पांच महायज्ञ वैदिकधर्मियों के नैत्यिक कर्तव्यों में मुख्य हैं। दर्शपौर्णमास चातुर्मास्य सोमयाग आदि बड़े-बड़े यज्ञों की अपेक्षा इन साधारण यज्ञों को मनु आदि महर्षियों के द्वारा '**महायज्ञ**' की पदवी देना इनकी महत्ता का स्पष्ट सूचक है। मनु महाराज ने "**महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः**" (२।२८) में इन पांच महायज्ञों को ब्राह्मी तनू बनाने का मुख्य साधन माना है। इन पांच महायज्ञों में भी 'सन्ध्या' प्रधानतम है। सन्ध्या का यौगिक विधि के अनुसार यथार्थरूप में अनुष्ठान करने से योग के ईश्वरप्रणिधान, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि अनेक अङ्गों का इसमें समावेश हो जाता है, जो ईश्वर-प्राप्ति के मुख्य साधन हैं। इतना ही नहीं, धर्मशास्त्रकारों ने तो सन्ध्या को इतना महत्त्व दिया है कि उनके मत में जो द्विज सायं प्रायः सन्ध्या नहीं करता, उनको शूद्र माना है। मनुस्मृति (२।१०३) में लिखा है—

---

१. वस्तुतः सं० १९३४ वि० में मुद्रित संस्करण द्वितीय परिशोधित संस्करण है। उस पर संशोधित सत्यार्थप्रकाश और संशोधित संस्कारविधि के समान 'द्वितीय संस्करण' छापना उचित था। परन्तु उस पर 'द्वितीय संस्करण' शब्द न छपने के कारण उत्तरवर्त्ती सन् १८८६ के संस्करण पर उस समय के संशोधक ने सं० १९३४ के संस्करण को प्रथम संस्करण मानकर द्वितीय संस्करण छाप दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**"न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥"**

महर्षि ने पञ्चमहायज्ञविधि में इस श्लोक की व्याख्या में लिखा है—"वह सेवा-कर्म किया करे, और उसके विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिये।"[1]

वौधायन धर्मसूत्र (२।४।२०) में स्पष्ट लिखा है—

**"सायं प्रातः सदा संध्यां ये विप्रा नो उपासते ।
कामं तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेत् ॥"**

अनेक संस्करण

स्वामी जी महाराज ने इन पञ्चमहायज्ञों का अत्यधिक महत्त्व समझ कर 'सन्ध्या' और 'पञ्चमहायज्ञविधि' ग्रन्थ को अनेक बार प्रकाशित किया। सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में भी इन यज्ञों को नित्यप्रति करने की विशेष प्रेरणा की है। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में सब से प्रथम पुस्तक सन्ध्या की ही लिखकर छपवाई थी।[2] उसके अतिरिक्त 'पञ्चमहायज्ञविधि' के पांच संस्करण और हमारी दृष्टि में आये हैं, जो स्वामी जी महाराज के नाम से उनके जीवन-काल में प्रकाशित हुए थे।[3] उनमें वम्बई संस्करण संवत् १९३१, और लाजरस प्रेस काशी का संस्करण संवत् १९३४ में महर्षि ने स्वयं छपवाये थे। इन संस्करणों के अतिरिक्त दो संस्करण काशी से, और एक संस्करण नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। इन पर यद्यपि **"श्री दयानन्द सरस्वती स्वामी की आज्ञानुसार"** तथा **"श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीविरचितेन भाष्ये-**

---

१. द्र०—'दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह' के अन्तर्गत पञ्चमहायज्ञविधि पृष्ठ ३२०, पं० १०-१२ ।

२. द्र०—पूर्व पृष्ठ १०-११ ।

३. पं० लेखरामजी ने ऋ० द० के जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१७ पर लिखा है—'आर्यसमाज की स्थापना (सन् १८७५) से पूर्व छ बार संस्कृत में प्रकाशित हुई।' अगली सूची के अनुसार सन् १८७५ से पूर्व सात बार छपने का निर्देश मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नानुगतः" आदि शब्द छपे हैं, तथापि ये संस्करण सर्वथा अविश्वसनीय हैं। इनका वर्णन हम आगे करेंगे।

बम्बई-संस्करण (संवत् १९३१)

'पञ्चमहायज्ञविधि' के बम्बई-संस्करण के मुख-पृष्ठ पर शकाब्द १७९६ छपा है। तदनुसार यह संस्करण वि० संवत् १९३१ में प्रकाशित हुआ था। उसके प्रारम्भिक शब्द ये हैं—

"अथ सभाष्यसन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधिः"[1]

श्रीयुत गोपालराव हरि देशमुख के नाम लिखे हुए महर्षि के पत्रों से व्यक्त होता है कि बम्बईवाला 'पञ्चमहायज्ञविधि' का संस्करण संवत् १९३१ के अन्त में मुद्रित हुआ था, और महर्षि ने स्वयं अपने बम्बई निवासकाल में उसे छपवाकर प्रकाशित किया था। ऋषि के पत्रों के एतद्विषयक अंश इस प्रकार हैं—

१. "सन्ध्याभाष्य का पुस्तक छपके तैयार होने को चहे है। दो-चार दिन में तैयार हो जायेगा।"

संवत् १९३१ मिती फाल्गुन वद्य २ इन्दुवार का पत्र। देखो—
पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ५२, पं० १९-२०।

२. "सन्ध्योपासनादि-पञ्चयज्ञ-विधान का भाष्यसहित पुस्तक यहां (बम्बई में) छपवाया गया है। सो १० पुस्तक आपके पास भेजा जाता है।"

संवत् १९३१[2] मिती चैत्र शुद्ध ६ रविवार का पत्र। देखो—
पत्र, और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ५७, पं० १-२।

---

१. इस संस्करण के मुखपृष्ठ की प्रतिलिपि अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में देखें।

२. यहां जो संवत् १९३१ वि० लिखा है, वह गुजराती संवत् गणना के अनुसार है। गुजरात और दक्षिण भारत में कार्तिक शुक्ला प्रतिपद से नये वर्ष का प्रारम्भ माना जाता है। अतः उत्तर भारत की गणनानुसार यहां संवत् १९३२ विक्रमाब्द समझना चाहिये। ऋ० द० के पत्रों पर अन्यत्र भी गुजराती संवत् का निर्देश मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम्बई-संस्करण का लेखन-काल

'सभाष्यसन्ध्योपासनादि पञ्चमहायज्ञविधि' के बम्बई-संस्करण के अन्त में निम्न पाठ मिलता है—

'इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीविरचितं सन्ध्योपासनादि-
पञ्चमहायज्ञभाष्यं समाप्तम् ।'
'शशिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे त्वाश्विनस्य सिते दले ।
प्रतिपद् रविवारे च भाष्यं वै पूर्त्तिमागमत् ॥'

इस लेख के अनुसार 'पञ्चमहायज्ञविधि' के इस संस्करण का लेखन आश्विन शुक्ला प्रतिपद् रविवार संवत् १९३१ को समाप्त हुआ था ।

पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित (भाग १ पृष्ठ २७८) में प्रयाग-वर्णन-प्रसङ्ग में सन्ध्या की पुस्तक के विषय में निम्न उल्लेख मिलता है—

"स्वामी जी ने कुंवर ज्वालाप्रसाद[1] से सन्ध्या की पुस्तक भी कालेज के विद्यार्थियों को पढ़वाकर सुनवाई थी । उस पुस्तक की इस समय हस्तलिपि ही थी, वह तब तक छपी न थी ।"

इसी जीवनचरित पृष्ठ २७६ से ज्ञात होता है कि महर्षि द्वितीय आषाढ़ बदि २ संवत् १९३१ को प्रयाग पधारे थे । तदनुसार बम्बई संस्करणवाली 'पञ्चमहायज्ञविधि' के लेखन का प्रारम्भ आषाढ़ संवत् १९३१ से पूर्व हुआ होगा । सन्ध्यापर्यन्त भाग उक्त तिथि तक अवश्य लिखा जा चुका था ।

संवत् १९३१ की 'पञ्चमहायज्ञविधि' का हस्तलेख श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर के संग्रह में सुरक्षित है ।

पञ्चमहायज्ञविधि-बम्बई-संस्करण का विवरण

पञ्चमहायज्ञविधि के बम्बई-संस्करण में सन्ध्याप्रकरण में आचमन, इन्द्रियस्पर्श, मार्जन, प्राणायाम, अघमर्षण और उपस्थान के मन्त्र, तथा गायत्रीमन्त्र ये वर्तमान संस्करणों के समान हैं । परिक्रमा

१. ये कुंवर ज्वालाप्रसाद राजा जयकृष्णदास के पुत्र थे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मन्त्र सर्वथा भिन्न हैं। इस संस्करण में मन्त्रों का पदपाठ[1]-पूर्वक केवल संस्कृतभाष्य है और वह ९५ प्रतिशत वर्तमान संस्कृतभाष्य से मिलता है। अग्निहोत्र प्रकरण में 'भूरग्नये स्वाहा' आदि ६ मन्त्र ही लिखे हैं। तर्पण-विधि में वे सब मन्त्र दिये हैं, जो सन् १९४० के संशोधित सत्यार्थप्रकाश में हैं। तर्पण-प्रकरण की निम्न पंक्तियां विशेष महत्त्व की हैं—

१. "भा०—गुर्वादिसख्यन्तेभ्यः। एतेषां सोमसदादीनां श्रद्धया तर्पणं कार्यं **विद्यमानानाम्**। श्रद्धया यत्क्रियते तत् श्राद्धम्। तृप्त्यर्थं यत् क्रियते तत् तर्पणम्।" पृष्ठ २०-२१[2]।

२. "अक्रोधनः ··· (मनु के दो श्लोक उद्धृत करके)

भा०—अनेन प्रमाणेन युक्त्या च **विद्यमानान्** विदुषः श्रद्धया सत्कारेण तृप्तान् कुर्यादित्यभिप्रायः। श्राद्धदेवान् द्विजोत्तमान् इत्युक्तत्वात्।" पृष्ठ २१।[3]

तर्पण-विधि में देवों को उपवीत होकर एक जलांजलि और पितरों को अपसव्य होकर तीन जलांजलि देने का विधान है। इस अंश को ऋषि दयानन्द ने अगले संस्करण में हटा दिया।

बलिवैश्वदेव के मन्त्र समान हैं। अतिथि-यज्ञ में मनुस्मृति तृतीयाध्याय के सोलह श्लोक उद्धृत किये हैं। अन्त में पृष्ठ ३३ पर **"अथ लक्ष्मीसूक्तमृग्वेदपरिशिष्टस्थं लिख्यते तदर्थश्च"** लिखकर १५ मन्त्र संस्कृत व्याख्यासहित लिखे हैं।[4]

महर्षि के नाम छपे तीन नकली संस्करण

बम्बई-संस्करण के अनन्तर 'पञ्चमहायज्ञविधि' के तीन संस्करण

१. यहां पदपाठ से सामान्य पदच्छेदमात्र अर्थ अभिप्रेत है, वैदिकों में प्रसिद्ध पदपाठ नहीं।

२. हमने दयानन्दीय-लघुग्रन्थसंग्रह में 'पञ्चमहायज्ञविधि' के अन्त में पृष्ठ ३४४–३६४ तक परिशिष्टरूप में सं० १९३१ वाली पञ्चमहायज्ञविधि के पितृतर्पण, बलिवैश्वदेव, अतिथि-पूजन तथा लक्ष्मीसूक्तव्याख्या, प्रकरण छाप दिये हैं। उनमें पृष्ठ ३४८ पं० ११-१२ पर देखें।

३. द्र०—दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह, पृष्ठ ३४८ पं० २८-३०।

४. द्र०—वही, पृष्ठ ३५२-३६४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रकाशित हुए हैं, जो बम्बई-संस्करण से मिलते हैं। इन में से दो संस्करणों में संस्कृत-भाष्य नहीं है, केवल मन्त्रपाठ है।

इन में से एक संस्करण बनारस के लीथो प्रेस में छपा है। इसका मुख पृष्ठ इस प्रकार है—

अथ सन्ध्योपासन ओ पञ्च
यज्ञ इत्यादिक आह्निक
कर्म बेदोक्त

श्री दयानन्द सरस्वती स्वामी की ।।
आज्ञाऽनुसार ओ बाबू अवि
नाशीलाल[१] के आज्ञाऽनुसा
र बनारस विद्यासागर
यंत्रालय में छपा मि०
श्रावण शुक्ल० ८
।। ली० देवीप्रसाद तिवाड़ी छा० दर्शन का

यह संस्करण ४।।×६ इञ्च के आकार के २४ पृष्ठों में बनारस के लीथो प्रेस का छपा हुआ है। इस में प्रति पृष्ठ लगभग १७ पंक्तियां और २१ अक्षर हैं। पृष्ठ १७ पर पञ्चयज्ञ समाप्त हुए हैं। पृष्ठ १८-२० तक लक्ष्मी सूक्त छपा है। पृष्ठ २० के अन्त में—

"इति नित्यकर्तव्यानि कर्माणि समाप्तानि। सन्ध्योपासनादि-अग्निहोत्रादिकर्मणां विशेषप्रयोजनानि **सत्यार्थप्रकाशमद्रचितसंग्रहे द्रष्टव्यानि**।"

पृष्ठ २१ के प्रारम्भ में **"अथ प्राकृतभाषया स्वल्पोऽभिप्रायः संध्यादीनां लिख्यते"** के अनन्तर पृष्ठ २२ पर लिखा है—

१. इस अविनाशीलाल का उल्लेख ऋषि दयानन्द के ज्येष्ठ शु० ६ संवत् १९३७ (१४ जून १८८०) के पत्र में भी है। वहां इसे आर्यसमाज का सभासद लिखा है (द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३३५, पं० १८-१९)। सम्भव है यह प्रच्छन्न पौराणिक हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तर्पण में सोमसदादि जितने नाम हैं वे सब ईश्वर के हैं। **और** स्त्री आदि नाम प्रीति होने के लिये हैं। **सो मरे का तर्पण करै** तर्पण से भी ईश्वर की उपासना आती है।"

पृष्ठ २४ पर निम्न लेख है—

"........................जो शूद्रादिक हैं, वे भी इसी मन्त्र को गुरुमन्त्र मान के ग्रहण करैं। ओं सर्वजगदुत्पादकमन्तर्यामिणं सर्वप्रकाशकं सर्वानन्दप्रदं सच्चिदानन्दानन्तस्वरूपं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावमजमनादिं सर्वशक्तिमन्तं न्यायकारिणमस्मद्बुद्धीः सद्गुणसत्कर्मसु प्रेरकं वयं प्रार्थयामहे १ एक तो यह मन्त्र शूद्रादि को दे देवे और जो अत्यन्त कम बुद्धिवाला होय तो उसके लिये यह छोटा मन्त्र है॥ ओन्नमः परमेश्वराय सच्चिदानंदानन्तस्वरूपाय नित्यशुद्धमुक्तस्वभावाय कृपामृतसागराय सततं नमः इससे भी छोटा यह तीसरा मन्त्र है ओं सर्वात्मानमन्तर्यामिणं कृपामृतसागरं परमात्मानमहं शरणं प्रपद्ये ३ शूद्रादि इन तीन मन्त्रों में से एक को ग्रहण करके ईश्वर की उपासना करै॥ **अथ पञ्चमहायज्ञ प्रकरणम्**॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तुतर्थणम्, होमैर्देवान् यथाविधि

पितृञ् श्राद्धैर्नॄ नन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा इति मनुस्मृतौ।

॥ इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिसंगृहीते नित्याह्निककर्म प्रकारः सम्पूर्णः॥"

इसी प्रकार का दूसरा संस्करण ६×९ इञ्च के आकार में छपा है। यह भी लीथो प्रेस का छपा हुआ है। इसमें भी २४ पृष्ठ हैं। यह पूर्वोक्त विद्यासागर प्रेस बनारस के छपे संस्करण से अक्षर-अक्षर मिलता है। इस संस्करण में भी उपरि निर्दिष्ट पंक्तिया क्रमशः १९, २१, २४ पृष्ठ पर मिलती हैं।

इन दोनों का मुद्रणकाल—काशी के विद्यासागर प्रेसवाले संस्करण के मुखपृष्ठ पर संवत् का उल्लेख नहीं है, केवल 'श्रावण शुक्ला ८' इतना ही छपा है[1]। द्वितीय संस्करण जो हमें उपलब्ध हुआ है, उसका मुखपृष्ठ (टाइटिल पेज) फटा हुआ है। अतः दोनों संस्करणों के मुद्रण का वास्तविक काल अज्ञात है। पं० लेखराम जी कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१७ पर प्रथम विद्यासागर प्रेस

१. द्र०—पूर्व पृष्ठ ६४ पर छपा मुखपृष्ठ का नमूना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में छपे संस्करण का काल सं० १९३० लिखा है। आगे लाइटप्रेस बनारस में सं० १९३० में एक वार तथा सं० १९३२ में दो वार छपने का उल्लेख मिलता है। यह काल पं० लेखराम जी ने किस आधार पर लिखा यह अज्ञात है। हमारे पास विद्यमान दोनों संस्करणों में सत्यार्थप्रकाश के नाम का उल्लेख होने से स्पष्ट है कि ये दोनों सस्करण सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण के प्रकाशित होने (सन् १९३२, सन् १८७५) के अनन्तर के हैं।

इनके अनन्तर सन् १९३९ में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से 'पञ्चमहायज्ञविधि' का एक संस्करण राजा जयकृष्णदास की आज्ञा से प्रकाशित हुआ।[1] यह पुस्तक संवत् १९३१ वाली 'पञ्चमहायज्ञविधि' में ही स्वल्प न्यूना-धिकता करके छापी गई है।

इन पुस्तकों का नकलीपन

यद्यपि तीनों संस्करणों के अन्दर और बाहर स्वामी दयानन्द का नाम मिलता है, तथापि ये तीनों संस्करण नकली हैं। क्योंकि इनसे पूर्व संवत् १९३१ में स्वयं प्रकाशित बम्बईवाले संस्करण के पृष्ठ २०, २१[1] पर जीवित पितरों के श्राद्ध का दो स्थानों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है (द्र०—पूर्व पृष्ठ ५९ पर)। परन्तु लीथो प्रेस के छपे दोनों संस्करणों में, जो कि इसके बाद छपे हैं, **मरे हुए पितरों के तर्पण का विधान** है। यह हो सकता है कि ये दोनों संस्करण स्वामीजी की आज्ञानुसार छापे गये हों, परन्तु इनमें मृतपितरों के तर्पण का उल्लेख अवश्य ही प्रक्षिप्त है। ऋषि के ग्रन्थों के कुछ लेखकों (लिपिकरों) और संशोधकों ने उनके ग्रन्थों में कैसा-कैसा प्रक्षेप किया है, इस बात का 'पञ्चमहायज्ञविधि' के ये संस्करण अत्यन्त स्पष्ट और सुदृढ़ प्रमाण हैं। संवत् १९३२ के छपे सत्यार्थ-प्रकाश में भी जो मृत पितरों के तर्पण और श्राद्ध का विधान छपा है,

---

१. पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१७ पर 'नवल-किशोर प्रेस लखनऊ' से सन् १८७४ तथा सन् १८८२ में दो बार छपने का उल्लेख है। किन्तु हमारे पास सन् १८८२ (=सं० १९३९) का छपा जो संस्करण है, उस पर 'प्रथम संस्करण' छपा है।

२. दयानन्दीयलघुग्रन्थ संग्रह में पृष्ठ ३४८, पं० ११-१२, २८-३० पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भी निर्विवाद-रूप से इन लेखकादि की धूर्तता है ।[1] यह भी सं० १९३१ की बम्बई में छपी पञ्चमहायज्ञविधि के पूर्वोद्धृत वचनों से स्पष्ट है ।

संवत् १९३९ में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से छपी हुई 'पञ्च-महायज्ञविधि' को अप्रामाणिकता तो इसी से व्यक्त है कि ऋषि दयानन्द ने संवत् १९३१ वाली 'पञ्चमहाविधि' में भले प्रकार परि-वर्धन और संशोधन आदि करके संवत् १९३४ में काशी के लाजरस प्रेस में पुनः स्वयं छपवा दी थी, परन्तु नवलकिशोर प्रेस में छपवाने-वाले ने इस पर कुछ ध्यान न देकर संवत् १९३१ वाली पुस्तक में ही अपनी इच्छानुसार कुछ परिवर्तन परिवर्धन[2] करके श्री स्वामी जी के नाम से प्रकाशित कर दी। भला ग्रन्थकार के साथ इस प्रकार धोखा करने में धूर्तता के अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है ?

पञ्चमहायज्ञविधि का संशोधित संस्करण

'पञ्चमहायज्ञविधि' के पूर्वोक्त संवत् १९३१ के बम्बईवाले संस्करण के अनन्तर महर्षि ने संवत् १९३४ वि० में इस ग्रन्थ का एक और संस्करण प्रकाशित किया था। यह संशोधित संस्करण काशी के

---

१. इस विषय में हमने वेदवाणी वर्ष २४ अंक १२ (अक्टूबर १९७२ में) 'आदिम सत्यार्थप्रकाश के सम्बन्ध में विशेष सूचना' शीर्षक लेख (पृष्ठ २४, २५) में लिखा है।

२. **परिवर्तन**—संवत् १९३१ का पाठ है—**अथलक्ष्मीसूक्तमृग्वेदपरि-शिष्टस्थं लिख्यते तदर्थश्च'**। नवलकिशोर प्रेस के संस्करण 'परिशिष्ट' शब्द हटाकर **'ऋग्वेदस्थ'** छापा है (पृष्ठ २६)। इसी प्रकार ग्रन्थ के अन्त में संवत् १९३१ वाले संस्करण का पाठ है—

"इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिविरचिते सन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञ-भाष्यं समाप्तम् ।"

किन्तु नवलकिशोर प्रेस संस्करण का पाठ इस प्रकार है—

"इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिसंगृहीते सन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञ-विधिश्चतुर्वेदोक्तोऽत्रस्थमन्त्राणामर्थश्च संपूर्णः" ॥

परिवर्धन—नवलकिशोर प्रेस के छपे संस्करण में छपे 'पञ्चमहायज्ञविधि' के पश्चात् **'अथ वैष्णवी संध्या'** शीर्षक के अन्तर्गत वैष्णवी संन्ध्या छापी है । इसी प्रकार ग्रन्थ के मध्य में भी कहीं-कहीं परिवर्धन-परिवर्धन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाजरस प्रेस में छपा था। महर्षि ने लखनऊ के पं० रामाधार वाजपेयी को २८-१२-७७ (पौष बदि ६ संवत् १९३४) के एक पत्र में लिखा था—

"यह संस्करण संशोधित और परिवर्धित है..........अभी यंत्रालय में है" देखो—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ १२८, पं० २-५।

पुनः ता० ४-१-७८ (पौष सुदि १, संवत् १९३४) के पत्र में इस संस्करण के प्रकाशित होने की सूचना दी है। देखो—

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ १२९।

इन लेखों से विदित होता है कि 'पञ्चमहायज्ञविधि' का संवत् १९३४ वाला संस्करण महर्षि द्वारा अन्तिम वार संशोधित है। अतः वही संस्करण प्रामाणिक है, इससे पूर्व का नहीं।

लाजरस प्रेस काशी में छपे हुए संशोधित संस्करण के मुखपृष्ठ पर महर्षि का निम्न लेख है—

"श्रीयुतविक्रमादित्यमहाराजस्य चतुस्त्रिंशोत्तरे एकोनविंशे संवत्सरे भाद्रपौर्णमास्यां समापितः।"

अर्थात्—भाद्र पूर्णिमा संवत् १९३४ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

ग्रन्थ के पुनः संशोधनकाल का निदर्शक उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण लेख वैदिक यन्त्रालय अजमेर के संशोधकों ने अगले संस्करणों से निकाल दिया। वस्तुतः यह लेख ग्रन्थ के अन्त में छपना चाहिये। वैदिक यन्त्रालय अजमेर के संवत् २००२ (सन् १९४४) के १३वें संस्करण में हमने यह लेख ग्रन्थ के अन्त में दे दिया है। और ग्रन्थ में मुद्रण-सम्बन्धी जितनी अशुद्धियां थीं, उनका भी संशोधन कर दिया है। वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से इस के अन्त में बम्बईवाले संस्करण तथा संशोधित संस्करण दोनों का लेखन-काल छापना आवश्यक है।

पञ्चमहायज्ञविधि और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

ऋषि दयानन्द ने सन्ध्या के अंश को छोड़कर शेष चार यज्ञों का विधान ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी किया है। पितृयज्ञ के प्रकरण में कुछ विशेष है। शेष भाग (संवत् १९३४ की) पञ्चमहायज्ञविधि और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का दोनों में समान है। ऋ० भा० भूमिका का यह भाग संवत् १९३१ वाली पञ्चमहायज्ञविधि में कुछ परिवर्तन और परिवर्धन करके तैयार कियागया है। इसमें निम्न प्रमाण है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के अग्निहोत्रप्रकरण पृष्ठ २८७ (रा. ला. क. ट्र. संस्करण) पर निम्न लेख है—

"एषु मन्त्रेषु भूरित्यादीनि सर्वाणीश्वरस्य नामान्येव वेद्यानि । एतेषामर्था गायत्र्यर्थे द्रष्टव्याः ।"

यह पंक्ति 'पञ्चमहायज्ञविधि' के संवत् १९३१ और संवत् १९३४ के दोनों संस्करणों में मिलती है । गायत्री मन्त्र का अर्थ 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में कहीं नहीं लिखा, 'पञ्चमहायज्ञविधि' में इसका अर्थ विस्तार से दिया है। अतः उपर्युक्त पङ्क्ति का मूल-लेखन-स्थान पञ्चमहायज्ञविधि का अग्निहोत्र प्रकरण ही हो सकता है, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का नहीं ।

'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' मार्गशीर्ष शुक्ला १५ संवत् १९३३ तक लिखी जा चुकी थी ।[1] 'पञ्चमहायज्ञविधि' के संशोधित-संस्करण का मुद्रण संवत् १९३४ के वैशाख से प्रारम्भ होकर भाद्र पूर्णिमा (संवत् १९३४) के दिन सम्पूर्ण हुआ था । अतः ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका का उपर्युक्त उद्धरण 'पञ्चमहायज्ञविधि' के संवत् १९३४ वाले संस्करण से उद्धृत नहीं हो सकता । अतः यह उद्धरण संवत् १९३१ वाली 'पञ्चमहायज्ञविधि' के अग्निहोत्र प्रकरण[2] से ही लिया है ।

संवत् १९३४ वाली संशोधित 'पञ्चमहायज्ञविधि' में सन्ध्या को छोड़कर शेष चार यज्ञोंवाला प्रकरण 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' से प्रायः ज्यों का त्यों उठाकर रख दिया । उसमें पूर्ण उचित संशोधन भी नहीं किया गया । केवल तर्पण प्रकरण में पितर-सम्बन्धी मन्त्र-भाग विशेषरूप से न्यून किया गया है । हमारी इस धारणा में निम्न हेतु हैं—

---

१. "सो संवत् १९३३ मार्ग शुक्ल पौर्णमासी पर्यन्त दस हजार श्लोकों के प्रमाण भाष्य बना है······।" द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ६९, पं० १२–१५ । "सो भूमिका के श्लोक न्यून से न्यून संस्कृत और भाषा को मिलाकर आठ ८ हजार हुए हैं ।" द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ७६, पं० २५–२६ । इन दोनों उद्धरणों को मिलाकर पढ़ने से स्पष्ट है कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का लेखन मार्गशीर्ष शुक्ला १५ संवत् १९३३ तक पूर्ण हो गया था ।

२. द्र०—सं० १९३१ की पञ्चमहायज्ञविधि, पृ० १७ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. पञ्चमहायज्ञविधि (सं० १९३४) के पितृयज्ञ प्रकरण (द० ल० ग्र० सं०, पृष्ठ ३२८, पं० २२) में निम्न पङ्क्ति छपी है—

'तं यज्ञमिति मन्त्रः सृष्टिविद्याविषये व्याख्यातः ।'

यही पङ्क्ति इसी रूप में ऋ० भा० भूमिका में भी है। सृष्टि-विद्या का प्रकरण ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में है। अतः वहां इतना ही संकेत करना पर्याप्त है। परन्तु 'पञ्चमहायज्ञविधि' में इसी रूप में लिखना उचित नहीं है। वहां स्पष्ट लिखना चाहिये कि सृष्टिविद्या-प्रकरण कहां है?

२. पञ्चमहायज्ञविधि पृष्ठ ३३९, पं० १६ (द० ल० ग्र० सं०) पर लिखा है—

'ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः''' ''अस्यार्थः पितृतर्पणे प्रोक्तः ।'

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ ३०३ (रामलाल कपूर ट्रस्ट संस्क०) पर इसका अर्थ लिखा है। 'पञ्चमहायज्ञविधि' के पितृतर्पण में इस शब्द का अर्थ कहीं नहीं लिखा। 'पञ्चमहायज्ञविधि' में यह प्रकरण छोड़ दिया है।

३. 'पञ्चमहायज्ञविधि' में सन्ध्याग्निहोत्र के प्रमाण में अथर्ववेद के दो मन्त्र उद्धृत किये हैं, और उनका संस्कृत में भाष्य भी किया है। 'पञ्चमहायज्ञविधि' के संस्कृत-भाष्य के अन्त में इन मन्त्रों की क्रमसंख्या ३, ४ छपी है (देखो—शताब्दी संस्करण[1] पृष्ठ ८७०, तथा संवत् १९३४ से लेकर वै० यं० अजमेर में छपे संवत् १९८३ के बारहवें संस्करण तक)। इन मन्त्रों की क्रमसंख्या १, २ होनी चाहिये। क्योंकि 'पञ्चमहायज्ञविधि' में दो ही मन्त्र हैं। 'पञ्चमहायज्ञविधि' के इस प्रकरण की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के इस भाग के साथ तुलना करने पर क्रम-संख्या की अशुद्धि का कारण विस्पष्ट हो जाता है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इस प्रकरण (पृष्ठ २८२ रालाकट्र० संस्क०) में निम्न चार मन्त्र उद्धृत किये हैं—

समिधाग्निं दुवस्यत...............॥ १ ॥
अग्निं दूतं पुरो दधे...............॥ २ ॥
सायंसायं गृहपतिर्नो............ ॥ ३ ॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो .... ॥ ४ ॥

---

१. परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा मुद्रित दयानन्दग्रन्थमाला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इसी क्रम से इनका भाष्य भी लिखा है। और ये ही क्रमाङ्क मन्त्रभाष्य के अन्त में भी दिये हैं।

'पञ्चमहायज्ञविधि' में इनमें से केवल तृतीय और चतुर्थ मन्त्र, तथा उनके भाष्य को उद्धृत किया है। प्रथम और द्वितीय मन्त्र तथा उनके भाष्य को छोड़ दिया है। 'पञ्चमहायज्ञविधि' में मन्त्रों की क्रम-संख्या वही ३, ४ रह गई। अतः यह अशुद्धि इस बात का प्रमाण है कि 'पञ्चमहायज्ञविधि' में यह प्रकरण ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका से उद्धृत किया हैं।

इन उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि **'पञ्चमहायज्ञविधि' के संवत्' १९३४ वाले संशोधित संस्करण में अग्निहोत्र से लेकर अतिथियज्ञ पर्यन्त का भाग ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से लिया गया है।**

पञ्चमहायज्ञविधि और संशोधित संस्कारविधि

पञ्चमहायज्ञों का विधान संवत् १९४० की संशोधित संस्कार-विधि के गृहस्थाश्रम-प्रकरण में विस्तार से लिखा हैं। परन्तु वहां केवल मन्त्रभाग है। सन्ध्या के मन्त्रों का क्रम संस्कारविधि में कुछ भिन्न हैं, तथा उनमें एक मन्त्र भी अधिक है।[1] इसी प्रकार अग्निहोत्र में भी कुछ विशेषता हैं।

सन्ध्या और संशोधित सत्यार्थप्रकाश

संशोधित सत्यार्थप्रकाश में सन्ध्या के मन्त्रों का उल्लेख नहीं हैं, केवल क्रियामात्र का निर्देश है। वह 'पञ्चमहायज्ञविधि' से कुछ भिन्न है। उक्त तीनों ग्रन्थों में सन्ध्या का क्रम इस प्रकार है—

---

१. इस विषय में यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि संशोधित संस्कार-विधि का प्रधानभूत आधार ग्रन्थ पं० विट्ठल गांवस्करकृत **'वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश'** नामक ग्रन्थ है। इस के संम्बन्भ में हम विस्तार से 'संस्कारविधि' के प्रकरण में आगे लिखेंगे। संस्कारविधि में सन्ध्या के मन्त्रों से पूर्व **'अमृतोप-स्तरणमसि स्वाहा** आदि मन्त्रों से जो आचमन कहा है, उन का मूल भी वेदोक्त-संस्कारप्रकाश' में मिलता है, परन्तु संस्कारविधि में अस्थान में जुड़ गया है। **वेदोक्तसंस्कारप्रकाश** ग्रन्थ सं० १९३८ में मराठी भाषा में छपा है। उस का गुजराती अनुवाद भी तत्काल छप गया था। ऋ० द० के ग्रन्थ-संग्रह में वेदोक्त-संस्कारप्रकाश का गुजराती अनुवाद था। इस का आर्यभाषानुवाद हम शीघ्र छाप रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमहायज्ञविधि	संस्कारविधि	सत्यार्थप्रकाश
आचमनमन्त्र	आचमनमन्त्र	आचमन
इन्द्रियस्पर्शमन्त्र	इन्द्रियस्पर्शमन्त्र	××
मार्जनमन्त्र	मार्जनमन्त्र	मार्जन
प्राणायाममन्त्र	प्राणायाममन्त्र	प्राणायाम
अघमर्षणमन्त्र	अघमर्षणमन्त्र	मनसापरिक्रमा
(आचमन)	(आचमन)	××
मनसापरिक्रमामन्त्र	मनसापरिक्रमामन्त्र	उपस्थान
उपस्थानमन्त्र	उपस्थानमन्त्र	अघमर्षण
(××	(जातवेदसे	
उद्वयम्	चित्रम्	
उदुत्यम्	उदुत्यम्	
चित्रम्	उद्वयम्	
तच्चक्षुः)	तच्चक्षुः)	
××	(आचमन)	××
गायत्रीमन्त्र	गायत्रीमन्त्र	गायत्रीमन्त्र
नमस्कारमन्त्र	नमस्कारमन्त्र	××
××	(आचमन)	××

सन्ध्या-मन्त्रों के क्रम की प्रामाणिकता पर विचार

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में सन्ध्या के विषय में निम्न लेख मिलता है—

'सन्ध्योपासनविधिश्च पञ्चमहायज्ञविधाने यादृश उक्तस्तादृशः कर्तव्यः।' पृष्ठ २८२ रालाकट्र० संस्करण।

अर्थात्—सन्ध्योपासन की विधि 'पञ्चमहायज्ञविधि' के अनुसार करनी चाहिये।

कई आर्य विद्वान् ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की इस पंक्ति के प्रमाण से पञ्चमहायज्ञविधिवाले सन्ध्या-मन्त्र-क्रम को प्रामाणिक मानते हैं, परन्तु उनका कथन ऐतिहासिक दृष्टि से रहित होने के कारण अप्रमाण है। हम ऊपर सप्रमाण दर्शा चुके हैं कि 'पञ्चमहायज्ञविधि' का संवत् १९३४ वाला संशोधित संस्करण न केवल ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के अनन्तर लिखा गया, अपितु सन्ध्या से आगे के प्रकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका से ही लेकर 'पञ्चमहायज्ञविधि' में रखे गये है। अतः ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का उपर्युक्त संकेत संवत् १९३१ वाले बम्बई संस्करण की ओर है। संवत् १९३४ (सन् १८७७) में 'पञ्चमहायज्ञविधि' के संशोधित संस्करण के प्रकाशित हो जाने पर संवत् १९३१ वाला संस्करण स्वतः अप्रामाणिक हो गया। अतः भूमिका के पूर्वोद्धृत वचन का कुछ मूल्य नहीं रहा।

इतना ही नहीं, संस्कारविधि में सन्ध्या से पूर्व जो पंक्तियां छपी हैं, वे भी विशेष महत्त्व की है—

"सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म नीचे लिखे प्रमाणे यथाविधि उचित समय में किया करें। इन नित्य करने के योग्य कर्मों में लिखे हुए मन्त्रों का अर्थ और प्रमाण 'पञ्चमहायज्ञविधि' में देख लेवें।"

पृष्ठ २२४, आ० स० शताब्दी संस्करण।

संस्कारविधि में अन्यत्र दो स्थानों पर भी संस्कारविधि के अनुसार सन्ध्योपासन का निर्देश है। यथा—

१—गृहाश्रम में लिखा सन्ध्योपासन······करावे। आ० स० शताब्दी सं० पृष्ठ ११५ पं० ८।

२.—गृहाश्रम के प्रकरण में लिखे सन्ध्योपासनादि······। वहीं **पृष्ठ ११७, पं० २३३**।

उक्त लेखों में स्पष्टतया विधिभाग में 'संस्कारविधि' को प्रधानता दी है। संवत् १९४० वालो संशाधित 'संस्कारविधि' संशोधित पञ्चमहायज्ञविधि और संशोधित सत्यार्थप्रकाश के अनन्तर लिखी गई है। इस कारण उसका लेख अधिक प्रामाणिक और महत्त्व का है।

भेद होते हुए भी अभेद

सन्ध्या की उपर्युक्त सभी पद्धतियों में भेद होने पर भी उपासना की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। उपासनारूप कर्म सर्वत्र एक ही है। केधल अवान्तर कर्मों के क्रम में कुछ भेद है और एक मन्त्र का न्यूनाधिक्यमात्र है। जहां कर्म समान होता हैं और पद्धतियों में भेद होता हैं, वहां मीमांसकों का मत है कि **पद्धतियों में भेद होने पर भी कर्मभेद** नहीं जानना चाहिये। भगवान् जैमिनि ने यह निर्णय **सर्वशाखाप्रत्ययमेकं कर्म** नाम के अधिकरण (मी० अ० २, पा० ४,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सू० ८-३२) में किया है। ऋषि दयानन्द ने भी पञ्चमहायज्ञविधि के प्रारम्भ में **'परमेश्वर के ध्यान आदि करने में किसी प्रकार का आलस्य न आवे, इसलिये शिर और नेत्र आदि पर जल प्रक्षेप (= मार्जन कर्म) करे। यदि आलस्यादि न हो तो न करे'** लिख कर विधि की अपेक्षा सन्ध्योपासनारूप कर्म की ही प्रधानता दर्शाई है।

तात्त्विक दृष्टि से चाहे किसी भी क्रम से संध्योपासना कर ली जाये, कोई अन्तर नहीं पड़ता। फिर भी सामूहिक दृष्टि से आर्यों में एकरूपता बनी रहे, इस के लिये किसी भी एक विधि को प्रधानता देनी होगी। ऐसी अवस्था में संस्कारविधि प्रकाशन होने (सं० १९४१) के पूर्व से ही सभी आर्यजन पञ्चमहायज्ञविधि के अनुसार ही संध्योपासना करते चले आये हैं, अतः उसी को अपनाए रहने में कोई दोष नहीं है। व्यर्थ में मतिभेद उत्पन्न करना विद्वानों के लिये उचित नहीं है।

पञ्चमहायज्ञविधि में विचारणीय स्थल

पञ्चमहायज्ञविधि में दो स्थान ऐसे हैं, जो विचारणीय हैं। यथा—

१—शन्नोदेवीरभिष्टये इस आचमन मन्त्र से पूर्व मार्जन प्राणायाम और गायत्रीमन्त्र से शिखा बन्धन करना कहा है। क्या ये तीन कर्म सन्ध्या के आद्य अवयव हैं अथवा यहां आगे कथित कर्मों का सामान्य निर्देशमात्र किया है। यदि अवयव हैं तो क्या मार्जन और प्राणायाम कर्म मन्त्ररहित करने चाहियें?

हमारे विचार में ये सन्ध्या के पूर्व अवयव नहीं हैं। तीन प्रमुख कर्मों का आरम्भ में संक्षेप से निर्देश करके आगे सविस्तर वर्णन ही यहां अभिप्रेत है। संस्कारविधि में भी प्रायः प्रत्येक कर्म के आरम्भ में '...पृष्ठ से...पृष्ठ तक विधि करके' ऐसा सामान्य रूप से विधान करके अनन्तर तत्तत् संस्कार में क्रियमाण कर्म का पृथक्-पृथक् निर्देश किया है।

प्रायः सभी प्राचीन ऋषियों की यह शैली है कि वे आरम्भ में संक्षेप से वर्णन करके अनन्तर उस का विस्तार से वर्णन करते हैं। इसे ही सूत्र और भाष्यशैली कहा जाता है। सत्यार्थप्रकाश के प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुल्लास के आरम्भ में संस्कृत में लिखे गये सूत्रात्मक वाक्य का ही आगे सारा विस्तार है। महाभारत में कहा है—

विस्तीर्यैतन्महज्ज्ञानमृषिः संक्षेपतोऽब्रवीत् ।

इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम् ॥ आदि० १।५१

अष्टाध्यायी जैसे अति संक्षिप्त सूत्रात्मक ग्रन्थ में भी यही शैली है। उसका वैयाकरण **लक्षण** और **प्रपञ्च** शब्द से व्यवहार करते हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कहा है—**ते वै खल्वपि विधयः सुपरिगृहीता भवन्ति येषां लक्षणं प्रपञ्चश्च** । ६।३।१४ ॥

अर्थात्—वे विधियां अच्छे प्रकार गृहीत होती हैं जिन का लक्षण और प्रपञ्च=उदाहरण रूप विस्तार हो ।

२—अघमर्षण मन्त्रों के अर्थ के पश्चात् लिखा है—**शन्नोदेवी-रिति पुनराचामेत् । ततो गायत्र्यादिमन्त्रार्थान्मनसा विचारयेत् । पुनः परमेश्वरेणैव सूर्यादिकं सकलं जगद्रचितमिति परमार्थस्वरूपं ब्रह्म चिन्तयित्वा परं ब्रह्म प्रार्थयेत् ।**

इस पंक्ति पर विचार करने से पूर्व सं० १९३१ की छपी पञ्च-महायज्ञविधि का पाठ उद्धृत करना आवश्यक समझ कर उसका पाठ आगे लिखते हैं—

शन्नोदेवीरिति पुनराचामेत् ॥ ततः सूर्योदयात् प्राक् तिष्ठन् सन् अर्थविचारपूर्विकां गायत्रीं जपेत् पुनः सूर्योदये सति परमेश्वरेणैव सूर्यादिकं सकलं जगद्रचितमिति परमार्थस्वरूपं ब्रह्म चिन्तयित्वा गायत्रीमन्त्रेणार्घ्यत्रयं सूर्याभिमुखं प्रक्षिप्य परं ब्रह्म प्रार्थयेत् । पृष्ठ ५ ।

अर्थात् 'शन्नोदेवी' मन्त्र से पुनः आचमन करे। तत्पश्चात् सूर्योदय होने से पूर्व तक खड़े होकर अर्थविचार पूर्वक गायत्री का जप करे। पुनः सूर्योदय होने पर परमेश्वर ने ही सूर्यादि सकल जगत् की रचना की है, इस प्रकार परमार्थस्वरूप ब्रह्म का चिन्तन करके गायत्री मन्त्र से सूर्य के सामने तीन अञ्जलि जल का प्रक्षेप करके पर ब्रह्म की प्रार्थना करे ।

इस के पश्चात् **ओं भृगवे नमः ओमिन्द्राय नमः** आदि नौ परिक्रमण मन्त्र लिखे हैं। इनमें अन्तिम **ओं परब्रह्मणे नमः** को छोड़ कर शेष आठ मन्त्रों से पूर्वादि आठ दिशा उपदिशा का क्रमशः परिक्रमा का वर्णन किया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १९३१ की पञ्चमहायज्ञविधि के साथ सं० १९३४ की छपी संशोधित पञ्चमहायज्ञविधि के पाठ की तुलना करने से स्पष्ट होता है कि सं० १९३४ की छपी पञ्चमहायज्ञविधि का पाठ इस स्थान पर अनावश्यक है। इसमें निम्न हेतु है—

सं० १९३१ की छपी पञ्चमहायज्ञविधि में सूर्योदय होने पर उस से गायत्री मन्त्र से अर्घ्य देने और सूर्य की परिक्रमा करने का विधान होने से यदि अघमर्षण पर्यन्त सूर्योदय न हो तो मध्यवर्ती काल में अर्थविचार पूर्वक गायत्रीमन्त्र के जप का विधान उचित था, परन्तु जब ऋषि दयानन्द ने सं० १९३४ के संस्करण में सूर्य-परिक्रमा के मन्त्र हटा दिये उस अवस्था में अघमर्षणमन्त्रों के पश्चात् गायत्र्यादि-मन्त्रों के अर्थों का विचार करने की आवश्यकता ही क्या है ? इतना ही नहीं, पूर्व प्रकाशित सन्ध्या में सूर्य परिक्रमा के लिये सूर्योदय की प्रतीक्षा आवश्यक थी परन्तु संशोधित संस्करण में **अथ मनसा परिक्रमा-मन्त्रा:** शीर्षक देने से स्पष्ट है कि **प्राचीदिगग्नि०** आदि मन्त्रों से मानसिक परिक्रमा करनी है। अत: सूर्योदय की प्रतीक्षा अभिप्रेत नहीं। इतना ही नहीं, सं० १९३१ के संस्करण में तो गायत्री जप की अवधि 'सूर्योदय से प्राक्' लिखी थी। संशोधित संस्करण में **गायत्र्यादिमन्त्रार्थान् मनसा विचारयेत्** में कितनी देर विचार करे, इसका कोई उल्लेख नहीं है।

इस प्रकार दोनों संस्करणों के पाठों की गम्भीरता से तुलना करने पर विदित होता है कि यहां **'शन्नोदेवीरिति पुनराचामेत्'** इतना पाठ ही युक्त है। शेष सं० १९३१ के पाठ में किया गया परिवर्तन युक्त पाठ अनावश्यक है। गायत्रीमन्त्र का विचार अथवा जप आगे यथास्थान विहित ही है।

सन्ध्योपासन का केवल संस्कृत-संस्करण

आषाढ़ संवत् १९३७ के छपे यजुर्वेदभाष्य के अङ्क के अन्त में पुस्तकों का एक विज्ञापन छपा है। उसमें संख्या ७ पर "**संध्योपासन संस्कृत, मूल्य दो आना लिखा है**। यह ग्रन्थ कब और कहां छपा, यह हमें ज्ञात नहीं। इसकी कोई पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। हमने पूर्व पृष्ठ ६६, ६७ पर नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में छपी 'पञ्चमहायज्ञ-विधि' का उल्लेख किया है, वह केवल संस्कृत में है और उसका मूल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी दो आना ही है। परन्तु उसका मुद्रण-काल संवत् १९३९ है। संवत् १९३१ में 'पञ्चमहायज्ञविधि' का जो संस्करण महर्षि ने बम्बई में छपवाया था, वह भी केवल संस्कृत में था। उसके मुख पृष्ठ पर मूल्य नहीं छपा है परन्तु संस्कारविधि प्रथम संस्करण (मुद्रणकाल संवत् १९३३, गुज० संवत् १९३२) की विषयसूची की पीठ पर छपी पुस्तकसूची में 'संध्या भाष्य ।)' (चार आना) लिखा है। सम्भव है उस की कुछ प्रतियां शेष रह गईं हों तथा नया संस्करण छप जाने पर उसी का मूल्य दो आना कर दिया हो ।

पञ्चमहायज्ञविधि के अनुवाद

'पञ्चमहायज्ञ-विधि' के अंग्रेजी, मराठी, बगाली, गुजराती आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं, परन्तु वे सब प्रायः स्वतन्त्र अनुवाद हैं। ऋषि दयानन्द के संस्कृत भाष्य के अक्षरशः अनुवाद नहीं हैं। अंग्रेजी में एक अनुवाद ऋषि के जीवन-काल में छपा था । हम यहां केवल उसी का वर्णन करेंगे ।

अग्रेजी-अनुवाद

'पञ्चमहायज्ञविधि' का एक अंग्रेजी अनुवाद ऋषि के जीवन काल में लाहौर से प्रकाशित हुआ था। वह अनुवाद कहीं-कहीं ऋषि के अभिप्राय से विरुद्ध था। जैसा कि—

१. स्वामी सहजानन्द[1] ने ता० १२-८-१८८३ को शिकारपुर (पंजाब) से एक पत्र महर्षि के नाम लिखा था। उसमें उन्होंने 'पञ्च-महायज्ञविधि' के उपर्युक्त अंग्रेजी अनुवाद के विषय में इस प्रकार लिखा था—

"विदित हो कि आपकी सन्ध्या बनाई, उसकी उल्था अंग्रेजी में

१. स्वामी सहजानन्द विहार प्रान्त निवासी ब्राह्मण थे। उन्होंने वैराग्य-वश संन्यास-वेश धारण कर लिया था, और नाम-परिवर्तन भी कर लिया था, परन्तु विधिवत् संन्यास-ग्रहण नहीं किया था। उदयपुर (मेवाड़) में उन्होंने महर्षि के दर्शन किये, और उनसे विधि-पूर्वक संन्यास की दीक्षा ली थी। देखो—देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित पृष्ठ ६७६; तथा पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६६४, फाल्गुल बदी १२ संवत् १९३९ का पूर्ण संख्या ६६२ का पत्र ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रष्टार्थ युक्त छपवाई लाहौर वालों ने, उसमें अर्थ किया है कि पूर्व दिशा में बैठकर सन्ध्या करना। ऐसे-ऐसे अर्थों पर बहुत मनुष्य संका करते हैं। उसमें बहुत जगह अनर्थ किया है।"

पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ ४४४, पं० १३-१६।

इस अंग्रेजी अनुवाद का उल्लेख महर्षि ने भी आश्विन बदि ११ बृहस्पतिवार संवत् १६४० के पत्र में किया है। वह पत्र राव राजा प्रतापसिंह जी जोधपुर के नाम है। यथा—

"और जो सन्ध्या का अनुवाद अंग्रेजी गुटका आप ले गये थे, वह भिजवा दीजिये।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ८०१, पं० १३-१४।

यह अनुवाद किसने किया था, और कब छपा था, यह अज्ञात है। यह अनुवाद हमें देखने को नहीं मिला। अतः इसके विषय में हम अधिक कुछ नहीं लिख सकते।

पञ्चमहायज्ञविधि के शुद्ध संस्करण

इस ग्रन्थ का शुद्ध संस्करण स्वर्गीय आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु ने संवत् १६८८ में रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर से प्रकाशित किया था। तब से उसके अनेक संस्करण छप चुके हैं। संवत २००२ में वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित तेरहवें संस्करण का संशोधन हमने किया है। उससे पूर्व के संस्करण बहुत अशुद्ध थे।

७—वेद-भाष्य का नमूना (कार्तिक १९३१)

ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य का एक नमूना मार्गशीर्ष अथवा कार्तिक सं० १६३१ में छपवाया था। कालक्रम की दृष्टि से उस का वर्णन यद्यपि यहीं करना चाहिये, तथापि हम उस का वर्णन अगले वेदभाष्य-विषयक षष्ठ अध्याय में करेंगे।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—वेदविरुद्ध-मत-खण्डन
(मार्गशीर्ष[1] सं० १९३१)

महर्षि ने यह पुस्तक वैष्णवों ने वल्लभमत के खण्डन में लिखा है। अतः इसका दूसरा नाम "**वल्लभाचार्य-मत-खण्डन**" भी है। गुजरात प्रान्त में इस मत का प्रचार अधिक रहा है। इसलिये महर्षि ने इस ग्रन्थ की रचना गुजरात-भ्रमण काल में सूरत अथवा भड़ौंच में की थी। पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन-चरित पृष्ठ २९६ पर इस ग्रन्थ के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"स्वामी जी ने बम्बई के निवास के दिनों में ही नवम्बर[2] १८७४ में वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के खण्डन में '**वल्लभाचार्य-मत-खण्डन**' नामक ट्रैक्ट रचा था। जो पहली वार वम्बई के सुप्रसिद्ध निर्णयसागर प्रेस में छपा था।"

ग्रन्थ का रचना-काल

'वेदविरुद्ध-मत-खण्डन' के अन्त में उसका रचना-काल इस प्रकार लिखा है—

शशिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यासिते दले ।
अमायां भौमवारे च ग्रंथोऽयं पूर्तिमागतः ॥

अर्थात् संवत् १९३१ के कार्तिक की अमावस्या मंगलवार (= ८ दिसम्बर[2] १८७४) को बन कर समाप्त हुआ।

यहां '**कार्तिकस्यासिते दले**' गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है।

---

१. उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार।

२. पं० लेखराम जी ने ऋषि के जीवन-चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१९ पर पर इस पुस्तक के छपने का काल '१० नवम्बर सन् १८७४ कार्तिक की अमावस मंगलवार लिखा है। वह अशुद्ध है। १० नवम्बर को मंगलवार तो है परन्तु अमावस्या नहीं है। गुजराती पंचांग के अनन्तर ८ दिसम्बर को मंगलवार और अमावस्या दोनों हैं। गुजरात में इस ग्रन्थ के लिखे जाने से गुजराती षंचाङ्ग के अनुसार ही तिथि का निर्देश किया है। इस तिथि को **ऋ० द० सूरत अथवा भड़ोंच में थे।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार मार्गशीर्ष की अमावस्या जाननी चाहिये।

मुद्रण-काल

निर्णयसागर प्रेस में छपे 'वेदविरुद्ध-मत-खण्डन' के मुखपृष्ठ पर इसका मुद्रण-काल संवत् १९३०' छपा है। वह पूर्वोक्त ग्रन्थलेखन-काल से विरुद्ध होने के कारण अशुद्ध है। फाल्गुन बदि २ मंगलवार संवत् १९३१ को श्री गोपालराव हरि देशमुख के नाम महर्षि ने जो पत्र लिखा था, उसमें इस पुस्तक के मुद्रित हो जाने की निम्न सूचना दी थी—

"आगे 'वेदविरुद्ध-मत-खण्डन' की पुस्तक जितनी मंगानी हो मंगा लीजिये, फिर नहीं मिलेंगी...।"—

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३२, पं २२।

इससे विदित होता है कि 'वेदविरुद्धमत-खण्डन' का प्रकाशन माघ संवत् १९३१ के अन्त तक हो गया था। ऋषि दयानन्द के उक्त पत्र से भी स्पष्ट है कि वेदविरुद्ध-मत-खण्डन के मुखपृष्ठ पर छपा सं० १९३० मुद्रणकाल अशुद्ध है।[2]

पुस्तक का प्रभाव

महर्षि के जीवन-चरित से विदित होता है कि इस पुस्तक को रचना के अनन्तर वल्लभसंप्रदाय के अनुयायी महर्षि के जीवन के ग्राहक बन गये थे। उन्होंने महर्षि के प्राण-हरण करने के अनेक प्रयत्न किये थे। देखो—पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन-चरित पृष्ठ २६८–२९५ तक।

ग्रन्थ की मूल-भाषा

इस ग्रन्थ को महर्षि ने **संस्कृत-भाषा** में रचा था। इस पुस्तक के

---

१. गुजराती संवत् भी कार्तिक शुक्ला १ से बदल जाता है। गुजराती पंचांग के अनुसार कृष्ण पक्ष शुक्लपक्ष के पश्चात् होता है। इसलिये कार्तिक की अमावास्या (उ० भा० पंचाङ्गानुसार मार्गशीर्ष की अमावास्या) को भी संवत् १९३१ ही होगा।

२. द्र०—पृष्ठ ७९ की टि० २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आद्यन्त में महर्षि के नाम का उल्लेख नहीं है, और ना ही 'वेदान्ति-ध्वान्त-निवारण' (प्र० सं०) के अन्त में तथा संस्कार-विधि के प्रथम संस्करण (संवत् १९३३) में दी हुई पुस्तक-सूची में महर्षि का नाम[1] दिया है (देखो परिशिष्ट ७)। तथापि ग्रन्थ की रचना शैली से विस्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का संस्कृत भाग ऋषि दयानन्द का ही लिखा हुआ है। इस की पुष्टि ऋषि दयानन्द के आषाढ़ वदि १२ सं० १९३५ शुक्रवार (१६ जुलाई १८७८) के पत्र से भी होती है। ऋषि दयानन्द हैनरी एस० आल्काट को लिखते हैं—

ये च मया वेदभाष्य-सन्ध्योपानाऽऽर्याभिविनय-वेदविरुद्धमतखण्डन-वेदान्तिध्वान्तनिवारण-सत्यार्थप्रकाश-संस्कारविध्यार्योद्देश्यरत्नमाला-ख्या ग्रन्था निर्म्मिता……।

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ १६२, पं० १५-१६।

गुजराती-अनुवाद

'वेदविरुद्ध-मत-खण्डन' का जो प्रथम संस्करण निर्णयसागर प्रेस बम्बई में संवत् १९३१[2] में छपा था, उसमें गुजराती अनुवाद भी साथ में छपा है। इसके प्रथम संस्करण के मुख-पृष्ठ के लेख से ज्ञात होता है कि उसका गुजराती अनुवाद महर्षि के प्रमुख शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा ने किया था। ये महर्षि की प्रेरणा से ही संस्कृत पढ़ाने के लिये इङ्गलेंड गये थे। पीछे जाकर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भारत की स्वतन्त्रता के लिये सशस्त्र क्रान्ति के मार्ग का अवलम्बन किया। अत एव ब्रिटिश राज्य ने इनकी भारत वापस आने की स्वतन्त्रता छीन ली। इस कारण वह अन्त तक विदेश में ही रहे और वहीं स्वर्गवासी हुए।

गुजराती अनुवाद में मूल ग्रन्थ से कुछ अधिकता है। प्रारम्भ में में एक शार्दूल विक्रीडित छन्द तथा अन्त में ५० रोल-वृत्त छन्दों में "आर्यजनों ने सूचना" छपी है। तत्पश्चात् ग्रन्थ लेखन का काल गुजराती में इस प्रकार दिया हैं।

---

१. वेदान्तिध्वान्तनिवारण के अन्त में छपे विज्ञापन में 'सत्यार्थप्रकाश' के आगे भी ग्रन्थकार का नाम नहीं छपा है।

२. मुख पृष्ठ पर 'संवत् १९३०' अशुद्ध छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चन्द्ररामाङ्कशशि कार्तिक-अमा-सवारे ।
वेद धर्मनी ध्वजा उड़े छे मंगलवारे ।।

आर्यभाषा अनुवाद

वेदविरुद्धमतखण्डन का वर्त्तमान में जो भाषानुवाद मिलता है वह पं० भीमसेन कृत है। यह भाषानुवाद के निम्न लेख से स्पष्ट है—

"इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितस्तच्छिष्य-भीमसेनशर्मकृतभाषानुवादसहितश्च वेदविरुद्धमतखण्ड-नामा ग्रन्थः समाप्तः ।"

पूर्णानन्द स्वामी

वेदविरुद्धमत-खण्डन के प्रथम संस्करण से लेकर नवम संस्करण पर्यन्त (अगले संस्करण हमें देखने को नहीं मिले) मुख पृष्ठ पर **स्वामी पूर्णानन्द** का उल्लेख मिलता है—**'सम्मतिरत्र वेदमतानुयायि-पूर्णानन्दस्वामिनः ।**

प्रथम संस्करण में निम्न पाठ है—

**"पूर्णानन्दस्वामिन आज्ञया वेदमतानुयायिना ।
कृष्णदाससूनुना श्यामजिना भाषान्तरकृतम् ।।"**

ये पूर्णानन्द स्वामी कौन थे, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका । इनके नाम का उल्लेख ऋषि के पत्रव्यवहार में निम्न स्थलों पर मिलता है—

१—आषाढ़ बदि १ शुक्रवार संवत् १९३३ का स्वामी जी का पत्र । पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ६३, पं० ६ ।

२—१९ जनवरी सन् १८८०[1] का सेवकलाल कृष्णदास का स्वामीजी महाराज के नाम पत्र ।

पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ १८५, पं० १८, २० ।

स्वामी पूर्णानन्द ने एक विज्ञापन छपवाया था (द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पूर्ण संख्या १४, पृष्ठ ४४-४७) । इस में किसी

---

१. यहां पूर्व पत्रों की संगति अनुसार 'सन् १८८१, चाहिये । १८८० नये वर्ष के प्रारम्भ में होनेवाली सामान्यभूल से लिखा गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प० ग० न०' गुप्त नामवाले व्यक्ति के द्वारा किये गये प्रश्नों के उत्तर दिये हैं। इन उत्तरों के विषय में ऋषि दयानन्द की सम्मति भी थी। यह इसी विज्ञापन के अन्त में पृष्ठ ४७, पं० १४ से ज्ञात होता है।

खेद है कि इस से अधिक हम इन महात्मा के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते।

९—वेदान्तिध्वान्त-निवारण
(मार्गशीर्ष सं० १९३१)

नवीन वेदान्तियों के अद्वैतवाद के खण्डन में महर्षि ने सं० १९२७ में **'अद्वैतमत-खण्डन'** नाम की एक पुस्तक लिखी थी। इस का पूर्व (पृष्ठ १६-१९) वर्णन कर चुके हैं। उसके लगभग साढे चार वर्ष पश्चात् महर्षि ने **वेदान्तिध्वान्त-निवारण** नाम की एक और पुस्तक लिखी। इस विषय में पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित में पृष्ठ २९५ पर इस प्रकार लिखा है—

"श्री स्वामीजी ने अद्वैतवाद के खण्डन में 'वेदान्तिध्वान्त-निवारण' पुस्तक रचा, और आश्चर्य है कि उसे पण्डितजी (= कृष्णराम इच्छारामजी, जो कि घोर अद्वैतवादी थे) से ही लिखवाया। स्वामी जी ने **इस पुस्तक को दो ही दिनों में समाप्त कर दिया।**"

यह पुस्तक स्वामी जी ने प्रथम वार के बम्बई निवास काल में रची थी। इस बार महर्षि बम्बई में सं० १९३१ के कार्तिक कृष्णा १ मार्गकृष्ण १२ तदनुसार २० अक्टूबर से ५ दिसम्बर १८७४ तक ठहरे थे। अतः यह पुस्तक मार्गशीर्ष संवत् १९३१ में रची गई होगी।

पं० लेखरामकृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ, ९५ में भी ऋ० द० के प्रथमबार बम्बई आगमन काल में वेदान्तिध्वान्त-निवारण रचने का उल्लेख है।

वेदविरुद्धमत-खण्डन और वेदान्तिध्वान्त-निवारण दोनों पुस्तकें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चन्द्ररामाङ्कशशि कार्तिक-अमा-सवारे ।
वेद धर्मनी ध्वजा उड़े छे मंगलवारे ।।

आर्यभाषा अनुवाद

वेदविरुद्धमतखण्डन का वर्त्तमान में जो भाषानुवाद मिलता है वह पं० भीमसेन कृत है। यह भाषानुवाद के निम्न लेख से स्पष्ट है—

"इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितस्तच्छिष्य-भीमसेनशर्मकृतभाषानुवादसहितश्च वेदविरुद्धमतखण्ड-नामा ग्रन्थः समाप्तः ।"

पूर्णानन्द स्वामी

वेदविरुद्धमत-खण्डन के प्रथम संस्करण से लेकर नवम संस्करण पर्यन्त (अगले संस्करण हमें देखने को नहीं मिले) मुख पृष्ठ पर **स्वामी पूर्णानन्द** का उल्लेख मिलता है—**'सम्मतिरत्र वेदमतानुयायि-पूर्णानन्दस्वामिनः ।**

प्रथम संस्करण में निम्न पाठ है—

"पूर्णानन्दस्वामिन आज्ञया वेदमतानुयायिना ।
कृष्णदाससूनुना श्यामजिना भाषान्तरकृतम् ।।"

ये पूर्णानन्द स्वामी कौन थे, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका । इनके नाम का उल्लेख ऋषि के पत्रव्यवहार में निम्न स्थलों पर मिलता है—

१—आषाढ़ बदि १ शुक्रवार संवत् १९३३ का स्वामी जी का पत्र । पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ६३, पं० ६ ।

२—१९ जनवरी सन् १८८०[1] का सेवकलाल कृष्णदास का स्वामीजी महाराज के नाम पत्र ।

पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ १८५, पं० १८, २० ।

स्वामी पूर्णानन्द ने एक विज्ञापन छपवाया था (द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पूर्ण संख्या १४, पृष्ठ ४४-४७) । इस में किसी

---

१. यहां पूर्व पत्रों की संगति अनुसार 'सन् १८८१, चाहिये । १८८० नये वर्ष के प्रारम्भ में होनेवाली सामान्यभूल से लिखा गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प० ग० न०' गुप्त नामवाले व्यक्ति के द्वारा किये गये प्रश्नों के उत्तर दिये हैं। इन उत्तरों के विषय में ऋषि दयानन्द की सम्मति भी थी। यह इसी विज्ञापन के अन्त में पृष्ठ ४७, पं० १४ से ज्ञात होता है।

खेद है कि इस से अधिक हम इन महात्मा के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते।

९—वेदान्तिध्वान्त-निवारण
(मार्गशीर्ष सं० १९३१)

नवीन वेदान्तियों के अद्वैतवाद के खण्डन में महर्षि ने सं० १९२७ में **'अद्वैतमत-खण्डन'** नाम की एक पुस्तक लिखी थी। इस का पूर्व (पृष्ठ १६-१९) वर्णन कर चुके हैं। उसके लगभग साढे चार वर्ष पश्चात् महर्षि ने **वेदान्तिध्वान्त-निवारण** नाम की एक और पुस्तक लिखी। इस विषय में पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित में पृष्ठ २९५ पर इस प्रकार लिखा है—

"श्री स्वामीजी ने अद्वैतवाद के खण्डन में 'वेदान्तिध्वान्त-निवारण' पुस्तक रचा, और आश्चर्य है कि उसे पण्डितजी (= कृष्णराम इच्छारामजी, जो कि घोर अद्वैतवादी थे) से ही लिखवाया। स्वामी जी ने **इस पुस्तक को दो ही दिनों में समाप्त कर दिया।**"

यह पुस्तक स्वामी जी ने प्रथम वार के बम्बई निवास काल में रची थी। इस बार महर्षि बम्बई में सं० १९३१ के कार्तिक कृष्णा १ मार्गकृष्ण १२ तदनुसार २० अक्टूबर से ५ दिसम्बर १८७४ तक ठहरे थे। अतः यह पुस्तक मार्गशीर्ष संवत् १९३१ में रची गई होगी।

पं० लेखरामकृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ, ९५ में भी ऋ० द० के प्रथमबार बम्बई आगमन काल में वेदान्तिध्वान्त-निवारण रचने का उल्लेख है।

वेदविरुद्धमत-खण्डन और वेदान्तिध्वान्त-निवारण दोनों पुस्तकें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग एक ही काल में लिखी गई। इन में वेदविरुद्धमत-खण्डन पहले लिखा गया था और पहले छपा था। वेदान्तिध्वान्त-विवरण कुछ दिन बाद में लिखा गया और बाद में छपा। बम्बई आर्यसमाज की प्रथम ११ मास की कार्यवाही का जो विवरण '**श्री आर्यसमाज ना नियमो मुम्बई**' शीर्षक से माघ सं० १९३१ में प्रकाशित हुआ था, उस में विक्रमार्थ पुस्तकों की सूची में वेदविरुद्धमत-खण्डन का उल्लेख है, वेदान्तिध्वान्त-निवारण का निर्देश नहीं है ।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण "**ओरियण्टल प्रेस बम्बई**" में छपा था। इस पर मुद्रण काल 'सं० १९३२ ई० सन् १८७६' छपा है तदनुसार यह ग्रन्थ नवसंवत्सर (चैत्र शु० १) १९३३=२६ मार्च १८७६ से पूर्व फाल्गुन मास में छप गया था ।

वेदान्तिध्वान्तनिवारण के मुख पृष्ठ पर निम्न लेख है—

नन्दिमुख ब्राह्मण श्यामजी विश्राम ने स्वदेशार्थ प्रसिद्ध की ।

ग्रन्थ पर लेखक के नाम का अभाव

इस पुस्तक के भी आदि वा अन्त में कहीं पर महर्षि के नाम का उल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं, वेदान्तिध्वान्तनिवारण के अन्त में तथा संस्कारविधि के प्रथम संस्करण (सवत् १९३३ वि०) में विषय-सूची के पीठ पर ग्रन्थों की जो सूचीं छपी है, उसमें भी ग्रन्थ के साथ महर्षि के नाम का उल्लेख नहीं है।[1] इससे यह नहीं समझना चाहिये कि '**वेदान्तिध्वान्त-निवारण' पुस्तक ऋषि की बनाई हुई नहीं है**। महर्षि ने आषाढ़ वदि १२ संवत् १९६५ शुक्रवार के दिन हैनरी एस० आलकाट को संस्कृतभाषा में एक पत्र लिखा था। उसमें 'वेदान्तिध्वान्त-निवारण' को स्वरचित लिखा है। पत्र का वह अंश इस प्रकार है—

"ये च मया वेदभाष्य-सन्ध्योपासनार्याभिविनय-वेदविरुद्धमत-खण्डन-वेदान्तिध्वान्तनिवारण-सत्यार्थप्रकाश-संस्कारविध्यार्योद्देश्यरत्न-मालाख्या ग्रन्था निर्मिता···।" पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ १६२।

'वेदान्तिध्वान्त-निवारण' के वर्तमान संस्करणों के मुखपृष्ठ की पीठ पर निम्न श्लोक छपा हुआ मिलता है—

---

१. दोनों पुस्तकों में छपे विज्ञापन परिशिष्ट ७ में देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानूर्वोपेतं परमपरमाख्यातुमनघाः,
गिराया नं जानन्त्यमतिमतविध्वंसमतिना ।
स वेदान्तश्रान्तानभिनवमतभ्रान्तमनसः,
समुद्धतुं श्रौतं प्रकटयति सिद्धान्तमनिशम् ॥

यह श्लोक प्रथम संस्करण में नहीं है। हमें इसका द्वितीय संस्करण[1] देखने को नहीं मिला। तृतीय संस्करण में यह श्लोक छपा है। अतः द्वितीय या तृतीय संस्करण में इस श्लोक का समावेश हुआ होगा। इस श्लोक का मुद्रित पाठ कुछ अशुद्ध है।

द्वितीय संस्करण—वेदान्तिध्वान्त-निवारण' के प्रथम संस्करण की भाषा बहुत अशुद्ध थी, क्योंकि उस समय महर्षि को आर्यभाषा बोलने वा लिखने का सम्यग् अभ्यास नहीं था। इसके अगले संस्करणों में भाषा का उचित संशोधन किया गया है।

श्री पं॰ महेशप्रसाद जी ने '**महर्षि दयानन्द सरस्वती**" नामक पुस्तक के पृष्ठ २१ पर इस विषय में लिखा है—

"यह पुस्तक पहली बार मुम्बापुरी (=बम्बई) में छपी थी। उसमें हिन्दीभाषा बहुत अशुद्ध हो गई थी। दूसरी आवृत्ति में वह सामग्री अशुद्ध हुई, जो संस्कृत में थी।"

यजुर्वेद-भाष्य श्रावण शुक्ला १५ संवत् १९३९ के ४०, ४१ सम्मिलित अङ्क के टाइटल पेज पर मुंशी समर्थदान प्रवन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय प्रयाग की ओर से निम्न सूचना प्रकाशित हुई थी—

"वेदान्तिध्वान्त-निवारण"

"सब सज्जनों को प्रकट हो कि यह पुस्तक प्रथम वार मुम्बापुरी में मुद्रित हुआ था। उसमें भाषा बहुत अशुद्ध थी। इसलिये मैंने जहां तक उचित समझा, द्वितीयावृत्ति में इसको शुद्ध करके छापा है। परन्तु मैंने केवल भाषामात्र शुद्ध की है, क्योंकि अधिक फेरफार करने से ग्रन्थकर्त्ता के अभिप्राय में अन्तर आ जाता है।"

इस सूचना से स्पष्ट है कि द्वितीय संस्करण में इस ग्रन्थ की भाषा का संशोधन मुंशी समर्थदान ने किया था। इसका द्वितीय संस्करण

---

१. वेदान्तिध्वान्त-निवारण की द्वितीयावृत्ति श्रावण संवत् १९३९ में प्रकाशित हुई थी। यह अनुपद ही लिखा जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री स्वामी जी के जीवन-काल में ही प्रकाशित हो गया था, यह भी उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है।

—:o:—

१०—शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण (पौष सं० १९३१)

गुजरात प्रान्त में वल्लभ सम्प्रदाय की भांति 'स्वामी नारायण मत' का भी बहुत प्रचार था। अत एव महर्षि ने अपने गुजरात परिभ्रमणकाल में स्वामी नारायण मत के खण्डन में अनेक व्याख्यान दिए, और उसी समय "**शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण**" नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की। इस ग्रन्थ में स्वामी नारायण मत के प्रवर्तक स्वामी सहजानन्द कृत "**शिक्षापत्री**" संज्ञक ग्रन्थ का खण्डन है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम '**स्वामी नारायण मत-खण्डन**" भी है।

इस पुस्तक की रचना के विषय में पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित में दो परस्पर विरुद्ध वर्णन मिलते हैं। यथा—

"स्वामीजी ने सूरत में ही 'स्वामी नारायण मत खण्डन' पर एक पुस्तक लिखी।" जीवनचरित, पृष्ठ ३०९।

यह वर्णन **मार्गशीर्ष संवत्** १९३१ का है। इसके आगे पुनः पृष्ठ ३१६ पर लिखा है—

"अहमदाबाद में स्वामी नारायण मत का खण्डन किया और 'स्वामी नारायण मत खण्डन' नामक पुस्तक रची।"

स्वामी जी महाराज अहमदाबाद कई बार गए थे। उक्त वर्णन जिस प्रसंग में है, उस बार महर्षि अहमदाबाद में पौष वदि ५ से पौष सुदि ११ संवत् १९३१, तदनुसार २८ दिसम्बर १८७४ से १७ जनवरी १८७५ तक रहे थे।

जीवनचरित्र के उक्त दोनों लेख परस्पर में तो विरुद्ध हैं ही परन्तु शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण के अन्त में दी हुई ग्रन्थसमाप्ति की तिथि से भी विरुद्ध हैं। ग्रन्थ के अन्त में इसका रचनाकाल इस प्रकार लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भूमिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे सहस्यस्याऽसिते दले।
एकादश्यामर्कवारे ग्रन्थोऽयं पूर्तिमागमत् ॥"

अर्थात् संवत् १९३१ पौष बदि ११ रविवार (३ जनवरी सन् १८७५) के दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

यहां यह ध्यान देने योग्य है कि गुजरात प्रान्त में शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण की रचना होने पर भी ग्रन्थ के अन्त में दिया गया काल गुजराती पञ्चांग के अनुसार नहीं है, उत्तर भारतीय पञ्चांग के अनुसार है। गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार पौष कृष्णा एकादशी को २ फरवरी मंगलवार पड़ता है। उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार पौष कृष्णा ११ को ३ जनवरी रविवार है।

ऋ० द० के सं० १९३१ माघ वदि २ शनिवार (२३ जनवरी १८७५ के पत्र (पूर्णसंख्या १६, भाग १, पृष्ठ ४८-४९) के अनुसार महर्षि पौष कृष्णा ५ से पौष शुक्ला ११ (२८ दिसम्बर १८७४ से ३ जनवरी १८७५ तक राजकोट में रहे थे। अतः शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण ग्रन्थ राजकोट में पूर्ण हुआ था। इतना निश्चित है।

श्री पं० महेशप्रसाद जी ने जीवन-चरित के उपर्युक्त विरोध का परिहार करने का कुछ प्रयत्न किया है। उन्होंने "**महर्षि जीवन-दर्शक**" पुस्तक के पृष्ठ २७ पर लिखा है—

"सूरत में लिखना आरम्भ किया होगा, अथवा लिखने का विचार किया होगा। अहमदाबाद में उक्त पुस्तक का अधिक भाग तैयार हो गया होगा, और पूर्णरूप से उसकी समाप्ति राजकोट में हुई होगी।"

हमें यह विरोध-परिहार भी ठीक नहीं जंचता, क्योंकि हम जानते हैं कि वेदान्ति-ध्वान्त-निवारण पुस्तक को महर्षि ने दो दिन में लिख लिया था।[1] शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण भी आकार में वेदान्ति-ध्वान्त-निवारण के लगभग बराबर है। अतः इसके लेखन में इतना लम्बा काल लगना सम्भव ही नहीं, असंभव है। अधिक से अधिक अहमदाबाद निवास (मार्गशीर्ष शु० ३ से पौष कृष्ण ५ सं० १९३१= ११ दिसम्बर से २८ दिसम्बर १८७५) के अन्तिम दिनों में शिक्षा-पत्रीध्वान्त-निवारण के लेखन का आरम्भ माना जा सकता है।

---

१. द्र०—पूर्व पृष्ठ ८३ पं० १८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ की मूल भाषा

महर्षि ने यह ग्रन्थ भी केवल **संस्कृत-भाषा** में रचा था। वर्तमान में उपलब्ध भाषानुवाद मूल संस्कृत का अनुवाद न होकर इसके **गुजराती अनुवाद** से किया गया है। द्रष्टव्य दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रह (रामलाल कपूर ट्रस्ट संस्करण) पृष्ठ ४३५ की टिप्पणी २। इस ग्रन्थ का भाषानुवाद मूल संस्कृत से क्यों नहीं किया गया, यह अज्ञात है। शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण का आर्यभाषानुवाद-सहित प्रथम संस्करण संवत् १९५८ में छपा था। देखो—अजमेर मुद्रित शताब्दी संस्करण भाग २, पृष्ठ ५१५ के सामने शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण के संस्करणों का विवरण।

ग्रन्थ पर लेखक के नाम का अभाव

इस ग्रन्थ के आद्यन्त में कहीं भी महर्षि के नाम का उल्लेख नहीं मिलता और संस्कारविधि के प्रथम संस्करण में दी हुई पुस्तक-सूची (द्र०—परिशिष्ट ७) में भी ग्रन्थकर्त्ता के नाम के स्थान में '......' बिन्दुएं रखी हैं। परन्तु लेखन-शैली से स्पष्ट है कि इस का संस्कृत भाग ऋषि दयानन्द रचित ही है।

प्रथम संस्करण का मुद्रण काल

माघ बदि २ शनिवार संवत् १९३१ (२३ जनवरी १८७५) को महर्षि ने एक पत्र "स्टार प्रेस बनारस" के स्वामी मुन्शी हरवंशलाल को लिखा था। उस में "शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण" के विषय में पूछा है—**"और शिक्षा की पुस्तक छपी कि नहीं ?"**

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४९, पं० १०-११।

इससे अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण स्टार प्रेस बनारस से प्रकाशित हुआ होगा। यह संस्करण हमारे देखने में नहीं आया। इसलिए निश्चय से नहीं कह सकते कि इस संस्करण में केवल संस्कृत भाग छपा था अथवा उसका भाषानुवाद भी साथ में था। इस संस्करण का अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं मिलता। अतः यह भी संदेह है कि "स्टार प्रेस बनारस" से वह ग्रन्थ छपा भी था वा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती अनुवाद

इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद महर्षि ने स्वयं कराया था। इस विषय में उन्होंने चैत्र बदि ९ शनिवार' १९३२ को श्री गोपालराव हरि देशमुख को इस प्रकार लिखा था—

"और शिक्षापत्री का खण्डन पुस्तक की गुजराती भाषा में व्याख्या भी हो गई। उसके तीन-चार फार्म होंगे। १५, १६ रुपये फार्म के हिसाब से ५०, ६० रुपये लगेंगे। सो वहां (अहमदाबाद में) छपवाओगे वा मुम्बई में। परन्तु जो मुम्बई में छपेगा तो अच्छा होगा। इसका उत्तर शीघ्र देना।" पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ५८, पं० १३ से पृष्ठ ५९, पं० ३ तक।

शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण का गुजराती अनुवाद सहित प्रथम संस्करण **"ओरियण्टल प्रेस बम्बई"** से सन् १८७६=संवत् १९३३ के आरम्भ में प्रकाशित हुआ था। इसके मुख पृष्ठ के लेख से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद महर्षि के प्रमुख शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा ने किया था। आषाढ़ संवत् १९३७ के यजुर्वेद-भाष्य के १५ वें अंक के अन्त में छपी हुई पुस्तकों की सूची से विदित होता है कि इसका केवल **गुजराती अनुवाद भी छपा था** (द्र०—परिशिष्ट ७)। यह गुजराती अनुवाद मात्र हमारे देखने में नहीं आया।

अजमेर मुद्रित शताब्दी संस्करण भाग २ पृष्ठ ८१५ के सामने शिक्षापत्रीध्वान्त-निवारण के विविध संस्करणों की जो सूची छपी है, उसमें संवत् १९३३ में गुजराती अनुवाद सहित छपे संस्करण का निर्देश नहीं है।

—:o:—

१. यह पत्र वस्तुतः ज्येष्ठ बदि ९ शनिवार १९३२ का है। द्र०—'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ ५८ की टि० ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चम अध्याय

सं० १९३२ के ग्रन्थ

११–आर्याभिविनय (चैत्र १९३२)

वैदिक-भक्ति के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान के लिये ऋषि ने '**आर्याभिविनय**' नाम का एक अपूर्व ग्रन्थ रचा। ऋषि ने स्वयं इस ग्रन्थ के निर्माण का प्रयोजन इस प्रकार लिखा है—

"इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूपज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे। जिससे नास्तिक और पाखण्ड मतादि अधर्म में मनुष्य न फसे।"

—आर्याभिविनय की उपक्रमणिका[1]

ग्रन्थ का रचना-काल

ऋषि दयानन्द ने श्री गोपालराव हरि देशमुख को फाल्गुन बदि २ संवत् १९३१ के पत्र में लिखा था—

"और स्तुति प्रार्थना उपासना करने के वास्ते वेदमन्त्रों से चोपड़ी (=पुस्तक) बनाने की तैयारी है।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ५२, पं० १८।

आर्याभिविनय के आरम्भ में इस ग्रन्थ के प्रारम्भ करने की तिथि इस प्रकार लिखी है—

"चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया॥

अर्थात् चैत्र शुक्ला १० गुरुवार संवत् १९३२ को इस ग्रन्थ का बनाना प्रारम्भ किया है।

---

१. दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रह (रामलाल कपूर ट्रस्ट संस्करण) पृष्ठ ४५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्याभिविनय की अपूर्णता

यद्यपि इस ग्रन्थ के अजमेर-संस्करणों में द्वितीय प्रकाश के अन्त में "**समाप्तश्चायं ग्रन्थः**" पाठ मिलता है, तथापि इस ग्रन्थ की अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों परीक्षाओं से विदित होता है कि यह ग्रन्थ वस्तुतः अपूर्ण है। इस ग्रन्थ के केवल दो ही प्रकाश छपे हैं, जिन में प्रथम में ऋग्वेद के ५३ मन्त्र, और द्वितीय में यजुर्वेद ५४ मन्त्र; तथा तैत्तिरीय आरण्यक का १ मन्त्र हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कुल १०८ मन्त्र व्याख्यात हैं। इस ग्रन्थ के चार प्रकाश और बनने शेष रह गये थे, जिनमें सम्भवतः महर्षि सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण और उपनिषद् आदि के मन्त्रों की व्याख्या लिखना चाहते थे।

इस ग्रन्थ के अपूर्ण होने में निम्न प्रमाण हैं—

१—ऋषि ने श्री गोपालराव हरि देशमुख को (संवत् १९३२ चैत्र बदि ९ शनिवार[1] को) लिखा था—

"आर्याभिविनय के दो अध्याय तो बन गये हैं, और चार आगे बनने के हैं।" पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ५८, पं० १।

२—आर्याभिविनय की उपक्रमणिका के पांचवें श्लोक की भाषा में लिखा है—

"इस ग्रन्थ में केवल चार वेदों और ब्राह्मणग्रन्थों के ही मूलमन्त्रों का प्राकृतभाषा में व्याख्यान किया है।"

—देखो प्रथम संस्करण (संवत् १९३२) पृष्ठ २, और द्वितीय संस्करण (संवत् १९४०) पृष्ठ ५; तथा रामलाल कपूर ट्रस्ट के संस्करण।

आर्याभिविनय के अजमेर के छपे वर्त्तमान संस्करणों में उक्त पाठ के स्थान में निम्न पाठ मिलता है—

"इस ग्रन्थ में दो वेदों के मूल मन्त्रों का प्राकृतभाषा में व्याख्यान किया है।"

यह पाठ निश्चय ही किसी ने पीछे से बदला है, जो कि ठीक नहीं है।

---

१. यह पत्र वस्तुतः ज्येष्ठ वदि ९ शनिवार का है। द्र०—पत्र और विज्ञापन भाग १, पृष्ठ ५८ की टि० ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—संस्कारविधि प्रथम संस्करण (संवत् १९३३) में विषयसूची की पीठ पर पुस्तकों का जो सूचीपत्र छपा है, (द्र० परिशिष्ट ७) उसमें भी 'आर्याभिविनय' के **दो भाग** लिखें हैं।

प्रमाण संख्या १ के 'दो **अध्याय**' शब्द से, और संख्या ३ के '**दो भाग**' शब्द से '**दो प्रकाश**' हो अभिप्रेत हैं।

प्रथम संस्करण

'आर्याभिविनय' का प्रथम संस्करण 'दाधीचवंशज वैजनाथात्मज लालजी शर्मा' के उद्योग से वैशाख शुक्ला १४ संवत् १९३३ में 'आर्यमण्डल यन्त्रालय' बम्बई में छपकर प्रकाशित हुआ था। इसके मुखपृष्ठ पर संशोधक का नाम "**पं० लक्ष्मण शर्मा**"[1] छपा है। प्रथम संस्करण के मुखपृष्ठ का उपयोगी लेखांश इस प्रकार है—

"श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यत्वाद्यनेक- गुणसंपदविराजमान- श्रीमद्वेदविहिताचारधर्मनिरूपक- श्रीमद्विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनर्ग्वेदादिवेदमन्त्रैर्विरचितः।

स च तदाज्ञया दाधीचवंशावतंस-व्यासोपनाम-वैजनाथात्मजलालजी शर्मा मुद्रणकरणार्थोद्योगकर्त्ता।

तत् कोटग्रामस्थकेणीत्युपाह्वभट्टनारायणसूनुलक्ष्मणशर्मणा संशोध्य लोकोपकाराय।

चक्षूरामाङ्कभूपरिमिते शाके[2] १९३२ शुक्ल १४ श्यामार्यमण्डलाख्यायसमुद्रणालये संस्कृत्य प्रकाशितः।

शकाब्द १७९८ हूणाब्द १८७६"।

यहां मुद्रण का काल "वैशाख संवत् १९३२" छपा है, वह गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है। गुजरात में नये संवत् का प्रारम्भ

---

१. यह पं० लक्ष्मण शर्मा संस्कारविधि और पञ्चमहायज्ञविधि के प्रथम संस्करण का भी संशोधक है। इन्हीं पं० लक्ष्मण शर्मा के नाम आषाढ़ वदि ९ शुक्रवार संवत् १९३३ को स्वामीजी ने एक पत्र लिखा था, जिसमें आर्याभिविनय की छपाई के रुपये देने और पुस्तक भेजने का उल्लेख है। देखो—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पूर्ण संख्या ३१, पृष्ठ ६२, पं० ११ से अन्त तक।

२. शाके=संवत्सरे। 'शक' 'शाक' शब्द संवत्सर के वाचक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्त्तिक शुक्ल १ से मनाया जाता है। अतः उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार यहां संवत् १९३३ समझना चाहिये।

'आर्याभिविनय' के प्रथम संस्करण की भाषा अत्यन्त अपरिमार्जित है। उसमें अनेक वाक्य संस्कृत में ही लिखे हुए हैं। क्योंकि उस समय तक महर्षि को आर्यभाषा बोलने और लिखने का अच्छा अभ्यास नहीं हुआ था। (देखो–सत्यार्थप्रकाश की भूमिका पृष्ठ १, रामलाल कपूर ट्रस्ट संस्करण)। पुनरपि वह भाषा ग्रन्थ के अनुरूप अत्यन्त ही भक्ति-भावपूर्ण है। इसके अतिरिक्त इस संस्करण में अनेक पाठ ऐसे भी हैं, जिनसे पाठक भ्रम में पड़ सकते हैं।

यथा द्वितीय प्रकाश मन्त्र ३२ की व्याख्या में लिखा है—

"वही सब जगत् का अधिष्ठान उपादान निमित्त और साधानादि है।

इसी प्रकार द्वितीय प्रकाश के ४४ वें मन्त्र की व्याख्या में—

"जीव ईश्वर के सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं। वह ब्रह्म कधी उत्पन्न नहीं होता······किं च व्याप्यव्यापक आधाराधेय जन्यजनकादि सम्बन्ध तो जीवादि के साथ ब्रह्म का है।"

इन उद्धरणों से भ्रम होता है कि ग्रन्थकार ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण, और जीव का उत्पन्न होना मानते हैं। वस्तुतः ये दोष लेखकभ्रान्ति आदि किन्हीं कारणों से हुए होंगे। क्योंकि इस ग्रन्थ से पूर्व महर्षि अद्वैतवाद के खण्डन में दो पुस्तकें लिख चुके थे। फिर भला वे ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण कैसे लिख सकते थे? इस प्रकार के समस्त दोष द्वितीय संस्करण में ठीक कर दिये हैं।

द्वितीय संस्करण

'आर्याभिविनय' का प्रथम संस्करण कुछ ही वर्षों में समाप्त हो गया था। इसके द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करने की प्रथम सूचना 'वर्णोच्चारणशिक्षा' (संवत् १९३६) के अन्त में छपी थी—

निम्नलिखित पुस्तकें द्वितीय वार छपेंगे—

१. सत्यार्थप्रकाश। २. वेदान्तिध्वान्तनिवारण।
३. आर्याभिविनय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु प्रतीत होता है कि किन्हीं कारणों से 'आर्याभिविनय' का द्वितीय संस्करण शीघ्र प्रकाशित न हो सका। द्वितीय संस्करण के मुखपृष्ठ पर उसके प्रकाशित होने का काल **माघ संवत् १९४०** छपा है।

ऋग्वेदभाष्य के वैशाख शुक्ल संवत् १९४१ के ५४, ५५ वें सम्मिलित अंक के अन्तिम पृष्ठ पर 'आर्याभिविनय' के विषय में **"......... यह पुस्तक १५ मई (१८८४) तक तैयार हो जायगा"** ऐसी सूचना छपी है। तदनुसार द्वितीय संस्करण ज्येष्ठ संवत् १९४१ में विक्री के लिये तैयार हुई होगी। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर माघ संवत् १९४० छपा है। इससे यह तो स्पष्ट हो है कि उक्त समय तक ग्रन्थ छप गया था। ऋषि दयानन्द के स्वर्गवास के कारण प्रेस की अव्यवस्था से सिलाई आदि में अधिक समय लग गया। अतएव वह १५ मई १८८४ तक बिकने के लिये तैयार न हो सका।

द्वितीय संस्करण में भाषा का संशोधन

प्रथम संस्करण को अपेक्षा द्वितीय संस्करण को भाषा पर्याप्त परिष्कृत है। इसमें भाषा के परिष्कार के अतिरिक्त कुछ परिवर्तन भो उपलब्ध होता हैं। यह संशोधन और परिवर्तन आदि किसने किया, इस विषय में हमें काई संकेत नहों मिला। सम्भव है महर्षि ने स्वयं किया हा, अथवा वैदिकयन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ता मुंशी समर्थदान ने किया हो। ऋषि के पत्र-व्यवहार से विदित हाता है कि महर्षि ने भाषा के संशोधन का अधिकार मुंशी समर्थदान को दे रक्खा था[1]। इसी के आधार पर उसने कहीं-कहीं **'सत्यार्थप्रकाश'** में भी संशोधन किया था। वेदान्तिध्वान्त-निवारण' के द्वितीय संस्करण की भाषा का संशोधन भो मुंशी समर्थदान ने किया था, यह पूर्व (पृष्ठ ८५) लिख चुके हैं।

एक आवश्यक विचार—मुक्ति की अनन्तता या सान्तता

'आर्याभिविनय' के प्रथम और द्वितीय संस्करणों[2] में कई स्थानों

१. देखो—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृ० ६२०, पं० ४-५ तथा पृ० ७६४, पं० ३-६।

२. रामलाल कपूर ट्रस्ट के संस्करणों में भी ये पाठ इसी प्रकार हैं, अजमेर के संस्करणों में भेद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ऐसे पाठ उपलब्ध होते हैं, जिनसे मुक्ति की अनन्तता प्रतीत होती है। यथा—

"फिर कभी जन्म-मरण आदि दुःखसागर को प्राप्त नहीं होता।"

आर्याभिविनय की उपक्रमणिका।

"फिर वहां से कभी दुःख में नहीं गिरते।"

—प्रथम प्रकाश, मंत्र २१।

इसी प्रकार का उल्लेख ऋषि के अन्य ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है। आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय श्री पं० क्षेमकरणदास जी ने १७ सितम्बर सन् १८८३ में मुक्तिविषय में एक पत्र ऋषि को लिखा था। उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—

"आगे निवेदन है कि यह बात देखे जाने पर कि मुक्ति-विषय में कहीं-कहीं परस्पर विरोध है, इसलिये ८ सितम्बर १८८३ को खास अन्तरंग सभा में मुक्ति का विषय देखा गया, तो जान पड़ा कि **वेदभाष्यभूमिका** पृष्ठ १८४, १८७' (मुक्ति-विषय); **आर्याभिविनय** पृष्ठ १६, २३, ४२, ४३, ४४, ४५, ४८, ५५; **पञ्चमहायज्ञविधि** पृष्ठ ५६; और **आर्योद्देश्यरत्नमाला** अंक २६ से साबित होता है कि मुक्त जीव जन्ममरणरहित हो जाता है। और **संस्कृतवाक्यप्रबोध** पृष्ठ ५० में लिखा कि—जो जीव मुक्त होते हैं, वे सर्वदा वहां नहीं रहते, किन्तु जितना समय ब्रह्मकल्प का परिमाण है, उतने समय तक ब्रह्म में वास करके आनन्द भोग के फिर जन्म और मरण को अवश्य प्राप्त होते हैं। जो कि 'संस्कृतवाक्यप्रबोध' और ऊपर लिखित लेखों में हम तुच्छबुद्धियों को परस्पर विरोध दीख पड़ता है। इसलिये अन्तरंग सभा की ओर से सविनय निवेदन है कि कृपा करके इसका उत्तर प्रमाणसहित शीघ्र लिखिये कि उसी के अनुसार निश्चय माना जावे, और विरोध पक्षवालों को भी तदनुसार उचित समय पर उत्तर दिया जावे।"

पत्र और विज्ञापन, भाग ४, पूर्णसंख्या ४८६, पृष्ठ ५११-५१२।

महर्षि को जिस समय यह पत्र मिला होगा उस समय वे रुग्ण थे। अतः सम्भव है इस आवश्यक पत्र का उत्तर भी न दिया होगा।

---

१. यहां पुस्तकों की जो पृष्ठसंख्या दी गई है, वह उनके प्रथम संस्करणों की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि दिया भी होगा, तब भी अप्राप्त होने से हम उस उत्तर से वञ्चित हैं।

पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित्र तथा फर्रुखाबाद आर्य-समाज के इतिहास से ज्ञात होता है कि महर्षि पहले मुक्ति को अनन्त मानते थे। कुछ काल पीछे वे मुक्ति को सान्त मानने लगे। जीवन चरित्र पृष्ठ ६०२, ६०३ में लिखा हैं—

"पं० कृष्णराम इच्छाराम भी महाराज के आनन्दबाग निवास समय (संवत् १९३६) में काशी पहुंच गये। वह कहते हैं कि जब वह स्वामीजी से पहली बार (संवत् १९३१ में) बम्बई में मिले थे, तो स्वामीजी मुक्ति को अनन्त मानते थे, परन्तु काशी में मिलने पर ज्ञात हुआ कि सान्त मानते हैं। कारण पूछने पर महाराज ने कहा इस विषय पर हमने बहुत विचार किया और सांख्य शास्त्र के प्रमाणानुसार हमें मुक्ति सान्त ही माननी पड़ी। जब जीव का ज्ञान परिमित हैं, तब जो उस ज्ञान का फल है वह अपरिमित वा अनन्त कैसे ?

यह वर्णन महर्षि के ७वीं बार काशी जाने का है। इस बार महर्षि कार्तिक शुक्ला ८[1] संवत् १९३६ से वैशाख कृष्णा ११ संवत् १९३७ तक लगभग ६ मास काशी में रहे थे।

फर्रुखाबाद आर्यसमाज के इतिहास पृष्ठ १३४ में लिखा हैं—

"ता० २० जून रविवार सन् १८८० को मुक्ति विषय पर स्वामीजी का अभूतपूर्व व्याख्यान हुआ। स्वामीजी ने कहा कि मैं इस विषय में बहुत समय से सोच रहा था कि—**न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते**' अधिकांश लोग ऐसा पुकारा करते हैं, यह बात कहां तक सच हैं। मुझे शंका होती थी कि कभी तो फल चुकना चाहिये, क्योंकि जब [वे कर्म] सान्त हैं वह (?, उनका फल) अनन्त कैसे बन सकता है। बहुत देखभाल [और] विचार के बाद महर्षि कपिल का सिद्धान्त मिला—

'**इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः।**' सांख्य अ० १, सू० १५९।

१. भ्रमोच्छेदन में कार्तिक शुक्ला १४ को काशी पहुंचना लिखा है, वह अशुद्ध है। देखो आगे 'भ्रमोच्छेदन' पुस्तक का प्रकरण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त मोक्ष नहीं होता। जैसे वर्तमान समय में जीव बद्ध और मुक्त हैं वैसे ही सदा रहते हैं। बन्ध और मुक्ति सदा रहती है। यदि एक-एक जीव यों ही मुक्त होता जाय तो एक दिन संसार के मनुष्यों से सृष्टि खाली हो जायेगी और सृष्टि प्रचार के लिये नये जीव बनाने पड़ेंगे। परन्तु नये जीव बनाए नहीं जाते, वे नित्य और अनादि हैं। ऐसा सब शास्त्रकार मानते हैं। इसलिये अत्यन्त मुक्ति नहीं होती, यह मैंने निश्चय करके आज विषय में पहली वार कथन किया है। अब तक यह सिद्धान्त विचाराधीन होने से नहीं कहा गया था। उपरांत मुण्डकोपनिषद् से भी प्रमाणित किया कि '**ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे**" (मुं० ३ खं० २ मं० ६)। मुक्त पुरुष परांत काल (महाप्रलय?) ३११०४०००००००००० इकत्तीस नील दस खरब चालिस अरब वर्ष तक ईश्वर के आश्रय में सुखपूर्वक रहते हैं। यह क्या थोड़ा मौक्तिक आनन्द है? इस प्रकार बहुत गम्भीर और तर्कसिद्ध कथन किया था।"

ऋषि के जीवन-चरित और फर्रुखावाद आर्यसमाज के इतिहास के उपर्युक्त लेखों की ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के लेखल काल से तुलना की जाय तो पूर्वोक्त वर्णन सत्य प्रतीत होता है। श्री पं० क्षेमकरणदासजी ने अपने (पूर्वोद्‌धृत) पत्र में जिन-जिन पुस्तकों के मुक्ति की अनन्तता प्रतिपादक लेख की ओर संकेत किया है, उनका रचनाकाल इस प्रकार है—

आर्याभिविनय	चैत्र सं० १९३२
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	भाद्र सं० १९३३
आर्योद्देश्यरत्नमाना	श्रावण सं० १९३४
पञ्चमहायज्ञविधि	भाद्र सं० १९३४

ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में मुक्तिविषय का विशेषरूप से प्रतिपादन किया हैं (देखो—रामलाल कपूर ट्रस्ट

---

१. ४३२०००००००० चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का ब्राह्म का दिन, इतने ही वर्षों की ब्राह्म रात्रि=प्रलय=८६४००००००००० वर्ष का अहोरात्र, ३६० अहोरात्र का एक वर्ष, १०० वर्ष का परान्त काल=३६००० वार सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय=८६४००००००००×३६०००=३११०४०००००००००० इकत्तीस नील दस खरब चालीस अरब मानुष वर्ष का परान्त का=मोक्षकाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण पृष्ठ २०६—२१८), परन्तु उसमें कहीं भी मुक्ति से पुनरावृत्ति का स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता है, उलटा अनन्तता के बोधक दो तीन वाक्य अवश्य हैं, पर वे भी साधारण रूप में। हां ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के सृष्टिविद्या प्रकरण (पृष्ठ १४३, रा० ला० क० ट्र० सं०) में एक वाक्य ऐसा अवश्य है, जिससे पुनरावृत्ति की सूचना प्राप्त होती है। यथा—

"यत्र मोक्षाख्ये परमे पदे सुखिनः सन्ति। न तस्मात् ब्रह्मणश्शतवर्षसंख्यातात् कालात् [पुरा] कदाचित् पुनरावर्तन्त इति।"[1]

इससे प्रतीत होता है कि मुक्ति से पुनरावृत्ति होनी चाहिये, यह विचार ऋषि के हृदय में सं० १९३३ में उत्पन्न हो चुका था, परन्तु मुक्तिप्रकरण में इस पर विशेष विचार न होने से विदित होता है कि ऋषि उस समय तक कोई निर्णय नहीं कर पाये थे। यही बात फर्रुखाबाद आर्यसमाज के इतिहास के पूर्वोद्धृत उद्धरण में कही है। अतः निश्चय ही ऋषि दयानन्द इस विषय में चिरकाल तक दोलायमान रहे। संस्कृतवाक्यप्रबोध, जिसमें प्रथमबार मुक्ति को सान्त लिखा है, उसका रचनाकाल फाल्गुन शुक्ला ११ सं० १९३६ है। अतः बहुत सम्भव है ऋषि का मुक्ति-विषयक मन्तव्य संस्कृतवाक्यप्रबोध की रचना से कुछ समय पूर्व ही परिवर्तित हुआ हो। यही कारण है कि सं० १९३६ से पूर्व के किसी ग्रन्थ में मुक्ति की सान्तता का स्पष्टतया उल्लेख नहीं मिलता। जब ऋषि दयानन्द ने मुक्ति के विषय

१. भूमिका के अजमेर से छपे संस्करणों में इसका भाषानुवाद सर्वथा विपरीत है। उसमें मोक्ष को नित्य लिखा है।

२. पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन-चरित पृष्ठ ४७१ में लिखा है कि स्वामीजी ने डेरागाजीखां के पं० बरातीलाल ने कहा था कि मुक्ति से पुनरावृत्ति होती है। यह संवत् १९३४ के अन्त या संवत् १९३५ के आरम्भ की घटना है।

इसी पृष्ठ पर हमने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की मुक्ति से पुनरावृत्ति द्योतक जो पङ्क्ति उद्धृत की है, वह भूमिका के प्रथम संस्करण के अंक ६ में पृष्ठ १२९ में है। इस अंक का मुद्रण श्रावण संवत् १९३४ के मध्य में हुआ था। क्योंकि इस अंक के मुख पृष्ठ के नीचे ऋषि दयानन्द का भाद्रमास १९३४ में जालन्धर में रहने का पुरोगम छपा है। अतः सम्भव है ऋषि दयानन्द ने यह पंक्ति मुद्रण से कुछ पूर्व ही बढ़ाई होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में निश्चय कर लिया, **उस समय संस्कृतवाक्यप्रबोध में उसे स्पष्ट कर दिया।** हमारा तो विचार यह है कि संस्कृतवाक्यप्रबोध में इस प्रकरण का कोई प्रसङ्ग ही नहीं था, अपने नये निश्चित किये सिद्धान्त को प्रतिपादित और प्रकट करने के लिये ही संस्कृतवाक्यप्रबोध में स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकरण लिखा गया। यदि उन्हें संस्कृतवाक्यप्रबोध में वस्तुतः अपने मन्तव्यामन्तव्यों का प्रतिपादन करना ही इष्ट होता, तो वे इस प्रकरण को विस्तार से लिखते, परन्तु उन्होंने अति संक्षेप से इस प्रकरण में केवल **मुक्ति की सान्तता का प्रतिपादन** किया और किसी मन्तव्य को छुआ भी नहीं।

अजमेरीय संस्करण में परिवर्तन

आर्याभिविनय के सप्तम संस्करण से लेकर आज तक जितने संस्करण वैदिक यन्त्रालय अजमेर के छपे मिलते हैं। उनमें मुक्ति की अनन्तता के बोधक समस्त वाक्य बदले हुये हैं। यह परिवर्तन किस संस्करण में और किसने किया, यह अज्ञात है, क्योंकि हमें आर्याभिविनय के ३–६ तक ४ संस्करण देखने को नहीं मिले। इस प्रकार का परिवर्तन किसी भी ग्रन्थ में नहीं होना चाहिये। ऐसे परिवर्तन करने से यद्यपि सिद्धान्तविषयक कोई भ्रम उत्पन्न नहीं होता, तथापि ऐतिहासिक तथ्य सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। हां, पाठक भ्रम में न पड़े, इस लिये ऐसे स्थलों पर टिप्पणियां अवश्य देनी चाहियें। इस परिवर्तन के अतिरिक्त अजमेरीय संस्करणों में अनेक स्थानों में कई-कई पक्तियां भी छुटी हुई हैं (द्र०—रामलाल कपूर ट्रस्ट के संस्करण का सम्पादकीय)।

रामलाल कपूर ट्रस्ट के संस्करण

रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से आर्याभिविनय का शुद्ध सुन्दर सस्ता प्रथम संस्करण सं० १९८८ में छपा था। इसके अब तक ११[1] संस्करण छप चुके हैं। इसके सम्पादक हैं श्री पं० वाचस्पति जी एम० ए०। आपने बहुत परिश्रम करके इस संस्करण को तैयार किया था। इस संस्करण को सं० १९३२ तथा १९४० के प्रथम और द्वितीय

१. दशम संस्करण पर भी भूल से नवम संस्करण छप गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करणों से अक्षरशः मिलान करके तैयार किया था। इस के विषय में श्री वाचस्पति जी का लिखा विवरण उनके सम्पादकीय में देखें।

अन्य संस्करण

आर्याभिविनय का एक संस्करण लाहौर के जीवनदास पेन्शनर ने छपवाया था। मुख पृष्ठ न होने से मुद्रण काल अज्ञात है। इस में भाषा को सरल कर के पद, पदार्थ और व्याख्या सहित छापा है।

गुजराती अनुवाद

रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित आर्याभिविनय के आधार पर श्री स्वर्गीय पं० ज्ञानेन्द्र जी ने इसका गुजराती अनुवाद सं० १९९९ में प्रकाशित किया। इस अनुवाद में लाहौर संस्करण में नीचे दी हुई टिप्पणियों का भी अनुवाद दिया है, परन्तु ग्रन्थ की भूमिका आदि में इसका कहीं संकेत नहीं किया। तथा सर्वत्र टिप्पणियों में कोष्ठ में (अनुवादक) शब्द दे दिया है, जिससे भ्रम होता है कि ये टिप्पणियां अनुवादक की हैं। वस्तुस्थिति को प्रकट न करना अनुचित कार्य है।

अंग्रेजी अनुवाद

आर्याभिविनय का एक अंग्रेजी अनुवाद श्री स्वामी भूमानन्द जी सरस्वती ने किया था। यह पं० ठाकुरदत्त अमृतधारा धर्मार्थ ट्रस्ट (लाहौर) की ओर से सन् १९४२ में छपा था। रामलाल कपूर ट्रस्ट ने पं० ठाकुरदत्त अमृतधारा धर्मार्थ ट्रस्ट के मन्त्री जी से अनुज्ञा लेकर इसका एक सुन्दर संस्करण सन् १९७२ में प्रकाशित किया है।

अत्यन्त छोटे आकार में

श्री स्वामी छुट्टनलाल ने स्वामी प्रेस मेरठ से 'आर्याभिविनय' के नाम से २१४×३ इंच के छोटे आकार में इसे प्रकाशित किया था। इसमें आर्याभिविनय के मन्त्रों का पाठमात्र है। संभव है स्वामी छुट्टनलाल जी ने आर्यों में इसके दैनन्दिन पाठ की रुचि को बढ़ाने के लिये गीता के गुटके के समान छापने का यह प्रयत्न किया होगा।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२–संस्कारविधि

(प्रथम सं० मार्गशीर्ष १९३२, द्वितीय सं० १९४०)

प्राचीन ऋषियों ने मनुष्य-जन्म को सुसंस्कृत बनाने के लिये बहुविध संस्कारों की योजना की है। मनुस्मृति के 'निषेकादिश्मशानान्तः' (२।१६) वचन के अनुसार गृह्यसूत्रों में गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त करने योग्य अनेकविधि संस्कारों के क्रियाकलाप का सविस्तर वर्णन मिलता है। उपलब्ध गृह्यसूत्रों में इन संस्कारों की संख्या न्यूनाधिक है। इसी प्रकार संस्कारों के क्रियाकलाप में भी कुछ-कुछ भिन्नता है। मनुस्मृति और बौधायनादि अन्य धर्मसूत्रों में भी संस्कारों का वर्णन मिलता है। संस्कारों की संख्या अधिक से अधिक ४८ अड़तालीस और न्यून से न्यून १६ सोलह है।

गृह्यसूत्रों में वानप्रस्थ और संन्यास का वर्णन नहीं मिलता,[1] क्योंकि उनमें केवल उन्हीं संस्कारकर्मों का विधान है, जो गृहस्थ द्वारा गृह्याग्नि (=आवसथ्याग्नि) में किये जाते हैं, अतएव उनका नाम गृह्यसूत्र है।

ऋषि दयानन्द ने विभिन्न गृह्यसूत्रों और मनुस्मृति के आधार पर अत्यन्त उपयोगी १६ संस्कारों के क्रियाकलाप का वर्णन इस '**संस्कारविधि**' संज्ञक ग्रन्थ में किया है।

संस्कारविधि बनाने का विचार

सम्भवतः स्वामी जी महाराज को सत्यार्थप्रकाश के लेखनकाल में संस्कार-विषयक ग्रन्थ लिखने का विचार उत्पन्न हुआ होगा। क्योंकि संस्कारविधि का लिखना प्रारम्भ करने से ८, ९ मास पूर्व के पत्रों में इस ग्रन्थ के बनाने के उपक्रम का निर्देश मिलता है। यथा—

स्वामी जी ने फाल्गुन बदि २ सोमवार संवत् १९३१ (२२ फरवरी १८७५) को एक पत्र श्री गोपालराव हरि देशमुख के नाम लिखा था। उसमें लिखा है—

---

१. हमारे द्वारा दृष्ट गृह्यसूत्रों में केवन आग्निवेश्य गृह्यसूत्र के द्वितीय प्रश्न के अन्त (पृष्ठ ११८—१२०) में इनका वर्णन उपलब्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यहां निषेकादि अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार की चोपड़ी (=पुस्तक) बनाने की तय्यारी हो रही है।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ५२, पं० १६-१७।

दूसरे पत्र में पुनः लिखा है—

"संस्कारविधान का पुस्तक वेदमन्त्रों से बनेगा शीघ्र।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ५६, पं० ३।

तीसरे पत्र में फिर लिखा है—

"आगे संस्कारविधान का पुस्तक भी अवश्य शीघ्र बनेगा।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ५८, पं० २।

चौथे पत्र में आश्विन बदि २ संवत् १९३२ को लिखा है—

'एक पण्डित का खोज हो रहा है, संस्कार की पुस्तक बनाने के लिये।" पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ६१, पं० १५-१६।

ये सब पत्र संस्कारविधि के आरम्भ करने से पूर्व के हैं।

संस्कारविधि के प्रथम संस्करण का रचना काल

संस्कारविधि का लिखना कब और कहां आरम्भ हुआ, इस विषय में जीवनचरितों में पर्याप्त भेद है। 'दयानन्द-प्रकाश' में प्रथम बार बम्बई पधारने के वर्णन में लिखा है—

'संस्कारविधि उस समय लिखी जा रही थी।"

द० प्र० संस्क० ५, पृष्ठ २४१।

स्वामी जी महाराज बम्बई प्रथम बार कार्तिक कृष्णा १ सं० १९३१ (२६ अक्टूबर १८७४) में पधारे थे, और अगहन कृष्णा ८ सं० १९३१ (१ दिसम्बर १८७४) तक उन्होंने वहां निवास किया था। अतः दयानन्दप्रकाश के लेखानुसार संस्कारविधि का लेखन कार्तिक सं० १९३१ में प्रारम्भ हुआ होगा।

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित पृष्ठ ३०४ (संस्करण १) में लिखा है—

"सूरतवास के शेष दिनों में स्वामी जी इसी (नगीनदास के) बंगले में ठहरे रहे, और यहां ही उन्होंने पं० कृष्णराम इच्छाराम से संस्कारविधि लिखाना आरम्भ की थी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लेख के अनुसार संस्कारविधि का प्रारम्भ अगहन संवत् १९३१ में हुआ होगा, क्योंकि अगहन में वे सूरत में थे।

वस्तुतः संस्कारविधि के प्रारम्भ करने के ये दोनों मत अयुक्त हैं। महर्षि ने स्वयं संस्कारविधि का रचनाकाल ग्रन्थ के आरम्भ में इस प्रकार लिखा है—

चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यान्तिमे दले।
अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया॥

अर्थात् संवत् १९३२ कार्तिक अमावस्या शनिवार के दिन संस्कारविधि का लिखना आरम्भ किया।

उक्त श्लोक के पाठ में परिवर्तन

संस्कारविधि के प्रथम संस्करण में यही शुद्ध पाठ है, परन्तु संस्कारविधि के द्वितीय संस्करण से लेकर २१वें संस्करण तक **"कार्तिकस्यान्तिमे दले"** के स्थान में **"कातिकस्यासिते दले"** पाठ मिलता है। द्वितीय संस्करण की पाण्डुलिपि (रफ कापी) और प्रेस कापी दोनों में **"अन्तिमे दले"** ही पाठ है। इससे प्रतीत होता है कि द्वितीय संस्करण छापते समय प्रूफ संशोधनकाल में **'अन्तिमे'** के स्थान में **'असिते'** पाठ बनाया गया है। द्वितीय संस्करण के प्रूफों का संशोधन पं० भीमसेन और ज्वालादत्त ने किया था। इन पण्डितों का नाम द्वितीय संस्करण के मुख पृष्ठ पर छपा हुआ मिलता है। अतः यह परिवर्तन निश्चय ही इन्हीं में से किसी का है।

उक्त भूल का सुधार—कालविषयक उक्त भूल का सुधार श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने संस्कारविधि के संशोधनकाल में किया। अतः उनके संशोधनों के अनुसार सन् १९४८ में जो २२ वां संस्करण छपा, उसमें शुद्ध पाठ मिलता है।

देखने में यह परिवर्तन छोटा सा और उचित प्रतीत होता है क्योंकि संस्कारविधि की भाषा में स्पष्ट लिखा है—**"कार्तिक की अमावस्या को ग्रन्थ का आरम्भ किया"**। उत्तरभारत में महीने का अन्तिम पक्ष शुक्ल पक्ष होता है। अत एव इन उत्तर भारतीय पण्डितों को गुजराती पंचाङ्ग का ज्ञान न होने से उन्होंने **'अन्तिमे'** के स्थान पर **'असिते'** बना दिया। परन्तु काल की दृष्टि से यह महती भूल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रन्थ के लेखन का आरम्भ गुजरात-परिभ्रमण काल में हुआ था। वहां मास का अन्त पूर्णिमा पर नहीं होता, अमावास्या पर होता है। और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से मास का आरम्भ माना जाता है। अत एव उत्तर-भारत में जो कार्तिक का कृष्ण पक्ष होता है, वह दक्षिण भारत में आश्विन का कृष्ण पक्ष गिना जाता है। इस प्रकार दक्षिण-भारत का जो कार्तिक का कृष्ण पक्ष है, वह उत्तर-भारत के पञ्चाङ्ग के अनुसार मार्गशीर्ष का कृष्ण पक्ष होता है। अतः '**कार्तिकस्यान्तिमे दले अमायां**" पाठ गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार ठीक था। अर्थात् उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार **मार्गशीर्ष की अमावास्या** को ग्रन्थ का आरम्भ हुआ था। '**अन्तिमे**' के स्थान में '**असिते**' पाठ कर देने से आपाततः संगति तो ठीक लग गई, परन्तु काल और इतिहास की दृष्टि से पाठ अशुद्ध हो गया। उत्तर-भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार कार्तिक की अमावस्या के दिन 'शुक्रवार' था, शनिवार नहीं था।

साधारण से परिवर्तन से कितना महान् अनर्थ होता है, इस बात का यह स्पष्ट प्रमाण है। अतः ऋषि के ग्रन्थों का संशोधन करना कोई साधारण काम नहीं है, जो कि साधारण संस्कृत पढ़े-लिखे से कराया जा सके। इसके लिये चहुंमुखी-प्रतिभा-सम्पन्न बहुश्रुतमहापण्डितों की आवश्यता है।

कार्तिक कृष्ण ३० (उ० पं० मार्गशीर्ष ३०) संवत् १९३२ में स्वामी जी महाराज बम्बई में थे।[1] अतः संस्कारविधि का आरम्भ बम्बई में हुआ था, यह निश्चित है। ऋषि दयानन्द के जीवनचरित कितनी असावधानता से लिखे गये हैं, इसका भी यह एक उदाहरण है। यदि जीवनचरित के लेखक इस वृत्त को लिखते हुए संस्कारविधि को भी खोलकर देख लेते तो ऐसी भयङ्कर भूल न करते। अस्तु।

संस्कारविधि के प्र० सं० के लेखन की समाप्ति

संस्कारविधि का लिखना कब समाप्त हुआ, इसके विषय में प्रथम संस्करण के अन्त में निम्न श्लोक मिलता है—

---

१. ऋ० द० पूना से लौट कर जब बम्बई पधारे, उस समय उत्तर भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार सं० १९३२ कार्तिक कृष्णा (?) से पौष (?) तक बम्बई रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्ररामाङ्कचन्द्रेऽब्दे (१९३२) पौषे मासे सिते दले।
सप्तम्यां सोमवारेऽयं ग्रन्थः पूर्ति गतः शुभः ॥[1]

तदनुसार पौष शुक्ला ७ सोमवार संवत् १९३२ को संस्कारविधि का लेखन समाप्त हुआ था।

ग्रन्थ के आरम्भ और अन्त की तिथि से पता लगता है कि इस ग्रन्थ के रचने में केवल **१ मास और आठ दिन** का समय लगा था। यहां ध्यान रहे कि संस्कारविधि के आरम्भ करने की तिथि गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है (यह हम पूर्व लिख चुके हैं)।

श्री पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित पृष्ठ ३६४ में लिखा है—

"संस्कारविधि का लिखना बड़ोदे में ही समाप्त हुआ था।"

यद्यपि जीवनचरितों से यह स्पष्ट विदित नहीं होता कि स्वामी जी महाराज बड़ोदा में कब से कब तक रहे थे, तथापि इतना स्पष्ट है कि पौष और माघ में वे वहां विद्यमान थे। अतः उक्त जीवनचरित का उपर्युक्त लेख ठीक हो सकता है।

प्रथम संस्करण का मुद्रण

संस्कारविधि का प्रथम संस्करण संवत् १९३३ के अन्त में बम्बई के **एशियाटिक प्रेस** में छपकर प्रकाशित हुआ था। इस संस्करण के विषय में ऋषि ने द्वितीय संस्करण की भूमिका में इस प्रकार लिखा है—

"उसमें संस्कृतपाठ और भाषापाठ एकत्र लिखा था। इस कारण संस्कार करानेवाले मनुष्यों को संस्कृत और भाषा दूर-दूर होने से कठिनता पड़ती थी।

...किन्तु उन विषयों का यथावत् क्रमबद्ध संस्कृत के सूत्रों में प्रथम लेख किया था। उसमें सबकी बुद्धि कृतकारी नहीं होती थी।"

सं० वि० परिशोधित संस्करण की भूमिका।[2]

---

१. यह ऐतिहासिक महत्त्व का श्लोक संस्कारविधि के अगले संस्करणों में नहीं छापा गया। हमने इसे रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित संस्करणों के अन्त में टिप्पणी में छाप कर सुरक्षित कर दिया है।

२. रामलाल कपूर ट्रस्ट मुद्रित संस्करण पृष्ठ १, २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कारविधि के प्रथम संस्करण में एक-दो स्थानों में गृह्यसूत्रों के के ऐसे वचनों का भी उल्लेख है, जिनमें मांसभक्षण का विधान है। ऋषि ने इन वचनों का संग्रह केवल तत्तद् ग्रन्थों के मतों के प्रदर्शन के अभिप्राय से किया था, वह उनका स्व-मत नहीं था। अत एव प्रथम संस्करण में दो स्थानों पर स्पष्ट लिखा है—

गर्भाधान संस्कार में पृष्ठ ११ में लिखा है—**यह बात एकदेशी है, सर्वदेशी नहीं, क्योंकि मांस से पौष्टिक गुणवाला द्रव्य दुग्ध और औषधादिकों में अधिक ही है।**

अन्नप्राशन संस्कार में भी पृष्ठ ४२ में लिखा है—**यह बात मांसाहारी तथा एकदेशी लोगों के लिये है।**

कई मांसभक्षण के पक्षपाती मांसभक्षण को उचित सिद्ध करने के लिये ऋषि के इस ग्रन्थ का भी आश्रय लेते हैं, परन्तु यह सर्वथा अनुचित है। ऋषि ने अपने समस्त जीवन में एक बार भी मांसभक्षण का प्रतिपादन नहीं किया। ऋषि ने स्वयं संवत् १९३५ में ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के प्रथम और द्वितीय अङ्क में विज्ञापन देकर इस विचार को स्पष्ट कर दिया था। इस विज्ञापन का एतद्विषय का अंश इस प्रकार है—

"इससे जो-जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश वा संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं, वे उन-उन ग्रन्थों के मतों को जनाने के लिये लिखे उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं।" पत्र और विज्ञापन भाग १, पृष्ठ १५४, पं० ८-१२।

प्रथम संस्करण का संशोधन

संस्कारविधि के प्रथम संस्करण का संशोधन पं० **लक्ष्मण शास्त्री** ने किया था। उनका नाम प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर छपा है। यह लक्ष्मण शास्त्री वही व्यक्ति है, जिसने "आर्याभिविनय" के प्रथम संस्करण का संशोधन किया था।

प्रथम संस्करण का प्रकाशन

प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर "**श्रीयुत केशवलाल निर्भय-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामोपकारेण यन्त्रितो जातः" लेख छपा है। इससे प्रतीत होता है कि प्रथम संस्करण लाला केशवलाल निर्भयराम के द्रव्य की सहायता से प्रकाशित हुआ था। ये महानुभाव बम्बई आर्यसमाज के प्रमुख व्यक्ति थे। ऋषि के इन के नाम लिखे हुए अनेक पत्र 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' संग्रह में छपे हुए मिलते हैं।

प्रथम संस्करण का महत्त्व

यद्यपि ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि के प्रथमरूप को संशोधित करके नया रूप दे दिया है, तथापि उस संस्करण का महत्त्व कम नहीं हुआ है। प्रथम संस्करण में गृह्यसूत्रों के लम्बे-लम्बे उद्धरण देकर उनका भाषार्थ दिया गया है। **उस से उन गृह्यसूत्रों का ऋषि दयानन्द-सम्मत अभिप्राय जानने में अत्यन्त सहायता मिलती है।** इसी प्रकार संस्कारों में विनियुक्त शतशः मन्त्रों का भाषा में भावार्थ लिखा है। इन मन्त्रों में लगभग २०० मन्त्र ऐसे हैं, जो सामवेद, अथर्ववेद और ऋग्वेद के उस भाग के हैं, जिनका ऋषि ने भाष्य नहीं किया। प्रथम संस्करण में प्रदर्शित उन मन्त्रों के भावार्थ से वेद के उन-उन प्रकरणों के विषय में ऋषि की दृष्टि क्या थी, यह समझने में सहायता मिलती है।

संशोधित द्वितीय संस्करण

संस्कारविधि के प्रथम संस्करण लिखने के लगभग ७।। साढे सात वर्ष के पश्चात् महर्षि ने इसका पुनः संशोधन किया। इस विषय में में संशोधित संस्कारविधि की भूमिका में स्वयं महर्षि ने लिखा है—

"जो एक हजार पुस्तक छपे थे, उनमें से अब एक भी नहीं रहा, इसलिये श्रीयुत् महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९४० वदी अषाढ़ १३ रविवार के दिन पुनः संशोधन करके छपवाने के लिये विचार किया।

द्वितीय संस्करण के संशोधन का यही काल संस्कारविधि के प्रारम्भ में ११वें श्लोक में लिखा है। जो इस प्रकार है—

बिन्दुवेदाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासेऽसिते दले।
त्रयोदश्यां रवौ वारे पुनः संस्करणं कृतम्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशोधन की समाप्ति

संस्कारविधि के संशोधन को समाप्ति भाद्र कृष्ण अमावस्या संवत् १६४० के लगभग हो गई थी, अर्थात् तब तक संशोधित संस्कारविधि की पाण्डुलिपि (रफ कापी) पूरी लिखी जा चुकी थी। यह बात महर्षि के भाद्र बदि ५ संवत् १६४० के पत्र से व्यक्त होती है। उस में लिखा हैं—

"और अब के संस्कारविधि बहुत अच्छी बनाई गई है। और अमावस्या तक बन चुकेगी।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ७६७, पं० १३, १४।

इससे स्पष्ट है कि संशोधित संस्कारविधि की पाण्डुलिपि (रफ कापी) ऋषि के निर्वाण से दो मास पूर्व तैयार हो गई थी। जो लोग संस्कारविधि के संशोधित संस्करण को ऋषि दयानन्द कृत नहीं मानते हैं, उन्हें उपर्युक्त लेख पर अवश्य विचार करना चाहिये। इतना ही नहीं, इस पाण्डुलिपि पर ऋषि के हाथ के काली पेंसिल के संशोधन आदि से अन्त तक विद्यमान हैं। ये ऋषि के हाथ से किये गये संशोधन भी इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि इस पाण्डुलिपि का संशोधन भी वे अपने जीवन काल में कर चुके थे।

संशोधित संस्करण का मुद्रण

इस संशोधित संस्कारविधि के मुद्रण का आरम्भ कब हुआ, इसकी काई निश्चित तिथि उपलब्धि नहीं होती। महर्षि ने आश्विन बदि ८ सोमवार संवत् १६४० (२४ सितम्बर १८८३) के पत्र में मुंशी समर्थदान प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय को लिखा था—

"आज संस्कारविधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजते हैं। सँभाल के छपवाना।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ७६२, पं० ४।

पुनः आश्विन बदि १३ शनिवार संवत् १६४० (२६ सितम्बर १८८३) के पत्र में ऋषि ने लिखा था—

"आश्विन बदि ८ सोमवार संवत् १६४० को संस्कारविधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजे हैं, पहुंचे होगे।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ८०७, पं० १-२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः सम्भव है, संस्कारविधि के मुद्रण का आरम्भ ऋषि के जीवन के अन्तिम दिनों में हो गया हो ।

मुद्रण की समाप्ति

संस्कारविधि के द्वितीय संस्करण के अन्त में निम्न श्लोक उपलब्ध होता है—

"विधुयुगनवचन्द्रे (१९४१) वत्सरे विक्रमस्या-
ऽसितदलबुधयुक्तानङ्गतिथ्यामिषस्य ।
निगमपथशरण्ये भूय एवात्र यन्त्रे,
विधिविहितकृतीनां पद्धतिर्मुद्रिताऽभूत् ॥

इस श्लोक के अनुसार द्वितीय संस्करण का मुद्रण आश्विन वदि ५ बुधवार संवत् १९४१ को समाप्त हुआ था ।

यह ध्यान रहे कि उपर्युक्त श्लोक द्वितीय संस्करण के संशोधक भीमसेन वा ज्वालादत्त का है, ग्रन्थकार का नहीं है ।

संस्कारविधि के तीसरे संस्करण से १२वें संस्करण तक उक्त श्लोक, प्रथम दो चरणों के परिवर्तित पाठ के साथ इस प्रकार छपता रहा—

नगयुगनवचन्द्रे विक्रमार्कस्य वर्षे ।
ससितदल सहस्ये सोमयुग्युग्मतिथ्याम् ॥

अर्थात् विक्रम के सं० १९४७ के पौष सुदि २ सोमवार के दिन मुद्रण समाप्त हुआ ।

यह तृतीय संस्करण का मुद्रण-विषयक श्लोक वै० य० के १२वें संस्करण तक छपता रहा । १२ वें संस्करण के पश्चात् शताब्दी ग्रन्थमाला (सन् १९२५) में जो संस्करण छपा, उसमें इस श्लोक को हटा दिया । अतः वैदिक यन्त्रालय अजमेर के उत्तरवर्त्ती संस्करणों में नहीं मिलता । ऐतिहासिक दृष्टि से यह श्लोक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । अतः इसे सर्वथा न हटाकर टिप्पणी से छाप दिया जाता तो अच्छा होता ।[1]

---

१. हमने रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित संस्करण में द्वितीय संस्करण के छापने का कालनिर्देशक उक्त श्लोक को टिप्पणी में दर्शा दिया है । वहीं तृतीय संस्करण के छापने का कालनिर्देशक श्लोक भी दे दिया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेदभाष्य मार्गशीर्ष शुक्ल संवत् १९४१ के ६०, ६१वें सम्मिलित अङ्क के अन्त में संस्कारविधि के विषय में एक विज्ञापन छपा था। जिस के ऊपर छोटे टाईप में ( ) कोष्ठक में लिखा है—"**दिसम्बर सन् १८८४ के आरम्भ में बिकेगी।**" इससे विदित होता है कि संस्कारविधि का द्वितीय संस्करण छपकर तथा सिलाई होकर दिसम्बर १८८४ में विक्रय के लिये तैयार हो गया था।

द्वितीय संस्करण का प्रूफ संशोधक

संस्कारविधि द्वितीय संस्करण के प्रूफों का संशोधन पं० ज्वालादत्त और पं० भीमसेन ने किया था। जैसा कि द्वितीय संस्करण के मुख पृष्ठ पर छपा है—"**ज्वालादत्तभीमसेनशर्मभ्यां संशोधितः।**"

द्वितीय संस्करण के हस्तलेख

इस संशोधित द्वितीय संस्करण के दो हस्तलेख श्रीमती परोपकारिणी सभा के संग्रह में अभी तक सुरक्षित है। पाण्डुलिपि (रफ कापी) में स्वामी जी के कालीं पेन्सिल के संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन आदि से अन्त तक विद्यमान हैं। **प्रेसकापी में पृष्ठ १-४७ तक** कर्णवेद्य पर्यन्त[1] काली स्याही से ऋषि के हाथ के संशोधन हैं। पाण्डुलिपिऋषि के निर्वाण से लगभग दो मास पूर्व सम्पूर्ण हो चुकीथी। यह हम ऋषि दयानन्द के पत्र के आधार पर पूर्व (पृष्ठ १०८ पर) लिख चुके हैं। अतः किन्हीं लोगों का यह लिखना कि संस्कारविधि का द्वितीय संस्करण ऋषि दयानन्द कृत नहीं हैं, सर्वथा भिथ्या है।

वै० यं० के० संस्करणों में पाठों का घोटाला

वैदिक यन्त्रालय (काशी-प्रयाग-अजमेर) की छपी सस्कारविधि के संस्करण २-२५ के पाठों का मिलान करने पर विदित हुआ कि ऋषि दयानन्द के इस ग्रन्थ में संशोधकों ने विना सोचे समझे पाठों में इतना परिवर्तन परिवर्धन किया है कि उस के लिये **घोटाला** शब्द ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

---

१. हमारे पास संस्कारविधि के रफकापी और संशोधित कापी से मिलाया हुआ जो पाठ है। उस में स्पष्ट लिखा है कि '**प्रेसकापी की पृष्ठ संख्या ४७ यहां (कर्णवेध संस्कार पर) समाप्त होती है। यहीं तक काली स्याही से ऋषि के हाथ का संशोधन है।**"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कारविधि के २-२५ तक के संस्करणों कब-कब और कैसे-कैसे परिवर्तन किये गये, इस के लिये ग्रन्थ के अन्त में चौथे परिशिष्ट में देखें।

वेदोक्त-संस्करण-प्रकाश

ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि का पुनर्लेख सं० १९४० में किया था (द्र०—पूर्व पृष्ठ १०७)। उस से दो वर्ष पूर्व पं० बालाजी विट्ठल गांवस्कर नामक एक महाराष्ट्रिय व्यक्ति से **वेदोक्तसंस्कार-प्रकाश** नाम का एक ग्रन्थ मराठी भाषा में प्रकाशित किया था। यह दो भागों में छपा था। प्रथम भाग में संन्यास पर्यन्त संस्कारों का विधान है। यह भाग सं० १९३८ में छपा था। दूसरे भाग में केवल अन्त्येष्टि संस्कार' की विधि है। यह भाग सं० १९३९ में प्रकाशित हुआ था।

गुजराती अनुवाद—वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के प्रथम भाग का गुजराती अनुवाद भी सं० १९३८ में ही प्रकाशित हो गया था। यह अनुवाद बम्बई के श्री प्राणजीवनदास कहानदास ने किया था। यह गुजराती अनुवाद ऋषि दयानन्द के संग्रह में विद्यमान था। ऋ० द० के निधन के पश्चात् उनकी पुस्तकों की जो सूची परोपकारिणी सभा के उपमन्त्री श्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने परोपकारिणी सभा के ६ दिसम्बर सन् १८८४ के अधिवेशन में **आवेदन-पत्र** के रूप में उपस्थित की थी, उसमें उदयपुर में वर्तमान पुस्तकों में **वेष्टन ६ धर्मशास्त्र** में ७२वीं संख्या पर **'संस्कारविधि गुजराती टीका सहित १ छपी'** पुस्तक का निर्देश है। यह पूर्वोक्त वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के गुजराती अनुवाद की पुस्तक ही है। परोपकारिणी सभा अजमेर के पुस्तकालय में हमने सन् १९४४ में इसे प्रथमवार देखा था। तत्पश्चात् इसे अन्तिमवार सन् १९७८ में देखा। परन्तु अब वह उपलब्ध नहीं है, ऐसा ज्ञात हुआ है।

वेदोक्तसंस्कारप्रकाश की उपलब्धि

मैं सन् १९४४ से ही वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के मूल मराठी-संस्करण और गुजराती अनुवाद के लिये प्रयत्नशील रहा। अनेक नगरों के पुस्तकालयों की छानबीन की, परन्तु सन् १९८० तक प्राप्त न कर सका। सन् १९८१ के जनवरी मास में **'मुम्बई मराठी ग्रन्थ-**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रहालय दादर' में इस के मराठी भाषा में छपे दोनों भाग उपलब्ध हो गये (द्वितीय भाग के अन्त के ३-४ पृष्ठ नहीं है)। उसी समय मैंने इसके दोनों भागों की फोटोस्टेट (झेरोक्स) कापी करवाली। गुजराती अनुवाद श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती को राजकोट की यात्रा में गतवर्ष (१९८२ में) प्राप्त हो गया। इस की फोटोस्टेट कापी भी श्री स्वामी जी ने करवा कर मुझे दे दी। इस प्रकार सम्प्रति वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के मराठी और गुजराती दोनों संस्करण हमारे पास विद्यमान हैं।

मैंने वेदोक्तसंस्कारप्रकाश का गुजराती अनुवाद जब सन् १९४४ में देखा था, उसी समय मुझे ज्ञात हो गया था कि ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि के संशोधित संस्करण (सं० १९४०) को तैयार करने में इस ग्रन्थ की भरपूर सहायता ली है। अब वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के मूल मराठी संस्करण (सं० १९३८) और गुजराती संस्करण (सं० १९३८) के प्राप्त होने पर संस्कारविधि के साथ विशेष तुलना करने पर ज्ञात हुआ कि संस्कारविधि का कर्णवेध संस्कार तक का लगभग ५०% भाग और आगे का संन्यासपर्यन्त का विधिभाग न्यूधिकरूप में लगभग ८०% वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के साथ समानता रखता है। यदि ऋ० द० अगले भाग की प्रेस कापी भी स्वयं तैयार कर जाते तो आगे भी समानता का अनुपात कम हो जाता।

दोनों ग्रन्थों की तुलना से प्रकट हुआ—एक तथ्य

संस्कारविधि और वेदोक्तसंस्कारप्रकाश की तुलना से एक और तथ्य प्रकट हुआ है—**संस्कारविधि के विधिभाग में जहां कहीं कुछ गड़बड़ अथवा भूलें हैं उनका मूलकारण वेदोक्तसंस्कारप्रकाश ही है।** ऋ० द० के अन्य ग्रन्थों में भी बहुत सी ऐसी भूलें हैं, जिनका कारण उस समय के छपे हुए ग्रन्थ हैं। यथा ऋग्वेद और अथर्ववेद के मन्त्रपाठ की अशुद्धियों का कारण उस समय के छपे हुए योरोपीय संस्करण हैं। यहां संकेतमात्र किया हैं, पाठक अपने तुलनात्मक स्वाध्याय से ऐसी अनेकों भूलों का कारण जान सकते।

वेदोक्तसंस्कारप्रकाश का विवरण ग्रन्थ के अन्त में पांचवे परिशिष्ट में दे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदोक्तसंस्कारप्रकाश का आर्यभाषानुवाद

मेरी प्रेरणा से माननीय श्री जगदेवसिंह जी आर्य (बम्बई) ने वेदोक्तसंस्कारप्रकाश का मूल मराठी से आर्यभाषा में अनुवाद कर के मेरे पास भेज दिया है। इस अनुवाद में गुजराती अनुवाद से भी सहायता ली है, क्योंकि ऋ० द० के पास गुजराती संस्करण ही था। इस अत्यन्त-परिश्रम-साध्य कार्य को सम्पन्न करने के लिये मैं आप का बहुत आभारी हूं। वेदोक्तसंस्कारप्रकाश का आर्य-भाषानुवाद 'दयानन्द-बलिदान-शताब्दी' (दीपावली २०४०) तक प्रकाशित करने का विचार था, परन्तु अनिवार्य कारणों से प्रकाशन समय पर न हो सका। आशा है सं० १९४० के अन्त तक प्रकाशित हो जायेगा।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अध्याय

वेदभाष्य (सं० १९३२–१९४०)

सत्यार्थप्रकाश लिखने के अनन्तर महर्षि को चारों वेदों के भाष्य करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ, क्योंकि जिस वैदिकधर्म की व्याख्या ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश के पूर्वार्ध के दश समुल्लासों में की थी, उसका मुख्य आधार वेद ही है। स्वामीजी महाराज ने यह भले प्रकार अनुभव कर लिया था कि "भारत की धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक अवनति का मुख्य कारण वैदिक शिक्षा का लोप और पौराणिक शिक्षा का प्रसार होना है। वेद का वास्तविक स्वरूप भारत युद्ध के पश्चात् विभिन्न मतमताम्तरों की आंधी से सर्वथा ओझल हो गया है[1]।" प्रत्येक सम्प्रदाय अपने-अपने मन्तव्यों का आधार वेदों को ही बताता है। यहां तक कि यज्ञों में गौ, अश्व और पुरुष आदि को मारना, मांस खाना, सुरा पीना, बहन बेटियों से कुत्सित हंसी-मजाक और संभोग तक करने का विधान भी वेदों के मत्थे मढ़ा गया। यही कारण था जिसने चारवाक बौद्ध और जैन आदि नास्तिक मतों को उत्पन्न किया और प्रत्यक्षरूप से वेद का विरोध और उनकी निन्दा के लिये प्रोत्साहित किया। वर्तमान में जितने वेदभाष्य उपलब्ध होते हैं उनके रचयिता उव्वट महीधर और सायण आदि के मस्तिष्कों पर पौराणिक युग और उनकी शिक्षा का अत्यधिक प्रभाव था। अत एव उन्होंने प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के विरुद्ध अत्यन्त भ्रष्ट और बुद्धिविरुद्ध व्याख्यान करके वेदों को कलुषित किया। इन मध्ययुगी टीकाओं ने पौराणिक शिक्षा-दीक्षा आचार-व्यवहार, और उनके मन्तव्यों पर प्रामाणिकता की ऐसी मोहर लगा दी, जिससे सर्वसाधारण तो क्या बड़े-बड़े पण्डित भी उनके विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं कर सकते थे। कहां प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में वर्णित वैदिकधर्म के परमोच्च तथा परमोदात्त सिद्धान्त और कहां वेदों की ये अनर्थरूपी नवीन टीकाएं।

---

१. द्र०—सत्यार्थप्रकाश, ११वें समुल्लास की अनुभूमिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि ने समस्त प्राचीन आर्ष ग्रन्थों से वैदिक धर्म के गूढ़ रहस्यों और सिद्धान्तों का संग्रह करके तदनुसार वेद और आधुनिक भाष्यों का अनुशीलन किया, तो उन्हें विदित हुआ कि वेदों के वास्तविक शुद्ध स्वरूप को कलुषित करनेवाले ये नवीन भाष्य ही है। अतएव उनको इस बात की परमावश्यकता का अनुभव हुआ कि जब तक वेदों का वहीं प्राचीन शुद्ध स्वरूप प्रगट न होगा, तब तक आर्य जाति का उत्थान और कल्याण कदापि सम्भव नहीं। इसलिये उन्होंने वैदिक शिक्षा तथा आचार-विचार के पुनरुत्थान के लिये प्राचीन आर्ष पद्धति के अनुसार वेदभाष्य करने का संकल्प संवत् १९२९ के अन्त या संवत् १९३० के आदि में किया[1], और उसके लिये प्रयत्न आरम्भ किया।

वेदभाष्य सदृश महान् कार्य के लिये वह समय नितान्त अनुपयोगी था। इस युग में वैदिक ग्रन्थों का ह्रास हो रहा था। वेदाभ्यासियों की गणना अंगुलियों पर ही हो सकती थी। काशी सदृश विद्याक्षेत्र में भी वेदार्थ-जाननेवाला नहीं मिलता था।[2] वेदों की अनेक शाखाएं तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थ लुप्त हो चुके थे[3]। जो वैदिक ग्रन्थ विद्यमान थे, वे भी सुलभ न थे। राजकीय आश्रय का कोई अवसर ही न था। वह राज्य-सहायता जो सायण और हरिस्वामी को प्राप्त थी, अब पुराकाल का स्वप्न हो चुकी थी। वे विद्वान् वैदिक जो स्कन्द स्वामी और सायण को अनायास मिल सकते थे, अब खोजने पर भी दृष्टिगत नहीं होते थे। ऐसे कठिनकाल में ऋषि ने अपनी विद्या तप और लगन के कारण कुछ सहायक तैयार किये उनकी आर्थिक सहायता से ऋषि ने वेदभाष्यरूपी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और परिश्रम-साध्य, काल-साध्य और महाव्यय-साध्य कार्य प्रारम्भ किया। इसविषय में ऋषि के अनेक पत्र देखने योग्य हैं। यथा—देखो पत्र और विज्ञापन पूर्णसंख्या २५, २६, भाग १, पृष्ठ ५९–६१।

---

१. द्र०—देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन-चरित भाग १, पृष्ठ २२६, पं० ७-८।

२. सम्प्रति यह स्थिति अपनी चरम उत्कर्षता को प्राप्त हो चुकी है। कुछ समय के पश्चात् परम्परागत वेदपाठी भी दुर्लभ हो जायेंगे। मन्त्रों के परम्परागत शुद्ध पाठ का परिज्ञान करना भी कठिन हो जायेगा।

३. महाभाष्य के अनुसार चार वेदों की ११२७ शाखाएं थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]वेदभाष्य का नमूना (१९३१)

यतः ऋषि दयानन्द को अपने वेदभाष्य के महान् कार्य में केवल जनता से ही सहायता मिलने की आशा थी। अतएव उन्होंने अपने करिष्यमाण वेदभाष्य का स्वरूप जनता पर प्रकट करने के लिये **ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र अथवा प्रथम सूक्त का भाष्य** नमूने के रूप में प्रकाशित किया।

वेदभाष्य का भी जो नमूने का अंक इस समय वैदिक यन्त्रालय से छपा हुआ मिलता है, वह संवत् १९३३ में प्रथम वार प्रकाशित हुआ था। स्वामीजी ने उससे पहले संवत् १९३१ में भी वेदभाष्य के नमूने का एक अंक प्रकाशित किया था।[2] उसके विषय में श्री पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित पृष्ठ २९५ पर इस प्रकार लिखा है—

"स्वामी जी ने ऋग्वेद के पहले सूक्त का भाष्य, जिसमें **गुजराती और मराठी** अनुवाद भी था, वेदभाष्य के नमूने के तौर पर प्रकाशित किया। जिसमें ऋग्वेद के पहले मन्त्र **'अग्निमीळे पुरोहितम्'** आदि के दो अर्थ किये थे। एक भौतिक दूसरा पारमार्थिक। उसकी भूमिका में लिखा था कि **'मैं सारे वेदों का इसी शैली पर भाष्य करूंगा**। यदि किसी को इस पर कोई आपत्ति हो तो पहले ही सूचित कर दे, ताकि मैं उसका खण्डन करके ही भाष्य करूं।' यह नमूना स्वामी जी ने काशी के पण्डित बालशास्त्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती प्रभृति तथा कलकत्ता और अन्य स्थानों के पण्डितों के पास भेजा था, परन्तु किसी ने भी उसकी आलोचना नहीं की।"

यह वर्णन महर्षि के बम्बई निवास-काल का है। इस बार महर्षि बम्बई में कार्तिक कृष्णा १ से मार्गशीर्ष कृष्णा ८ संवत् १९३१ वि० तक रहे थे। अतः पं० देवेन्द्रनाथ के लेखानुसार यह वेदभाष्य का नमूना कार्तिक सं० १९३१ में ही रचा गया होगा।

---

१. इस पर क्रमांङ्क पूर्व (पृष्ठ ७८) दे चुके हैं। अतः यहां नहीं दिया है।

२. यद्यपि कालक्रम के अनुसार इस का वर्णन पूर्व (पृष्ठ ७८) निर्दिष्ट स्थान पर होना चाहिये था, पुनरपि इस का वेदभाष्य के साथ संबन्ध होने से यहां वर्णन कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदभाष्य के नमूने के विषय में पं० लेखराम जी ने जीवन-चरित (हिन्दी सं०) के पृष्ठ २९१ पर लिखा है—

"स्वामी जी महाराज १ मई सन् १८७६ तदनुसार वैशाख सुदि [८] कों बम्बई से चल कर ज्येष्ठ वदी [१] सं० १९३३ तदनुसार ९ मई १८७६ का फर्रुखावाद में पहुंचे। स्वामी जी ने वेदों पर भाष्य करने का निश्चय यहीं दृढ़ कर लिया था और इसी स्थल पर वेदभाष्य का नमूने को तैयार करके छपवाया जिस में केवल एक मन्त्र की संस्कृत भाषा और गुजराती दी हुई थी। विज्ञापन के रूप में १० पृष्ठ का था।"

पुनः आगे पृष्ठ ८२१ (हिन्दो सं०) में लिखा है—

"स्वामी जी ने जव वेदभाष्य को प्रकाशित कराने का निश्चय किया तो इससे पहिले इस को एक ट्रैक्ट के रूप में प्रकाशित कराया। इन में तीन बातें थी—**प्रथम**—वेदभाष्य का विज्ञापन-पत्र ८ पृष्ठ, दूसरी—भाष्य के नमूने का अंक पृष्ठ २४, तीसरी—गुजराती भाषा के नमूने का अंक। तीनों एक साथ मार्गशीर्ष शुक्ल पौर्णमासी सं० १९३३ तदनुसार १ दिसम्बर सन् १८७६ को प्रकाशित होके वितरित किये गये।"

पं० लेखराम कृत जीवन-चरित के ये दोनों ही लेख अशुद्ध हैं। ऋ० द० सं० १९३१ के अन्त में अथवा १९३२ के आरम्भ में एक वेदभाष्य का नमूना छपवा चुके थे। इस का उल्लेख सं० १९३२ में प्रकाशित[1] **वेदान्तिध्वान्त-निवारण** के अन्त में छपे पुस्तकों के विज्ञापन[2] में मिलता है। इसी प्रकार माघ सं० १९३२ में छपे 'श्री आर्यसमाज ना नियमोपनियम बम्बई' के अन्त में छपे पुस्तकों के विज्ञापन[2] में भी मिलता है। इन विज्ञापनों में इस का मूल्य **एक आना** छपा है। इस से इतना तो स्पष्ट है कि वेदभाष्य का प्रथम नमूना माघ सं० १९३२ से पूर्व अवश्य छप गया था। वेदान्तिध्वान्तनिवारण का लेखन काल सं० १९३१, मार्गशीर्ष है (द्र० पूर्व पृष्ठ ८३)।

---

१. वेदान्तिध्वान्त-निवारण के प्रथम संस्करण के मुखपृष्ठ पर 'सं० १९३२, सन् १८७६ छपा है। देखो पूर्व पृष्ठ ८४।

२. इन दोनों विज्ञापनों की प्रतिलिपि परिशिष्ट ७ में देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः प्रथम वेदभाष्य के नमूने का मुद्रण सं० १९३१ में वेदान्तिध्वान्त-निवारण के लेखन से पूर्व हो गया था ।

पं० लेखराम जी कृत जीवन-चरित के पृष्ठ ८२१ (हिन्दी सं०) का लेख तो अत्यन्त भ्रान्त है। उस में प्रथम वेदभाष्य के नमूने का, २४ पृष्ठ के द्वितीय नमूने का और वेदभाष्य सम्बन्धी विज्ञापन का मुद्रण एक साथ हुआ लिखा है। पं० लेखराम जी ने वेदभाष्य सम्बन्धी जिस विज्ञापन का उल्लेख किया है। वह 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के प्रथम भाग में पूर्णसंख्या ३५ (पृष्ठ ६७-७७) पर छपा है। यह विज्ञापन इस के हिन्दी अनुवाद के अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ला पौर्णमासी को लिखा गया था (द्र०—वही, भाग १, पृष्ठ ६९, पं० १२-१३) और पौषमास के कृष्णपक्ष में छप गया था (देखो ऋ० द० का पौष सुदी ४ सं० १९३३ का पूर्ण संख्या ३६ का पत्र भाग १, पृष्ठ ७७, पं० ९) ।

अतः वेदभाष्य के प्रथम नमूने का मुद्रण संवत् १९३१, कार्तिक के मध्य तक हो गया था, यही मानना युक्तियुक्त है। इस दृष्टि से पं० देवेन्द्रनाथ का लेख युक्त है।

प्रथम नमूने में प्रथम मन्त्र का भाष्य था अथवा सूक्त का

अब यह विचारणीय है कि वेदभाष्य के प्रथम नमूने में केवल प्रथम मन्त्र का भाष्य छपा था अथवा प्रथम सूक्त का। पं० देवेन्द्रनाथ ने पहले सूक्त का दो प्रकार का भाष्य मराठी और गुजराती अनुवाद सहित छपा था, ऐसा लिखा है। पं० लेखराम के लेखानुसार केवल एक मन्त्र का भाष्य गुजराती अनुवाद सहित छपा था और वह १० पृष्ठ का था।

ऋ० द० के पत्रों और विज्ञापनों का अन्वेषण करने वाले श्री मामराज जी ने मुझे एक पत्र में लिखा था—**वेदभाष्य का सर्व प्रथम नमूना —)एक आने में ९ मन्त्रों की तीन प्रकार की व्याख्या थी। सो मेंरे पास है।**

श्री मामराज जी के लेख से पं० देवेन्द्रनाथ के कथन भी ही पुष्टि होती है 'तीन प्रकार की व्याख्या थी' का तात्पर्य संभवतः संस्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी और गुजराती भाष्य से है। यतः यह नमूना मामराज जी के पास विद्यमान था। अतः इस में शंका का कोई स्थान नहीं है।

अब एक ही विचारणीय बात रहती है कि उस में मन्त्रों का अर्थ भौतिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार का था, अथवा एक प्रकार का। मामराजी के पास विद्यमान नमूने का अङ्क 'न मैं देख सका और ना ही उसे प्राप्त कर सका' इस का मुझे बहुत खेद है। इस से इस विषय में कुछ कहना कठिन है।

वेदभाष्य के दूसरे नमूने का आगे वर्णन होगा।

—:०:—

१३–चतुर्वेद-विषय-सूची (सं० १९३३)

ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य रचने से पूर्व चारों वेदों का गहन आलोडन करके उन में प्रतिपाद्य विषयों की एक सूची तैयार की थी। जिसमें प्रत्येक वर्ग दशति सूक्त वा अध्यायस्थ मन्त्रों के विषयों का क्रमशः संकलन किया था। यही संकलन **'चतुर्वेद-विषय-सूची'** के नाम नाम से ऋषि दयानन्द के हस्तलिखित ग्रन्थों में विद्यमान है। यह 'चतुर्वेद-विषय-सूची' उनके करिष्यमाण चारों वेदों के भाष्यों का प्रारूप है।

यद्यपि यह चतुर्वेद-विषय-सूची वेदविषयों का संग्रहमात्र हैं, और वेद का भाष्य करते समय ऋषि दयानन्द ने इस प्रारूप में यत्र तत्र परिवर्तन भी कर दिया है, तथापि इस की उपयोगिता अक्षुण्ण है। विशेष रूप से ऋग्वेद के शेष अंश, सामवेद और अथर्ववेद के तात्पर्य-ज्ञान में यह पर्याप्त सहायक हो सकती हैं।

हमारा तो अपना विचार है कि यदि यह 'चतुर्वेद-विषय-सूची' श्री पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ श्री पं० आर्यमुनि जी, श्री स्वामी तुलसीराम जी, श्री पं० क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी, और श्री पं० जय-देव जी के सन्मुख उपस्थित होती, तो वे इसका पूरा लाभ उठाते, और उनके वेदभाष्य कहीं अधिक उत्कृष्ट एवं प्रामाणिक होते। आर्य-समाज के इन वेदभाष्यकारों का यह दुर्भाग्य है कि इतना उपयोगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ भी परोपकारिणी सभा के अधिकारियों की अनवधानता के कारण उन वेदभाष्यकारों को उपलब्ध न हो सका।

हमने इसकी प्रतिलिपि सन् १९३५ के नवम्बर-दिसम्बर महीने में की थी। इन दिनों लगभग डेढ़ मास अजमेर में रहकर गुरुवर्य श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने ऋषि दयानन्द के हस्तलिखित ग्रन्थों को, जो कि गड़बड़ अवस्था में पड़े थे, एक-एक पत्रे को ढूंढ-ढूंढ कर प्रति-ग्रन्थ यथास्थान रखकर व्यवस्थित किया था। इन दिनों उनके साथ मैं और मेरे गुरुभाई पं० धर्मदेव जी निरुक्ताचार्य भी थे। इसी समय हमें यह सूची उपलब्ध हुई थी।

पूज्य गुरुवर्य ने सब हस्तलिखित ग्रन्थों को व्यवस्थित करके उनकी पूरी स्थिति का आकलन भी अपनी जानकारी के लिये तैयार किया था। उसी के आधार पर मैंने सन् १९५० में प्रथम वार इस ग्रन्थ के प्रथम परिशिष्ट में ऋ० द० हस्तलेखों का विवरण दिया था।

प्रकृत चतुर्वेद-विषय-सूची सफेद फुलसकेप कागज पर लिखा हुआ है। इसमें ५६ पृष्ठ हैं। इस सूची के मुखपृष्ठ पर लाल स्याही से निम्न पाठ लिखा हुआ उपलब्ध होता है—

"एकैकस्मिन् शतायुपरिमितकालः। शतावध्यागन्तुको मृत्युः। नाकाले म्रियते कश्चित्।"

यह लेख यदि ऋषि दयानन्द का ही होवे[1], तो यह मानना पड़ेगा कि ऋषि दयानन्द अकाल-मृत्यु नहीं मानते थे। जहां तक ऋषि दयानन्ध के हस्ताक्षरों का हमें ज्ञान है, वहां तक हमें यह लेख ऋषि दयानन्द के स्वहस्त का प्रतीत होता है।

इस विषय-सूची में ऋग्वेद सामवेद अथर्ववेद और यजुर्वेद इस क्रम से विषय-सूची लिखी हुई है। सम्भवतः यजुर्वेद के साथ कर्म-काण्ड की घनिष्ठता के कारण ऋषि ने इस पर सब से अन्त में विचार किया हो। अथवा वे इसी क्रम से वेदों का भाष्य रचना चाहते हों। हमें पं० गोपालराव हरि देशमुख के नाम ६ जून १८७७[2] को लिखे गये ऋषि दयानन्द के पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि ऋषि दयानन्द

---

१. सन्देह का स्वल्प सा कारण यह है कि ऋषि दयानन्दके पास एक ऐसा लेखक भी था, जिसका हस्तलेख ऋषि दयानन्द के लेख से बहुत मिलता था।

२. द्र०—पत्र-विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ८९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने ऋग्वेदभाष्य को आरम्भ करने के ३७ दिन पश्चात् ही पं० गोपालराव हरि देशमुख की सम्मति से यजुर्वेद का भाष्य का आरम्भ किया था (द्रष्टव्य—पत्रव्यवहार पूर्णसंख्या ५०, भाग १, पृष्ठ ८९, पं० १२, १३; भाषानुवाद पृष्ठ ९०, पं० २७-२८)। अतः ऋ० द० वे वेदभाष्य का क्रम क्या रखना चाहते थे, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

इस 'चतुर्वेद-विषय-सूची' का उल्लेख परोपकारिणी सभा के तात्कालिक मन्त्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने संवत् १९४२ के वार्षिक अधिवेशन में जो **आवेदनपत्र**[1] प्रस्तुत किया था, उसमें मिलता है। उसमें लिखा है—

"वेष्टन नं० १६ दयानन्द स्वामी सरस्वती कृत सर्व-सूचीपत्र क्रमाङ्क ११८ चारों वेदों की अकारादि[2] क्रम से सूची १ लिखी।

इसी वेष्टन में क्रमाङ्क १३१ पर लिखा है—

"ऋग्वेद के विषयों की याद के लिये सूची २ लिखी।"

इसके पश्चात् वैदिक यन्त्रालय की सन् १८९१, ९२, ९३ की सम्मिलित रिपोर्ट के अन्त में पृष्ठ ११-१२ पर स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों के हस्तलेखों का उल्लेख मिलता है[3]। उसमें भी **'चतुर्वेद-विषय-सूची १,** और **'ऋग्वेदविषय-स्मरणार्थ-सूची १'** का निर्देश मिलता है।

इन दोनों विवरणों में निर्दिष्ट **'ऋग्वेदविषय-स्मरणार्थ-सूची'** हमें सन् १९३५ में उपलब्ध नहीं हुई। सम्भव है ऋषि दयानन्द के कतिपय अन्य हस्तलेखों के साथ यह नष्ट हो गई होगी।

चतुर्वेद-विषयसूची का रचना-काल—चतुर्वेद-विषयसूची के संग्रह काल का निश्चय करना दुष्कर है। क्योंकि इस विषय में कोई प्रत्यक्ष

---

१. इस 'आवेदनपत्र' का जो अंश ऋषि दयानन्द के हस्तलेखों से संबन्ध रखता है, उस की पूरी प्रतिलिपि इस ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट नं० १ दे रहे हैं।

२. प्रतीत होता है यहां पाठ में कुछ अशुद्धि हुई है।

३. वैदिक यन्त्रालय की इस रिपोर्ट का जो अंश ऋ० द० के हस्तलेखों के साथ संबन्ध रखता है, उस की प्रतिलिपि भी इस ग्रन्थ के परिशिष्ट १ में देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में कतिपय चतुर्वेदस्थ विषयों का निरूपण मिलता है। अतः इस विषय-सूची का संकलन सं० १९३३ भाद्रपद शुक्ला १, जो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के लेखन के आरम्भ का काल है, उस से पूर्व अवश्य हो गया था, इतना निश्चित है। हमारा विचार है कि ऋ० द० ने इस सूची का संकलन आर्याभिविनय, सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि के प्रथम संस्करणों के लिखने से पूर्व कर लिया था। इसमें निम्न कारण हैं—

१. इन ग्रन्थों में जो विविध विषयों की चारों वेदों की महती मन्त्रराशि उद्धृत है, वह इस बात का प्रमाण है कि इन ग्रन्थों के लेखन से पूर्व लेखक ने चारों वेदों के विविध विषयों को दृष्टि में रखकर उनका कुछ न कुछ संग्रह अवश्य कर लिया था। यही संग्रह इस विषयसूची का प्रारूप रहा होगा।

२. 'आर्याभिविनय' पृष्ठ ११७[1] में **किँस्विदासीत्०** मन्त्र के व्याख्यान के आरम्भ लिखा है—**प्रश्नोत्तरविद्या**। ऐसा ही निर्देश पृष्ठ १२०[1] की प्रथम पङ्क्ति (संशोधित पाठ) में मिलता है। प्रस्तुत विषय-सूची में अनेक स्थानों पर **प्रश्नोत्तरपदार्थविद्या** का उल्लेख मिलता है।

उक्त साम्य इस बात का प्रमाण है कि प्रस्तुत विषयसूची का निर्माण 'आर्याभिविनय' के रचनाकाल चैत्र शुक्ला १० विक्रम संवत् १९३२ से पूर्व हो गया था।

पाठ-शुद्धि—हमारे विचार में 'आर्याभिविनय' पृष्ठ ११७ तथा १२० पर जो **प्रश्नोत्तरविद्या** पाठ हैं, वहां चतुर्वेदविषयसूची में बहुत्र उल्लिखित '**प्रश्नोत्तरपदार्थविद्या**' पाठ के अनुरूप पाठ होना चाहिये। **प्रश्नोत्तरपदार्थविद्या** का अर्थ है—प्रश्नोत्तररूप से पदार्थ की विद्या। यही तात्पर्य 'आर्याभिविनय' के उक्त स्थलों पर संबद्ध होता है।

चतुर्वेद-विषयसूची के प्रकाशन की कथा

इस चतुर्वेद-विषयसूची का सब से प्रथम दर्शन श्री पूज्य गुरुवर्य पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने तथा मैंने सन् १९३१ में किया था, और

१. यह पृष्ठ संख्या 'दयानन्दीय लघुग्रन्थसंग्रह' अन्तर्गत आर्याभिविनय की है।

२. द्र०—वही, पृष्ठ १२० की टि० १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९३५ में मैंने इसकी प्रतिलिपि की थी, यह पूर्व लिख चुका हूं। मेरे पास भी यह ग्रन्थ चिरकाल तक अछूता पड़ा रहा। इसका विशेष महत्त्व मेरी समझ में सन् १९४७ के बाद आया। सन् १९५६ से मैं इसके मुद्रण के लिये बार-बार परोपकारिणी सभा को लिखता रहा, और समाचारपत्रों में भी इस विषय में कई लेख लिखे। श्री पं० विश्वश्रवा: जी ने भी इसके मुद्रण के लिये पर्याप्त प्रयास किया। इस प्रकार अत्यधिक प्रयत्न करने पर परोपकारिणी सभा ने इस ग्रन्थ को संवत् २०२८ में छाप कर प्रकाशित किया।

परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पाठ

इस ग्रन्थ का जो संस्करण परोपकारिणी सभा से छपा है, वह वह बहुत भ्रष्ट है। कई स्थानों पर पाठ छूट गये हैं। कई स्थानों पर प्रत्यक्ष लेखक-प्रमादजन्य अशुद्धियों को भी उसी रूप में छाप दिया है। यजुर्वेद की विषय-सूची में ऋषि दयानन्द ने प्रत्येक अध्याय के प्रत्येक अनुवाक के आरम्भ की प्रतीक देकर सम्पूर्ण अनुवाक की विषय-सूची लिखी है, परन्तु सम्पादक ने इसे न जान कर अनुवाक संख्या के स्थान पर प्रतीकात्मक मन्त्र की संख्या दे दी है।

हमारा संस्करण

ऋग्वेद की विषय-सूची अष्टक-अध्याय-वर्ग के अनुसार दी है, परन्तु प्रथमाष्टक के कुछ अध्यायों की विषय-सूची में **संख्या तो वर्ग की** दी है, किन्तु ऊपर **शीर्षक अनुवाक का दे दिया है**। इसी प्रकार कुछ भाग में सम्पूर्ण वर्गों की विषयसूची नहीं दी है।

हमने चतुर्वेद-विषयसूची का प्रकाशन करने से पूर्व परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित विषय-सूची के पाठ की तुलना १२-४-७२ को पुनः हस्तलेख की फोटो कापी से की है। अतः हमने दयानन्दीय-लघु-ग्रन्थ-संग्रह (रा० ला० क० द्र० सं०) में इस का जो पाठ प्रकाशित किया है, वह पूर्णरूप से शुद्ध है। इसी प्रकार परोपकारिणी सभा के संस्करण में सम्पादक महोदय से जो भूल हो गई थी, वा जिन लेखन-प्रमादों को उन्होंनें ठीक नहीं किया था, उन्हें हमने यथावत् शोधकर छापा है।

ऋग्वेद के आरम्भ के कुछ अध्याय में जिन वर्गों का विषय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्देश सूची में नहीं दिया गया था, उनका भी पूर्वापर सम्बन्ध देख कर तथा लेखक के ऋग्वेद-भाष्य की सहायता से पूर्ण कर दिया है ।

हमने स्वसम्पादित संस्करण में जहां भी पाठ-पूर्ति की है, उसे [ ] कोष्ठक में छापा है, और पूर्व मुद्रित संस्करण में तथा हस्तलेख में विद्यमान अशुद्धियों को शोधकर नीचे टिप्पणी में उनका संकेत कर दिया है।

—:०:—

१४–वेदभाष्य का दूसरा नमूना (संवत् १९३३)

महर्षि ने वेदभाष्य के नमूने का यह अंक संवत् १९३३ में काशी के लाजरस प्रेस में छपवाया था। यह अंक २०×२६ अठपेजी आकार के २४ पृष्ठों में छपा था। इसमें ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का प्रथम सूक्त और द्वितीय सूक्त के प्रथम मन्त्र के संस्कृतभाष्य का कुछ अंश छपा है। इस में प्रत्येक मन्त्र के भौतिक और पारमार्थिक दो-दो प्रकार के अर्थ दर्शाये हैं। वेद में अग्नि शब्द ईश्वर का वाचक है, इसकी पुष्टि में वेद से लेकर मैत्रायणी उपनिषद् पर्यन्त अनेक आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत किये हैं, जो देखते ही बनते हैं। प्रमाण अपने आप में इतने प्रबल हैं कि यदि प्रतिपक्षी हठधर्मिता वा पक्षपात को छोड़कर विचार करे, तो उसे मानना ही पड़ेगा कि वेद में 'अग्नि' शब्द का अर्थ ईश्वर भी है ।

रचना और मुद्रण-काल

लाजरस प्रेस कापी के छपे हुए वेदभाष्य के नमूने के मुखपृष्ठ पर केवल संवत् १९३३ वि० छपा है। इस में कोई भूमिका नहीं है, अतः यह कब लिखा गया, इस बात का कोई निर्देश उपलब्ध नहीं होता। 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के वेदविषयविचार-संज्ञक प्रकरण में निम्न पंक्तियां उपलब्ध होती हैं—

'अत्र प्रमाणानि—(अग्निमीडे०) अस्य मन्त्रस्य व्याख्याने हि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन्द्रं मित्रम्०" ऋङ्मन्त्रोऽयम्। अस्योपरि "इममेवाग्नि महान्तमात्मानम्" इत्यादि निरुक्तं च लिखितं, तत्र द्रष्टव्यम्। तथा "तदेवाग्निस्तदादित्यः" इति यजुर्मन्त्रश्च।"

ऋ० भा० भू० पृष्ठ ८० (रामलाल कपूर ट्रस्ट संस्करण)

अर्थात् **"अग्निमीडे०"** इस मन्त्र के व्याख्यान में **"इन्द्रं मित्रम्०"** यह ऋग्वेद का मन्त्र, और इस पर **"इममेवाग्निम्०"** इत्यादि निरुक्त तथा **"तदेवाग्निस्तदादित्यः०"** यजुर्वेद का मन्त्र वहां लिखा है, वह देखना चाहिये।[1]

इसी प्रकार 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के इसी प्रकरण में लिखा है—

"(अग्निमीडे) **इस मन्त्र के भाष्य में जो तीन प्रकार का यज्ञ लिखा है……।"**

ऋ० भा० भू० पृष्ठ ६९-७० (रा० ला० क० ट्र० संस्क०)

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में "अग्निमीडे" का अर्थ, तथा उस में ऋग्वेद आदि के प्रमाण, और तीन प्रकार के यज्ञ का निर्देश कहीं नहीं किया। ये सब बातें ऋग्वेदभाष्य के इस नमूने के अंक में पूर्णतया उपलब्ध होती हैं। अतः मानना पड़ेगा कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ये संकेत वेदभाष्य के संवत् १९३३ में प्रकाशित अंक की ओर ही हैं। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के लेखन का आरम्भ भाद्र शुक्ला प्रतिपद् संवत् १९३३ में हुआ था, और मार्गशीर्ष के मध्य तक भूमिका का लेखनकार्य समाप्त हो गया था, यह आगे लिखा जायेगा। उपरि उद्धृत भूमिका के पाठ उसके प्रारम्भिक भाग के ही हैं। अतः यह नमूने का अंक भाद्र मास संवत् १९३३ में अथवा उससे पूर्व लिखा गया होगा।

ऋषि दयानन्द के १८ नवम्बर सन् १८७६ और १९ दिसम्बर सन् १८७६ के पत्रों[2] को मिलाकर पढ़ने से ज्ञात होता है कि वेदभाष्य का नमूना संवत् १९३३ के पौष मास के पूर्वार्द्ध तक छप गया था।

---

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अजमेर के संस्करण में भूमिका के उपरि उद्धृत संस्कृतभाग का भाषानुवाद नहीं है। यह अनुवाद हमारा है।

२. देखो—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ६५-६६ तथा ७७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रौर इस का लेखन ग्रगहन मास के पूर्वार्ध तक पूर्ण हो चुका था। ग्रतः भूमिका का वह ग्रंश जिसमें इस वेदभाष्य के नमूने के ग्रंक की ग्रोर संकेत है, वह वैशाख संवत् १९३४ में छपा था। ग्रतः भूमिका का उक्त ग्रंश उसमें छपने से कुछ समय पूर्व बढ़ाया होगा। ऐसा कहा जा सकता है, परन्तु इस से वेदभाष्य के इस नमूने के ग्रङ्क के लेखन काल पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि ऋ० द० के उपरि संकेतित पत्रों से सं० १९३३ के पौष मास के पूर्वार्ध में यह छप कर प्रकाशित हो गया था, यह स्पष्ट है। ऋ० द० ने वर्तमान में उपलब्ध ऋग्वेदभाष्य का ग्रारम्भ सं० १९३४, मार्गशीर्ष शुक्ला ६ को किया था, यह उन्होंने स्वयं उसकी भूमिका में लिखा है।

ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का विस्तृत भाष्य

ऋग्वेद के नमूने के ग्रंक में मन्त्रों के जिस प्रकार प्रतिमन्त्र दो-दो ग्रर्थ दर्शाये हैं, उसी शैली पर ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद के प्रारम्भिक ६१ सूक्तों का भाष्य किया था, जिस का हस्तलेख कुछ वर्ष पूर्व तक श्रीमती परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान था, परन्तु ग्रब सुना जाता है कि वह गुम हो गया है। चिरकाल तक किसी ग्रन्थ के प्रकाशित न करने का यही फल होता है। वैदिक विद्वानों के लिये यह ग्रपूरणीय क्षति है।

वेदभाष्य के अंक पर आक्षेप

'भ्रान्ति-निवारण' पुस्तक के मुद्रण-सम्बन्धी एक विज्ञापन[1] से विदित होता है कि वेदभाष्य के नमूने के इस ग्रंक पर कलकत्ता संस्कृत कालेज के स्थानापन्न प्रिंसिपल श्री पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ग्रौर पण्डित गोविन्दराय ने ग्राक्षेपात्मक पुस्तकें छपवाई थीं। पं० शिवनारायण ग्रग्निहोत्री ने भी इस के खण्डन में थोड़े लेख "रिसाले हिन्द" में लिखे ग्रौर पृथक् पुस्तक 'दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य रेवेयू' इस नाम से मुद्रित कराया था। महेशचन्द्र न्यायरत्न का पुस्तक सबसे पीछे बना है ग्रौर उस में सब पण्डितों की शंकाएं ग्रा जाती है, इसलिये स्वामी जी ने पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न के ग्राक्षेपों का समुचित उत्तर **"भ्रान्ति-निवारण"** के नाम से दिया था। इस 'भ्रान्ति-निवारण' का वर्णन हम पुस्तक ग्रगले ग्रध्याय में करेंगे।

---

१. यह विज्ञापन ग्रन्थ के ग्रन्त में परिशिष्ट ७ में देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५–ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
(सं० १९३३)

ऋषि दयानन्द को वेदभाष्य रचने की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई, इसका उल्लेख हम पूर्व (पृष्ठ ११३-११४) कर चुके हैं। पंडित देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित के अनुसार ऋषि ने सं० १९३१ वि० में में ऋग्वेद के प्रथभ सूक्त का सस्कृत भाष्य हिन्दी, गुजराती और मराठी अनुवाद सहित प्रकाशित किया था। तदनन्तर सं० १९३२ वि० के प्रारम्भ में १०८ वेदमन्त्रों की व्याख्यारूप आर्याभिविनय नामक ग्रन्थ रचा। इसे हम उन के वेदभाष्य-विषयक द्वितीय प्रयत्न कह सकते हैं। सं० १९३२ वि० के पश्चात् महर्षि ने वेदभाष्य के कार्य को इतना महत्त्व दिया कि अपने पारमार्थिक प्रयत्नों में भी शिथिलता कर के इस कार्य में वे सर्वतोभावेन जुट गये। ऋषि ने अपने एक पत्र में स्वयं इस बात का निर्देश किया है। वे लिखते हैं—

"हमने केवल परमार्थ और स्वदेशोन्नति के कारण अपने **समाधि और ब्रह्मानन्द को छोड़कर** यह कार्य ग्रहण किया है ।"
पत्र और विज्ञापन, पूर्णसंख्या ४३१, भाग १, पृष्ठ ४८०, पं० २१-२२।

ऋषि ने निरन्तर महान् परिश्रम करके वेदभाष्यरूपी महाकार्य की भूमिका तैयार की। तत्पश्चात् भाद्र शुक्ला १ रविवार सं० १९३३ वि० तदनुसार २० अगस्त १८७६ से वेदभाष्य की रचना का कार्य नियमित रूप से प्रारम्भ किया। इस काल का निर्देश ऋषि ने स्वयं अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रारम्भ में किया है—

"कालरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे भाद्रमासे सिते दले ।
प्रतिपदादित्यवारे च भाष्यारम्भः कृतो मया ॥"

वेदभाष्य के प्रारम्भ से पूर्व ऋषि ने चारों वदों के विषय में ज्ञातव्य अनेक विषयों तथा स्वीय वेदभाष्य की प्रक्रिया का सामान्य ज्ञान कराने के लिये ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ की रचना की। यह भूमिका उन के द्वारा करिष्यमाण चारों वेदों के भाष्यों की है, यह इसके नाम से ही प्रगट है। यजुर्वेदभाष्य में ऋषि ने लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"और सब विषय भूमिका में प्रकट कर दिया, वहां देख लेना। क्योंकि उक्त भूमिका चारों वेदों की एक ही हैं।"

(यजुर्वेदभाष्य पृष्ठ ८)

ऋषि ने जिस समय भूमिका का प्रारम्भ किया, उस समय वे अयोध्या नगरी में विराजमान थे। इस विषय में पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित पृष्ठ ३७५ पर इस प्रकार लिखा है—

"भाद्र कृष्ण १४ सं० १९३३ वि० अर्थात् १८ अगस्त सन् को स्वामीजी अयोध्या पहुँच कर सरयूबाग में चौधरी गुरुचरणलाल के मन्दिर में उतरे। अयोध्या में भाद्र शुक्ला प्रतिपदा सं० १९३३ विक्रम अर्थात् २० अगस्त १९७६ ई० ई० को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का लिखना प्रारम्भ हुआ।"

वेदभाष्य के लिये पण्डितों तथा पुस्तकों का संग्रह

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन चरित्र पृष्ठ ३७५ पर लिखा है—

"स्वामीजी ने वेदभाष्य के कार्य में योग देने के लिये फर्रुखाबाद से भीमसेन[1] को अपने पास काशी बुलाया। एक मास तक ग्रन्थसंग्रह का प्रबन्ध होता रहा और फिर वेदभाष्य की रचना आरम्भ हुई।"

ऋ० भ० भूमिका के लेखन की समाप्ति

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का लिखना कब समाप्त हुआ, इसका संकेत ग्रन्थ में कुछ नहीं मिलता। ऋषि ने मार्गशीर्ष शु० १५ सं० १९३३ वि० को स्वीय वेदभाष्य के प्राचारर्थ एक विज्ञापन प्रकाशित किया था। उस में लिखा है—

१. अनुभ्रमोच्छेदन से ज्ञात होता है कि भीमसेन का स्वामीजी के साथ सं० १९२८ वि० से संबन्ध था (द्र० – दयानन्दीयलघुग्रन्थ-संग्रह, पृष्ठ २८३, पं० ५)। ब्रह्म प्रेस इटावा से प्रकाशित पं० भीमसेन के जीवनचरित्र पृष्ठ ८ में लिखा है कि सं० १९२९ के आरम्भ में १७ वर्ष की आयु में पं० भीमसेन फर्रुखाबाद की पाठशाला में प्रविष्ट हुये थे। वहां सवा चार वर्ष तक पढ़ते रहे। तभी से इन का स्वामीजी के साथ परिचय था। काशी में ये स्वामीजी के पास १९३३ के आषाढ़ मास में पहुंचे थे। देखो पं० भीमसेन का जीवनचरित्र पृष्ठ १२, १३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"संवत् १९९३ वि० मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णमासी (१ दिसम्बर १८७६) पर्यन्त दश हजार श्लोकों[1] प्रमाण भाष्य बन गया है। और कम से कम ५० श्लोक और अधिक से अधिक १०० श्लोक पर्यन्त प्रतिदिन भाष्य को रचते जाते हैं।"

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ३५, पृष्ठ ६९, पं० ११-१५।

पुनः इसी विज्ञापन के अन्त में लिखा है—

"सो भूमिका के श्लोक न्यून से न्यून संस्कृत और आर्यभाषा के आठ हजार हुए हैं।" वही, भाग १, पृष्ठ ७६, पं० २५-२६।

इन दोनों उद्धरणों को मिलाकर पढ़ने से ज्ञात होता है कि (ऋ० भा० भूमिका की रचना लगभग मार्गशीर्ष (सं० १९३३) के प्रथम सप्ताह[2] तक अर्थात् पौने तीन मास में पूर्ण हो गई थी।)

---

१. किसी भी ग्रन्थ के परिमाण को बताने की प्राचीन परिपाटी यह है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ के अक्षरों की गणना करके उस में ३२ का भाग देने पर जो भागफल आता हैं, वह श्लोक प्रमाण माना जाता है। अर्थात् परिमाण बोधक श्लोक ३२ अक्षरों का अनुष्टुप् छन्द का होता है। इस प्रकार १००००×३२ =३२०००० तीन लाख बीस हजार अक्षर प्रमाण भाष्य ग्रन्थ।

विशेष—जिन व्यक्तियों ने (चाहे वे कितने ही विद्वान् क्यों न हों) प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों पर काम नहीं किया है अथवा ग्रन्थ-परिमाण बोधक परिपाटी से विज्ञ नही हैं। वे ऐसे स्थानों पर भ्रान्त हो जाते हैं। इस का हम एक उदाहरण देते हैं—

सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में पाठविधि-प्रकरण में लिखा है—**'इसी प्रकार पाणिनि महर्षि ने सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द अर्थ और संबन्धों की विद्या प्रतिपादित कर दी।'** वैदिक यन्त्रालय में संशोधन कार्य करनेवाले एक वैयाकरण विद्वान् ने **'सहस्र श्लोकों'** पर टिप्पणी दी है—'सम्भव है पहले अष्टाध्यायी श्लोक बद्ध हो'। स० प्र० वै० यं० सं० ३२, पृष्ठ ५०।

२. पूर्व उद्धरण के अनुसार सौ श्लोक प्रमाण प्रतिदिन के हिसाब से दस हजार श्लोक प्रमाण ग्रन्थ बनने में लगभग १०० दिन लगे होंगे। भूमिका का आरम्भ भाद्र सुदि १ को हुआ था और इस उद्धरण के अनुसार मार्गशीर्ष पूर्णिमा तक ३ मास १५ दिन का काल होता है। इस में से २००० श्लोक प्रमाण के रचने के २० दिन न्यून कर दें तो यह काल उपलब्ध होता हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पौने तीन मास का समय ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की **पाण्डुलिपि** (रफ कापी) लिखने का है। इसके पश्चात् कई मास भूमिका के संशोधन और प्रेसकापी बनाने में व्यतीत हुए। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय में लिखा है—

"जैसे विक्रम के सं० १९३३ फाल्गुन मास कृष्णपक्ष षष्ठी, शनीवार के दिन चतुर्थ प्रहर के प्रारम्भ में यह बात हमने लिखी।"

ऋ० भा० भूमिका, रा० ला० ट्र० सं० पृष्ठ २८, पं० १५-१६।

इस लेख से प्रतीत होता है कि भूमिका की अन्तिम प्रेसकापी के लेखन का कार्य माघ के अन्त या फाल्गुन के आरम्भ में प्रारम्भ हुआ होगा।

पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित पृष्ठ ३८० में बरेली के वृत्तान्त में लिखा है—"ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का प्रणयन करते रहे।"

महर्षि अगहन मास में दो बार बरेली पधारे थे। प्रथम वार अगहन कृष्णा ५ सं० १९३३[1] तदनुसार ६ नवम्बर सन् १८७६ को बरेली पधारे थे। इस बार की उन के बरेली से प्रस्थान को तिथि अज्ञात है। दूसरी बार अगहन के शुक्ल पक्ष में आये थे और पौष कृष्णा १ (१९३३) तदनुसार २ दिसम्बर १८७६ तक बरेली रहे (बीच में कुछ दिनों के लिये मुरादाबाद गये थे)। इससे इतना अवश्य प्रतीत होता है कि ऋ० भा० भूमिका के लेखन की समाप्ति बरेली में हुई थी।

ऋ० भा० भूमिका के मुद्रण का आरम्भ

भूमिका के छपने का आरम्भ कब हुआ, यह ठीक-ठीक ज्ञात नहीं। इसका जो प्रथम अंक लाजरस प्रेस काशी से प्रकाशित हुआ था, उसके मुख पृष्ठ पर निम्न सूचना छपी हुई मिलती है—

---

१. पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित में 'कार्त्तिक शु० १५ तदनुसार ६ नवम्बर को बरेली पहुंचना लिखा है। ६ नवम्बर को अगहन कृष्णा ५ थी, कार्तिक शु० १५ नहीं। इस प्रकरण में प्रायः अंग्रेजी तारीखें दी है। अतः हमने अंग्रेजी तारीख को ही प्रधानता देकर चान्द्र तिथि का परिशोध किया है। कार्तिक शुक्ला १५ को नवम्बर की पहली तारीख थी और उस दिन वे लखनऊ से शाहजहांपुर पधारे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"विदित हो कि सं० १९३४ वैशाख महीने में देश पञ्जाब के लुधियाना वा अमृतसर में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे।

इस सूचना से अनुमान होता है कि ऋ० भा० भूमिका का **प्रथम अंक चैत्र सं० १९३४** में प्रकाशित हुआ होगा।

मुद्रण की समाप्ति

भूमिका का अन्तिम १५, १६ वां सम्मिलित अंक वैशाख सं० १९३५ में छपकर प्रकाशित हुआ था। तदनुसार इस ग्रन्थ के छपने में लगभग १३ मास का समय लगा था।

ऋ० भा० भूमिका का मुद्रण लाजरस प्रेस काशी में प्रारम्भ हुआ था और १४ वें अंक (पृष्ठ ३३६) तक उसी प्रेस में छपी। १५, १६ वां सम्मिलित अंक निर्णयसागर प्रेस वम्बई में छपा था।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का भाषानुवाद

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का जो भाषानुवाद वैदिक यन्त्रालय से प्रकाशित होता है, वह पण्डितों का किया हुआ है। इसका केवल संस्कृत भाग ही ऋषि का रचा हुआ। इस भाषानुवाद में कहीं-कहीं मूल संकृत से अत्यन्त प्रतिकूलता है। कई स्थानों पर संस्कृत और भाषानुवाद का मेल ही नहीं मिलता, अर्थात् जो संस्कृत छपी है उसका भाषानुवाद उपलब्ध नहीं होता, और जो भाषानुवाद है उसका संस्कृत भाग ढूंढने पर नहीं मिलता। इसका मुख्य कारण यह है कि ऋषि संस्कृत भाग लिखाकर भाषानुवाद के लिये पण्डितों को दे देते थे। भाषानुवाद के अनन्तर ऋ० द० पुनः संस्कृत में संशोधन कर देते थे, परन्तु पण्डित लोग संस्कृत में किये गये संशोधन के अनुसार पुनः भाषा का पूरा-पूरा संशोधन नहीं करते थे। यह रहस्य की बात हमें तब ज्ञात हुई जब श्री पूज्य आचार्य पं० ब्रह्मदत्तजी ने ऋषि के यजुर्वेद-भाष्य का सम्पादन करने के लिये उस के हस्तलेखों का परस्पर में मिलना किया (उस मिलान-कार्य में मैं भी उन के साथ था)। हस्तलेखों के मिलान कार्य से हम इस निश्चय पर पहुंचे कि जहां-जहां मूल संस्कृत और उसके भाषानुवाद में भेद है, वहां-वहां निन्यानवें प्रतिशत यही कारण है। हम भूमिका के 'वेदविषय-विचार'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकरण का यहां एक उदाहरण उपस्थित करते हैं । ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका पृष्ठ ३४६ (वै० यं० मुद्रित शताब्दी संस्करण, भाग २) में लिखा है—

"ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, मन, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ, और मन्त्र ये मूर्तिरहित देव हैं। तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां विजली और विधि-यज्ञ ये सव देव मूर्तिमान् और अमूर्त्तिमान् भी है ।"

यहां इन्द्रियों को मूर्त्तिमान् और अमूर्तिमान् दो प्रकार का लिखा हैं और इसकी पुष्टि में नीचे **टिप्पणी** लिखी है—

"इन्द्रियों की शक्तिरूप द्रव्य अमूर्त्तिमान् और गोलक मूर्तिमान् तथा विद्युत् और विधियज्ञ में जो-जो शब्द तथा ज्ञान अमूर्त्तिमान् और दर्शन तथा सामग्री मूर्त्तिमान् जाननी चाहिये ।"

संस्कृत भाग में इस प्रकरण में निम्न पाठ है—

"एवमेकादशरुद्रा द्वादशादित्या मनःषष्ठानि ज्ञानेन्द्रियाणि वायु-रन्तरिक्षं द्यौर्मन्त्रश्चेति शरीररहिताः…………।"

यहां पांच ज्ञानेन्द्रियों को अशरीरी स्पष्ट लिखा है। दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार भी ज्ञानेन्द्रियों अशरीरी हैं। बाह्य गोलक केवल इन्द्रियों के अधिष्ठानमात्र माने जाते हैं, इन्द्रियां नहीं ।

इस भेद का कारण इस प्रकार है—

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की सात हस्तलिखित कापियां हैं ।[1] इनमें **उत्तरोत्तर क्रमशः संशोधन परिवर्धन और परिवर्तन हुआ है ।** उपर्युक्त संस्कृत पाठ का **जो भाषानुवाद सम्प्रति छपा हुआ मिलता है, उसकी मूल संस्कृत भूमिका की चौथी प्रति में उपलब्ध होती है, अगली पांचवी प्रति में उस संस्कृत को काट कर वर्तमान संस्कृत के अनुरूप कर दिया, परन्तु पण्डितों ने ऋषि के द्वारा किये गये संस्कृत के संशोधन के अनुसार भाषा में कोई संशोधन नहीं किया और प्रेस-कापी पर्यन्त** (अगली दो तीन प्रतियों में भी) **उसी कटी हुई संस्कृत**

---

१. ६ हस्तलिखित कापियों का विवरण ग्रन्थ के अन्त में प्रथम परिशिष्ट में देखें ; ७ वीं जो प्रेस कापी थी, वह छपने के लिये 'लाजरस प्रेस बनारस' में मुद्रण के लिये गई थी, वह वापस नहीं आई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुवाद की प्रतिलिपि करते रहे। अत एव मुद्रित संस्करणों में भी वही अपरिवर्तित अशुद्ध पाठ आज तक उपलब्ध होता है।

ऋषि दयानन्द के सहयोगी पण्डित भीमसेन, ज्वालादत्त आदि कितने प्रमादी थे, इस का एक और उदाहरण हम उपस्थित करते हैं। ऋ० द० ने यजुर्वेदभाष्य के ८ वें अध्याय के १४ वें मन्त्र की प्रेस कापी पृष्ठ १०२ के मार्जन (हाशिये) अपने हाथ से एक आवश्यक टिप्पणी लिखी हैं। जो इस प्रकार है—

सर्वत्र त्वष्टा ही है। इस को मन्त्र और पद[1] में त्वष्ट्रा को ही शोध के त्वष्टा बना ही दिया। जिस को हम करते हैं वह तो ठीक होता है। जो दूसरों से कराते हैं वही गड़बड़ होता है। हम ने मन्त्र और पद शोधवाया था सो शुद्ध है, बाकी पण्डितों से शोधवाया था वही अशुद्ध रहा।

इस टिप्पणी के लिखने पर भी सं० १९८० के द्वितीय संस्करण तक वेदभाष्य के संस्कृत पदार्थ में **त्वष्टा** के तृतीयान्त विभक्ति का **'तनकर्त्रा'** अर्थ छपता रहा। सं० २०१५ के तृतीय संस्करण में यह अशुद्धि दूर हुई।

हमारा विचार है, ऐसे स्थलों पर अन्तिमरूप से संशोधित मूल संस्कृत पाठ के अनुसार असंशोधित भाषा का संशोधन कर देना चाहिये। क्योंकि लेखक का मूल ग्रन्थ संस्कृत में लिखा गया है, अतः वही प्रामाणिक है।

साम्प्रतिक कई एक व्यक्ति जिन्होंने हस्तलेखों की तुलना का परिश्रम नहीं किया हैं, भूमिका की आर्याभाषा को भी ऋषि दयानन्द कृत सिद्ध करने का व्यर्थ परिश्रम करते हैं। यदि वस्तुतः भूमिका की आर्यभाषा ऋषिकृत होती तो संस्कृत और आर्यभाषा में वह विरोध उपलब्ध नही होता, जो इस में पदे-पदे उपलब्ध हाता है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के मुद्रण में प्रमाद

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के राजधर्म-प्रकरण में ८ वें मन्त्र के आगे नवम मन्त्र, उसका संस्कृतभाष्य तथा भाषानुवाद छूटा हुआ है। हस्त-

1. 'पद' शब्द से यहां 'पदपाठ' अभिप्रेत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख में यह सम्पूर्ण पाठ विद्यमान है। परन्तु यह छूट प्रथम संस्करण से आज तक बराबर चली आ रही है। सं० २०२२ के नवम संस्करण में पृष्ठ २४१ के नीचे टिप्पणी में इस का निर्देशमात्र किया है। हमने सं० २०२४ में रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से जो संस्करण छापा है। उसमें हस्तलेख के आधार पर छूटे हुए पाठ को यथास्थान जोड़ दिया है। द्रष्टव्य रामलाल कपूर ट्रस्ट सं०, पृष्ठ २५३ की टि० १, तथा पृष्ठ २५४ की टि० १-४।

भाषानुवाद का संशोधन

पूर्वोक्त संस्कृत और भाषानुवाद के असामञ्जस्य दोष को दूर करने के लिये दो प्रयत्न किये गये। वे इस प्रकार हैं—

१—मेरठ निवासी स्वामी छुट्टनलालजी ने मूल संस्कृत के अनुसार भूमिका का नया भाषानुवाद प्रकाशित करने का उपक्रम किया था। उसका १-७-१९२९ ई० का छपा हुआ २०×३० सोलहपेजी आकार के ३४ पृष्ठों का एक खण्ड हमें देखने को मिला है, अन्य खण्ड हमें नहीं मिले। इसलिये कह नहीं सकते कि इसके अगले खण्ड प्रकाशित हुए थे वा नहीं?

२—दूसरा प्रयत्न गुरुकुल कांगड़ी के प्रतिष्ठित स्नातक पं० सुखदेव जी ने किया था। उन्होंने भाषा में यथासम्भव परिवर्तन करके उसे संस्कृताकूल करने का यत्न किया है। इसका प्रथम संस्करण श्री गोविन्दराम हासानन्द ने "**वेदतत्त्वप्रकाश**" के नाम से सन् १९३३ में प्रकाशित किया था। यद्यपि भूमिका का यह संस्करण पाठशुद्धि और भाषानुवाद की परिशुद्धि की दृष्टि से अन्य संस्करणों की अपेक्षा अच्छा है, तथापि इसमें अनेक संशोधनीय स्थल रह गये हैं।

इन दोनों प्रयत्नों के अनन्तर हमने भी रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से सं० २०२४ (सन् १९६७) में प्रकाशित ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में किया है। परन्तु अज्ञों के कोलाहल को ध्यान में रख कर आर्यभाषा को सर्वथा संस्कृत के अनुरूप नहीं बनाया। कभी अवसर मिला तो मैं संस्कृत पाठ के अनुरूप आर्यभाषानुवाद प्रस्तुत करूंगा।

हमारे संस्करण की विशेषता

हमने भूमिका का जो संस्करण प्रकाशित किया, उसकी सबसे बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषता संस्कृत पाठ का शोधन और ऋषि दयानन्द के लेख की पुष्टि में शतशः टिप्पणियों का लेखन है ।

उर्दू अनुवाद

उर्दू भाषा में भूमिका का प्रथम अनुवाद मियाभीर (पंजाब) के महाशय मथुरादास ने ऋषि के जीवनकाल में ही प्रकाशित किया था। महाशय मथुरादास ने एक पत्र (तिथि अज्ञात) स्वामी जी के नाम लिखा था। उसमें इस अनुवाद के विषय में स्वयं इस प्रकार लिखा है—

"मैंने आप की आज्ञा के विना एक मूर्खता की है कि वेदभाष्य-भूमिका का अति संक्षेप से खुलासा करके उर्दू अक्षरों में छपवाया है और उसमें विज्ञापन भी दे दिया है कि जो कोई मेरी लिखी हुई बात वेदभूमिका से विरुद्ध हो वह मेरी भूल है ग्रन्थ की भूल नहीं···।"
पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ५१५, भाग ४, पृष्ठ ५४८ ।

दूसरा उर्दू अनुवाद म० मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने किया था। इस का सम्भवतः एक भाग ही छपा था। इस अनुवाद की भूमिका में म० मुंशीराम ने अनेक स्थानों में मूल संस्कृत पाठ और भाषानुवाद की विषमता का उल्लेख किया है और इस का कारण पण्डितों द्वारा भाषानुवाद होना बताया है[1]। म० मुंशीराम कृत उर्दू अनुवाद सन् १९९८ में प्रकाशित हुआ था ।

अन्य भाषाओं में अनुवाद

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अंग्रेजी, मराठी, तेलगु, उड़िया, आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद हो गया है, परन्तु वे ऋषि के निधन के अनन्तर हुए हैं, इसलिये हम उनका यहां निर्देश नहीं करते ।

अंग्रेजी भाषा में भूमिका के दो अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। उन में प्रथम अनुवाद पं० घासीराम जी एम० ए० कृत है। दूसरा अनुवाद डॉ० परमानन्द एम० ए० ने किया है। यह अनुवाद पूर्व अनुवाद की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इस का प्रकाशन मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लीशर्स (१ अंसारी रोड़, दरियागंज नई दिल्ली) ने दो वर्ष पूर्व किया है ।

---

१. म० मुंशीराम कृत उर्दू अनुवाद की भूमिका का भाषानुवाद 'वेदवाणी' पत्रिका के वर्ष ३५, अंक ९ (जुलाई १९८३) में देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर आक्षेपात्मक ग्रन्थ

यों तो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ऊपर छोटे-मोटे आक्षेपात्मक पुस्तिकाएं कई एक व्यक्तियों ने प्रकाशित की हैं। दो पुस्तिकाएं ऋषि दयानन्द के जीवन काल में पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न (कलकत्ता) तथा राजा शिवप्रसाद (बनारस) छपवाई थीं, उन का उत्तर ऋ० द० ने क्रमशः भ्रान्तिनिवारण और भ्रमोच्छन नामक पुस्तिकाओं द्वारा दिया था (इन का वर्णन आगे होगा)।

पौराणिक पण्डित घनश्याम जी ने ऋ० भा० भूमिका के खण्डन में संस्कृत भाषा में **भूमिकाधिक्कारापरपर्याय भूमिकाभास** ग्रन्थ छपवाया था। इस का संस्कृत भाषा में ही उत्तर गुरुकुल वृन्दावन के लब्धप्रतिष्ठ स्नातक पं० द्विजेन्द्रनाथ शर्मा ने दिया था। यह बम्बई से सं० १९८१ में छपा है।

अभी ३-४ वर्ष पूर्व स्वामी करपात्री जी ने **वेदार्थपारिजात** के नाम से बृहत्काय एक ग्रन्थ दो भागों में संस्कृत तथा हिन्दी में प्रकाशित किया है।[1] इस में जहां अन्य व्यक्तियों[2] के लेखों का खण्डन किया है, वहां ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का खण्डन विस्तार से किया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने पर आर्यसमाज में कुछ उबाल उठा, आर्य पत्र-पत्रिकाओं में छुटपुट लेख छपे और सोडावाटर के उबाल के समान शीघ्र ही ठंडा पड़ गया। आर्य सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा और परोपकारिणी सभा ने इस के खण्डन में ग्रन्थ लिखाने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

ग्रन्थ को पढ़ कर इस का उत्तर लिखने की मेरी उत्कृष्ट इच्छा हुई, परन्तु चिरकाल से विविध व्याधियों से ग्रस्त होने के कारण स्वास्थ्य सर्वथा गिर जाने से उत्तर लिखने में असमर्थ रहा। इच्छा थी कि कोई योग्य विद्वान् सहायक मिल जाता तो इस का उत्तर दिया जा सकता था, परन्तु प्रयत्न करने पर भी जिन व्यक्तियों में से एक दो को मैं चाहता था, वे सभी अपने कार्य व्यस्त होने के कारण

---

१. यह २३×३६ अठपेजी बड़े आकार के लगभग २३०० पृष्ठों में पूरा हुआ है।

२. इन व्यक्तियों में वेदमतानुयायी स्व० श्री० पं० ब्रह्मदत्त जी, स्व० श्री भगवद्दत्त जी तथा मेरे लेखों का खण्डन विशेष रूप से किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहयोग के लिये उद्यत नहीं हुए। उन के लिये आर्थिक प्रश्न नहीं था, उसकी उन्हें पूरी सुविधा देने की व्यवस्था भी हो गई थी।

मुझे मानसिक अनुताप इस बात का है कि उक्त पुस्तक १०-१२ वर्ष पूर्व छपी होती (जब में कार्यक्षम था) तो विना किसी के सहयोग के ही इस का प्रौढ़ खण्डन लिख देता। अब तो सम्भव है अगले जन्म में हो यह कार्य कर सकूंगा। वैदिक-सिद्धान्त के अनुसार पूर्व जन्म के उत्कृष्ट, परन्तु अपूरित संकल्प की पूर्त्ति अगले जन्म में सम्भव मानी गई है—**संविज्ञानमेवान्ववक्रामति, तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च** (बृ० उप० ४।४।२)।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की महत्ता

ऋषि दयानन्द ने जिन मूलभूत सिद्धान्तों को आधार बनाकर अपना वेदभाष्य लिखा, उन का प्रतिपादन उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में कर दिया है। अतः भूमिका को विना पढ़े दयानन्द के वेदभाष्य को नहीं समझा जा सकता। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेदभाष्य के पांचवें अंक पर के टाइटल पेज ३-४ पर वेद-भाष्य के विषय में एक विज्ञापन छपवाया था। उस में लिखते हैं—

जो कोई भूमिका के विना केवल वेद ही लिया चाहें सो नहीं मिल सकते किन्तु भूमिका ५ रु० देने से पृथक् मिल सकती है। पत्र और विज्ञापन, पूर्णसंख्या २०४, भाग १, पृष्ठ २५६, पं० १०-११।

इस विज्ञापन के द्वारा विना भूमिका के वेदभाष्य वेचने का निषेध कर देने पर भी आज तक परोपकारिणी सभा वेदभाष्य के आर्डर के साथ भूमिका नही देती। सन् १९७५ में आर्य सार्वदेशिक सभा तथा दयानन्द संस्थान देहली ने जो वेदभाष्य छापे, उनमें भी भूमिका साथ में नहीं जोड़ी गई। भूमिका सदा ग्रन्थ का भाग होती है, परन्तु ये तथा कथित दयानन्द के पुजारी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को स्वतन्त्र ग्रन्थ समझते हैं।

रा० ब० चौधरी नारायणसिंह प्रतापसिंह धर्मार्थ ट्रस्ट (करनाल) की ओर से हमने स्वसम्पादित ऋग्वेदभाष्य के तीन भाग छपवाये हैं। उस के प्रथम भाग में भूमिका भी इसीलिये छाप दी कि केवल भाष्य छापने से भाष्य का खरीददार भूमिका से वञ्चित न रह जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६—ऋग्वेदभाष्य

ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य सम्बन्धी विज्ञापन के पूर्व १२६ पृष्ठ पर उद्धृत दोनों पाठों को मिलाकर पढ़ने से विदित होता है कि अगहन (मार्गशीर्ष) मास (सं० १६३३) के प्रथम सप्ताह तक ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की प्रथम कापी लिखी जा चुकी थी। तत्पश्चात् अगहन की पौर्णमासी तक ऋग्वेदभाष्य भी लगभग दो हजार श्लोक-प्रमाण लिखा जा चुका था। इस प्रकार **ऋग्वेदभाष्य का आरम्भ सं० १६३३ मार्गशीर्ष मास के द्वितीय सप्ताह में हुआ,** ऐसा प्रतीत होता है। ऋग्वेदभाष्य जो छपा हुआ उपलब्ध होता है, उस के प्रारम्भ में उस के आरम्भ करने का काल इस प्रकार लिखा है—

वेदत्र्यङ्के विधुयुतसरे मार्गशीर्षेऽङ्गभौमे,
ऋग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम्।

अर्थात् सं० १६३४ मार्गशीर्ष शु० ६ मंगलवार के दिन ऋग्वेद-भाष्य का आरम्भ किया।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नवम अंक के अन्त में वेदभाष्य के संबन्ध में एक विज्ञापन छपा है। उसके अन्त में लिखा है—

"ऋग्वेदभाष्य १० सूक्त पर्यन्त भाष्य सं० १६३४ वि० माघ बदि १३ गुरुवार तक बन चुका है।

द्र०—पत्र और विज्ञापन, पूर्णसंख्या ८१, भाग १, पृष्ठ १३८, पं० ३-४।

इस प्रकार ऋग्वेदभाष्य को आरम्भ करने के दो काल विदित होते हैं। एक—सं० १६३३, मार्गशीर्ष मास का द्वितीय सप्ताह और दूसरा सं० १६३४, मार्गशीर्ष शु० ६। इन दोनों कालों में पूरा एक वर्ष का अन्तर है। इस समस्या का समाधान इस प्रकार जानना चाहिये—

ऋग्वेद के दो भाष्य

प्रथम—प्रतिमन्त्र दो अर्थवाला बृहद्-भाष्य

हमारे विचार में मध्य के एक वर्ष के अन्तराल में ऋषि दयानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद का जो भाष्य रचते रहे वह वर्तमान में उपलब्ध मुद्रित भाष्य से भिन्न था। परोपकारिणी सभा के हस्तलेख संग्रह में ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ६१ सूक्त तक के भाष्य की एक हस्तलिखित प्रति विद्यमान हैं। इस भाष्य में प्रायः प्रतिमन्त्र व्यावहारिक और पारमार्थिक दो प्रकार का भाष्य उपलब्ध होता है। एक वर्ष में १०० श्लोक प्रमाण प्रतिदिन के हिसाब से लगभग ३६००० छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण भाष्य लिखा गया होगा। हमने इस कापी को देखा है और इस के संस्कृत पाठ के विशिष्ट भाग की प्रतिलिपि हमारे पास है। उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि १ वर्ष के अन्तराल में ऋग्वेद का प्रतिमन्त्र दो-दो अर्थवाला भाष्य लिखा गया। जब सन् १९३५ में पूज्य गुरुवर ने परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान हस्तलेखों को व्यवस्थित किया था, उस समय इस पर **ख कापी** लिख कर इस को सुरक्षित किया था। अब कुछ समय से कहा जा रहा है कि यह भाष्य उपलब्ध नहीं है। यदि वस्तुतः यह भाष्य नष्ट हो गया है, तो यह एक अपूरणीय क्षति होगी।

इसी एक वर्ष के अन्तराल में ऋ० भा० भूमिका की कापी का भी ५-६ बार संशोधन किया था।

दूसरा—लघु-भाष्य

हमारे विचार में एक वर्ष तक निरन्तर ऋग्वेद का भाष्य लिखने के पश्चात् ऋषि दयानन्द ने सोचा होगा कि इस प्रकार भाष्य का विस्तार करने से वेदभाष्य की रचना में बहुत अधिक काल लगेगा। अतः उन्होंने उस का संक्षेप करके नया भाष्य लिखा। मुद्रित ऋग्वेद-भाष्य के आरम्भ में लिखित काल इस संक्षिप्त (लघु) भाष्य के लेखन को सूचित करता है। पूर्व १३८ पृष्ठ पर विज्ञापन का जो अंश उद्धृत किया है वह भी इसी मुद्रित लघु-भाष्य के आरम्भ करने के काल की पुष्टि करता है।

बृहत्-पाठ और लघु-पाठ की परम्परा

अष्टाध्यायी धातुपाठ निरुक्त आदि अनेक ऐसे प्राचीन ग्रन्थ हैं जिन के बृहत् और लघु दो-दो प्रकार के पाठ उपलब्ध होते हैं। प्राचीन परम्परा में बृहत्पाठ को वृद्धपाठ नाम से स्मरण किया जाता है और लघुपाठ को सामान्य नाम मात्र से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदभाष्यों को परम्परा में वेङ्कट माधव के भी ऋग्वेद के बृहत् और लघु दो भाष्य उपलब्ध होते हैं। वेंकट माधव का ऋग्वेद का बृहद्भाष्य प्रथमाष्टक पर्यन्त ही टूटा फूटा उपलब्ध होता है। यह अडियार (मद्रास) से छपा है।[1] लघुभाष्य सम्पूर्ण उपलब्ध होता है और विश्वेश्वरानन्द शोध-संस्थान, होशियारपुर से कई भाष्यों के साथ छपा हैं

ऋग्वेद का परिमाण

ऋग्वेद में दश मण्डल, ११२८ सूक्त और १०५५२ मन्त्र[2] हैं। इन में से महर्षि अपने जीवन काल में सप्तम मण्डल के ६२ वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र तक अर्थात् ५६४९ मन्त्रों का ही भाष्य कर पाये थे।

---

१. अडियार से छपा ऋग्वेदभाष्य माधव कृत है। यह वेङ्कट माधव से भिन्न है, ऐसा इस के संपादक डा० कुन्हनराजा का कहना है। परन्तु यह कथन चिन्त्य है। निघण्टु का व्याख्याता देवराज इस भाष्य के अनेक पाठ वेंकट माधव के नाम से उद्धृत करता है। एक स्थान पर वह '**वेंकटमाधवस्य प्रथमं भाष्यम्**' लिखकर उद्धृत करता है। प्रथम शब्द का प्रयोग ही बताता है कि वेङ्कट माधव के दो भाष्य थे। द्र०—पं० भगवद्दत्त कृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास, 'वेदों के भाष्यकार' भाग।

२. ऋग्वेद की मन्त्र संख्या के विषय में प्राचीन तथा आधुनिक विद्वानों में अत्यन्त मतभेद है। इस के प्रमुख कारण हैं—

१—प्राचीन ऋग्गणना प्रकार को यथावत् न समझना।

२. गणना में भूल हो जाना।

३. शाखान्तरगत मन्त्रगणना का प्रस्तुत संहिता में आरोप करना।

४. मैक्समूलर के द्वारा मूल तथा भाष्य में १४० द्विपदा ऋचाओं को को विविध प्रकार से छापना।

आधुनिक विद्वान् मैक्समूलर के ऋक्संस्करण को आंख मूंद कर प्रमाण मानकर चलते हैं। उन्हें न भारतीय परम्परा का ज्ञान है और ना ही वे परम्परागत ऋग्वेदी ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर जानना चाहते हैं। उन के लिये तो मैक्समूलर का कथन ब्रह्मवाक्य है, निर्दोष स्वतःप्रमाण है। आजकल देश में ऐसे परप्रत्ययनेय-बुद्धियों का ही प्राबल्य है। सरकार भी उन्हें ही मान्यता प्रदान करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि जोधपुर में नन्ही भगतन वेश्या तथा अन्य विरोधी लोगों के षडयन्त्र से ऋषि दयानन्द को कालकूट विष अशुद्ध संखिया' न दिया जाता और डा० अलीमर्दान हलके विरेचन की प्रार्थना करने पर अशुद्ध जमालगोटा की भारी मात्रा में गोलियां न देता तो ऋ० द० अपने जीवनकाल में न केवल सम्पूर्ण ऋग्वेद का, अपितु साम और अथर्व का भाष्य भी लिख जाते। ऋषि दयानन्द भाद्र वदी ५ सं० १९४० (२१ अगस्त १८८३) के पत्र में मुंशी समर्थदान को लिखते हैं—

ऋग्वेद का चौथा अष्टक भी पूरा हो गया पांचवें अष्टक का एक अध्याय कल पूरा होगा और छठा मण्डल आज पूरा हो गया। परमेश्वर की कृपा से १ वर्ष में सब ऋग्वेद भाष्य पूरा हो जायेगा। और एक वा ढेढ वर्ष साम और अथर्व में लगेगा।

द्र०—पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ७५७, भाग २, पृष्ठ ७९७, पं० १०-१३।

हमने ऋग्वेद की ऋग्गणना में किस-किस व्यक्ति ने कहां-कहां भूल की है इस को सोपत्तिक दर्शाकर ऋग्वेद की वास्तविक ऋक्संख्या का विवरण **'ऋग्वेदस्य ऋक्संख्या'** (हिन्दी सहित) निबन्ध में प्रस्तुत किया है।

१. अनेक जीवनचरित के लेखकों के पिसा हुआ कांच दूध के साथ देने का उल्लेख किया है, वह सर्वथा अशुद्ध है। कांच को कितना ही बारीक क्यों न पीसा जाये वह कुछ देर में पीते पीते ही तलहटी में वैठ जाता है। दूसरा उससे विशेष हानि नहीं होती, वमन और विरेचन से निकल जाता है, ऐसा चिकित्सकों का मत है (मेरे ज्येष्ठ पुत्र ने कांच खा लिया था उस समय चिकित्सक ने यह बात कही थी और वमन करा कर निकाल दिया था)।

ऋ० म० को संखिया दिया गया था, 'यह अजमेर के प्रसिद्ध हकीम पीरजी का कहना था (द्र०—लेखराम कृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ९२२)। संखिया के और हैजा रोग के लक्षण प्रायः समान होते हैं। ऋ० द० के शरीर में भी उन के लक्षण वमन विरेचन उदरशूल प्यास आदि लक्षणउत्पन्न हुए थे। चतुम विरोधी हैजे के दिनों में अपने विरोधी को मारने के लिये संखिया दिया करते हैं। रोगी और परिचारक भ्रममें रहते हैं कि हैजा हो गया है। कुशल वैद्य ही दोनों के लक्षणों में सूक्ष्म भेद करने में समर्थ होता है।

मुसलमान डाक्टर ने जानवूझ कर अशुद्ध जमाल गोटा दिया, जिस का फल हुआ कि प्रतिदिन ४०-५० दस्त होते रहे, रोकने पर भी न रुके। अतः जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवा दो मास पूर्व के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द को मृत्यु का कोई पूर्वाभास नहीं हुआ था। उनकी महिमा को बढ़ाने के लिये मृत्यु की पूर्वाभास की कल्पना करना नितान्त झूठ बोलना है।

ऋग्वेदभाष्य के मुद्रण का आरम्भ तथा समाप्ति

ऋग्वेदभाष्य का मुद्रण सम्भवतः श्रावण संवत् १९३५ में मासिक अंक रूप में आरम्भ हुआ था। उनके जीवन काल में इस भाष्य के केवल ५१ अङ्क ही प्रकाशित हुए थे। जिन में प्रथम मण्डल के ८६ वें सूक्त के ५वें मन्त्र तक का भाष्य छपा था[1]। शेष समस्त भाष्य पूर्ववत् मासिक अङ्कों में सं१९५६ के आषाढ़ कृष्णा ५ तक छपता रहा। अर्थात् सम्पूर्ण भाष्य के छपने में लगभग २२ वर्ष लगे। भाष्य कितने अङ्कों में छपा था, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका। ऋग्वेदभाष्य के प्रारम्भ के १३ अंक निर्णय सागरप्रेस बम्बई में छपे थे, शेष वैदिक-यन्त्रालय में।

ऋग्वेद-भाष्य के सम्बन्ध में महती भ्रान्ति

यजुर्वेद-भाष्य के आरम्भ में लिखा है—

ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगणिज्ञानप्रदातुर्वरं,
भाष्य काम्यमथो क्रियामयजुर्वेदस्य भाष्यं मया ।

इसी प्रकार भाषानुवाद में भी—

ज्ञानदापि ऋग्वेद का भाष्य अभीष्ट विधाय ।

यहाँ उभयत्र **विधाय** शब्द को देख कर अनेक व्यक्ति समझते है कि ऋ० द० ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का भाष्य पूरा करके यजुर्वेदभाष्य का आरम्भ किया। वस्तुतः यहां **विधाय** शब्द केवल **'आरम्भ करने के**

लोग यह घोषणा करते हैं कि ऋ० द० को विष नहीं दिया गया, वे शायद कल्पना के लोक में विचरण करनेवाले हैं।

१. ऋग्वेदभाष्य का ५०-५१ सम्मिलित अंक पर आषाढ़ कृष्णपक्ष १९४० छपा हुआ है सम्भवतः अंक देर से निकला था। इस के मुखपृष्ठ के नीचे 'स्वामी जी के जोधपुर में ठहरने की सूचना' छपी है। अगला ५२-५३ सम्मिलित अंक चैत्र कृष्णपक्ष १९४० को प्रकाशित हुआ था। इस के मुखपृष्ठ की पीठ (२) पर स्वामी जी स्वर्गवास की सूचना छपी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात्' अर्थ के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि **ऋ० द० ने** ऋग्वेदभाष्य का आरम्भ सं० १९३४ मार्गशीर्ष शुक्ला ६ मंगलवार (११ दिसम्बर १८७७) के दिन किया था और यजुर्वेदभाष्य का आरम्भ स० १९३४ के ही पौष सुदि १३ गुरुवार (१७ जनवरी १८७८) का कर दिया था। इस प्रकार इन दोनों भाष्यों के आरम्भ करने के समय में **केवल ३७ दिन का अन्तर है**। अतः ऋ० द० ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का भाष्य करके यजुर्वेदभाष्य को आरम्भ किया, ऐसा समझना भ्रान्ति मात्र है।

ऋग्वेद भाष्य में अशुद्धियां

ऋग्वेदभाष्य में कई प्रकार की अशुद्धियां उपलब्ध होती हैं। उन में अधिकतर अशुद्धियां लिपिकरों की हैं, जिन का 'क्लेरीकिल मिस्टेक' में अन्तर्भाव हो जाता है। कुछ अशुद्धियां ऐसी हैं जो पूर्व निर्दिष्ट बृहद्भाष्य से संक्षेप करते समय असावधानता से पाठ का पूरा संशोधन न होने के कारण उत्पन्न हुई हैं। कुछ अशुद्धियां छपते समय संशोधक पण्डितों की हेराफेरी के कारण हुई हैं। हम अन्त्य की दो प्रकार की अशुद्धियों का एक-एक नमूना उपस्थित करते हैं—

१. पाठ बदलते समय पूरा संशोधन न होना—ऋग्वेद १।२२। ३ के पुराने बृहद्भाष्य में पाठ था—(सूनृतावती) **सूनृता प्रशस्ता वाग्विद्यते यस्या बुद्धेः सा। सूनृतेति वाङ्नामसु पठितम्। निघं० १।११॥** इस पाठ में सूनृता का अर्थ वाक् किया है। अतः "**सूनृतेति वाङ्नामसु पठितम् निघं० १।११॥**" युक्त था। परन्तु वर्तमान पाठ में सूनृता का बुद्धि अर्थ कर दिया—**सूनृता प्रशस्ता बुद्धिर्यस्यां सा।** ऐसा अर्थ बदल देने पर भी आगे '**सूनृतेति**......" पाठ पूर्ववत् मिलता है। बुद्धि अर्थ में इस पाठ की कोई उपयोगिता नहीं है। पाठ बदलते समय यह असंबद्ध प्रमाणांश असावधानता से काटने से रह गया।

२. कापी में शुद्ध पाठ होते हुए छपते समय पाठ बदला गया—ऋग्वेद १।१।२ के भाष्य में निरुक्त १।१० का "**साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः**........**अवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च।**" इस के अन्तिम भाग की व्याख्या हस्तलेख में इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येऽवरेऽल्पबुद्धयो मनुष्या अध्ययनायोपदेशाय च ग्लायन्ते तान् वेदार्थविज्ञानायेमं नैघण्टुकं निरुक्ताख्यं च ग्रन्थं समाम्नासिषुः सम्यगभ्यासं कारितवन्तः येन सर्वे मनुष्या वेदं वेदाङ्गानि च यथार्थतया विजानीयुः ।

निरुक्त के उपर्युक्त सन्दर्भ को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'प्रश्नोत्तरविषय' में उद्धृत करके उसकी व्याख्या ऐसी ही की है जैसी वेद-भाष्य के हस्तलिखित कोशों में है। यहां विशेष रूप से **समाम्नासिषुः** पद ध्यान देने योग्य है। भूमिका में और वेदभाष्य के हस्तलेख में इस पद का अर्थ **अभ्यासं कारितवन्तः** (=अभ्यास कराया) किया है, जो धात्वर्थ के अनुकूल है। मुद्रित भाष्य में पाठ इस प्रकार है—

"......**अध्ययनायोपदेशाय च ग्लायन्ते तेष वेदार्थविज्ञापनायेमं नैघण्टुकं निरुक्ताख्यं च ग्रन्थं समाम्नासिषुः रचितवन्तः**........"

यहां **रचितवन्तः** अर्थात् बनाया अर्थ किया है। यह धात्वर्थ के तो विपरीत है ही, साथ में इस क्रिया का संबन्ध **वेदं च वेदाङ्गानि च** के साथ होने से अर्थ होगा—'निघण्टु निरुक्त को बनाया और वेद को तथा वेदाङ्ग को बनाया।' भूमिका के और भाष्य के हस्तलेख के पाठानुसार अर्थ होगा—निघण्टु निरुक्त का अभ्यास कराया और वेद का वेदाङ्गों का अभ्यास कराया। मुद्रणपत्र-शोधक के मस्तिक पर दुर्गादि अनृषिकृत व्याख्या का भूत सवार था। अतः उसने **अभ्यासं कारितवन्तः** को बदल कर **रचितवन्तः** बना दिया। इस अर्थ में ग्रन्थकार के सिद्धान्त के साथ कहां विरोध पड़ेगा, यह उसे सूझा ही नहीं।

आज से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व केरलदेशीय नीलकण्ठ गार्ग्य ने निरुक्त की एक श्लोकवद्ध व्याख्या[1] की है। उस में उसने में **समाम्नासिषुः** का अर्थ किया है—

सम्यगभ्यस्तवन्तस्तु वेदान् साङ्गान् यथाविधि । पृष्ठ २११,
वेदमभ्यस्तवन्तस्ते वेदाङ्गान्यपि यत्नतः । पृष्ठ २१२,

ऋषि दयानन्द का ऋग्वेदभाष्य अत्यन्त सारगर्भित और उपयोगी होने पर भी वैदिक यन्त्रालय अजमेर से छपा लेखक, मुद्रक, अनुवादक,

१. निरुक्त की यह श्लोकवार्तिक नाम्नी व्याख्या रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) से छपी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशोधक[1] आदि के प्रमाद से इतना दूषित है कि किसी योग्य विद्वान् को भेंट देते हुए भी संकोच होता है। यह अतिशयोक्ति नहीं है, यथार्थ सत्य है। जो इस की सत्यता जानना चाहे वह मेरे द्वारा सम्पादित ऋग्वेदभाष्य के तीन खण्ड ध्यान पूर्वक पढ़े। उसे अनायास ही मेरे लेख की सत्यता करामलकवत् प्रत्यक्ष प्रतिभासित हो जायेगी।

यहां केवल दो उदाहरण संस्कृत भाष्य के दिये है। भाषानुवाद तो बहुधा भ्रष्ट है। इस का कारण आगे यजुर्वेदभाष्य के विवरण के पश्चात् लिखेंगे।

शुद्ध संस्करण की आवश्यकता

वैसे तो ऋषि कृत प्रत्येक ग्रन्थ के शुद्ध संस्करणों की महती आवश्यकता है,[2] तथापि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेदभाष्य के सुसंपादित शुद्ध संस्करण की सर्वाधिक आवश्यकता है। क्योंकि ऋषि दयानन्द के सभी मन्तव्य वेद पर ही आधृत हैं।

मैंने रामलाल कपूर ट्रस्ट से ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का शुद्ध सुन्दर सटिप्पण संस्करण प्रकाशित कराया है। तत्पश्चात् श्री चौधरी प्रतापसिंह जी (करनाल) के सहयोग से ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित ऋग्वेदभाष्य के तीन खण्डों का शुद्ध सुन्दर सुसम्पादित संस्करण छापा है। इस कार्य में अवरोध के दो मुख्य कारण हुए। एक मेरे स्वास्थ्य का अत्यन्त गिर जाने और दूसरा मुद्रित ग्रन्थ की उपयुक्त

---

१. संस्कृत भाषा से आर्यभाषा में अनुवाद करनेवालों ने तथा मुद्रण-पत्र-संशोधकों ने अपने अल्पज्ञान से कैसी अशुद्धियां की हैं, इन का वर्णन यजुर्वेद-भाष्य के अन्त में ऋ० द० और भीमसेन आदि के शब्दों में ही उपस्थित करेंगे।

२. रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि' ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, आर्याभिविनय आदि १४ लघुग्रन्थ, दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन के शुद्ध सुन्दर सटिप्पण अनेकविध परिशिष्टों वा सूचियों से युक्त संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। स्वाध्यायशील आर्यजनों एवं अन्य विद्वानों ने जहां इन की भूरि-भूरि प्रशंसा की, वहां आर्यसमाज के कतिपय अल्पज्ञ तथा क्षुद्रवृत्ति लोगों ने इन की भरपेट निन्दा करने में भी कोई कमी नहीं रखी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्री न होना। फिर भी मुझे सन्तोष है कि ऋग्वेदभाष्य के तीन भागों के प्रकाशन से आगे कार्य करने वालों को यथावत् दिशा-बोध तो मिलेगा ही और इस ग्रन्थ के पाठ से आर्य जनता को भी ज्ञान हो जायेगा कि ऋषि की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा ऋषि के ग्रन्थों को कितना भ्रष्ट छाप रही है। अस्तु।

ऋग्वेदभाष्य की एक और समस्या

हम पूर्व लिख चुके हैं कि ऋषि दयानन्द के जीवनकाल तक ऋग्वेदभाष्य प्रथम मण्डल के ८६ वें सूक्त के ५वें मन्त्र तक ही छपा था। उस के आगे का सम्पूर्ण भाष्य उन के निधन के पश्चात् छपा। इस शेष ऋग्वेदभाष्य के भी दो विभाग हैं—**एक**—जहां तक ऋषि दयानन्द के जीवन काल में प्रेस कापी बन गई, उन्होंने उसे देख लिया। **दूसरा**—जिसकी संस्कृत भाग की केवल पाण्डुलिपि (रफ कापी) मात्र बनी थी। उस पर ऋ० द० का न कोई संशोधन है और इस का भाषानुवाद ही।

ऋ० द० के निधन के पश्चात् परोपकारिणी सभा के मन्त्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने ब्र० रामानन्द को ऋ० द० के वेद-भाष्यों की स्थिति का विवरण प्रस्तुत करने को कहा था। तदनुसार ब्र० रामानन्द ने ऋग्वेदभाष्य का जो विवरण लिख कर पौष कृष्णा ३ रविवार सं० १९४० को भेजा था[1] उसके अनुसार—

१—प्रथम मण्डल ११४वें सूक्त के ५ वें मन्त्र तक शुद्ध प्रति लिखी हुई छापने योग्य है।

२—प्रथम मण्डल के ११४ वें सूक्त के ६ मन्त्र से १२४ सूक्त के १२वें मन्त्र तक की भाषा बनी हुई है।

३—प्रथम मण्डल के १४३ सूक्त तक की कापी भाषा बनने को पं० ज्वालादत्त के पास है।

४—प्रथम मण्डल के १४४ वें सूक्त से ७वें मण्डल के ६२ वें सूक्त के २ रे मन्त्र तक की असंशोधित संस्कृत अर्थात् रफ कापी मात्र है।

इस विवरण के अनुसार प्रथम मण्डल के ११४ वें सूक्त के ६

१. द्र०—ग्रन्थ के अन्त में प्रथम परिशिष्ट में संख्या ३ पर ब्र० रामानन्द का पत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र से १४३ वें सूक्त तक की ऋ० द० द्वारा असंशोधित तथा सूक्त १४४ से ७ वें मण्डल के ६२ वें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक की केवल संस्कृत की रफ कापी से जो वेदभाष्य छापा गया है, **उस का प्रामाण्य चिन्त्य है। उस में ना जाने कितनी भूलें होंगी, जिन का निराकरण ऋषि द्वारा संशोधन होने से नहीं हो सका।**

हमने ऋग्वेदभाष्य की इस रफ कापी को देखा है। उस का भाष्य पर्याप्त अव्यवस्थित सा है। शतशः मन्त्रों की '**......इत्युपदिश्यते**' वाली पंक्ति भी लिखी हुई नहीं हैं। हमारे विचार में इस सम्पूर्ण भाग को विद्वानों द्वारा संशोधन करा कर पुनः छापना चाहिये। असंशोधित रफ कापी से ग्रन्थ को छापने के दुष्परिणाम के विषय में आगे यजुर्वेदभाष्य तथा अष्टाध्यायी भाष्य के प्रकरण में लिखेंगे।

—:o:—

१७—यजुर्वेदभाष्य
(पौष १९३४—माघ १९३९ तक)

ऋग्वेदभाष्य का द्वितीय बार प्रारम्भ करने के कुछ दिन पश्चात् ही ऋषि ने यजुर्वेदभाष्य का आरम्भ कर दिया था। यजुर्वेदभाष्य के आरम्भ में लिखा है—

चतुस्त्र्यङ्कैरङ्कैरवनिसहितैर्विक्रमसरे,
शुभे पौसे मासे सितदलभविश्वोन्मिततिथौ।
गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमभीष्टं सुविदुषाम्,
प्रमाणैर्निबद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि ॥

अर्थात् विक्रम संवत् १९३४ के पौष शुक्ला १३ गुरुवार (१७ जनवरी १८७८) के दिन प्रातः मैंने शतपथ निरुक्त आदि के प्रमाणों से युक्त यजुर्वेद भाष्य का आरम्भ किया।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नवम अंक पर एक विज्ञापन छपा है, उससे ज्ञात होता है कि 'माघ बदि १३ गुरुवार सं० १९.४ (३१ जनवरी १८७८) अर्थात् १५ दिनों में यजुर्वेद के प्रथमाध्याय का भाष्य तैयार हो गया था।'
देखो पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ८१, भाग १, पृष्ठ १३८ पं ३-४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद के भाष्य के आरम्भ में लिखे गये **'ऋग्वेदस्य विधाय वं·········भाष्यं'** पदों को देख कर कई व्यक्ति यह समझते हैं कि ऋषि ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का भाष्य करने के पश्चात् यजुर्वेद का भाष्य किया। यह महती भ्रान्ति है। ऋग्वेदस्य के आरम्भ करने के ३७ दिन पश्चात् ही यजुर्वेदभाष्य या आरम्भ हो गया था। (द्र०—पूर्व पृष्ठ १४२)।

यजुर्वेदभाष्य के आरम्भ का निमित्त

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन संग्रह पूर्ण संख्या ४६ पर छपे हुए ऋषि के पत्र (भाग १, पृष्ठ ८९ पं० १२-१३) से व्यक्त होता है कि ऋग्वेदभाष्य के साथ ही यजुर्वेदभाष्य का प्रकाशन पं० गोपालराव हरि देशमुख की सम्मति से प्रारम्भ हुआ था।

पं० गोपालराव हरि देशमुख ने यजुर्वेद का भाष्य भी साथ ही आरम्भ करने का क्या हेतु अथवा प्रयोजन लिखा था। यह हमें ज्ञात नहीं, क्योंकि उनका ऋ० द० को लिखा पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

यजुर्वेदभाष्य की समाप्ति

वै० पं० मुद्रित यजुर्वेदभाष्य के अन्त में यजुर्वेदभाष्य की समाप्ति का काल मार्गशीर्ष कृष्णा १ शनिवार संवत् १९३९ छपा हैं। तदनुसार इस भाष्य की रचना में लगभग चार वर्ष और दस मास लगे थे। इस काल की पुष्टि ऋग्वेदभाष्य के ४६, ४७ वें सम्मिलित अंक (माघ कृष्ण १९३९) के अन्त में मुंशी समर्थदान द्वारा प्रकाशित निम्न विज्ञापन से होती है—

"सब सज्जनों को विदित हो कि श्री **स्वामीजी महाराज ने यजुर्वेदभाष्य बनाकर पूरा कर लिया** हैं और ईश्वर की कृपा से ऋग्वेदभाष्य भी इसी प्रकार शीघ्र पूरा होगा।"

यजुर्वेदभाष्य के मुद्रण का आरम्भ और समाप्ति

यजुर्वेदभाष्य का मुद्रण भी ऋग्वेदभाष्य के साथ-साथ सम्भवतः श्रावण सं० १९३५ वि० में आरम्भ हुआ था[1]। सम्पूर्ण यजुर्वेदभाष्य

---

१. प्रथम अंक के मुखपृष्ठ पर ऋ० द० के भाद्रमास में मेरठ नगर में निवास करने की सूचना छपी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११७ अंकों में छपा था। इनमें से प्रारम्भ के १३ अंक निर्णयसागर प्रेस बम्बई में छपे थे, शेष वैदिक यन्त्रालय में। यजुर्वेदभाष्य के मुद्रण की समाप्ति वैशाख शुक्ल ११ शनिवार सं० १९४६[1] में हुई थी, तदनुसार इसके छपने में लगभग ११ वर्ष लगे थे।

ऋषि के जीवनकाल में यजुर्वेदभाष्य के ५१ अंक ही प्रकाशित हुए थे, उनमें १५ वें अध्याय के ११ मन्त्र तक का भाष्य छपा था। शेष सारा भाष्य उनकी मृत्यु के पीछे छपा।

यजुर्वेदभाष्य के हस्तलेखों का विवरण

यजुर्वेदभाष्य के हस्तलेखों का पूर्ण विवरण हम ने इस ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट सं० १ में दिया है, पाठक महानुभाव वहीं देखें।

यजुवदभाष्य की स्थिति

ऋग्वेदभाष्य के प्रसंग में निर्दिष्ट ब्र० रामानन्द के पौष कृष्ण ३, रविवार, सं० १९४० में यजुर्वेदभाष्य की जो स्थिति लिखी थी, वह इस प्रकार है—

१—पन्द्रहवें अध्याय के ११ वें मन्त्र तक का भाष्य ५०-५१ अङ्कों में छप गया है।

२—१५ वें अध्याय के १२ वें मन्त्र से लेकर २१ वें मन्त्र तक कापी छापने के लिये मुन्शी समर्थदान के पास है।

३—१५ वें अध्याय के २१ वें मन्त्र से लेकर २३ वें अध्याय के ४९ वें मन्त्र तक छापने योग्य शुद्ध प्रति तैयार है।

४—२३ वें अध्याय के ५० वें मन्त्र से आगे अन्त तक भाषा नहीं बनी है।

५—२४ वें अध्याय·······अध्याय तक भाषा बनाने के दिये पं० ज्वालादत्त के पास प्रयाग में है।

६—२७ वें अध्याय के आरम्भ से लेकर ४० वें अध्याय के अन्त केवल संस्कृत की पाण्डुलिपि (रफ कापी) है।

---

१. यह काल निर्देश छपे भाष्य के अन्त में मुद्रित मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेदभाष्य का शुद्ध संस्करण

वैदिक यन्त्रालय से यजुर्वेदभाष्य के अभी तक तीन-चार संस्करण निकले हैं, वे उसकी परम्परा के अनुरूप उत्तरोत्तर अशुद्ध अशुद्धतर और अशुद्धतम हैं। आचार्यवर पदवाक्यप्रमाणज्ञ श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु ने अपने जीवन काल में यजुर्वेदभाष्य के दस अध्यायों का एक श्रेष्ठ परिशुद्ध संस्करण रामलाल कपूर ट्रस्ट से देशविभाजन (सन् १९४७) से डेढ वर्ष पूर्व संवत् २००२ में प्रकाशित किया था। इस संस्करण की अधिकांश पुस्तकें लाहौर में ही नष्ट हो गई। तत्पश्चात् काशी में निवास करते हुए इसका दूसरा संस्करण सं० २०२६ में प्रकाशित किया। इस संस्करण को तैयार करने में पर्याप्त श्रम किया। अतः यह संस्करण पूर्व संस्करण से अधिक श्रेष्ठ और परिवृंहित है। तत्पश्चात् अ० ११-१५ तक उनके द्वारा सम्पादित प्रेस कापी के आधार पर दूसरा भाग सं० २०२८ में प्रकाशित हुआ। आचार्यवर ने दोनों भागों का यजुर्वेदभाष्य के हस्तलेखों से मिलान करके उस का सम्पादन और उस पर परम विद्वत्तापूर्ण विवरण लिखा है। यह यजुर्वेदभाष्य-विवरण आर्यसमाजिक वैदिक वाङ्मय में सब से गुरुतर और चिरस्थायी कार्य है।

आचार्यवर अपने जीवन काल में यजुर्वेदभाष्य-विवरण के पन्द्रह अध्यायों तक ही प्रेस कापी तैयार कर पाये थे। हस्तलेखों से मिलान पूरे यजुर्वेभाष्य का कर लिया था। यह प्रति रामलाल कपूर ट्रस्ट के संग्रह में विद्यमान है।

वैदिक यन्त्रालय मुद्रित यजुर्वेद-भाष्य

ऋ० द० के जीवन काल में मुद्रित यजुर्वेदभाष्य भी ऋग्वेदभाष्य के समान ही विविध प्रकार की अशुद्धियों से परिपूर्ण है, परन्तु जो भाग असंशोधित संस्कृत भाष्य की रफ कापी से पण्डितों को देख-रेख में छपा है, उस से तो अनेक गम्भीर समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। हम यहां ऋ० द० के जीवन काल में छपे भाष्य का एक और रफ कापी से छपे भाष्य के दो उद्धरण नीचे उद्धृत करते हैं—

१—यजुर्वेद अध्याय १२ के ४७ वें मन्त्र में एक पद है—**सहस्त्रियम्**। यह पद मन्त्रपाठ और पदपाठ में तो शुद्ध छपा है, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत पदार्थ में **सहस्त्रियम्** पढ़ कर अर्थ किया है—**सह प्राप्तां भार्याम्** । यही **सहस्त्रियम्** अपपाठ अन्वय और भाषार्थ में भी है तथा भाषार्थ भी '**साथ वर्तमान स्त्री को**' ऐसा किया गया है । यह पदार्थ निश्चय ही **सहस्त्रियम्** पद को **सहस्त्रियम्** पढ़ने के कारण हुआ है । स्मरण रहे कि यह अध्याय ऋ० द० के जीवन काल में ही छप गया था ।

२—ऋ० द० ने यजुर्वेदभाष्य के आरम्भ में प्रति अध्याय कोष्ठक में मन्त्र संख्या लिख कर सम्पूर्ण मन्त्रों का योग १९७५ लिखा है । यहां २५ वें अध्याय में ४७ मन्त्र लिखे हैं । भाष्य में इस अध्याय में ४८ मन्त्र उपलब्ध होते हैं । इस प्रकार इस अध्याय में १ मन्त्र के बढ़ने से अर्थात् ४७ की जगह ४८ मन्त्रों का भाष्य होने से सकल मन्त्रों का योग १९७६ हो जाता है ।

इस भूल का कारण यह है कि संहिता में जो ४७ वीं कण्डिका अथवा मन्त्र है, उस में **अग्ने त्वं नो, वसुरग्नि, तं त्वा शोचिष्ठ** ये तीन द्विपद भाग उपलब्ध होते हैं । ये तीन द्विपद भाग यजुर्वेद में तथा ऋग्वेद में अन्यत्र **स नो बोधि** द्विपद भाग के साथ उपलब्ध होते हैं । वहां पर दो-दो द्विपद भागों का एक-एक मन्त्र मान कर दो मन्त्र माने गये हैं । प्रतीत होता है भाष्य करते समय साहचर्य के कारण यहां भी **स नो बोधि** द्विपद भाग बुद्धि में उपस्थित हो गया । मूल पुस्तक निरपेक्ष भाष्य लिखाने के कारण अन्यत्र के समान यहां भी दो-दो द्विपद भागों के दो मन्त्र बन गये ।

यहां यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि ४७ वें मन्त्र के भाष्य के आरम्भ में छन्द **शक्वरी** लिखा है । शक्वरी छन्द में ५६ अक्षर होते हैं । ये ५६ अक्षर **त्वं नो, वसुरग्नि तं त्वा** इन तीन द्विपद भागों में पूर्ण होते हैं । इस से स्पष्ट है कि छन्दोनाम देने के लिये जब अक्षर गणना की गई थी, तब तीन द्विपद भागों का एक मन्त्र मान कर ही अक्षर गणना की थी । अतः यह गड़बड़ी भाष्य लिखाते समय ही हुई है । इस ओर हमारा ध्यान पं० सत्यानन्द जी वेदवागीश ने आकृष्ट किया था ।

३—माध्यन्दिन संहिता में पुनरुक्त मन्त्र दो प्रकार के उपलब्ध हैं । कुछ मन्त्र पुनः पाठ होने पर भी पूरे के पूरे पढ़े हुए मिलते हैं और कुछ पुनरुक्त मन्त्र केवल प्रतीकमात्र से निर्दिष्ट हैं । ऋषि दयानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने अनेक स्थानों में प्रतीक रूप से पठित मन्त्रों को मूल यजुर्वेद का भाग न मान कर लिखा है—श्रौतसूत्र आदि देख कर कर्मकाण्ड के लिये इन प्रतीकों को यहां पढ़ा है।[1] इस से दो बातें स्पष्ट होती हैं—

(क) प्रतीक सहित संहिता पाठ माध्यन्दिन शाखा का है।

(ख) मूल यजुर्वेद का पाठ प्रतीक रहित है।

ऐसा स्पष्ट विवेचन कर देने पर भी रफ कापी से छपे हुए भाष्य में दो एक स्थल ऐसे हैं, जहां प्रतीकों को प्रतीक भी माना है और प्रकारान्तर में मन्त्र का अवयव मान कर भी उनकी व्याख्या की है। यथा—

माध्यन्दिन संहिता अ० ३२ कं० ३ का पाठ है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिँ सीदित्येषा
यस्मान्न जात इत्येषः॥

यहां मूल मन्त्र पाठ **न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः** इतना ही है। आगे **हिरण्यगर्भ मा मा हिँसीत् यस्मान्न जातः** ये तीन प्रतीकें हैं। इन का प्रतीक,पना इति शब्द के निर्देश से सुस्पष्ट है।

इस मन्त्र के पदार्थ में सब पदों का पदार्थ लिखा है। अन्वय में प्रथम प्रतीक न मान कर अन्वय दर्शाया है तत्पश्चात् **यद्वा पक्षान्तर** लिख कर प्रतीक निर्देश मानकर अन्वय लिखा है।

यहां यह विचारणीय है कि हिरण्यगर्भ आदि पद प्रकृत मन्त्र के अवयव हैं तो प्रतीक नहीं माने जा सकते। यदि तत्तन्मन्त्रों के प्रतीक हैं तो मन्त्र के अवयव नहीं हो सकते। मन्त्र के अवयव भी हों और प्रतीक भी, यह परस्पर विरुद्ध है।

यहां यह बात देने योग्य है—अन्यत्र प्रतीक निर्देशों में **इति** शब्द का व्यवहार कहीं नहीं मिलता। यहां इति शब्द का प्रयोग हुआ है। इस का कारण **हिरण्यगर्भ इत्येषः** का अर्थ है—'हिरण्यगर्भः' से आरम्भ होनेवाला (अ० २५ मं० १०-१३) अनुवाक। इसी प्रकार **यस्मान्न जात इत्येषः** का भी अर्थ है—'यस्मान्न जातः'

१. द्र—दयानन्दभाष्य १३।५८; १४।१०, २२, ३१ तथा ३०।२७ और अ० ३३ में बहुत्र टिप्पणियां।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से आरम्भ होनेवाला (अ० ८, मं० ३६, ३७) अनुवाक। दो अनुवाकों की प्रतीक के मध्य में मा मा हिँसीत् के एक ऋचा की प्रतीक होने से **इत्येषा** पद पढ़ा है।

ऐसा ही एक प्रसङ्ग यजुर्वेद ३२।७ में है। वहां वैदिकों के मतानुसार अन्त में **आपो ह यद् बृहतीः, यश्चिदापः,** दो प्रतीकें (२७।२५-२६) पठित हैं। ऋ० द० के भाष्य में इन्हें मन्त्र का अवयव मानकर व्याख्या की है।

ऋषि दयानन्द के इस भाष्य से एक और शंका उत्पन्न होती है कि क्या अध्याय अनुवाक मन्त्र विभाग भी ईश्वरीय हैं? यदि उत्तरवर्ति आचार्यों द्वारा किये गये हैं तो इस मन्त्र में **इत्येषः** पद से उत्तरवर्ती प्रवक्ता ऋषि द्वारा किये गये अनुवाक विभाग का निर्देश कैसे हो सकता है?

ऋ० द० ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अन्त में 'प्रश्नोत्तर-विषय' में 'अष्टक अध्याय मण्डल सूक्त……अनुवाक रखे हैं वे किस लिये हैं'? प्रश्न का जो उत्तर दिया है उस से यह स्पष्ट विदित नहीं होता कि ये विभाग ईश्वरीय हैं। फिर यदि ईश्वरीय हैं तो प्रश्न होता है कि एक-एक संहिता में दो-दो तीन-तीन प्रकार के विभाग ईश्वर ने क्यों किये? वेङ्कट माधव का तो कहना है—अष्टकादि विभाग प्राचीन आचार्यों ने किये हैं—**अष्टकाध्यायविच्छेदादि पुराणैर्ऋषिभिः कृतः।**

परोपकारिणी सभा द्वारा विघ्न

आशा तो यह थी कि परोपकारिणी सभा अपने एक विद्वान् सदस्य द्वारा किये गये ऐसे महान् कार्य में पूर्ण सहयोग देगी, परन्तु हुआ उस से सर्वथा विपरीत। प्रथम भाग के प्रकाशित होने के अनन्तर जब आचार्यवर ने शेष यजुर्वेदभाष्य के लिये पूर्ववत् सभा का सहयोग अर्थात् दुबारा हस्तलेखों से मिलान की आज्ञा चाही तो सभा ने यजुर्वेदभाष्य के मिलान के लिये हस्तलेख देना मना कर दिया। आचार्यवर जैसे विख्यात पण्डित को जिन्हें उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य के कारण भारतवर्ष के अनेक राजकीय पुस्तकालयों से दुर्लभ हस्तलेख उपयोग के लिये अनायास उपलब्ध हो जाते थे, उन्हें ऋषि दयानन्द द्वारा संस्थापित और आर्यसमाज की प्रमुख संस्था परोपकारणी सभा ने ऋषि की कृति का महत्त्व बढ़ाने वाले कार्य के लिये ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तलेख दिखाने का निषेध कर दिया है। यह सभा का कितना अविवेकपूर्ण कार्य था, इस पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। सभा के हस्तलेख न देने के कारण यजुर्वेदभाष्य के शुद्ध संस्करण और उसके विवरण का कार्य चार पांच वर्ष तक रुका रहा है। इस सुदीर्घकाल में हस्तलेखों के मिलान की आज्ञा प्राप्त करने के लिये अनेक बार उचित प्रयत्न किये, परन्तु सभा के अधिकारी अपने अविवेकपूर्ण निश्चय से टस से मस न हुए। अन्त में प्रथम वार किये गये हस्तलेखों के मिलान पर ही संतोष करके आगे कार्य प्रारम्भ किया, जो अनेक विघ्न वाधाओं के कारण पूर्ण न हो सका।

परोपकारिणी सभा द्वारा विरोध

पूज्य आचार्यवर द्वारा यजुर्वेदभाष्य-विवरण के प्रकाशित होने के पश्चात् अगले कार्य के लिये परोपकारिणी सभा ने यजुर्वेदभाष्य का पाठ मिलाने के लिये हस्तलेख देखने की सुविधा न देना रूप ही विघ्न नहीं डाला, अपितु कुछ व्यक्तियों की सहायता से इस महत्कार्य का विरोध भी किया। इस विषय में हम अपनी ओर से कुछ न लिखकर सविता वर्ष १८, अंक ३ (सं० २०२२, चैत्र) में छपी श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह द्वारा लिखित **'विदेह-गाथा'** का अंश नीचे उद्धृत करते हैं—

"उन दिनों एक मुतवातिर बदमज़गी और वदतमीज़ी से मुझे गहन वेदना रही। पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने दयानन्द-कृत यजुर्वेदभाष्य के प्रथम दस अध्यायों पर जो विवरण प्रकाशित किया था, उस पर परोपकारिणी सभा ने अपनी एक विशेष बैठक बुलाई थी, जिसमें पं० ब्रह्मदत्त जी, श्री विश्वश्रवाः जी और धुरेन्द्र जी शास्त्री निमन्त्रित होकर आये थे। पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार भी सम्मिलित हुये थे। **जिज्ञासु जी का वह कार्य प्रत्यक्षतः नितान्त निरापद और प्रतिष्ठा के योग्य था। परन्तु उपर्युक्त विद्वानों ने उनका जो अपमानजनक घोर विरोध किया, उस पर मुझे और सबको घोर ग्लानि अनुभव हुई।** जिज्ञासु जी ने जिस बड़प्पन और सहनशीलता का परिचय दिया, उसकी सबके हृदय पर अमिट छाप पड़ी। पं० जयदेव शर्मा ने जिज्ञासु जी के विवरणों को झुटलने में जो पुस्तिका लिखी उस पर परोपकारिणी सभा ने श्री शर्मा को दो सौ रुपये भेंट किये। सत्य के विरोध और असत्य के समर्थन का वह एक लज्जास्पद प्रसंग था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदभाष्यों का भाषानुवाद

वेदभाष्य का मूल संस्कृत भाग ही ऋषि दयानन्द विरचित है, भाषानुवाद पण्डितों से कराया हुआ है। इसलिये कई स्थानों में भाषा संस्कृत के अनुकूल नहीं हैं। वेदभाष्य के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने अपने पत्रों में इस प्रकार लिखा है—

१—"जो कहीं पद का छूट जाना है यह भाषा बनाने वाले और शुद्ध लिखने वाले की भूल है।"

द्र०—पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ५७६, भाग २, पृष्ठ ६१२, पं० ७-८।

२—"(भीमसेन ने) कई के अर्थ में पदार्थ छोड़ दिये, कई पद अन्वय में छोड़ दिये, और कई एक पद आगे पीछे भी कर दिये।"

द्र०—वही, पूर्ण संख्या ६३८, भाग २, पृष्ठ ६६९, पं० २४,२५।

३—"ज्वालादत्त······कहीं पोपलीला न घुसेड़ डाले।"

द्र०—वही, पूर्ण संख्या ७१०, भाग २, पृष्ठ १७२६, पं० २२।

४—"ज्वालादत्त नई (संस्कृत से भिन्न) भाषा बनाता है।

······अब की भाषा में एक गोलमाल शब्द देवता लिख दिया था। सो वह हमारे दृष्टिगोचर होने से शुद्ध हो गई। यदि वहां ऐसी छप गई तो बड़ी हानि का काम है।"

द्र०—वही, पूर्ण संख्या ७१४, भाग २, पृष्ठ ७२९, पं० १५-२२।

५—"जिसका पदार्थ है कुछ और भाषा कुछ बनाई।

द्र०—वही, पूर्ण संख्या ७५७, भाग २, पृष्ठ ७६६, पं० १२।

इस प्रकार के लेख ऋषि के पत्रों में भरे पड़े हैं, यदि पाठक उन्हें विस्तार से देखना चाहें तो वह एक वार ऋषि के पत्रव्यवहार को ध्यानपूर्वक पढ़ें, तब पण्डितों की मूर्खता और धूर्तता का भले प्रकार ज्ञान होगा।

पण्डित लोग वेदभाष्य के लेखनादि कार्य कितनी असावधानता से करते थे, इसका भी हम एक प्रमाण उपस्थित करते हैं—

यजुर्वेदभाष्य के आठवें अध्याय के १४ वें मन्त्र की प्रेस कापी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ १०२ के किनारे (हाशिये) पर स्वामी जी महाराज के अपने हाथ की एक आवश्यक टिप्पणी इस प्रकार है—

"सर्वत्र त्वष्टा ही है। इसको मन्त्र और पद [पाठ] में त्वष्ट्रा को ही शोध के त्वष्टा बना ही दिया। **जिस को हम करते हैं वह तो ठीक होता है, जो दूसरों से कराते हैं वही गड़बड़ होता है।** हमने मन्त्र और पद [पाठ] शोधवाया था सो शुद्ध है, बाकी पण्डितों से शोधवाया था वही अशुद्ध रहा।"

द्र०—पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ८६८, भाग २, पृष्ठ ८४४।

इस टिप्पणी के लिखने पर भी वेदभाष्य के संस्कृत पदार्थ में "त्वष्टा" के स्थान में "त्वष्ट्रा" तृतीयान्त रूप समझ कर **"तनूकर्त्रा"** और हिन्दी पदार्थ में (त्वष्ट्रा) छपा रहा है। भला इससे अधिक अनर्थ और क्या हो सकता है?

वेदभाष्य का संशोधन

हम पूर्व (पृष्ठ १४२) लिख चुके है कि ऋषि के जीवनकाल में ऋग्वेदभाष्य प्रथम मण्डल के ८६ वें सूक्त के पांचवें मन्त्र तक ही छपा था, और उससे कुछ अगले सूक्तों का भाषानुवाद उनके जीवन काल में हो गया था। पाण्डुलिपि (रफ कापी) पर भी केवल दूसरे मण्डल तक ही ऋषि के हाथ का संशोधन है। उसके अनन्तर ऋषि के हाथ का कोई संशोधन नहीं है, सर्वथा असंशोधित कापी है। इसी प्रकार हमने पूर्व (पृष्ठ १४९) लिखा है-यजुर्वेद के १५ वें अध्याय ११वें मन्त्र तक का भाष्य ऋषि के जीवन काल में छपा था और उसकी प्रेस कापी के केवल २२ वें अध्याय तक ऋषि के हाथ का सशोधन है। हां, यजुर्वेद-भाष्य की रफकापी में अवश्य अन्त तक ऋषि के हाथ का संशोधन है, परन्तु है बहुत स्वल्प। अतः दोनों भाष्यों के शेष संस्कृत भाग का भी संशोधन पण्डितों का किया हुआ हैं। देखो परिशिष्ट संख्या १ में ब्रह्मचारी रामानन्द का पत्र तथा दोनों वेदभाष्यों के हस्तलेखों का विवरण। इसीलिये पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा ने विशेष बल देकर वेदभाष्य पर छपवाया[1]—"**इसकी भाषा पण्डितों ने बनाई है और**

१. द्र०—म० मुन्शीराम कृत उर्दू ऋग्वेदभाष्यभूमिका की भूमिका, वेदवाणी, वर्ष ३५, अंक ९, पृष्ठ १३, पं० २९–३१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत की भी उन्होंने शोधा है"[1] । वेदभाष्य का जो भाग स्वामीजी जीवनकाल में छपा था, उस के संशोधन में भी पण्डितों का बहुत हाथ था । आश्विन शु० ६ सं० १९३८ के पत्र में भीमसेन स्वामी जी को लिखता है—

"वेदभाष्य में इतना संशोधन होता है कि भूमिका कहीं छूट गई, किसी मन्त्र का अन्वय छूट गया बना दिया । किसी पद का अर्थ पदार्थ में रह गया, रख दिया । बहुतेरे पद पदपाठ में नहीं होते मन्त्र देख के रख देता हूं । बहुतेरे स्वर अशुद्ध होते हैं बना देना । बाकी कम्पोज में जो अशुद्धि हो ।"

द्र०—पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या २०४ भाग ३,
पृष्ठ १९७, पं० १२-१५ ।

ऋ० द० के ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाष्यों के पदपाठ में बहुत अशुद्धियां दिखाई पड़ती है । कई पदों पर तो स्वर चिह्न भी नहीं मिलते । ये सब भूले पं० भीमसेन आदि संशोधक महानुभावों के कारण हुई हैं । पदपाठों में प्रायः पुनरुक्त पद या पद-समुदाय पुनः नहीं पढ़े जाते हैं । उस से भाष्य में पदपाठ की लेखक द्वारा नकल करने पर पुनरुक्त पदों का छूटना स्वाभाविक है । भीमसेनादि पदपाठ के सूक्ष्म नियमों को तो जानते नहीं थे, अतः जहां पर छूटा हुआ पद दीखा, वहां मन्त्र देख कर पद रख देने से पदपाठ में अशुद्धियां हुई हैं ।

—:o:—

१. ऋषि दयानन्द के एक तथाकथित भक्त के कहने पर परोपकारिणी सभा ने इस पङ्क्ति को छापना बन्द कर दिया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम अध्याय

(संवत् १९३४, ३५ के शेष ग्रन्थ)

१८–आर्योद्देश्यरत्नमाला

(श्रावण १९३४)

महर्षि दयानन्द ने सं० १९३४ में आर्यों के १०० मन्तव्यों का एक संग्रह आर्योद्देश्यरत्नमाला के नाम से प्रकाशित किया था। यह ग्रन्थ यद्यपि आकार में बहुत छोटा है, परन्तु है बड़ा महत्त्वपूर्ण। सम्भव है प्रचार काल में महर्षि को एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता का अनुभव हुआ होगा, जिसमें संक्षेप से आर्यों के सभी मन्तव्यों का संग्रह हो। उस की पूर्ति के लिये ऋ० द० ने इसे प्रकाशित किया होगा।

पं० लेखराम जी के ऋ० द० के जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८३२ में लिखा है—"यह पुस्तक इस प्रयोजन से लिखी गई थी कि जब स्वामी जी स्थान-स्थान पर पहुंचते और सत्य धर्म का उपदेश करते थे तो लोग उनसे 'आर्य-सिद्धान्त' पूछा करते थे और इस की सरल-भाषा की पुस्तक मांगा करते थे। एक सरल और स्पष्ट पुस्तक न होने के कारण प्रायः समय नष्ट करना पड़ता था। इस कारण स्वामी जी ने इस कठिनाई का दूर करने के लिये अपने अमृतसर-निवास के समय इसे प्रकाशित करवाया।

ग्रन्थ का रचना काल

इस ग्रन्थ का रचना काल प्रथम संस्करण में पुस्तक के आरम्भ में मुख पृष्ठ की पीठ[1] (टाइटल पेज २ पर) इस प्रकार लिखा है—

वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कस्य भूपतेः।
नभस्ये सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्त्तिमगादियम्॥

---

१. उत्तरवर्ती संस्करणों में यह पुस्तक की समाप्ति बोधक लेख ग्रन्थ के अन्त में उपलब्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत् महाराज विक्रमादित्यजी के १९३४ के संवत् में श्रावण महीने के शुक्ल पक्ष ७ सप्तमी बुधवार के दिन उक्त जी स्वामने आर्यभाषा में सब मनुष्यों के हितार्थ यह आर्योद्देश्यरत्नमाला पुस्तक प्रकाशित किया।"

संस्कृत शब्दों से स्पष्ट है कि श्रावण शुक्ला सप्तमी संवत् १९३४ को पुस्तक की रचना समाप्त हुई थी, किन्तु आर्यभाषा में **"प्रकाशित"** शब्द से विदित होता है कि श्रावण शु० ७ संवत् १९३४ (१५ अगस्त सन् १८७७ ई०) को पुस्तक छप कर प्रकाशित हो गई थी। हमारे विचार में यहां **'प्रकाशित'** शब्द से 'प्रेस में छप कर प्रकाशित होना' अर्थ सम्भव नहीं है, क्योंकि श्री स्वामीजी महाराज के सोमवार भाद्र शु० ३ संवत् १९३४ वि० (१० सितम्बर सन् १८७७ इ०) के एक पत्र में इस पुस्तक के विषय में निम्न प्रकार लिखा है—

"१०० नियम का पुस्तक (आर्योद्देश्यरत्नमाला) आजकल छप के जिल्द बन्ध के तैयार हो जावेगा।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ११०, पं०४- ५।

ऋ० द० के इस पत्रांश से यह सम्भावना बलवती होती है कि यह पुस्तक सं० १९३७ श्रावण शु० ७ (१५ अगस्त १८७७) तक लिख कर तैयार हो गई थी, न कि छप कर।

श्री पं० देवेन्द्रनाथजी द्वारा संगृहीत जीवनचरित्र के पृष्ठ ४३३ पर आर्योद्देश्यरत्नमाला का लेखन काल श्रावण शुक्ला ६ लिखा है, वह ठीक नहीं है, वास्तव में श्रावण शुक्ला ७ ही ठीक है।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण **अमृतसर के 'चश्मयेनूर'** छापेखाने में लीथो अर्थात् पत्थर के प्रेस (जिस प्रकार प्रायः उर्दू की पुस्तकें छपा करती थीं) पर छपा था। पुस्तक साढ़े छ और सवा पांच इञ्च के आकार के मुखपृष्ठ सहित ३२ पृष्ठों में छपी थी।

रामलाल कपूर ट्रस्ट का संस्करण

आर्योद्देश्यरत्नमाला के रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से जो संस्करण छपे हैं उन में प्रत्येक मन्तव्य के ऊपर टिप्पणी संख्या देकर नीचे टिप्पणी में यह मन्तव्य ऋ० द० के किस ग्रन्थ में कहां व्याख्यात है, इस का विवरण दिया गया है। आर्योद्देश्यरत्नमाला के प्रथम संस्करण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पृष्ठ २७ पर ४-५ पाठों का संशोधन दर्शाया है। उन में से दो पाठ हमारे संस्करण में भी पूर्ववत् हो छप गये हैं। यत: वैदिक यन्त्रालय में मुद्रित द्वितोय संस्करण में उन्हें नहीं शोधा गया, इसी कारण हमारे संस्करण में भी वैसे ही छप गये है। हमारे पास उस समय इस का प्रथम संस्करण नहीं था। हम उन अशुदियों का प्रथम संस्करण में दर्शाया शोधन नीचे दे रहे हैं—

रत्न-संख्या	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
५४	न होवे अर्थात् जो सदा से	न होवे जो सदा से
,,	हो के वह अनादि	हो के सदा वर्तमान रहै वह अनादि

विशेष—दूसरे पाठ के '**हो के**' को पाठ की संगति के लिये '**हो वे**' तथा '**हो**' इस रूप में बदल दिया गया, परन्तु मूल शोधित पाठ के अनुसार 'होके' पाठ ही संगत होता है।

रामलाल कपूर ट्रस्ट से अभी तक इस के ग्यारह संस्करण छप चुके हैं। इन की कुल संख्या ६६००० छाछठ हजार है। दयानन्दीय-लघुग्रन्थसंग्रह में जो संस्करण छपा है, वह इस संख्या से पृथक् हैं।

आर्योद्देश्यरत्नमाला का अंग्रेजी अनुवाद

ऋषि दयानन्द ने सं० १९३५ श्रावण वदी ११ शुक्रवार (२६ जुलाई १८७८) को कर्नल आल्काट को जो संस्कृत भाषा में पत्र लिखा था, उसमें लिखा था कि हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को कर्नल आल्काट के समीप आर्योद्देश्यरत्नमाला का अंग्रेजी का अनुवाद करके भेजने को लिखा था। ऋ० द० का लेख इस प्रकार है—

मद्रचितस्य स्वल्पस्यार्योद्देश्यरत्नमालाग्रन्थस्येंगलेण्डभाषया विवरणं कृत्वा भवतां समीपे सद्यः प्रेषयन्त्विति।

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ १६५, पं० १६-१७।

हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने आर्योद्देश्यरत्नमाला का अंग्रेजी अनुवाद करके भेजा था वा नहीं, हमें ज्ञात नहीं।

परोपकारिणी सभा अजमेर आर्योद्देश्यरत्नमाला का एक अंग्रेजी अनुवाद छपती है। उस के अनुवादक बावा अर्जुनसिंह, एडिटर 'आर्य-पत्रिका' (अंग्रेजी) लाहौर, थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९—भ्रान्ति-निवारण

(कार्तिक शु० २ सं० १९३४ वि०)

ऋषि दयानन्द ने अपने करिष्यमाण वेदभाष्य के नमूने का अंक, भाष्यभूमिका के २-३ अंक और वेदभाष्य सम्बन्धी विज्ञापन[1] अनेक व्यक्तियों वा संस्थाओं को अवलोकनार्थ भेजे थे। पंजाब सरकार को भी वेदभाष्य की सहायता करने के अनुरोध-पत्र के साथ उपर्युक्त सामग्री भेजी थी। पंजाब सरकार ने उन्हें सम्मति के लिये मिस्टर आर० ग्रिफिथ (प्रिंसिपल संस्कृत कालेज बनारस), मिस्टर सी० एच० टानी, पं० गुरुप्रसाद (मुख्याध्यापक ओरियण्टल कालेज लाहौर) पं० हृषीकेश (द्वितीय पण्डित ओ० का० ला०), पं० भगवान्दीन (सहायक प्राध्यापक सं० गवर्नमेण्ट कालेज लाहौर) आदि को भेजे थे। इन महानुभावों की जो सम्मति (आक्षेप) प्राप्त हुए उन का जो उत्तर ऋ० द० ने पंजाब सरकार को भेजा था, वह 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के पूर्ण संख्या ५२ (भाग १, पृष्ठ १०३–१०६) पर छपा है।

'भ्रान्तिनिवारण' के मुद्रित होने का जो विज्ञापन[2] दिया गया था उस से ज्ञात होता है कि पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न (स्थानापन्न प्राचार्य संस्कृत कालेज कलकत्ता) पं० गोविन्दराम आदि ने ऋ० द० के वेदभाष्य के खण्डन में पुस्तकें लिखी थीं। पं० शिवनारायण अग्निहोत्री (लाहौर) ने अपने 'बिरादरे हिन्द' पत्र में वेदभाष्य के विरुद्ध कुछ लेख लिखे थे, जिन्हें 'दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य रेवेयु' के नाम से पुस्तक रूप में भी छापा था। पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न का पुस्तक सब से पीछे छपा और अन्य पण्डितों की शंकाएं भी इस में आ जाती हैं। इसलिये ऋ० द० ने उसके खण्डन में सं० १९३४ में **भ्रान्तिनिवारण** नाम की एक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक लघुकाय होते हुए भी वेदार्थ-जिज्ञासुओं के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

१. यह विज्ञापन 'पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या ३५, भाग १, पृष्ठ ६७-७७ तक छपा है।

२. यह विज्ञापन हम परिशिष्ट ७ में छाप रहे हैं, वहां देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० महेशचन्द्र ने वेदभाष्य पर जितने आक्षेप किये थे, उनमें सब से मुख्य तथा प्रबल आक्षेप यह था कि अग्नि शब्द का अर्थ परमेश्वर नहीं हो सकता। उनका लेख इस प्रकार है—

("खैर ये तो साधारण बातें थीं, परन्तु अब मैं भारी-भारी दोषों पर आता हूं। मन्त्रभाष्य के प्रथम संस्कृत खण्ड में (अग्निमीडे पुरोहितम्) इसके भाष्य में स्वामीजी ने अग्नि शब्द से ईश्वर का ग्रहण किया है जब कि प्रसिद्ध अर्थ अग्नि शब्द का सिवाय आग के दूसरा कोई नहीं ले सकता। तथा सायणाचार्य वेदभाष्यकार की इसी विषय में साक्षी वर्तमान है।)" भ्रान्तिनिवारण (दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह), पृष्ठ २०१।

वेद में अग्नि शब्द से ईश्वर का भी ग्रहण होता है, इस विषय में महर्षि ने वेदभाष्य के नमूने में वेद से लेकर मैत्रायणी उपनिषद् पर्यन्त अनेक प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के लगभग २० प्रमाण उद्धृत किये हैं (द्र०—दयानन्दीय लघुग्रन्थसंग्रह, पृष्ठ १३७-१४०), परन्तु पण्डित महेशचन्द्र ने उन्हें न समझ कर उपर्युक्त आक्षेप किया है। ऋषि ने इस आक्षेप का उचित उत्तर देते हुए लिखा है—

"सत्य तो यह है कि उन्होंने प्राचीन ऋषि-मुनियों के ग्रन्थ कभी नहीं देखे और उनको ठीक-ठीक अर्थ समझने का बिलकुल ज्ञान नहीं, क्योंकि जिन-जिन ग्रन्थों अर्थात् वेद शतपथ और निरुक्त आदिकों के प्रमाण मैंने वेदभाष्य में लिखे हैं, उनको ठीक-ठीक विचारने से आयने के समान जान पड़ता है कि अग्नि शब्द से आग और ईश्वर दोनों का ग्रहण है जैसे देखो कि '**इन्द्रं मित्रं वरुण०** (ऋ० १।१६४। ४६), **तदेवाग्निस्तदादित्य०** (यजु० ३२।१), **अग्निर्होता कवि०** (ऋ० १।१।५) **ब्रह्म ह्यग्निः, आत्मा वा अग्निः**। देखिये विद्यानेत्रों से, इन पांच प्रमाणों में अग्नि शब्द से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है" भ्रान्तिनिवारण पृष्ठ २०२ (द० लघुग्रन्थसंग्रह) महर्षि ने वेद-भाष्य के नमूने के पृष्ठ २[1] पर '**अग्निः कस्माद् अग्रणीर्भवति**' इत्यादि निरुक्त का प्रमाण देकर लिखा है—

"**अग्रणीः सर्वोत्तमः सर्वेषु यज्ञेषु पूर्वमीश्वरस्यैव प्रतिपादनादीश्वरः स्यात्र ग्रहणम्। दग्धादिति विशेषणाद् भौतिकस्यापि।**"

१. यह पृष्ठ संख्या सं० १९३३ में छपे वेदभाष्य के नमूने के अंक की है। हमारे संस्करण लिये दयानन्दलघुग्रन्थसंग्रह का पृष्ठ १३९ देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बात को भ्रान्तिनिवारण में पुनः स्पष्टः किया है—

"तथा निरुक्त से भी परमेश्वर और भौतिक इन दोनों का यथावत् ग्रहण होता है। देखो एक तो (अग्रणीः) इस शब्द से उत्तम परमेश्वर ही जाना जाता है। इस में कुछ सन्देह नहीं इत्यादि। भ्रान्तिनिवारण, पृष्ठ २०३ (वही संस्करण)

पं० महेशचन्द्र ने निरुक्त के पूर्वोक्त अर्थ पर भी आपत्ति की थी। देखो भ्रान्तिनिवारण पृष्ठ २१० (वही संस्क०)।

अग्नि शब्द का वेद में ईश्वर अर्थ भी होता है, इसके लिये नये प्रमाणों की कोई आवश्यकता नहीं। स्वामीजी ने वेदभाष्य के नमूने में जितने प्रमाण उद्धृत किये हैं, वे इस अर्थ को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं। उन के ऊपर जो आक्षेप किये जा सकते हैं उन का उत्तर भी भ्रान्तिनिवारण में भले प्रकार दे दिया है। अब हम इस विषय में एक ऐसा प्रमाण उपस्थित करते हैं जिस से पं० महेशचन्द्र जैसे आक्षेपकों का मुंह सदा के लिये बन्द हो जायेगा।

स्वामी शङ्कराचार्य ने अपने वेदान्तभाष्य में निरुक्त के '**अग्निः कस्माद् अग्रणीर्भवति**' प्रमाण के आश्रय से अग्निशब्द का परमात्मा अर्थ किया है। उनका लेखन इस प्रकार है—

अग्निशब्दोऽप्यग्रणीत्वादियोगाश्रयेण परमात्मविषय एव भविष्यति" ॥ वेदान्त शांकरभाष्य १-२-२६।

स्वामी शङ्कराचार्य के इस लेख से सूर्य की भान्ति स्पष्ट है कि अग्नि, वायु, आकाश आदि शब्दों का परमेश्वर अर्थ केवल स्वामी दयानन्द ने ही नहीं किया, अपितु यह अर्थ तो प्राचीन सभी आचार्यों को अभिप्रेत था। स्वयं महर्षि वेद-व्यास ने '**आकाशस्तल्लिङ्गात्**' (वेदान्त १-१-२२) इत्यादि सूत्रों में आकाश आदि शब्दों से ब्रह्म का प्रतिपादन किया है। अतः इस प्रकार के अर्थों के करने में स्वामी दयानन्द के ऊपर खेंचातानी का दोष लगाना अपनी ही अज्ञता प्रकट करना है।

ऋषि की बहुश्रुतता

वस्तुतः ऋषि के लेख पर इस प्रकार के आक्षेप वे ही लोग करते हैं, जिन्हें प्राचीन आर्ष वैदिक साहित्य का किञ्चिन्मात्र ज्ञान नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। महर्षि क्या प्राचीन क्या नवीन उभयविध संस्कृत वाङ्मय से पूर्ण पारदृश्वा थे। वे इसी भ्रान्तिनिवारण (पृष्ठ १९८, वही संस्क०) में लिखते हैं—

"क्योंकि मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्वमीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लगभग मानता हूं"।

इस लेख में '**परीक्षा**' और '**तीन हजार ग्रन्थ**' ये पद विशेष द्रष्टव्य हैं। इस से यह अनुमान सहज में ही किया जा सकता है कि तीन हजार प्रमाणिक ग्रन्थों को चुनने के लिये ऋषि ने न जाने कितने सहस्र ग्रन्थों की परीक्षा की होगी। उस समय में यह काम बड़ा कठिन था, क्योंकि जिस रूप में आजकल पुस्तकालय विद्यमान है, उस रूप में उस समय कदापि न थे।

अतः ऐसे बहुश्रुत महर्षि के किसी भी लेख को बिना विशेष विचार किये अयुक्त ठहराना अत्यन्त दुःसाहस की बात है। हां, लेखक प्रमादादि से हुई अशुद्धियों की बात दूसरी है।

भ्रान्तिनिवारण का रचना काल

'भ्रान्तिनिवारण' के अन्त में इस का रचना काल "संवत् १९३४ कार्तिक शु० २" (=बुधवार ७ नवम्बर १८७७) लिखा है। महर्षि कार्तिक कृ० ३० से कार्तिक शु० २ तक लाहौर में ठहरे थे। अतः यह ग्रन्थ लिखकर लाहौर में ही पूर्ण हुआ होगा और इसका प्रारम्भ कदाचित् फीरोजपुर में हुआ होगा, क्योंकि इससे पूर्व कार्तिक कृ० ४ से कार्तिक कृ० १४ तक महर्षि ने फीरोजपुर में निवास किया था।

'भ्रान्तिनिवारण' का प्रथम संस्करण कब प्रकाशित हुआ, यह सन्दिग्ध है। 'भ्रान्तिनिवारण' का एक संस्करण शाहजहांपुर के 'आर्य-भूषण' नामक लीथो प्रेस में छपा था। इस पर छापने का संवत् वा सन् का उल्लेख नहीं हैं। भ्रान्तिनिवारण के इस संस्करण के अन्त में स्वामीजी कृत पुस्तकों का जो विज्ञापन छपा है, उस में पुस्तकें मिलने का पता '**वेदभाष्य [कार्यालय] मारवाड़ी बाजार बम्बई**' लिखा है। बम्बई में वेदभाष्य कार्यालय सम्भवतः मार्गशीर्ष १९३६ तक रहा था। भ्रांतिनिवारण के विषय में सब से प्रथम विज्ञापन आश्विन सं० १९३६ के ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के ११ वें अंक के अन्त में छपा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। ये अंक भी बम्बई के निर्णयसागर प्रेस में छपे थे। वेदभाष्य में छपे विज्ञापन से इतना स्पष्ट अवश्य होता है कि भ्रान्तिनिवारण का शाहजहांपुर का संस्करण आश्विन सं० १६३६ से पूर्व छप गया था। परोपकारिणी सभा के रिकार्ड में भ्रान्तिनिवारण के प्रथम संस्करण का मुद्रण काल सन् १८७७ अर्थात् सं० १६३४ लिखा है (वै० यन्त्रालय अजमेर से सन् १६२५ में छपा शताब्दी सं०, भाग २, पृष्ठ ८७१ के सामने)। क्या यह निर्देश शाहजहांपुर के छपे संस्करण का है वा अन्य का। यदि सन् १८७७ (=सं० १६३४) में कोई अन्य संस्करण छपता तो, उस का ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अङ्कों पर विज्ञापत अवश्य छपता। अतः परोपकारिणी सभा का रिकार्ड हमें सन्दिग्ध प्रतीत होता है। सम्भव है भ्रान्तिनिवारण पर छपी समाप्ति के तिथि के अनुसार ही खानापूर्ति कर ली होगी।

रामलाल कपूर ट्रस्ट का संस्करण

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा सं० २०३१ में प्रकाशित 'दयानन्दीय-लघुग्रन्थसंग्रह' के अन्तर्गत पृष्ठ १६१-२४० तक भ्रान्तिनिवारण का जो संस्करण छपा है, वह अत्यधिक शुद्ध और शतशः टिप्पणियों से युक्त है।

एक अन्य भ्रान्तिनिवारण

रामलाल कपूर ट्रस्ट के पुस्तकालय में **भ्रान्तिनिवारण** नाम का एक अन्य पुस्तक भी है। इस पुस्तक में 'पंच' और 'आर्य' के माध्यम से कुछ शंकाओं का समाधान किया गया है। इस का मुखपृष्ठ नहीं है, फट चुका है। अतः यह किस का बनाया हुआ है और कब कहां छपा, यह सब अज्ञात है। यह २०×२६ अठपेजी आकार के ४८ पृष्ठों में लीथो प्रेस पर छपा है।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०—अष्टाध्यायी-भाष्य
(सं० १९३५-१९३६ वि०)

ऋषियों ने वेदार्थ के परिज्ञान के लिये शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष, इन छ वेदाङ्गों की रचना की। छ वेदाङ्गों में भी व्याकरण सब से मुख्य है। महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है—"**प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम्**" (महा० अ० १ पा० १ आ० १)। वेदाङ्गों में पाणिनिमुनि कृत अष्टाध्यायी की ही गणना की जाती है। अत एव ऋषि दयानन्द ने जहां वेदार्थ के परिज्ञान के लिये वेदभाष्य की रचना की, वहां व्याकरण के ज्ञान के लिये अष्टाध्यायी का सुगम तथा सुबोध भाष्य भी बनाया और आर्य भाषा जानने वालों के लिये वेदाङ्गप्रकाश के १४ भागों की रचना कराई।

अष्टाध्यायी-भाष्य अभी (सन्-१९८३) तक केवल तृतीयाध्याय पर्यन्त छपा है। उसमें भी प्रथमाध्याय के तृतीय चतुर्थ दो पाद लुप्त हैं।[1]

अष्टाध्यायीभाष्य का हस्तलेख

अष्टाध्यायी-भाष्य की परोपकारिणी सभा अजमेर के संग्रह में जो हस्तलिखित प्रति विद्यमान है, उसको हम चार विभागों में बांट सकते हैं। यथा।

---

१. अष्टाध्यायीभाष्य के प्रथम भाग के द्वितीय संस्करण का जब मुद्रण आरम्भ हुआ था, उस समय वैदिक यन्त्रालय के प्रवन्धकर्त्ता श्री पं० भगवान्-स्वरूप जी से मैंने कहा था कि अष्टाध्यायीभाष्य के अ० १ के ३-४ पादों का जो भाष्य लुप्त है उसे मैं पूरा कर देता हूं। परन्तु अधिकारियों की अनुमति के विना वे पूर्ति करा नहीं सकते थे। अन्त में मैंने सुझाव दिया कि इन पादों के ९०% सूत्र वेदाङ्गप्रकाश में व्याख्यात हैं उन में उचित न्यूनाधिक करके केवल भाषाभाष्य ही छाप दिया जाये। इस पर वे सहमत हो गये। इस प्रकार सं० २०१८ में छपे द्वितीय संस्करण में जो भाषाभाष्य छपा है, उसे मैंने वेदाङ्गप्रकाश के भागों से संगृहीत करके पूरा किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—प्रारम्भ से तृतीयाध्याय के प्रथम पाद के चालीसवें सूत्र तक।

इस भाग में संस्कृतभाष्य का भाषानुवाद भी है और पृष्ठ १-११६ तक (अ० १ पा० २ सूत्र तक ७१ तक) कहीं-कहीं लाल स्याही से संशोधन भी हैं, परन्तु यह संशोधन स्वामी जी के हाथ का नहीं है। इसके आगे संशोधन का सर्वथा अभाव है। इस भाग में पृ० १२०—२२३ तक पृष्ठ लुप्त हैं। इन पृष्ठों में प्रथमाध्याय के ३, ४ पाद का भाष्य था।

२—अ० ३ पा० १ सूत्र ४१ से चतुर्थ अध्याय के अन्त तक। इस भाग में भाषानुवाद नहीं है। भाषानुवाद के लिये सामने का पृष्ठ खाली छोड़ रक्खा है। संशोधन किञ्चिन्मात्र नहीं है।

आरम्भ से लेकर यहां तक के संस्कृत भाग की लेखन शैली अच्छी है, कहीं-कहीं लेख अत्यन्त प्रौढ़ है।

३—पञ्चमाध्याय के आरम्भ से षष्ठाध्याय के चतुर्थपाद के १६३ सूत्र पर्यन्त। इस भाग में न भाषानुवाद ही है और नाही संशोधन। पूर्व की अपेक्षा इसकी रचना शैली भिन्न है और संस्कृत भाष्य का लेख अत्यन्त साधारण है, **प्रायः तीन चौथाई भाग काशिका की प्रतिलिपिमात्र है।**

इन तीन भागों का कागज प्राय: एक जैसा है। इस तरह का कागज कहीं-कहीं वेदभाष्य के हस्तलेखों में भी प्रयुक्त हुआ।

४—अ० ६ पाद ४ सूत्र १६४ से लेकर सप्तमाध्याय के द्वितीय पाद के दो तिहाई भाग पर्यन्त।

इस भाग की रचना शैली पहिली से सर्वथा निराली है। इसकी लेखनशैली व्याकरण के नव्यग्रन्थों की लेखनशैली से मिलती है। यह भाग रूलदार फुलसकेप के रजिस्टर पर लिखा है और तेल से चिकना हो रहा है। प्रतीत होता हैं किसी पण्डित नेस्वामी जी के अष्टाध्यायीभाष्य को पूरा करने का प्रयत्न किया, जिसे वह पूरा न कर सका।

मैंने आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के साथ अष्टाध्यायी-भाष्य के तृतीय और चतुर्थ अध्याय का सम्पादन कार्य किया था। अतः इस भाष्य से भली भांती सुपरिचित होने के कारण मैं दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं कि यह भाष्य चतुर्थाध्याय पर्यन्त ऋषि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया हुआ निश्चित हैं, क्योंकि इन अध्यायों में कई स्थल इतने प्रौढ़ और गम्भीर है कि व्याकरण के बड़े-बड़े पण्डित भी उसमें चक्कर खा सकते हैं।

इस ग्रन्थ के सम्पादन काल में हमें भी किसी-किसी बात के विचारने में कई-कई दिन लग गये थे। ऋषि के वेदभाष्य में जिस प्रकार व्याकरण सम्बन्धी अनेक अभूतपूर्व लेख मिलते हैं, वैसे ही इस अष्टाध्यायीभाष्य में भी चतुर्थाध्याय पर्यन्त उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के प्रौढ़ लेख महर्षि के विना और किसी के नहीं हो सकते। अतः हमारा दृढ़ विश्वास है कि यह भाष्य चतुर्थाध्याय तक अवश्य ही ऋषि का बनाया हुआ है।

अष्टाध्यायी-भाष्य पर आक्षेप और उनका समाधान

सन् १९२६ के आर्य और वैदिक संदेश आदि पत्रों में श्री स्वामी वेदानन्द जी आदि कई महानुभावों ने इस अष्टाध्यायीभाष्य के विरोध में अनेक लेख लिखे थे। जिनका सार यह—

१—इस ग्रन्थ में व्याकरण सम्बन्धी अनेक ऐसी अशुद्धियां हैं जिन्हें व्याकरण के पारङ्गत ऋषि दयानन्द तो क्या अन्य साधारण पण्डित भी नहीं कर सकते। अतः ऐसा अशुद्धि परिपूर्ण ग्रन्थ ऋषि दयानन्द विरचित कदापि नहीं हो सकता।

२—इस अष्टाध्यायीभाष्य के "**तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्**" (अ० १।१।९) सूत्र के भाष्य में पाणिनीय शिक्षा के सूत्र उद्धृत न करके आधुनिक पाणिनीय शिक्षा के श्लोक उद्धृत किये हैं। जिस आधुनिक पाणिनीय शिक्षा का खण्डन ऋषि ने वर्णोच्चारणशिक्षा की भूमिका में किया, उसका उल्लेख ऋषि अपने अष्टाध्यायी भाष्य में क्यों करते। अतः प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ स्वामीजी का बनाया हुआ नहीं है।

यद्यपि श्री स्वामी वेदानन्दजी आदि के लेखों का उत्तर श्री० पं० भगवद्दत्तजी आदि कई महानुभावों ने आर्यजगत् और अलंकार आदि पत्रों में दिया है, तथापि वस्तु-स्थिति को किसी ने स्पष्ट नहीं किया।

इन दोनों आक्षेपों के विषय में हमारा कहना यह है कि आक्षेप्ता महोदयों ने अशुद्धियों के विषय में जो कुछ लिखा है, मैं उससे भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक जानता हूं। फिर भी यह कहने का साहस करता हूं कि आक्षेप करनेवाले महानुभावों ने केवल एक पहलू को ही लेकर विचार किया है, दूसरे पहलू का या तो उन्हें ज्ञान ही नहीं था अथवा उन्होंने जानबूझ कर उसे दृष्टि से ओझल कर दिया।

यह अष्टाध्यायीभाष्य ऋषि दयानन्द का ही बनाया हुआ है। इस विषय में डा० रघुवीरजी एम० ए० ने अनेक अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग साक्ष्य अष्टाध्यायी भाष्य के प्रथम भाग (प्रकाशित सन् १९२७) की भूमिका में उपस्थित किये हैं जो अत्यन्त प्रबल हैं। उनका निराकरण केवल अशुद्धियों के आधार पर कदापि नहीं हो सकता। हम पिष्ट-पेषण के भय से यहां अधिक नहीं लिखते। जो महानुभाव इस विषय में अधिक जाना चाहें, वे वहीं पर देखें।

अशुद्धियां रहने का कारण

प्रारम्भ में हम लिख चुके हैं कि इस ग्रन्थ के केवल प्रारम्भिक दो पादों में ही किसी के संशोधन हैं[1] यह संशोधन स्वामीजी के हाथ का नहीं है, और आगे वह संशोधन भी नहीं है। इससे स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने इस ग्रन्थ का किञ्चिन्मात्र भी संशोधन नहीं किया। इसकी अपूर्णता तो इसी के व्यक्त है कि तृतीयाध्याय प्रथमपाद के ४० वें सूत्र के आगे भाषानुवाद भी नहीं है। अतः यह सर्वथा स्पष्ट है कि यह हस्तलिखित कापी अष्टाध्यायीभाष्य की पाण्डुलिपि (रफ कापी) मात्र या दूसरे शब्दों में इसे अष्टाध्यायीभाष्य की प्राथमिक रूपरेखा कह सकते हैं। अतः इसमें साधारण से लेकर भयंकरतम अशुद्धियों का रहना साधारण बात है। जिन महानुभावों ने ऋषिकृत

---

१. ऋग्वेदभाष्य के वैशाख सं० १९४६ वि० के ११४ व ११५ सम्मिलित अङ्क के अन्त में छपे विज्ञापन से व्यक्त होता है कि यह संशोधन पं० भीमसेन का किया हुआ है। इस विज्ञापन को हम आगे इसी प्रकरण में उद्धृत करेंगे।

श्री माननीय पं० भगवद्दत्तजी ने ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन की टिप्पणी में पृष्ठ १४३, पं० २० में लिखा है—"**प्रतीत होता है स्वामीजी ने वृत्ति के चार अध्याय ही शोधे थे**"। यह लेख ठीक नहीं। अष्टाध्यायीभाष्य के सम्पूर्ण हस्तलेख में स्वामीजी के हाथ का संशोधन किञ्चिन्मात्र नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थों के हस्तलेख देखे हैं, उन्हें ज्ञात है कि एक-एक ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित कापियां विद्यमान हैं और उनमें अन्तिम प्रेस कापी तक में ऋषि ने संशोधन किया है।

हमारे इस सारे कथन का सार यह है कि अष्टाध्यायीभाष्य की वर्तमान हस्तलिखित प्रति पाण्डुलिपि (रफ कापी) हैं। अतः वह उसी रूप में छपवाने योग्य नहीं थी। यदि इस भाष्य को छपवाना ही था तो किन्हीं दो चार योग्य वैयाकरणों को दिखाकर तथा उचित संशोधन करवाकर छपवाना चाहिये था। इस असंशोधित पाण्डुलिपि के अनुसार इस ग्रन्थ को स्वामी दयानन्द के नाम से छपवाना भयंकर भूल है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में ऋषि के भावों का भली प्रकार रक्षण करते हुए महाभाष्य के आधार पर उचित संशोधन अवश्य होना चाहिये, क्योंकि स्वामीजी महाराज तथा समस्त वैयाकरणों की दृष्टि में महाभाष्य व्याकरण शास्त्र का सर्वोच्च प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें कहीं-कहीं वेदाङ्गप्रकाशों से भी सहायता मिल सकती है। यह कार्य अत्यन्त परिश्रम साध्य है। श्री आचार्यवर पं० ब्रह्मदत्तजी द्वारा सम्पादित ३ य, ४ र्थ अध्याय में इस बात का पूर्ण ध्यान रक्खा गया है। तथापि मानुष सुलभ दृष्टिदोषादि से तृतीयाध्याय में भी कुछ साधारण अशुद्धियां रह गई हैं, जिन्हें हो सका तो द्वितीयावृत्ति में ठीक कर दिया जायगा।

आधुनिक पाणिनीयशिक्षा के श्लोक

अब रही आधुनिक पाणिनीय शिक्षा के श्लोकों को उद्धृत करने की बात। श्री बाबू माधोलाल के नाम लिखे हुए एक पत्र से ज्ञात होता है कि २४ अप्रेल सन् १८७९ ई० तक अष्टाध्यायीभाष्य के चार अध्याय बन चुके थे (देखो पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ २५६, पं० १३-१६)। इसी प्रकार बाबू माधोलाल के नाम लिखे हुए दूसरे पत्र से विदित होता है कि अष्टाध्यायीभाष्य की रचना १५ अगस्त सन् १८७८ ई० (श्रावण बदी २ सं० १९३५ वि०) से पूर्व प्रारम्भ हो गई थी। (देखो पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ २०१, पं० १)। वर्णोच्चारण-शिक्षा माघ शु० ४ शनिवार सं० १९३६ में लिखी गई थी। १० जनवरी सन् १८८० को मुंशी इन्द्रमणि के नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखे हुए उर्दू पत्र से विदित होता है। कि महर्षि को पाणिनीयशिक्षा के सूत्र सन् १९७६ के अन्त में उपलब्ध हुए थे (देखो पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३१६, प० ७-८) ऐसी अवस्था में यह कब संभव था कि ऋषि अगस्त सन् १९७८ (श्रावण सं० १९३५ वि०) में पाणिनीयशिक्षा के सूत्र उद्धृत करते। हां, यदि बाद में ऋषि स्वयं इस ग्रन्थ को संशोधन करते और छपवाते तो अवश्य ही आधुनिक शिक्षा के श्लोकों को हटाकर उनके स्थान में पाणिनीयशिक्षा के सूत्र रख देते तथा अन्यत्र भी यथासम्भव उचित संशोधन कर देते परन्तु दुर्भाग्य है आर्य जाति का, जो पर्याप्त ग्राहक न मिलने के कारण यह अपूर्व ग्रन्थ ऋषि के जीवनकाल में प्रकाशित न हो सका और आर्य जनता इस ग्रन्थ से पूरा-पूरा लाभ न उठा सकी।

अब हम अष्टाध्यायीभाष्य से सम्बन्ध रखने वाले विज्ञापन, पत्र व पत्रांशों को उद्धृत करते हैं। यद्यपि ये सब पत्रादि अष्टाध्यायी-भाष्य प्रथम भाग की भूमिका में उद्धृत किये जा चुके हैं, तथापि यहां आवश्यक समझ कर पुनः उद्धृत करते हैं—

"**विज्ञापन**—आगे यह विचार किया जाता है कि संस्कृत विद्या की उन्नति करनी चाहिये सो विना व्याकरण के नहीं हो सकती। जो आजकल कौमुदी, चन्द्रिका, सारस्वत, मुग्धबोध और आशुबोध आदि ग्रन्थ प्रचलित हैं। इनसे न तो ठीक-ठीक बोध और न वैदिक विषय का ज्ञान यथावत् होता है। वेद और प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के ज्ञान के विना किसी को संस्कृत विद्या का यथार्थ फल नहीं हो सकता। और इसके विना मनुष्य जन्म का साफल्य होना दुर्घट है। इसलिये जो सनातन प्रतिष्ठित अष्टाध्यायी महाभाष्य नामक व्याकरण है उस में अष्टाध्यायी की सुगम संस्कृत और आर्यभाषा में वृत्ति बनाने की इच्छा है............।"

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ८९, भाग १, पृष्ठ १४२।

इसके अतिरिक्त दानापुर आर्यसमाज के तत्कालीन मन्त्री श्री बाबू माधोलालजी के नाम लिखे हुए कई पत्रों में अष्टाध्यायीभाष्य का उल्लेख मिलता है। यथा—

(१) २५ जुलाई सन् १८७८ ई० का पत्र—

"आप पाणिनीय अष्टाध्यायीभाष्य के ग्राहकों का सूचीपत्र बना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर भेज दीजिये । क्योंकि जो इसमें खर्च होगा वह तो आपको ज्ञात ही होगा । १००० ग्राहक जब हो जावेंगे तब आरम्भ करेंगे ।"

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या १०३, भाग १, पृष्ठ १५६ ।

(२) ६ अगस्त सन् १८७८ ई० का पत्र—

"अब ग्राहक अष्टाध्यायी के भेज दो क्योंकि अब तैयार होने लगी है ।" पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ११६, भाग १, पृष्ठ १८१ ।

(३) १५ अगस्त सन् १८७८ ई० का पत्र—

"अष्टाध्यायी की वृत्ति बनने का आरम्भ हो गया है ।

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या १२२, भाग १, पृष्ठ २०१ ।

(४) २४ अप्रेल सन् १८७९ ई० का पत्र—

"अष्टाध्यायी के अभी तक पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं हुए हैं। इसके चार अध्याय अभी तैयार हुए हैं। काम सर्वथा भले प्रकार चल रहा है। यद्यपि कोई कापी आज तक यन्त्रालय में से नहीं निकली ।"

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या २०७, भाग १, पृष्ठ २६० ।

(५) ऋग्वेदभाष्य अङ्क १५ (सं० १९३७) के टाइटल पेज ४ पर वेदाङ्गप्रकाश विषयक एक विज्ञापन छपा है । उस में संख्या १५ पर लिखा है—

"अष्टाध्यायी—यह पुस्तक अलग भी संस्कृत वृत्ति सहित छपेगा ।"

स्वामीजी के स्वर्गवास के लगभग साढ़े पांच वर्ष बाद वैदिक यन्त्रालय के तात्कालिक प्रबन्धकर्त्ता बाबू शिवदयालसिंह ने ऋग्वेभाष्य के वैशाख शुक्ल सं० १९४९ के ११४-११५ संम्मिलित अङ्क के अन्त में एक महत्त्वपूर्ण विज्ञापन प्रकाशित किया था, जो इस प्रकार है—

"सब आर्य महाशयों को विदित हो कि श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री० १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज कृत अष्टाध्यायी की टीका धरी हुई है । इसलिये मेरा विचार है कि यजुर्वेदभाष्य के समाप्त होने पर अष्टाध्यायी संस्कृत और भाषा टीका सहित छपाई जावे । एक मास में ऋग्वेदभाष्य और दूसरे में उतना ही अंक ८ फारम का अष्टाध्यायी का छपा करें । आज कल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टाध्यायी को पं० भीमसेन शर्मा शोधते हैं। सो २०० ग्राहक होने पर छपने का आरम्भ होगा.........कई महाशय गत मास में ग्राहक हो गये हैं, परन्तु संख्या अभी २०० पूरा नहीं हुई।"

हमने आरम्भ में लिखा है कि अष्टाध्यायीभाष्य के हस्तलेख में पृष्ठ १-११९ तक कहीं-कहीं लाल स्याही का संशोधन है वह संशोधन स्वामी जी के हाथ का नहीं है। इस विज्ञापन से प्रतीत होता है कि वह लाल स्याही का संशोधन पं० भीमसेन शर्मा के हाथ का होगा। तथा इस से आगे के लुप्त ११३ पृष्ठ भी संशोधनार्थं पं० भीमसेन के पास रहे होंगे और उन्हीं से वे पृष्ट नष्ट हो गये होगें।

परोपकारिणी सभा की घोर उपेक्षा

यद्यपि श्री० आचार्यवर ने अष्टाध्यायीभाष्य के चतुर्थ अध्याय का सम्पादन करके सभा को सन् १९४२ में दिया था, परन्तु सभा ने अनेक बार अनुरोध करने पर भी उसे आज तक प्रकाशित नहीं किया। ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी सभा उन्हीं के ग्रन्थों के प्रकाशन में कितनी उपेक्षा बर्तती है, इस पर कुछ विशेष लिखने की आवश्कता नहीं। अब सुना है कि चतुर्थ अध्याय का यह सम्पादित भाग गुम हो गया है। ऐसे ही ऋग्वेदभाष्य के ६१ सूक्त तक किया हुआ ऋ० द० का बृहद्भाष्य भी अनुपलब्ध है। चिरकाल तक किसी कार्य को लटकाए रखने का यही परिणाम होता है।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टम अध्याय

(सं० १९३६, १९३८ के ग्रन्थ)

२१–आत्मचरित्र (श्रावण सं० १९३६)

थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापकों में अन्यतम कर्नल आल्काट के विशेष आग्रह से ऋषि दयानन्द ने अपना संक्षिप्त चरित्र लिखकर कर्नल आल्काट को भेजा था। उस चरित्र का अंग्रेजी अनुवाद कर्नल आल्काट ने उस समय की 'थियोसोफिस्ट' पत्रिका में प्रकाशित किया था। यह अधूरा ही रहा। इस के दो कारण रहे होंगे—(१) वेदभाष्य आदि के कार्य से समय न मिलना, (२) कर्नल आल्काट आदि से मत भेद हो जाने पर उन से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना।

संवत् १९३२ में पूना में भी स्वामीजो ने अपनी व्याख्यानमाला में एक दिन आत्मचरित्र का वर्णन किया था। वह 'उपदेशमञ्जरी' तथा 'पूना-प्रवचन' के नाम से प्रकाशित 'पूना के व्याख्यान संग्रह' में छपा है।

इन दोनों आत्मचरित्रों के आधार पर श्री माननीय पं० भगवद्दत जी ने "ऋषि दयानन्द का स्वरचित वा कथित जीवनचरित्र" छपवाया है। यह आत्मचरित्र अत्यन्त संक्षिप्त होते हुए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। ऋषि दयानन्द के प्रसिद्ध होने से पूर्व की जीवनघटनाओं के ज्ञान का आधारभूत एकमात्र यही साधन हैं। पिछले जीवनचरितों के लेखकों ने भी इसी के आधार पर अपनी-अपनी खोजें की हैं।

अब हम ऋषि के 'पत्र और विज्ञापन' नामक संग्रह में से उन वचनों को उद्धृत करते हैं, जिस में ऋषिकृत इस आत्मचरित्र का उल्लेख है।

"अपने जन्म से लेकर दिनचर्या अभी कुछ संक्षेप से देवनागरी और अंग्रेजी में करवा कर हम उनके पास भेज देंगे"।

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या २२८, भाग १, पृष्ठ २८७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"करनैल साहब ने हम को[1] लिखा था कि आप अपना जीवन-चरित्र लिख दीजिये। प्रथम तो हमारा शरीर अच्छा नहीं रहा, इस कारण नहीं भेज सके। अब दो चार दिन से कुछ अच्छा हैं सो आज तुम्हारे इस पत्र के साथ कुछ थोड़ा सा जन्मचरित्र लिख कर भेजते हैं। सो तुम जिस समय पहुँचे उस समय उनके पास पहुंचाना क्योंकि उनका समाचार में छापने का समय आ गया"।

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या २२६, भाग १, पृष्ठ २८८।

"जो एक जन्मचरित्र के लिखने लिखवाने का काम ही होता तो लिख लिखा के भेज दिया होता"।

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या २४५, भाग १, पृष्ठ ३०२।

ये पत्र क्रमशः २१ अगस्त २७ अगस्त और ६ नवम्बर सन् १८७९ के है। अतः यह जीवनचरित्र २१ अगस्त से ६ नवम्बर सन् १८७९ के तीन किस्तों में लिख कर भेजा गया था। इस का अंग्रेजी अनुवाद थियोसोफिस्ट पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

थियोसोफिस्ट पत्रिका में छपे जीवनचरित का विवरण

ऋ० द० ने 'थियोसोफिस्ट' पत्रिका में छापने के लिये स्वजीवन-वृत तीन किस्तों (भागों) में लिख कर भेजा था। वह थियोसोफिस्ट के क्रमशः अक्टूबर १८७९, दिसम्बर १८७९ तथा नवम्बर १९८० के अङ्कों में छपा था। इनमें अक्टूबर १८७९ के अङ्क में पृष्ठ ९-१२ तक 'जन्म से लेकर ऋषिकेश-यात्रा पर्यन्त, दिसम्बर १८७९ के अंक में पृष्ठ ६६-६८ तक 'टिहरी से जोशीमठ-यात्रा पर्यन्त', तथा नवम्बर १८८० के अंक में पृष्ठ २४-२६ तक बद्रीनारायण से नर्मदा तट पर्यन्त भाग क्रमशः छपे थे।

स्वात्म-चरित के हस्तलेख

पं० लेखराम कृत जीवन-चरित में लिखा है—'जो हिन्दी लिख कर स्वामी जी ने भेजी, उसकी एक प्रति लाला मथुरादास (मथुरा-प्रसाद) मन्त्री आर्य-समाज अजमेर और दूसरी पण्डित छगनलाल श्रीमाली, भूतपूर्व कामदार रियासत मसूदा, किशनगढ़ निवासी से प्राप्त हुई' (हिन्दी सं० पृष्ठ १९)। पं० भगवद्दत्त जी ने स्व-सम्पादित 'स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म-चरित्र'[1] के तृतीय

---

१. पं० भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित ऋषि दयानन्द का यह आत्म-चरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण की भूमिका में लिखा है—'स्वामी श्रद्धानन्द जी के पास ऋषि के स्वरचित जन्म-चरित की एक प्रति थी, संन्यासधारण करते समय उन्होंने प्रो॰ रामदेव जी को सौंप दी थी। उस में हाथीमार्क के छः पृष्ठ हैं। सं॰ १९७४ को गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर प्रो॰ रामदेव जी ने वह हस्तलेख मुझे दे दिया।'

डा॰ श्री भवानीलाल भारतीय ने लिखा है– 'मुन्शी समर्थदान के बस्ते में जीवनवृत्त की दो किस्तें प्राप्त हो गई हैं।' पं॰ लेखराम जी ने श्री मथुराप्रसाद की जिस हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है, वह प्रति भी भारतीय जी को श्री मथुराप्रसाद जी की पत्नी गुलाबदेवी के भतीजे स्व॰ केशवदेव कपूरिया के कागजों से उपलब्ध हो गई है।

श्री भवानीलाल भारतीय ने परोपकारिणी सभा के संग्रह में उपलब्ध मूल हस्तलेखों के आधार पर (मूल प्रति की प्रतिकृति के मुद्रण सहित) ऋ॰ द॰ के आत्मचरित का सुन्दर संस्करण प्रकाशित किया है।

दयानन्द-चरित और प्रो॰मैक्समूलर

देशहितैषी खण्ड ४ अङ्क ४ (संवत् ?) पृष्ठ ७५ से ज्ञात होता है कि जर्मन-देशोत्पन्न इङ्गलैंड-निवासी प्रो॰ मैक्समूलर ने सब से प्रथम स्वामी दयानन्द का जीवनचरित्र लिखने का संकल्प किया था। इस विषय में उन्होंने परोपकारिणी सभा के तात्कालिक मन्त्री पं॰ मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या से पत्रव्यवहार भी किया था। पं॰ मोहनलाल पण्ड्या ने सब आर्यसमाजियों से प्रेरणा की थी कि जिन्हें स्वामीजी की कोई विशेष घटना ज्ञात हो तो वह प्रो॰ मैक्समूलर साहब को लिखें।

'फर्रुखाबाद का इतिहास' के पृष्ठ २५५ पर लिखा है—

"मेरठ आर्यसमाज से एक पत्र इस आशय का आया है कि प्रो॰ मैक्समूलर से स्वामीजी का जीवनचरित लिखाने के लिये निवेदन किया जाये। इस पर बहुत तर्क वितर्क के पश्चात् निश्चय हुआ कि जो पत्र मेरठ के समाज से लिखा जाये उस पर फर्रुखाबाद समाज के भी हस्ताक्षर रहें।"

रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से प्रकाशित होता है। सन् १९८३ तक इस के ९ संस्करण छप चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भवतः यह निर्णय जुलाई सन् १८८४ से जून १८८५ के मध्य में हुआ था।

पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या का संकल्प

मेरी पुस्तक पर एक टिप्पणी लिखी हुई है कि "परोपकारिणी सभा की पुरानी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने सर्वप्रथम ऋ० द० का जीवन-चरित लिखने का संकल्प किया था।"

इस टिप्पणी में परोपकारिणी सभा के किस वर्ष की रिपोर्ट में यह उल्लेख है, यह लिखना छूट गया है। इस समय हमारे पास परोपकारिणी सभा की पुरानी रिपोर्टें नहीं हैं। इस विषय में उत्सुक महानुभाव परोपकारिणी सभा की पुरानी रिपोर्टें देखने का कष्ट करें।

ऋषि दयानन्द के जीवनचरित

ऋषि दयानन्द के जीवनचरित बहुत से लिखे गये हैं, परन्तु उनमें अनुसंधानपूर्वक केवल दो-तीन ही जीवनचरित लिखे गये। इन में पहला जीवनचरित है श्री पं० लेखरामजी द्वारा संगृहीत। श्री पं० लेखराम जी ने ऋषि के लगभग ५ वर्ष पश्चात् उनके जीवनचरित्र की घटनाओं का संग्रह करने में ६, ७ वर्ष लगाये। वे इस काल में केवल इसी कार्य में नहीं लगे रहे, साथ-साथ उन्हें प्रचार-कार्य भी करना पड़ता था। फिर भी उन्होंने स्वल्प काल में ही ऋषि के जीवन की इतनी विपुल सामग्री संगृहीत कर ली थी उसके संग्रह के आधार पर छपा जीवनचरित ऋषि-जीवन का आकार ग्रन्थ बन गया है। पं० लेखराम जी ने उस संकलन के आधार पर जीवनचरित लिखना आरम्भ कर दिया था, परन्तु मध्य में ही छद्मवेषी मतान्ध मुसलमान ने उनकी जीवनलीला समाप्त कर दी और उनके द्वारा सम्पन्न होनेवाला महान् कार्य बीच में अधूरा रह गया। उनके पश्चात् आर्यसमाज के ख्यातनामा लेखक पं० आत्मारामजी अमृतसरी ने उनके द्वारा संगृहीत सामग्री को क्रमवार लगाकर उसे जीवनचरित के रूप में सन् १८९७ में प्रकाशित किया। इस जीवनचरित का प्रथम वार भाषानुवाद सं० २०२८ में आर्यसमाज नया बांस देहली ने प्रकाशित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० लेखरामजी के अनन्तर बंगप्रान्तीय श्री पं० देवेन्द्रनाथजी ने ऋषि के जीवनचरित लिखने का संकल्प किया। ये महानुभाव यद्यपि आर्यसमाजी नहीं थे, तथापि ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। इन्होंने अपने जीवन के श्रेष्ठतम १७ वर्ष ऋषि-जीवन के अन्वेषण कार्य में लगाये। परन्तु जीवनचरित के चार अध्याय ही लिख पाये थे कि दैववशात् इन्हें लकवा हो गया और उसी में कुछ समय पीड़ित रहकर स्वर्गवासी हुए। इस प्रकार श्री पं० देवेन्द्रनाथजी द्वारा अनुसंधानित कार्य भी अधूरा रह गया। उनके द्वारा संगृहीत टिप्पणियों के आधार पर श्री पं० घासीरामजी ने इस जीवनचरित को पूरा किया। और आर्य-साहित्य-मण्डल अजमेर ने सन १९३३ में दो भागों में प्रकाशित किया। इस जीवनचरित की भूमिका, प्रारम्भिक चार अध्याय और 'जन्म-स्थान और नाम' शीर्षक प्रथम परिशिष्ट पं० देवेन्द्रनाथ की लेखनी से लिखे हुए हैं। इसकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। यदि सारा ग्रन्थ पं० देवेन्द्रनाथ की लेखनी से पूरा हो जाता तो यह अत्यन्त महत्त्व का कार्य होता। यद्यपि इस जीवनचरित के लिखने में श्री पं० घासीरामजी ने पं० लेखरामजी के जीवनचरित से भी सहायता ली है, तथापि पं० लेखरामजी के जीवनचरित में अभी भी बहुत सी उपयोगी सामग्री ऐसी विद्यमान है, जो अन्यत्र नहीं मिलती।

तीसरा जीवन-चरित लाहौर के मास्टर लक्ष्मण जी द्वारा उर्दू में लिखा हुआ है। यह जीवनचरित भी पं० लेखरामकृत जीवनचरित के समान बृहत्काय है। इस में विदेशी व्यक्तियों द्वारा ऋषि दयानन्द को लिखे गये अनेक पत्र हमें उपलब्ध हुए हैं। लगभग १२०० बारह सौ पृष्ठों के इस महाकाय जीवनचरित का आर्यभाषानुवाद श्री प्रा० राजेन्द्र जी जिज्ञासु कर रहे हैं। इतने बड़े ग्रन्थ के अनुवाद और मुद्रण में पर्याप्त समय लग सकता है, तथापि हम दोनों का प्रयास इसे ३-४ वर्ष तक प्रकाशित कर देने का है। आगे दैवी इच्छा।

चौथा जीवनचरित श्री स्वामी सत्यानन्दजी रचित है। इस का नाम **"दयानन्द-प्रकाश"** है। यह अत्यन्त भक्तिभावपूर्ण भाषा में लिखा हुआ है। इस का मुख्य प्रयोजन ऋषि दयानन्द के प्रति भक्तिभाव का संचार करना है। इस दृष्टि से यह जीवनचरित अपने ढंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निराला ही है। श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने भी ऋ० द० की जीवन-घटनाओं की खोज में कुछ समय लगाया था।

पाचवां जीवनचरित्र श्री बा० रामविलासजी शारदा का लिखा हुआ है। इसका नाम **"आर्यधर्मेन्द्रजीवन"** है। इसके प्रारम्भ में श्री पं० आत्माराम जी द्वारा लिखा हुआ विद्वत्तापूर्ण एक बृहद् उपोद्घात है।

इनके अतिरिक्त संस्कृत[1] मराठी, गुजराती, बंङ्गाली, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में ऋषि दयानन्द के जीवनचरित छपे हैं, परन्तु इन सबके मूल उपयुर्युक्त जीवनचरित ही हैं।

'योगी का आत्मचरित्र' नाम से स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती ने एक जीवन-चरित छापा है। इस का मूल पं० दीनबन्धु शास्त्री द्वारा खोजे गये अंश हैं। पं० दीनबन्धु जी द्वारा उपलब्ध मूल अंश जो संस्कृत में बंगला लिपि में लिखे गये थे, वे सुरक्षित नहीं रखे गये। उनके द्वारा लिखे गये भाषानुवाद के आधार पर है यह तथाकथित आत्मचरित छपा है। इस में अनेक तथ्य कल्पित हैं। अतः यह ग्रन्थ उपन्यास से अधिक महत्व नहीं रखता।

ऋ० द० के० हस्तलेख के पाठ का हमारे द्वारा मुद्रण

परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान ऋ० द० के स्वलिखत जीवन-चरित की दो किस्तों का मुद्रण "परोपकारी" पत्र के मार्च १९७५ के 'महर्षि दयानन्द-आत्मकथा विशेषांक' में हस्तलिखित अंश की प्रतिकृतियों के साथ किया है। हमने मूलपाठ से पुनः मिलान करके **'ऋ० द० के शास्त्रार्थ और प्रवचन'** के अन्त में द्वितीय परिशिष्ट में (पृष्ठ ४५६-४६६ तक) छापा है। अगला भाग तीसरी किश्त पृष्ठ ४६६-४७५ तक थियोसोफिस्ट के नवम्बर १८८० के अंक में छपे अंग्रेजी पाठ का भाषानुवाद रूप है। इसे भी हमने डा० भवानीलाल भारतीय के पाठ के अनुसार ही छापा हैं।

—:०:—

१. संस्कृत में ऋषि दयानन्द के तीन जीवनचरित हमारे देखने में आये हैं। उनमें प्रथम पं० अखिलानन्द शर्मा कृत 'दयानन्द-दिग्विजय', दूसरा पं० दिलीपदत्त शर्मा कृत मुनिचरिता 'तीसरा और मृत पं० मेघाव्रतजी येवला-निवासी द्वारा लिखा गया 'दयानन्द-दिग्विजय'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१–संस्कृतवाक्यप्रबोध (फा०सं०१९३६)

ऋषि दयानन्द ने अपने व्याख्यानों, पुस्तकों और पत्रव्यवहार द्वारा संस्कृत भाषा के पुनः प्रचार का एक महान् आन्दोलन उपस्थित कर दिया था। अंग्रेजी शिक्षा से होने वाले दुष्परिणामों को ऋषि ने दीर्घदृष्टि से प्रारम्भ में ही जान लिया था। अत एव उन्होंने उन दुष्परिणामों को रोकने के लिये संस्कृत भाषा और हिन्दी भाषा के प्रचार पर अत्यन्त बल दिया था। इस विषय में ऋषि के कुछ पत्र विशेष रूप से देखने योग्य हैं। देखो 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ ४२, २१३, २४६, २५०, भाग २, पृष्ठ ५०१, ५४७, ६०२, ६०३, ६०५, ६२६, ६८४, ७८१, इत्यादि।

ऋषि ने अपने कई पत्रों में स्पष्टतया अंग्रेजी की पढ़ाई के लिये धनव्यय करने का निषेध किया है। इतनी स्पष्ट आज्ञा होने पर भी उनके अनुयायी कहलाने वाले आर्यसमाजियों ने स्कूल और कालिज खोल कर अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार में महान् प्रयत्न किया और कर रहे हैं और वह भी दयानन्द के नाम पर। यह कितनी नैतिक विडम्बना है? इस पर कुछ भी लिखना व्यर्थ है। इधर कुछ वर्षों से तो आर्यसमाज अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खोलने में अग्रसर हो रहा है।

ऋषि दयानन्द के द्वारा प्रवर्त्तित आन्दोलन का यह तात्कालिक प्रभाव हुआ कि लोग उनसे संस्कृत सीखने की पुस्तकों की मांग करने लगे। उसी मांग की पूर्त्ति के लिये ऋषि ने संस्कृतवाक्यप्रबोध की रचना की और वेदाङ्गप्रकाश के १४ भाग प्रकाशित किये।

संस्कृवाक्यप्रबोध में छोटे बड़े ५२ प्रकरण हैं, जिनमें साधारणतया नित्यप्रति के व्यवहार में आने वाले प्रायः सभी प्रकार के शब्दों तथा वाक्यों का संग्रह है।

—इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सं० १९३६ में वैदिक यन्त्रालय काशी से प्रकाशित हुआ था। यह संवत् इस संस्करण के मुख पृष्ठ पर छपा हुआ है, तिथि वा मास का निर्देश नहीं है। इस ग्रन्थ की भूमिका के अन्त में केवल फाल्गुन शु० ११ छपा हैं, वहां संवत् का उल्लेख नहीं है। सम्भव है, वह लेखक प्रमादवश छूट गया हो। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से यह स्पष्ट है कि संस्कृतवाक्यप्रबोध फाल्गुन शु० ११ सं० १९३६ में प्रकाशित हुआ था। भूमिका में लिखी फाल्गुन शुक्ला ११ तिथि मुद्रण के समय लिखी गई प्रतीत होती है। क्योंकि इस के १९ दिन पश्चात् सं० १९३७ आरम्भ हो जाता है। यह पठनपाठन-क्रम में द्वितीय पुस्तक है। इसके प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥
तत्रत्यः
॥ द्वितीयो भागः ॥
॥ संस्कृतवाक्यप्रबोधः ॥
॥ पाणिनिमुनि प्रणीता ॥
॥ श्रीमतस्वामी दयानन्द कृतव्याख्या सहिता ॥

छपा है। संस्कृतवाक्यप्रबोध न तो वेदाङ्गप्रकाश का भाग ही है और न ही पाणिनिमुनि प्रणीत है। इस भूल का कारण यह है कि वैदिक यन्त्रालय का वह प्रारम्भिक काल था, कार्यकर्त्ता अनुभवी न थे और इस पुस्तक के छपने से अव्यवहित पूर्व ही **वर्णोच्चारणशिक्षा** छपी थी। अतः उसी के मुख पृष्ठ के मैटर में पुस्तक के नाम आदि का साधारण परिवर्तन करके प्रेस वालों ने इसका मुख पृष्ठ छाप दिया। यही भूल व्यवहारभानु के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर भी हुई है। मुंशी समर्थदान ने अपने २०।८।८३ के पत्र में महर्षि को लिखा था—**'व्यवहारभानु और संस्कृतवाक्यप्रबोध भी वेदाङ्गप्रकाश में छाप दिये यह बड़ी भूल की बात हुई।**

पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पूर्ण संख्या ४४६, पृष्ठ ४५५।

अगले संस्करण में यह भूल ठीक कर दी गई, परन्तु इस भूल के कारण वेदाङ्गप्रकाश के क्रमाङ्कों में बहुत गड़बड़ी हो गई, जो अभी तक चली आ रही है। उसे हम वेदाङ्गप्रकाश के प्रकरण में दर्शावेंगे।

प्रथम संस्करण में अशुद्धियां

इसी प्रकार अनवधानता-वश संस्कृतवाक्यप्रबोध के प्रथम संस्करण के संस्कृत भाग में भी बहुत सी भयङ्कर अशुद्धियां रह गई थीं, जिन पर काशी की ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के **अम्बिकादत्त व्यास** आदि पण्डितों ने **'अबोधनिवारण'** नाम से लिखित आक्षेप किये थे[1]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें बहुत से आक्षेप निर्मूल थे। इस विषय में महर्षि ने श्रावण शुक्ला १३ बुधवार सं० १९३७ के पत्र में बख्तावरसिंह प्रबन्धक वैदिक यन्त्रालय काशी को इस प्रकार लिखा था—

"जो संस्कृतवाक्यप्रबोध पर (काशी के पण्डितों ने) पुस्तक छपवाया हैं सो बहुत ठिकनों में उनका लेख अशुद्ध है और कै एक ठिकानों में संस्कृतवाक्यप्रबोध में अशुद्ध भी छपा है। इस अशुद्धि के कारण तीन हैं। एक शीघ्र बनना, मेरा चित स्वस्थ न होना, दूसरा—भीमसेन के आधीन शोधन का होना और मेरा न देखना न प्रूफ को शोधना, तीसरा—छापेखाने में उस समय कोई भी कम्पोजीटर बुद्धिमान् न होना लैम्पों की न्यूनता होनी। इसके उत्तर में जो-जो उनको सच्ची बात है सो-सो शोधक और छापा का दोष रहेगा। इसके खण्डन पर भीमसेन का नाम मत लिखना किन्तु पण्डित ज्वालादत्त के नाम से छापना। इस पर आगे के 'आर्यदर्पण' में छापने के लिये पं० ज्वालादत्त भो लिखेगा। और भीमसेन भी लिखो, परन्तु उसका नाम उस पर छपवाने से उसके पढ़ने में वहां के लोग बहुत विरोध करेंगे॥"

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ३२९, भाग १, पृष्ठ ३८७-३८८)

इसी प्रकार संस्कृतवाक्यप्रबोध की अशुद्धियों का उल्लेख ऋषि के अन्य पत्रों में भी मिलता है यथा—

"वेदभाष्य का प्रूफ और छापना संस्कृतवाक्यप्रबोध के तुल्य न हो जावे।"

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ३२९, भाग १, पृष्ठ ३८९, पं० १५।

"संस्कृतवाक्यप्रबोध के विषय में जो तुमने लिखा सो छापे वालों की भूल से छप गया। वहां **एकत्रैकाङ्गुष्ठ एकत्र चतुरङ्गुलयः** ऐसा होना चाहिये, सो सुधार लीजिये।

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ६४७, भाग २, पृष्ठ ६७४।

---

१. पं० बाबू रामकृष्ण ने अबोधनिवारण ग्रन्थ छपवाया था। देखो दयानन्दछलकपटदर्पण, पृष्ठ १६१।

२. संस्कृतवाक्यप्रबोध के प्रथम संस्करण में अशुद्ध पाठ इस प्रकार छपा था—"**मुष्टिबन्धने एगत्राङ्गुष्ठ एकत्र पञ्चाङ्गुलयो भवन्ति**" (पृष्ठ २९)। ऐसा ही भाषा में भी था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी के पण्डितों के कुछ आक्षेपों के उत्तर 'आर्यदर्पण' के मई सन् १८८० के अङ्क में पृष्ठ ११३ से १२० छपे हैं। प्रारम्भ में **'ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा'** के विषय में लिखा है। तत्पश्चात् **'अबोधनिवारण'** के लेखक और प्रकाशक के नामों में जो जालसाजी की गई है, उसका वर्णन किया है। तदन्तर पृष्ठ १२० पर 'अबोधनिवारण' के कुछ आक्षेपकों का सप्रमाण उत्तर दिया गया है। यह उत्तर 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' में भाग १, पृ० ३९० से ३९२ तक छपा है। इस उत्तर के नीचे **'एक पण्डित'** केवल इतना ही उल्लेख है, परन्तु लेखन-शैली से प्रतीत होता है कि यह उत्तर श्री स्वामी जी द्वारा लिखवाया हुआ है।

इस उपर्युक्त घटना का उल्लेख ऋषि के जीवनचरित में लखनऊ के सं० १९३३ के वर्णन में मिलता हैं, जो इस प्रकार है—

"स्वामी जी ने एक पुस्तक [संस्कृत] वाक्यप्रबोध प्रकाशित की थी। छपी तो उनके नाम से थी परन्तु उसके लिखने वाले उनके साथ काम करने वाले पण्डित थे। उसमें संस्कृत की कुछ अशुद्धियां रह गई थीं। काशी के पण्डितों ने उस पर आक्षेप किया तो पण्डित वर्ग उन अशुद्धियों को शुद्ध करने लगे। स्वामीजी ने कहा जो अशुद्धियां हैं उन्हें सरलता से मान लेना चाहिये और अगले संस्करण में उन्हें शुद्ध कर देना चाहिये।" पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित पृ० ३७९।

जीवनचरित का यह वर्णन महर्षि के पूर्वोक्त (पृष्ठ १७५ पर छपे) पत्र से बहुत समानता रखता है। अतः निस्सन्देह यह वर्णन सम्पादक की अनवधानता से अस्थान में जुड़ गया है। अन्यथा जिस पुस्तक के विषय में ३ वर्ष पूर्व काशी के पण्डितों ने आक्षेप किया हो. वह पुस्तक पुनः उसी प्रकार अनवधानता से छपे और विपक्षी पण्डितों को पुनः आक्षेप का अवसर मिले, यह अयुक्त प्रतीत होता है। जीवन-चरित में संस्कृतवाक्यप्रबोध को पण्डितों के द्वारा लिखा गया लिखना भी अशुद्ध है। इस ग्रन्थ की संस्कृत भाषा की शैली से यह स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ ऋषि दयानन्द का ही लिखा हुआ है। पृष्ठ १७५ पर मुन्शी बख्तावरसिंह के नाम लिखे पत्र का जो अंश हमने उद्धृत किया है, उस के **'मेरा चित्त स्वस्थ न रहना'** वाक्य से भी स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ ऋ० द० का ही लिखा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अबोध-निवारण का उत्तर

ऋ० द० कृत संस्कृतवाक्यप्रबोध पर पं० अम्बिकादत्त व्यास आदि ने जो आक्षेप छपवाये थे उन का उत्तर वि० सं० २०२५ तक किसी भी आर्य विद्वान् ने नहीं दिया। चिरकाल तक किन्हीं आक्षेपों का उत्तर न दिया जाये तो जनता यह समझती है कि जो आक्षेप किये गये हैं वे ठीक हैं। इस के प्रमाण में हम मुन्नालाल मिश्र (अफलजगढ, जिला बिजनौर) का २१-१०-[१८]८२ का पत्र नीचे उद्धृत करते हैं।

ओं २१-१०-८२ ई०

नमस्ते महाशय लाला कालीचरण साहिब आपके यहां का अंक इस महिने का आज तक नहीं आया कारण मालूम नहीं और जो कबोधनिवारण पुस्तक काशी के पण्डित ने स्वामी जी के संस्कृतवाक्यप्रबोध की अशुद्धियां व्याकरण की रीति से विदित की हैं। उस के उत्तर में स्वामी जी वा उनके किसी विद्यार्थी ने कोई पुस्तक नहीं बनाया इस से अनुमान होता है जो काशी के पण्डित ने बनाया है सो ठीक है आप इसका उत्तर कृपा करके भेजिये अग्रेकिमधिकम्

ह० मुन्नालाल मिश्र सा० अफलजगढ़
जिले बिजनौर

अबोधनिवारण के सभी आक्षेपों का उत्तर हमने रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से सं० १९२६ (सन् १९६९) में छापे गये संस्कृत-वाक्यप्रबोध के अन्त में छापे हैं।

विशेष—उपरि मुद्रित पत्र के प्रकाश में यह बात सरलता से समझ में आ सकती है कि स्वामी करपात्री जी के वेदार्थपारिजात ग्रन्थ में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर किये गये आक्षेपों का उत्तर न देने से भी लोग यही समझेंगे कि स्वामी करपात्री जी के आक्षेप युक्ति-युक्त हैं।

---

१. यह पत्र पोष्टकार्ड पर लिखा हुआ है। अफलजपुर पोष्ट आफिस की मोहर २१ अक्टूबर की है। २४ अक्टूबर की फतहगढ़ की मोहर है। फर्रुखाबाद पहुंचने की तारीख अस्पष्ट है। यह पत्र श्री महाराज जी के संग्रह में था। अब हमारे पास है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३—व्यवहारभानु

(फाल्गुन शु० १५ सं० १९३६)

बालक ही आगे चलकर देश जाति और समाज के स्तम्भ बनते हैं। यही कारण है कि ऋषि दयानन्द ने जहां विद्वानों के लिए वेद-भाष्य सत्यार्थप्रकाश आदि उच्च कोटि के ग्रन्थ रचे, वहां वे साधारण पुरुषों और बालकों के लिये भी अनेक उपयोगी ग्रन्थों की रचना में नहीं चूके। इस प्रकार के ग्रन्थों में व्यवहारभानु एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। इस ग्रन्थ में दृष्टान्त आदि के द्वारा अत्यन्त सरल शब्दों में नित्यप्रति के व्यावहारिक कर्त्तव्यों का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। यह ग्रन्थ फाल्गुन शु० १५ सं० १९३६ काशी में लिखा गया था। यह तिथि ग्रन्थ की भूमिका के अन्त में लिखी है। इस समय महर्षि काशी में विराजमान थे।

स्वामी जी ने पठन-पाठन विषयक जो पुस्तकें रची हैं, उनमें यह तृतीय पुस्तक है। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर भी **"वेदाङ्ग प्रकाशः तत्रत्यः तृतीयो भागः ॥ व्यवहारभानुः । पाणिनि-मुनि प्रणीता" आदि अशुद्ध छपा है।**

प्रथम संस्करण में अन्यत्र भी बहुत स्थानों पर पाठ अशुद्ध छप गया था। उस के सम्बन्ध में ज्येष्ठ शुक्ला ६ सं० १९३७ के पत्र में मुन्शी बख्तावरसिंह प्रबन्धकर्त्ता वै० यं० को ऋ० द० ने लिखा था—

"भीमसेन से व्यवहारभानु में शुद्धाशुद्ध पत्र लिखवा के साथ छपवा के लगा दो। क्योंकि उस में बहुधा शुद्ध अशुद्ध है।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३३६, पं० २६-२७।

इस पुस्तक का मेरे द्वारा सम्पादित एक सुन्दर तथा परिशुद्ध संस्करण रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा माघ सं० २००० वि० में लाहौर में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ में लिखे हुए विषय ऋषि के अन्य ग्रन्थों में जहां-जहां मिलते हैं, उन सब का पता नीचे टिप्पणी में दे दिया है। इस कारण यह संस्करण और भी अधिक उपयोगी बन गया है।

आर्योद्देश्यरत्नमाला और व्यवहारभानु के लाहौर में छपे विशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण प्रकाशित करने के समय से ही मेरी यह हार्दिक इच्छा रही है कि ऋ० द० के समस्त ग्रन्थों के इसी प्रकार के टिप्पणियों के साथ उत्तम प्रामाणिक संस्करण छापे जायें। मेरी यह इच्छा बहुत वर्षों के पश्चात् सन् १९७२-१९७५ के मध्य पूरी हुई। इस काल में वेदाङ्ग-प्रकाश और वेदभाष्य को छोड़ कर सभी ग्रन्थों के सुन्दर प्रामाणिक सटिप्पण और विविध परिशिष्टों-सूचियों के सहित संस्करण सम्पादित वा प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। ऋग्वेदभाष्य के भी तीन खण्ड इसी प्रकार के छापने का यत्न किया है।

—:o:—

२४—गोतम-अहल्या और इन्द्र-वृत्रासुर की सत्यकथा (चैत्र सं० १९३७ से पूर्व)

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, भाग २ के पृष्ठ ६०९-६१० पर ऋषि दयानन्द का एक पत्र छपा है, उसमें इस पुस्तक की २५ प्रतियां पहुंचने का उल्लेख है। यह पत्र भाद्र बदि १ मंगलवार सं० १९३९ का है। इस पुस्तक का सब से पुराना उल्लेख चैत्र सं० १९३७ में प्रकाशित गोकरुणानिधि के अन्तिम पृष्ठ पर मिलता है। वहां इसका मूल्य दो पैसे लिखा है। आषाढ़ सं० १९३७ के यजुर्वेदभाष्य के १५वें अङ्क के अन्त में छपे तथा काशी-शास्त्रार्थ (स० १९३७), सत्यधर्म-विचार (हिन्दी-उर्दू, सं० १९३७) आदि ग्रन्थों में हुए पुस्तकों के विज्ञापन[1] में इसका मूल्य एक आना लिखा मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि यह पुस्तक चैत्र सं० १९३७ से पूर्व अवश्य छप गई थी।

इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द ने ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्दिष्ट 'गोतम-अहल्या औरइन्द्र-वृत्रासुर' की आलंकारिक कथा का वास्तविक स्वरूप दर्शाया था। इसका वास्तविक स्वरूप न समझ कर पुराणों में इसका अत्यन्त बीभत्स रूप में वर्णन किया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार इन्द्र नाम सूर्य का है और गौतम चन्द्रमा का, तथा अहल्या नाम रात्रि का है। अहल्या-रूपी रात्रि और

१. यह विज्ञापन परिशिष्ट संख्या ७ में छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोतम-रूपी चन्द्रमा का आलङ्कारिक पति-पत्नी भाव का कथन है। इन्द्र=सूर्य को अहल्या का जार इसलिये कहते हैं कि सूर्य के उदय होने पर रात्रि नष्ट हो जाती है। इस कथा का यही तात्पर्य निरुक्त में भी दर्शाया है—

"आदित्योऽत्र जार उच्यते रात्रेर्जरयिता। ३। ५॥"
"रात्रिरादित्यस्योदयेऽन्तर्धीयते । १२। ११॥"

इन्द्र-वृत्रासुर कथा में भी इन्द्र नाम सूर्य का है। उसे त्वष्टा भी कहते हैं। वृत्र नाम निघण्टु में मेघ-नामों में पढ़ा है। जब वृत्र=मेघ बढ़ कर आकाश मण्डल को ढांप लेता है तब इन्द्र (त्वष्टा) इस पर अपनी वज्ररूपी किरणों से आघात करता है। वृत्र मर कर=बादल बरस कर पानी के रूप में भूमि पर गिर पड़ता है। निरुक्त २।१६-१७ तथा शत० १।१।३।४-५ में इस कथा का यही आलंकारिक रूप वर्णित है।

इन दोनों कथाओं का वास्तविक स्वरूप ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य प्रकरण में भी दर्शाया है। ऋषि ने मार्गशीर्ष शुदि १५ सं० १९३३ के दिन वेदभाष्य के विषय में जो विज्ञापन छपवाया था, उसमें भी इसका शुद्ध स्वरूप दर्शाया है। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन भाग १, पृष्ठ ७४।

यह पुस्तक हमें देखने को नहीं मिली। अतः हम इनके विषय में अधिक नहीं जानते। सम्भव है यह पूर्वोक्त वेदभाष्य का विज्ञापन ही हो। उस विज्ञापन में गोतम-अहिल्या, इन्द्रवृत्रासुर-युद्ध और प्रजापति-दुहिता की कथाओं का शुद्ध स्वरूप दर्शाया गया है। हो सकता है स्वतन्त्ररूप से कोई पुस्तिका छपवाई हो।

—:o:—

२५—भ्रमोच्छेदन (आषाढ़ १९३७)

काशी के श्री राजा शिवप्रसादजी 'सितारा हिन्द' ने महर्षि की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर '**निवेदन**' नाम से कुछ आक्षेप सं० १९३७ वैशाख के अन्त में या ज्येष्ठ के आदि में छपवाये थे। उन पर स्वामी विशुद्धानन्दजी के हस्ताक्षर थे। अत एव महर्षि ने उन आक्षेपों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर में यह भ्रमोच्छेदन नाम का ग्रन्थ रचा। इसका रचना काल ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुक्रे मासेऽसिते दले।
द्वितीयायां गुरौ वारे भ्रमोच्छेदो ह्यलंकृतः॥

अर्थात्—सं० १९३७ ज्येष्ठ कृष्णा २ गुरुवार के दिन भ्रमोच्छेदन ग्रन्थ समाप्त हुआ।

इस ग्रन्थ के लेखन काल में कुछ अशुद्धि है। श्लोक में '**शुचौ मासे**' के स्थान में '**शुक्रे मासे**' या तो अशुद्ध छपा है या अशुद्ध लिखा गया है। '**शुक्र**' का अर्थ ज्येष्ठ और '**शुचि**' का अर्थ आषाढ़ होता है। यहां वस्तुतः आषाढ़ मास होना चाहिये। इसमें निम्न हेतु हैं—

१—भ्रमोच्छेदन के आरम्भ में "**ज्येष्ठ महिने में निवेदन पत्र छपवा कर प्रसिद्ध किया**"[1] ऐसा लिखा है। अतः ज्येष्ठ के प्रारम्भ अर्थात् ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया को ही भ्रमोच्छेदन का लिखना किसी प्रकार नहीं बन सकता।

२—ज्येष्ठ कृष्णा २ सं० १९३ को गुरुवार नहीं था बुधवार था।

३—भ्रमोच्छेदन के लेखन की तथा जिस दिन यह ग्रन्थ छपने के लिये भेजा गया, उस दिन के पत्र की तिथि, वार और संवत् सब परस्पर मिलते हैं। देखो पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या २९३ का पत्र, भाग, १, पृष्ठ ३३७-३३९। केवल महिने के नाम में ही भेद है। अर्थात् आषाढ मास का पत्र है।

४—यदि भ्रमोच्छेदन ज्येष्ठ कृ० २ को बन गया हो और आषाढ़ कृष्णा २ को छपने के लिये भेजा गया हो तो मानना पड़ेगा कि यह ग्रन्थ एक मास तक स्वामीजी के पास लिखा हुआ पड़ा रहा। किन्तु आगे के उद्ध्रियमाण पत्रों से व्यक्त हाता है कि स्वामीजी इसे अत्यन्त शीघ्र छपवाना चाहते थे। अतः वे उसे एक मास तक कदापि अपने पास पड़ा न रहने देते।

इन हेतुओं से पूर्वोक्त श्लोक में महिने के नाम में "शुचौ" के स्थान में 'शुक्रे' अवश्य ही अशुद्ध लिखा या छपा है।

---

१. द्र०—दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह, पृष्ठ २४७, पं० १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और अशुद्धि

भ्रमोच्छेदन के प्रारम्भ में कार्तिक सुदि १४ गुरुवार सं० १९३६ को काशी पहुँचना लिखा[1]। परन्तु ऋषि के पत्रव्यवहार से ज्ञात होता है कि वह कार्तिक सुदि ७ सं० १९३६ गुरुवार को काशी पहुँचे थे। ऋषि दयानन्द का २० नवम्बर सन् १८७९ अर्थात् कार्त्तिक सुदि ७ गुरुवार को काशी से लिखे हुए पत्र का कुछ अंश (जिसके अन्त में २० नवम्बर सन् १९३६ काशी का उल्लेख है) तथा कार्तिक सुदि ८ सं० १९३६ का एक पत्र ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण संख्या २४७, २४८ (भाग १, पृष्ठ ३०३-३०४) पर छपे हैं।

भ्रमोच्छेदन का रचना स्थान

भ्रमोच्छेदन ग्रन्थ आषाढ़ कृष्णा २ गुरुवार सं० १९३७ वि० (२४ जून सन् १८८०) को फर्रुखाबाद से छापने के लिए भेजा था। (देखो पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३३७, पं० १)। इस बार स्वामीजी महाराज वैशाख शु० ११ (२० मई १८८०) से आषाढ़ कृष्णा ८ (३० जून १८८०) तक एक मास बारह दिन फर्रुखाबाद रहे थे। अतः यह ग्रन्थ फर्रुखाबाद में ही रचा गया था।

ऋषि के पत्रों में भ्रमोच्छेदन का उल्लेख

महर्षि ने आषाढ़ कृ० २ गुरुवार सं० १९३७ के पत्र में लिखा है—

"आज रजिष्ट्री करके राजा शिवप्रसाद का उत्तर यहां से रवाना करेंगे।" पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३३७, पं० १।

अगले आषाढ़ सुदि १ सं० १९३७ वि० के पत्र में पुनः लिखा है—

"हमने २४ वीं जून को राजा शिवप्रसाद का उत्तर भेजा था, २६ वीं को पहुंचा होगा। और वह भी पहली अप्रेल[2] वा पांचवीं तारीख अप्रेल[2] तक छपके तैयार हो गया होगा।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३४४, पं० १३-१५।

---

१. यही सूचना आर्यदर्पण फरवरी १८८० के पृष्ठ ४२ पर छपी थी।

२. यह पत्र २४ जून के बाद लिखा है, अतः यहां जुलाई होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः अगले अज्ञात तिथि (१० या ११ जुलाई सन् १८८० ई०) के पत्र में लिखा है—

"२४ जून को राजा शिवप्रसाद का उत्तर हमने फर्रुखाबाद से तुम्हारे पास भेजा दिया था।..........राजा जी के जबाब की पुस्तक हद्द के दरजह ८ दिन में छप कर तैयार हो सकते हैं पर न मालूम अब तक क्यों नहीं तैयार हुए"।

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३४५, पं० २३।

इन पत्रों से तथा आगे छपी जा रही २६ जुलाई १८८० की समालोचना से ज्ञात होता है कि भ्रमोच्छेदन आषाढ़ के अन्त (=२१ जुलाई १८८०) से पूर्व छप गया होगा। इसका प्रथम संस्करण हमें देखने को नहीं मिला।

मुन्शी बख्तावरसिंह को विशेष निर्देश

आषाढ़ कृष्ण २ सं० १९३७ वि० के पत्र के अन्त में महर्षि ने मैनेजर वैदिक यन्त्रालय को निम्न आज्ञा दी थी—

"जब तक यह भ्रमोच्छेन ग्रन्थ छप के बाहर न हो तब तक किसी को मत दिखलाना। जब छप जाय तब काशीराज, राजा शिवप्रसाद, विशुद्धानन्द, बालशास्त्री और राय शंकटाप्रसाद की लायब्रेरी तथा पं० सुब्बेराव और हरि पण्डितजी को भी एक पुस्तक देना।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३३८, पं० २७ से पृष्ठ ३३९, पं० २ तक।

राय कन्हैयालाल का आक्षेप और ऋ० द० का उत्तर

पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८२७ में लिखा है—

"एक विश्वसनीय सूत्र से ज्ञात हुआ कि स्वर्गीय लाला मेवाराम बी ए० के सुपुत्र राय कन्हैयालाल एग्जेक्टिव इञ्जिनियर ने स्वामी जी को लिखा कि **'इस में आपने नम्रता से काम नहीं लिया और कठोर शब्दों का प्रयोग किया है'**। स्वामी जी ने लाला साईंदास जी प्रधान आर्यसमाज लाहौर के द्वारा उत्तर दिया कि **'मैं आजकल के कालेजों और स्कूलों का पढ़ा हुआ नहीं हूं जो मन में कुछ हो और**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट कुछ और करूं। मैं जो मन में ठीक समझता हूं उसी को प्रकट करता हूं। लागलपेट की और पालिसी की बातें मुझे नहीं आती।[1]

पौराणिक पत्र की समालोचना और उसका उत्तर

'कविवचन सुधा' २६ जुलाई सन् १८८० ई० और 'भारतबन्धु' ३० जुलाई सन् १८८० ई० के अङ्कों में भ्रमोच्छेदन पर एक रिव्यू (सम्मति) छपा था। जिसमें लिखा था कि "इस पुस्तक में बहुत कठोर शब्दों का प्रयोग किया है।" इसका यथोचित उत्तर आर्यदर्पण मई सन् १८८० के पृष्ठ ११० पर दिया गया है। विस्तार भय से हम उसे उद्धृत नहीं करते।

—

२६—अनुभ्रमोच्छेदन (फाल्गुन सं० १९३७)

महर्षि ने राजा शिवप्रसाद सितरा हिन्द के 'निवेदन' का उत्तर 'भ्रमोच्छेदन' ग्रन्थ के द्वारा दिया था। उसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। भ्रमोच्छेदन के उत्तर में राजा शिवप्रसाद ने **'द्वितीय निवेदन'** नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस द्वितीय निवेदन के उत्तर में यह 'अनुभ्रमोच्छेदन' ग्रन्थ लिखा गया है। ग्रन्थ के अन्त में रचना काल इस प्रकार लिखा है—

"ऋषिकालाङ्कभूवर्षे तपस्यस्यासिते दले।
दिक्तिथौ वाक्पतौ ग्रन्थो भ्रमं छेत्तुमकार्यलम्॥"

अर्थात् संवत् १९३७ फाल्गुन कृष्णा ४ बृहस्पतिवार के दिन यह 'अनुभ्रमोच्छेदन' ग्रन्थ बनाया।

ग्रन्थ का लेखक

यद्यपि अनुभ्रमोच्छेदन के कुछ संस्करणों के मुख पृष्ठ पर तथा

---

१. हमने पं० लेखरामजी के लेख के आधार पर कन्हैयालाल एक्जेक्टिव इञ्जिनियर का पत्र-सारांश पत्र और विज्ञापन के भाग ३, पृष्ठ ८ पर, तथा स्वामी जी के उत्तर का पत्रसारांश भाग १, पृष्ठ ११७ पर छापा है। परन्तु ये दोनों सं० १९३४ के प्रकरण में भूल से अस्थान में छप गये हैं। इन्हें सं० १९३७ के प्रकरण में छापना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ के अन्त में पं० भीमसेन शर्मा का नाम छपा हुआ मिलता है, तथापि इसके प्रथम संस्करण के आदि वा अन्त में किसी का नाम नहीं छपा था। हाँ, भूमिका के प्रारम्भ के श्लोक में परोक्षरूप में **'भीमसेन'** नाम का संकेत मिलता है। वह आद्य श्लोक इस प्रकार है—

**"यस्या नरा बिभ्यति वेदबाह्यास्तया हि युक्तं शुभसेनया यत्।
तन्नाम यस्यास्ति महोत्सवं स त्वनुभ्रमोच्छेदनमातनोति॥"**

प्रतीत होता है। इसी श्लोक के आधार पर पिछले संस्करणों के मुख पृष्ठ और ग्रन्थ के अन्त में भीमसेन का नाम छपना प्रारम्भ हो गया होगा। हो सकता है, द्वितीय संस्करण में पं० भीमसेन ने ही आद्यन्त में अपने नाम का सन्निवेश कर दिया हो।

ग्रन्थ की रचना शैली और २१ अक्टूबर सन् १८८० के ऋषि दयानन्द के पत्र से ज्ञात होता है कि राजा शिवप्रसाद के द्वितीय निवेदन का उत्तर-रूप यह ग्रन्थ भी ऋषि ने स्वयं लिखवाया था। अनुभ्रमोच्छेदन का हस्तलेख परोपकारिणी सभा अजमेर के संग्रह में सुरक्षित है। उस पर अनेक स्थानों में ऋषि दयानन्द के हाथ का संशोधन विद्यमान है। इस से ग्रन्थ का ऋषि के हाथ से संशोधित होना तो सर्वथा निर्विवाद है। अत एव हमने "अनुभ्रमोच्छेदन" का वर्णन इस ग्रन्थ में किया। ऋषि के पूर्व निर्दिष्ट पत्र का लेख इस प्रकार है—

"जो दूसरा निवेदन बाबू शिवप्रसाद ने छापा, उसका उत्तर भी तैयार हो गया है, सो पं० ज्वालादत्त के नाम से जारी किया जायगा।" पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४२९, पं० १७-१८।

यद्यपि इस पत्र में अनुभ्रमोच्छेदन पर पं० ज्वालादत्त का नाम छपने का निर्देश है, परन्तु इसके प्रथम संस्करण पर किसी का नाम छपा हुआ नहीं मिलता, यह हम पूर्व लिख चुके हैं।

ऋ० द० के ३१ मार्च १८८१ के पत्र से ज्ञात होता है कि इस तारीख तक अनुभ्रमोच्छेदन छप कर जयपुर में उनके पास पहुंच गया था। (द्र० पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ४९३, पं० ११)।

स्वामी जी का स्वनाम न देने का कारण

स्वामीजी ने इस पर अपना नाम क्यों नहीं दिया, इसका कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि स्वामीजी ने 'भ्रमोच्छेदन' के अन्त में लिखा था—

"आज से पीछे जो कोई कुराण पुराण वा तन्त्रादि मतवाले मुझ से विरुद्ध पक्ष को लेकर शास्त्रार्थ किया चाहें या लिखकर प्रश्नोत्तर की इच्छा करें वे स्वामी विशुद्धानन्दजी और बालशास्त्री जी के द्वारा ही करें। इससे अन्यथा जो करेंगे तो मैं उनका मान्य कभी न करूंगा।"

भ्रमोच्छेदन पृष्ठ २६६ (दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह)

यतः राजा शिवप्रसाद के 'द्वितीय निवेदन' पर प्रथम निवेदन की भांति स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती या पं० बालशास्त्री के हस्ताक्षर नहीं थे, अतः ऋषि ने अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार अपने नाम से उत्तर देना उचित नहीं समझा, किन्तु सर्वथा उत्तर न देना भी अनुचित था, क्योंकि सर्वथा मौन रहने से राजा शिवप्रसाद को व्यर्थ में अपने पाण्डित्य का अभिमान होता और अन्य भी भ्रम में पड़ते, इसलिए द्वितीय निवेदन का उत्तर स्वयं लिख वा लिखवाकर भी स्वामीजी ने अनुभ्रमोच्छेदन को अपने नाम से प्रसिद्ध नहीं किया।

यही बात अनुभ्रमोच्छेदन की भूमिका में लिखी है। देखो अनुभ्रमोच्छेदन पृष्ठ २७१ (दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह)

अनुभ्रमोच्छेदन के प्रथम संस्करण के अन्तिम पृष्ठ पर वैदिक यन्त्रालय के तात्कालिक प्रवन्धकर्त्ता लाला सादीराम की ओर से निम्न विज्ञापन छपा था—

विज्ञापन

"सर्व सज्जनों को विदित किया जाता है कि श्रीयुत् स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी से राजा शिवप्रसादजी ने जो कुछ वाद-विवाद उठाया था, उस विषय के प्रथम निवेदन का उत्तर स्वामीजी ने भ्रमोच्छेदन नामक पुस्तक से दिया था जो सब सज्जनों को विदित है। अब जो राजाजी ने द्वितीय निवेदन दिया है उस पर श्रीमान् स्वामी विशुद्धानन्दजी व बालशास्त्रीजी आदि विद्वानों की सम्मति नहीं है और स्वामीजी ने प्रथम ही लिखा था कि अब आगे की जब तक किसी पत्र पर विशुद्धानन्दजी व बालशास्त्रीजी की सम्मति न होगी हम उत्तर न देंगे। इसलिये इस दूसरे निवेदन का उत्तर एक पण्डितजी ने अनुभ्रमोच्छेदन पुस्तक में दिया है और वह वैदिक यन्त्रालय में छापा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं सुहृदयता से प्रकाशित करता हूं कि श्रीयुत् राजा शिवप्रसादजी आदि सज्जन महाशय पक्षपात छोड़कर इसे देखें और सत्यासत्य का विचार करें कि जिससे परस्पर प्रीति और देशोन्नति यथावत् हो।

लाला सादीराम, मैनेजर, वैदिक यन्त्रालय, बनारस।"

यही विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य अंक २४-२५ (सम्मिलित) के टाइटल पेज ४ पर भी छपा था।

—:०:—

२७–गोकरुणानिधि (पौष १९३७)

करुणानिधि दयामय दयानन्द ने अपने कार्यकाल में गौ आदि मूक प्राणियों की रक्षार्थ महान् आन्दोलन किया था। वायसराय तथा भारत सरकार के पास दो करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षर युक्त प्रार्थना पत्र भेजने के लिए भी बहुत उद्योग किया था। इसके लिए अनेक सज्जनों को पत्र भी लिखे थे। जो उनके पत्र और विज्ञापन में छप चुके हैं। पण्डित देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित पृष्ठ ६७५ से विदित होता है कि इस प्रार्थनापत्र पर उदयपुर के महाराणा श्री सज्जनसिंह, महाराज यशवन्तसिंह जोधपुर[1] शाहपुराधीश नाहरसिंह

१. महाराणा सज्जनसिंह ने गौ आदि उपयोगी पशुओं की हत्या बन्द करने के विषय में जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह को पत्र लिखकर राय ली थी। महाराजा जसवन्तसिंह ने इस महत्त्वपूर्ण पत्र का उत्तर सं० १९३९ पौष बदि ५ मंगलवार (सन् १८८२, ता० २९ दिसम्बर) को इस प्रकार दिया—

"म्हारी प्रजा १४, ६१, १५६ हिन्दू ने, १, ३७, ११९ मुसलमान यां तीन पशु (गाय, बैल और भेंस) नही मारिया जावण रा प्रबन्ध में खुशी है और मैं पिण रजामन्द हां। सं० १९३९ पोष बदि ५।

खास मुहर	दस्तखत—राजराजेश्वर महाराजाधिराज जसबन्तसिंह, मारवाड़, जोधपुर।

जोधपुर नरेश का उक्त पत्र हमारे स्व० मित्र जोधपुर-निवासी श्री ठाकुर जगदीशसिंहजी गहलोत ने अपने "राजपूताने का इतिहास" नामक ग्रन्थ के प्रथम भाग के पृष्ठ १८७ पर उद्धृत किया है। श्रीमान् गहलोत जी ने इसकी एक प्रतिलिपि जोधपुर से मुझे भी भेजी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और महाराजा बूंदी ने भी हस्ताक्षर कर दिये थे। अनेक महानुभावों ने इस देशोन्नति के काम में बड़े उत्साहपूर्वक भाग लिया था।[1] यह महान् उद्योग महर्षि के अकाल में काल-कवलित हो जाने से अधूरा रह गया। इस प्रयत्न के साथ-साथ इस कार्य को स्थायी बनाने के उद्देश्य से ऋषि ने एक 'गोकरुणानिधि' नामक ग्रन्थ भी लिखा।

गोकरुणानिधि में दो भाग हैं। प्रथम भाग में गौ आदि पशुओं को मार कर खाने की अपेक्षा उनकी रक्षा करके उनके घी-दूध द्वारा अत्यधिक मनुष्यों को लाभ पहुँचता है, यह बात गणित द्वारा स्पष्टतया दर्शाई है और मांसाहार के अवगुणों तथा निरामिष भोजन के महत्त्व का भी वर्णन किया है। दूसरे भाग में गोरक्षार्थ स्थापित होने वाली सभाओं के नियमोपनियमों का उल्लेख है।

ऋषि के १२ जनवरी सन् १८८१ ई० के पत्र से ज्ञात होता है कि उन्होंने आगरा में **'गोरक्षिणी सभा'** स्थापित की थी और उसके नियमोपनियम भी बनाये थे। देखो पत्र और विज्ञापन भाग १, पृष्ठ ४६३, पं० २०-२१। सम्भव है ये ही नियमोपनियम गोकरुणानिधि के अन्त में छपे होंगे।

रचना काल

इस पुस्तक का काल ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

**"मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे सहस्यस्यासिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽलंकृतोऽयं कामधेनुपः॥"**

अर्थात्—सं० १९३७ फाल्गुन बदि १० गुरुवार (=२४ फरवरी १८८१) के दिन यह ग्रन्थ अलंकृत (=तैयार) हुआ।

वस्तुतः ग्रन्थ के अन्त में दिया गया काल ग्रन्थ रचना की पूर्णता का बोधक नहीं है, अपितु उसके मुद्रण का है। यह आगे के उद्धरणों से व्यक्त होता है। अतः ग्रन्थ की रचना इस से पूर्व हुई होगी।

ग्रन्थ-रचना-काल का अनुमान—यद्यपि ग्रन्थ-रचना का निश्चित काल ज्ञात नहीं है फिर भी ऋषि दयानन्द के १२ जनवरी १८८१ (सं० १९३७, पौष शु० १२, बुधवार) को आगरे से भेजे गये पत्र से ज्ञात

१. इस के लिये 'ऋषि दयानन्द को लिखे गये पत्र और विज्ञापन' भाग ४ के प्राक्कथन का १० वां प्रकरण (पृष्ठ ५०-५२) देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है कि गोकरुणानिधि की रचना सम्भवतः १२ जनवरी १८८१ से पूर्व हो गई थी। ऋ० द० लिखते हैं—

"यहां एक गोरक्षिणीसभा स्थापन की गई और उसके नियमोपनियम भी बना दिये हैं। जब छपेंगे तो आप को सूचना के लिये भेज देंगे। पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४६३, पं० २०-२१।

गोकरुणानिधि के अन्त में गोकृष्यादिरक्षिणी सभा के जो नियमोपनियम छपे हैं वे सम्भवतः वे ही होंगे, जिनका उल्लेख पूर्व उद्धृत पत्रांश में किया है। इस से यह अनुमान किया जा सकता है कि गोकरुणानिधि की रचना १२ जनवरी १८८१ के आसपास हुई होगी।

जीवनचरितानुसार स्वामीजी सं० १९३७ वि० अगहन कृष्णा १० या ११ से फाल्गुन शु० १० (२७ या २८ नवम्बर १८८० से १० मार्च ८१) तक आगरा में रहे थे। पण्डित देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित पृष्ठ ६३० से विदित होता है कि यह ग्रन्थ छप कर आगरा में ही स्वामीजी के पास पहुँच गया था। उनका लेख इस प्रकार है—

"स्वामीजी ने आगरे में गोकरुणानिधि नामक पुस्तक रची थी और वह छप कर आगरे में ही स्वामीजी के पास आ गई थी। रामरतन नामक एक पुजारी ने उद्योग कर के उसकी ६७) रु० की प्रतियां बेची थीं।"

ऋ० द० ने ३ मार्च १८८१ को मूलराज को लिखे गये पत्र में लिखा था—

"पत्र आप का २८ फरवरी का लिखा पहुँचा। हाल मालूम हुआ। गोकरुणानिधि पहुँचने से खातिर जमा हुई।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४८५, पं० १०-११।

इस पत्र से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पुस्तक के अन्त में छपी सं० १९३७ फाल्गुल बदि १० (२४ फरवरी १८८१) तिथि पुस्तक छप कर तैयार होने की है। सम्भवतः ऋ० द० की आज्ञानुसार पुस्तक छप कर तैयार होते ही प्रेस से सीधे लाल मूलराज को भेज दी गई थी और वह मूलराज को २८ फरवरी तक मिल गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय संस्करण

पण्डित भीमसेन के ऋषि के नाम लिखे हुए पत्रों से विदित होता है कि गोकरुणानिधि का प्रथम संस्करण अति शीघ्र समाप्त हो गया था और एक वर्ष के भीतर ही उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। पुस्तक की इतनी बिक्री का मुख्य कारण ऋषि द्वारा चलाया गया गोरक्षा आन्दोलन था।

४ मई १८८२ ई० के भीमसेन के पत्र के अन्त में दयाराम प्रबन्धक वैदिक यन्त्रालय (प्रयाग) ने लिखा है—

"......मासिक वेदभाष्य का अङ्क और गोकरुणानिधि जो नई छपी है वह ....भेजा हैं।"

पत्र और विज्ञापन भाग ३, पृष्ठ ३४१।[1]

इससे विदित होता है कि गोकरुणानिधि का द्वितीय संस्करण अप्रेल सन् १८८२ में छप कर तैयार हुआ होगा।

अंग्रेजी अनुवाद

महर्षि गोरक्षा आन्दोलन की सफलता के लिये इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद करा कर ब्रिटिश राज्य के अधिकारियों के पास इंगलैण्ड भी भेजना चाहते थे। अत एव उन्होंने इसके अंग्रेजी अनुवाद के लिये लाला मूलराज एम० ए० को कई पत्र लिखे। उन्होंने इसका अंग्रेजी अनुवाद करना स्वीकार भी कर लिया, परन्तु चिरकाल तक करके नहीं दिया। इस विषय में ला० मूलराज जी के नाम लिखे हुए पत्र भाग १, पूर्ण संख्या ४३८; भाग २, पूर्ण संख्या ४५८, ४७७, देखने योग्य है। पत्र संख्या ५२७ में ऋषि लिखते हैं—

"बड़े भारी शोक की बात है आपने अब तक (लगभग १५ महिनों में) गोकरुणानिधि की अंग्रेजी नहीं की। हमें निरास होकर यहां बम्बई में और लोगों से अंग्रेजी बनवानी पड़ी। अब आप इस में कुछ मत बनाना।" पत्र और विज्ञापन भाग २, पृष्ठ ५६१, पं० १-३।

गोकरुणानिधि के इस अंग्रेजी अनुवाद को प्रकाशित करने के

---

१. यह ४ मई १८८२ का पत्र 'पत्र और विज्ञापन' भाग ३ में पूर्ण संख्या २४४, पृष्ठ २३२ से पूर्व छपना चाहिये था, भूल से अस्थान में छपा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध में लाला सेवकलाल कृष्णदास मन्त्री आर्यसमाज बम्बई ने स्वामीजी को २० जनवरी सन् १८८३ को इस प्रकार लिखा था—

"गोरुणानिधि का जो अंग्रेजी भाषान्तर हुआ हैं सो हमारा छपवाने का निश्चय है, परन्तु लाहौर में जो 'आर्य' नामक मासिक पत्र प्रकाशित होता है उसी में छपवा कर फिर इसी का पुस्तक बनवा के छपवा देना कि जिस से यह पुस्तक के ऊपर कोई विरुद्ध वा पुष्टि में लिखे वे भी उसी के साथ ही विवेचन होके छप सके। इस विषय में आप का क्या अभिप्राय है सो कृपा करके लिख भेजना।"

पत्र और विज्ञापन भाग ३ पृष्ठ २६५, पं० २६ से पृष्ठ २६६, पं० ५।

महर्षि के द्वारा बम्बई में करवाया हुआ गोकरुणानिधि का अंग्रेजी अनुवाद उस समय प्रकाशित हुआ वा नहीं, यह हमें ज्ञात न हो सका।

लाला मूलराज का अनुवाद न करने का कारण

जब ला० मूलराज ने गोकरुणानिधि का अंग्रेजी अनुवाद १५ मास तक करके न दिया, तब अन्त में निराश होकर स्वामीजी ने उस का अंग्रेजी अनुवाद बम्बई में अन्य व्यक्ति से करवाया, यह हम ऊपर लिख चुके हैं। गोकरुणानिधि जैसे अत्यन्त छोटे से ग्रन्थ के अनुवाद के के लिये १५ मास तक उन्हें समय ही नहीं मिला, यह हमारी समझ में नहीं आता। निश्चय ही इस का कारण उनका मांस-भक्षण ही था। अतः उन्होंने उस गोकरुणानिधि का अंग्रेजी अनुवाद नहीं किया, जिस में मांस-भक्षण का खण्डन था।

लाला मूलराज का मांसभक्षण और उसको छिपाना

हम समझते हैं कि लाल मूलराज प्रारम्भ से ही मांसभक्षण के पक्षपाली थे, अत एव उन्होंने गोकरुणानिधि जैसे ग्रन्थ का, जो उन के विचारों से विरुद्ध था, जान बूझकर अंग्रेजी अनुवाद नहीं किया और १५ मास तक स्वामोजी महाराज को अंग्रेजी अनुवाद करने का विश्वास दिलाते रहे। लाला मूलराज जी के अनुगामी प्रायः कहा और लिखा करते है कि 'लाला मूलराम जी के मांसभक्षण-विषयक विचारों का स्वामी दयानन्द को ज्ञान था और उन्होंने जानते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाला मूलराज को आर्यसमाज, और परोपकारिणी सभा का सभासद बनाया था।' हमारी सम्मति में यह कथन सर्वथा असत्य है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि लाला मूलराज अपने मांसभक्षण को अन्त तक स्वामी जी महाराज से छिपाते रहे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण श्रीमती परोपकारिणी सभा की वह प्राथमिक कार्यवाही है, जो अजमेर के देशहितैषी नामक मासिक पत्र खण्ड १ अंक १० माघ सं० १९४०वि० में छपी है। वहां का लेख इस प्रकार है—

"पश्चात् श्रीयुत् रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुखजी ने निम्नलिखित स्वामीजी का सिद्धान्त सुनाया और कहा कि इस समय दूर-दूर के स्थानों के आर्यगण उपस्थित हैं। **सब कोई जान लें कि स्वामी जी का सिद्धान्त क्या था।** जहां तक हो सके उसी के अनुसार बर्ताव करें। मन्त्र संहिता वेद हैं, ब्राह्मण इत्यादि वेद नहीं। **वेदों में किसी जन्तु के मारने की आज्ञा नहीं।** वेदों में सब सत्य विद्याओं का मूल है। पाषाणमूर्त्तिपूजन वेदविरुद्ध है। ईश्वर निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, अजर, अमर, नित्य, पवित्र इत्यादि है उसी की उपासना करने योग्य है। जो बात नीति और बुद्धि से विरुद्ध हो, वह धर्म नहीं। वेदों का अधिकार सब वर्णों को है। कर्म और गुणों से वर्ण हैं, वीर्य से नहीं। जहां तक हो सके बाल विवाह से बच कर ब्रह्मचर्य रखना, वायु के शुद्धि के कारण हवन की आवश्यकता है। मृतकों को भोजन छादन कदापि नहीं पहुँचता। वेदों की आज्ञा है कि सब मनुष्य देशान्तर और द्वीपान्तर को यात्रा करें। **आर्यों को उचित है कि पाठशाला नियत करें और प्राचीन ग्रन्थों का पठन-पाठन रक्खें।** स्वार्थ साधकों ने उनमें यत्र तत्र मिला दिया हो उसकों वेदों की कसौटी से परीक्षा कर उससे दूर करें। **इस पर सब सभासदों के हस्ताक्षर कराये गये और सब ने उत्साह पूर्वक कर दिये।**"[1]

पर जिन १० व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किये उनमें लाला मूलराज भी हैं। जब इस कार्यवाही में **'वेदों में किसी जन्तु के मारने की आज्ञा नहीं है'** स्पष्ट घोषित किया गया, तब मांसभक्षण को वेदविरुद्ध न मानने

१. परोपकारिणी सभा की यह कार्यवाही, परोपकारिणी सभाद्वारा प्रकाशित कार्यवाही में नहीं मिलती। क्या परोपकारिणी सभा ने लाला मूलराज के दवाब में आकर नहीं छपा? यह विचारणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले लाला मूलराज जी को तो इसका अवश्य प्रतिवाद करना चाहिये था और जब तक यह वाक्य लिखा रहे उस पर हस्ताक्षर नहीं करने चाहिये थे। हस्ताक्षर कर देने से स्पष्ट विदित होता है कि लाला मूलराज में स्वामीजी के सामने तो क्या उनकी मृत्यु के पश्चात् भी इतनी शीघ्र अपना विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं थी। अत एव उन्हों ने विना ननु नच किये उस पर हस्ताक्षर कर दिये।

लाला मूलराज की कुटिल प्रकृति का एक उदाहरण कमलनयनशर्मा के ३-७-१८८३ के पत्र में मिलता है। कमलनयन शर्मा ने लिखा है—

"......सरदार भगतसिंह इञ्जिनियर हुये हैं। उन्ही के दफ्तर में मैं भी काम करता हूं। वे कहते थे कि **गुजरात में मूलराज एम० ए० हम से मिले थे और आर्यसमाजों को पक्षपाती कहते थे**......"।

पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ ३९७, पं० १२-१४।

जिस सत्यप्रिय दयानन्द ने बम्बई के बाबू हरिश्चन्द्र और मुरादाबाद के मुंशी इन्द्रमणि जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों को धर्मविरुद्ध आचरण करने पर आर्यसमाज से पृथक कर दिया, थियोसोफिकल सोसाइटी जैसी संस्थाओं से नाता तोड़ लिया और महाराणा उदयपुर तथा महाराजा कश्मीर आदि की मूर्तिपूजा विषयक प्रार्थना को ठुकरा दिया और जोधपुर नरेश को वेश्यागमन के लिये फटकार दिया, उसने लाला मूलराज को मांसभक्षी जानते हुये भी आर्यसमाज और परोपकरिणी सभा का सभासद बनाये रक्खा, ऐसा भला कौन बुद्धिमान् मान सकता है?

ऐसी अवस्था में अपने वेदविरुद्ध मांसभक्षण को उचित सिद्ध करने के लिये परम सत्यवक्ता आप्त महर्षि पर इस प्रकार का झूठा आरोप लगाना महा नीचता का कार्य है।

जो व्यक्ति इस विषय में अधिक जानना चाहते हों उन्हें आर्यधर्मेन्द्रजीवन (संस्क० ४) का पं० आत्मारामजी द्वारा लिखित '**उपोद्घात**' पृ० १२४-१२७) म० हंसराजजी कृत '**दशप्रश्नी की समीक्षा**' और दी० ब० हरविलासजी विरचित '**वर्क्स आफ दी महर्षि दयानन्द एण्ड परोपकारिणी सभा**' नामक पुस्तकें तथा इस ग्रन्थ का 'वेदभाष्य और सत्यार्थप्रकाश (सं० २) में मांस भक्षण प्रकरण' शीर्षक षष्ठ परिशिष्ट देखना चाहिये।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम अध्याय

वेदाङ्गप्रकाश और उनके रचयिता

ऋषि दयानन्द के स्वरचित ग्रन्थों का इतिहास लिखने के अनन्तर हम ऋषि के द्वारा अपने सहयोगी पण्डितों के द्वारा लिखवाये गये ग्रन्थों का वर्णन करते हैं।

वेदाङ्गप्रकाश की रचना का प्रयोजन

हम सस्कृतवाक्यप्रबोध के प्रकरण में लिख चुके हैं कि महर्षि ने अपने कार्यकाल में संस्कृत भाषा के प्रचार और उन्नति के लिये महान् प्रयत्न किया था। उन्हीं की प्रेरणा से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति संस्कृत सीखने के लिये लालायित हो उठे थे। उन्होंने स्वामीजी से संस्कृत सीखने के लिये उपयोगी ग्रन्थों की रचना की प्रार्थना की। उसी के फलस्वरूप ऋषि ने संस्कृतवाक्यप्रबोध रचा और वेदाङ्ग-प्रकाश के विविध भागों में की रचना कराई।

महर्षि के समय में सिद्धान्तकौमुदी के पठनपाठन का विशेष प्रचार था। संस्कृत पढ़ने वालों के लिये उसे पढ़ना आवश्यक समझा जाता था। सिद्धान्तकौमुदी आदि के द्वारा संस्कृत भाषा वे ही सीख सकते थे जो सब कार्य छोड़ कर उसी के अध्ययन में दत्तचित्त हो जावें, पर स्वामीजी की प्रेरणा का प्रभाव उन मध्यम श्रेणी के मनुष्यों पर विशेष हुआ, जो दिन भर अपने निर्वाहार्थ नौकरी वा व्यापार आदि कार्य करते थे। ऐसे व्यक्तियों का गुरुचरण में बैठकर सिद्धान्त-कौमुदी आदि के द्वारा संस्कृत सीखना असम्भव था। अत एव ऋषि ने उन्हीं मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को संस्कृत का ज्ञान कराने के लिए पाणिनीय व्याकरण की प्रक्रिया के ढंग पर आर्य भाषा में व्याख्या कराई और उनमें शिक्षा तथा निघण्टु का समावेश करके उनका 'वेदाङ्गप्रकाश' साधारण नाम रक्खा।

वेदाङ्गप्रकाश ग्रन्थमाला का नाम

वेदाङ्गप्रकाश नाम ग्रन्थमाला का था। इस में पाणिनीय शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और निघण्टु के छापने से विदित होता है कि यदि ऋ० द० अधिक काल तक जीवित रहे तो इस ग्रन्थमाला में अन्य वेदाङ्गों की व्याख्याएं भी छपवाते हैं।

वेदाङ्गप्रकाश की रचना का आरम्भ

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथजी द्वारा संकलित जीवनचरित पृष्ठ ४५० से ज्ञात होता है कि रावलपिण्डी निवासी भक्त किशनचन्द और लाला गोपीचन्द के प्रस्ताव पर ऋषि ने वेदाङ्गप्रकाश की रचना करना स्वीकार किया था। सम्भव है उक्त महाशयों ने वेदाङ्गप्रकाश की रचना का प्रस्ताव संवत् १९३४ कार्तिक सुदि ३ से पौष बदि ८ के मध्य में कभी रक्खा होगा, क्योंकि स्वामीजी महाराज ने रावलपिण्डी में इन्हीं दिनों में निवास किया था। परन्तु वेदाङ्गप्रकाश का प्रथम भाग वर्णोच्चारण शिक्षा का लेखन और प्रकाशन क्रमशः माघ तथा फाल्गुन सं० १९३६ में हुआ था।

पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ५१८ पर लिखा है—

"यहीं से ही स्वामी जी ने संस्कृत पठन-पाठन सम्बन्धी पुस्तकें बनानी आरम्भ कीं और उसकी सूचना एक विज्ञापन द्वारा साधारण जनता को दी।"

'यहीं से' का तात्पर्य 'शाहजहांपुर (४-१७ सि० १८७९) से' जानना चाहिये। इसी प्रसंग में जिस विज्ञापन के देने का उल्लेख है, वह विज्ञापन हमें उपलब्ध नहीं हुआ[1]। हां, ऋग्वेदभाष्य अंक १४ के टाइटल पेज ३ पर एक विज्ञापन छपा है उसके आरम्भ में **व्याकरण आदि ऋषिमुनिकृत प्राचीन पुस्तकों के व्याख्यान मुद्रित होने की सूचना दी है**। तत्पश्चात् ऋग्वेदभाष्य के १५ वें अंक (आषाढ ?, सं० १९३७) के टाइटल पेज ४ पर निम्न विज्ञापन छपा था।

"विदित हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती वैसे तो वेदों का अत्युत्तम प्राचीन ऋषि मुनियों के प्रमाण सहित संस्कृत और आर्य-भाषा में भाष्य कर ही रहे हैं; परन्तु अब उन्होंने आर्यसमाजों के

१. हमारे पास संगृहीत ऋग्यजुभाष्यों में अङ्क १३ तक के पूरे टाइटल पेज नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने से व्याकरणादि वेदों के अङ्ग और उपाङ्ग आदि को भी अति-सुलभ आर्यभाषा में प्रकाश करने का प्रारम्भ किया है कि जिन से मनुष्य शीघ्र संस्कृत विद्या को पढ़कर मनुष्य जन्म के समग्र आनन्द को भोगें।"

यह विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य के कुछ अगले अंकों में भी छपा था।

वेदाङ्गप्रकाश के भाग

वेदाङ्गप्रकाश की रचना चौदह भागों में हुई है, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१	**वर्णोच्चारण-शिक्षा**	८	**आख्यातिक**
२	**सन्धिविषय**	९	**सौवर**
३	**नामिक**	१०	**पारिभाषिक**
४	**कारकीय**	११	**धातुपाठ**
५	**सामासिक**	१२	**गणपाठ**
६	**स्त्रैणताद्धित**	१३	**उणादिकोष**
७	**अव्ययार्थ**	१४	**निघण्टु**

इन १४ भागों में धातुपाठ गणपाठ और निघण्टु ये तीन ग्रन्थ मूल मात्र हैं। वर्णोच्चारणशिक्षा, आख्यातिक, उणादिकोष और पारि-भाषिक ये चार भाग क्रमशः पाणिनीय-शिक्षा, धातुपाठ, उणादिसूत्र और परिभाषापाठ नामक स्वतन्त्र ग्रन्थों की व्याख्याएं हैं। हां, आ-ख्यातिक के उत्तरार्ध में अष्टाध्यायी के कृदन्त भाग की व्याख्या अवश्य सम्मिलित है।

ऋषि दयानन्द के जीवनचरित और पत्रव्यवहार से विदित होता है कि वेदाङ्गप्रकाश स्वमीजी महाराज के साथ रहने वाले भीमसेन, ज्वालादत्त, और दिनेशराम आदि पण्डितों के रचे हुए हैं। निस्सन्देह इन में कुछ स्थल ऐसे अवश्य हैं, जो इन साधारण पण्डितों की सूझ से बाहर के हैं। उनसे इतना ज्ञान अवश्य होता है कि इनमें कुछ विशेष स्थल स्वामीजी के लिखवाये हुये भी हैं।

ऋषि दयानन्द के कुछ पत्रों से भी यह स्पष्ट होता है कि इन वेदाङ्गप्रकाश के लिखने और शोधने में उन का भी कुछ योगदान था। वे १७ जनवरी १८८१ के पत्र में पं० ज्वालादत्त का लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आगे से हम सब पुस्तक देखा करेंगे और **अपना लिखाया** और तुम्हारा शोधा पुस्तक भी मंगा लिया करेंगे ।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४६५, पं० १०-१२ ।

"सन्धिविषय जो हमने शुद्ध कर लिखा है, सो भी भेज देवेंगे ।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३३६, पं० २४ ।

वेदाङ्गप्रकाश के लिखवाने और शोधने में ऋ० द० का कुछ हाथ होने पर भी इन्हें ऋषि दयानन्द कृत मानना सर्वथा अयुक्त है । इन ग्रन्थों में व्याकरण-संबन्धी बहुत सी ऐसी भयङ्कर अशुद्धियां हैं जिन्हें ऋषि के नाम पर कदापि नहीं मढ़ा जा सकता । इनमें साधारण अशुद्धियों की तो गिनती ही नहीं है । अब हम उदाहरण के रूप में आख्यातिक के चार स्थल उपस्थित करते हैं—

१—आख्यातिक पृष्ठ ७ (संस्करण ४) पर लिखा है—

"बभूव अतुस् । यहां द्विर्वचन और वुगागम से प्रथम ही गुण प्राप्त है ॥४३॥

४४—इन्धिभवतिभ्यां च ॥१।२।६॥

इन्धि और भू धातु से परे जो अपित् लिट् वह कित् संज्ञक हो । तिप् सिप् मिप् के स्थान में जो आदेश होते हैं वे पित् अन्य सब अपित् समझे जाते हैं, पित् विषय में गुण वृद्धि के बाधक वुक् को अवकाश मिल जाने से यहां अपित् विषय में परत्व से गुण प्राप्त है ॥ ४४ ॥

४५—क्ङिति च ॥१।१।५॥

कित्, गित् और ङित् परे हो तो इक् के स्थान में गुण वृद्धि न हों । इससे गुण का निषेध होकर—बभूव्+अतुस्=बभूवतुः ।"

इस छोटे से उद्धरण में **व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी तीन भयङ्कर अशुद्धियां हैं ।**

(क) वुगागम के नित्य होने पर भी "बभूवतुः" में वुगागम से पूर्व गुण की प्राप्ति दर्शाना ।

(ख) **'इन्धिभवतिभ्यां च'** सूत्र को अपित् लिट् के कित्त्व करने के लिये लगाना तथा सूत्र की वृत्ति में अपित् का सम्बन्ध जोड़कर 'बभूवतुः' में उसका प्रयोजन दर्शाना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभाष्य में इस सूत्र पर स्पष्ट लिखा है—"**इन्धेः संयोगार्थं ग्रहणम्, भवतेः पिदर्थम्।** अर्थात् इन्धि धातु के संयोगान्त होने से पूर्व सूत्र '**असंयोगाल्लिट् कित्**' (अष्टा० १।२।५) से कित्त्व की प्राप्ति नहीं है, अतः उसके लिट् को कित् करने के लिये तथा 'भू' धातु के पित् वचनों में जहां पूर्व सूत्र से कित्त्व प्राप्त नहीं हैं वहां कित् करने के लिये है। '**बभूवतुः**' में तो पूर्व सूत्र से ही लिट् कित् हो जाता है, अतः उसके लिये सूत्र का कोई प्रयोजन ही नहीं है।

(ग) पित् विषय में वुक् को अवकाश दर्शाना और अपित् विषय में परत्व से गुण की प्राप्ति बताना।

अपित् विषय में जहां "**असंयोगाल्लिट् कित्**" (अष्टा० १।२।५) सूत्र से कित् हो जाने से गुण की प्राप्ति ही नहीं है, वहां गुण की प्राप्ति दर्शाना भयङ्कर भूल है। इसी प्रकार यदि कहीं वुक् को अवकाश दर्शाया जा सकता है तो अपित् विषय में गुण के निषेध हो जाने पर ही दर्शाया जा सकता है। पित् विषय में जहां कि गुण की प्राप्ति है, वहां उसका अवकाश दर्शाना भी महती भूल है।

२—आख्यातिक की भूमिका पृष्ठ २ में लिखा है—

"......" **इदं विचार्यते..........भावकर्मणोर्विकरणः........** (महाभाष्य ३।१।६७) इसकी व्यवस्था इस प्रकार समझनी चाहिये जब भाव कर्म अर्थों में लकार हों तब तो कर्त्ता में विकरण और जब कर्त्ता में लकार हो तब भाव कर्म अर्थों में विकरण होवें अर्थात् एक तिङन्त क्रिया में दोनों अर्थ रहें। जैसे **ग्रामं गच्छति**। यहां कर्त्ता में लकार और कर्म में द्वितीया और कर्म के साथ शप् प्रत्यय का एकाधिकरण समझना चाहिये। इसी प्रकार सर्वत्र जानो।"

यहां लेखक ने अपनी ऐसी भयङ्कर अज्ञानता दर्शाई है कि देखकर आश्चर्य होता है। भला ऐसा कौन मूढ़ होगा कि "**गच्छति**" एक पद में 'तिप् कर्त्ता को कहता है और शप् कर्म को, ऐसा माने।' पाणिनि ने स्पष्ट शब्दों में '**कर्त्तरि शप्**' (अष्टा० ३।१।६८) सूत्र से कर्त्ता अर्थ में शप् का और **सार्वधातुके यक्**' (३।१।६७) से भाव-कर्म में यक् का विधान किया है और ये महानुभाव उसे कर्म और कर्त्ता में कहने का दुःसाहस करते। वस्तुतः बात यह है कि लेखक को महाभाष्य का कुछ भी परिज्ञान नहीं था। इस प्रकरण में उद्धृत महाभाष्य का पाठ पूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष का है। महाभाष्यकार ने इस पक्ष में दोष दर्शाकर उत्तर दिया है—**"यह सम्भव ही नहीं कि एक प्रकृति के साथ दो नानार्थक प्रत्ययों का साहयोभाव हो, इसलिये भाव कर्म और कर्त्ता ये सार्वधातुक के ही अर्थ हैं, विकरण के नहीं।**[1] परन्तु लेखक को उत्तर प्रकरण का का ज्ञान न होने से उसने पूर्वपक्ष को ही उद्धृत करके उसकी व्याख्या कर दी।

३—इसके कुछ आगे ही लेखक ने "अकर्मक और सकर्मक धातुओं का क्या लक्षण है ?" इस प्रश्न के उत्तर में "**कर्मस्थभावकानां कर्मस्थक्रियाणां च कर्ता कर्मवद् भवति**..................इत्यादि अप्रासङ्गिक महाभाष्य (३।१।८७) का उद्धरण देकर उसकी व्याख्या करके "सकर्मक उन को कहते हैं जिन का भाव और क्रिया कर्त्ता से भिन्न के लिये हो और जिन का भाव और क्रिया कर्त्ता के लिये हों वे अकर्मक कहाते हैं........" लिखा है। पुनः आगे चलकर "**गच्छति धावति**" को अकर्मक कहा है।

४—तुदादिगण की '**इषु इच्छायाम्**' धातु के रूप लिखे हैं—**इषति इषतः इषन्ति**।

यह है वेदाङ्गप्रकाश के लेखकों का व्याकरण का पाण्डित्य। भला कौन ऐसा वैयाकरण होगा जो "**गच्छति धावति**" को अकर्मक धातु कहेगा ? और **इषु इच्छायाम्** धातु के **इषति इषतः इषन्ति** रूप स्वीकार करेगा ? साधारण सा भी व्याकरण जानने वाला व्यक्ति जानता है कि **इषुगमियमां छः** (अष्टा० ७।३।७७)से षकार को छकार होकर **इच्छति इच्छतः इच्छन्ति** रूप बनते हैं।[2]

स्वामी दयानन्द पाणिनीय व्याकरण के सूर्य प्रख्यात दिग्गज

१. न चास्ति संभवो यदेकस्याः प्रकृतेर्द्वयोर्नानार्थयोर्युगपदनुसहायीभावः स्यात्। एवं च कृत्वैकपक्षीभूतमेवेदं भवति सार्वधातुकार्था एवेति (महाभाष्य ३।१।६७)।

२. हमने परोपकारिणी सभा में कार्य करते हुए (सन् १९४३ में) महाभाष्य, ऋषि दयानन्द कृत अष्टाध्यायीभाष्य और व्याकरण के विविध प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर आख्यातिक की ऐसी समस्त भूलों का संशोधन किया था और वह सभा के द्वारा स्वीकृत निरीक्षक महोदय से स्वीकृत हो चुका था। तदनुसार उस का मुद्रण प्रारम्भ हो जाने पर अचानक श्री० मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती के प्रमुख शिष्य थे। हमारी निश्चित धारणा है कि स्वामी विरजानन्द जैसा वैयाकरण विगत कई सहस्राब्दियों में नहीं हुआ। स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य तथा अष्टाध्यायीभाष्य के अनेक स्थलों से उनके व्याकरण शास्त्र का अगाध पाण्डित्य सूर्य की भांति विस्पष्ट है। काशी आदि के समस्त पण्डितों पर उनके वैयाकरणत्व की धाक जमी हुई थी। ऐसे शब्दशास्त्र के पारावारीण स्वामी दयानन्द सरस्वती व्याकरण की ऐसी भयङ्कर भूलें करेंगे, यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता।

इस प्रकार अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग प्रमाणों के होते हुए वेदाङ्ग-प्रकाशों को ऋषिकृत मानना सर्वथा अयुक्त है। हाँ, इस में इतनी सचाई अवश्य है कि ये ग्रन्थ ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से ही रचे गये, और इन में उन की सहमति थी, कुछ विशेष स्थल उनके लिखवाये और शोधे हुए भी हैं। बस इस से अधिक उन का इन ग्रन्थों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है कि ऋषि ने अनेक व्यक्तियों को वेदाङ्गप्रकाश पढ़ने पढ़ाने की प्रेरणा की थी। यथा—

१—रामानन्द लिखता है—

"श्री स्वामी जी की कृपा से व्याकरण जो कि स्वामी जी ने बनाई हैं उन में से छः पुस्तक पढ़ ली है, सातवीं का आरम्भ होगा।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ५२५, पं० ८-९।

२—ऋषि दयानन्द लाला कालीचरण को लिखते हैं—

"विद्यार्थियों को निम्न लेखानुसार ग्रन्थ पढ़ना पढ़ाना चाहिये कि प्रथम **क्रम से वेदाङ्गप्रकाश पढ़वाना** फिर वैदिक निघण्टु...... ।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६०६, पं० १५-१७।

३—ऋषि दयानन्द मुन्शी समर्थदान को लिखते हैं—

जी परोपकारिणी सभा ने उसे रोक दिया। उसके कई वर्ष बाद आख्यातिक का छठा संस्करण इसी वर्ष (सन् १९५०) प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में मुद्रण सौन्दर्य अवश्य है, और हमारे दिये हुए धात्वङ्क भी कुछ भेद दे दिये हैं, परन्तु ऊपर दर्शाई हुई भयङ्कर भूलें तथा अन्य अशुद्धियां प्राय: वैसी ही हैं। हां, इषु धातु के रूप इस संस्करण में शुद्ध कर दिये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"संस्कृत के अपने जो कि वेदाङ्गप्रकाशादि हैं उन का प्रचार राजकीय पाठशाला तथा चारणों को पाठशाला में कर दिया है ।

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६५६, पं० २०-२२ ।

हमारा विचार है कि इसका कारण उस समय तक अष्टाध्यायी-भाष्य का प्रकाशित न होना था। अतः उसके अभाव में तथा साधारण छात्रों के लिये सरलता का ध्यान रख कर ऋषि ने वेदाङ्ग-प्रकाश पढ़ने पढ़ाने की अनुमति दी होगी।

वेदाङ्गप्रकाशों की शैली

ऋषि दयानन्द सिद्धान्तकौमुदि आदि प्रक्रिया ग्रन्थों के आधार पर पाणिनीय व्याकरण पढ़ने पढ़ाने के अत्यन्त विरोधी थे । क्योंकि प्रक्रियाक्रम से पाणिनीय व्याकरण पढ़ने में विद्यार्थी का समय बहुत व्यर्थ जाता है। उसे सूत्र और उसकी वृत्ति को कण्ठाग्र करने में अष्टाध्यायी की अपेक्षा ४,५ गुना परिश्रम करने पर भी शास्त्र का पूर्ण बोध नहीं होता। यह ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका और संस्कारविधि के 'पठनपाठनविधि' सम्बन्धित प्रकरणों से सर्वथा विस्पष्ट है। इतना होने पर भी ऋषि ने इन वेदाङ्गप्रकाशों की प्राकरणिक ढंग पर रचनें की अनुमति कैसे दी, यह हमारी समझ में नहीं आता। इन ग्रन्थों का क्रम भी प्रायः वही है जो सिद्धान्तकौमुदी का है। कहीं-कहीं कुछ न्यूनाधिकता है। इतना विशेष अवश्य है कि **इन में समस्त छान्दस सूत्र भी तत्तत् प्रकरणों में यथा-स्थान दिये हैं**, जिससे वैदिक व्याकरण का ज्ञान भी छात्रों को साथ-साथ हो जाता है। कई स्थानों में सिद्धान्तकौमुदी आदि के भाष्य-विरुद्ध लेखों का खण्डन भी किया है, तथा इनकी आर्यभाषा में सुगम रचना की है। पाणिनीय व्याकरण का यथार्थ ज्ञान इन वेदाङ्गप्रकाशों के पढ़ने से कदापि नहीं हो सकता। हाँ, इन में जो **शिक्षा उणादि-कोष, गणपाठ आदि स्वतन्त्र ग्रन्थ** हैं वे अवश्य सबके लिये उपयोगी हैं। इतना ठीक है कि इनकी रचना सरल भाषा में होने के कारण इन से साधारण मनुष्यों को भी व्याकरण का कुछ बोध हो जाता है।

अब हम भीमसेन आदि के स्वामीजी की सेवा में भेजे हुए पत्रों के उन अंशों को उद्धृत करते हैं, जिनसे वेदाङ्गप्रकाश की रचना पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० भीमसेन के पत्र

१—पं० भीमसेन अपने सं० १९३८ के आश्विन शु० ६, गुरुवार के पत्र में लिखता है—

"ऋ० यजु० के पत्रे और अव्ययार्थ आये उनकी भी रसीद आपके निकट भेज दी, पहुंची होगी। और यजुर्वेद के पत्रे १६२ से १८७ तक भेजता हूँ और स्त्रैणताद्धित के थोड़े से पत्रे भेजता हूँ कि आप देख लेवें………।

मुझको वड़ा शोक यह है कि आप मेरे काम को देखते ही नहीं। दिनेशराम आदि लोगों ने जैसा काशिक में लिखा है वैसा ही इन पुस्तकों में लिख दिया, बहुधा तो काशिका का संस्कृत ही रख दिया है। उसमें वहुतेरा महाभाष्य से विरुद्ध भी है। किसी वार्तिक वा कारिका का अर्थ नहीं लिखा, बहुत से सूत्र जो मुख्य लिखने चाहियें थे नहीं लिखे, बहुत से वार्तिक कारिकाएं भी छूट गई हैं जो अवश्य लिखनी चाहियें। **यह हाल मेरे बनाये सन्धि-विषय नामिक और कारकीय में कहीं आपने देखा?** बराबर लिखने योग्य बातें लिखता गया। अब छप गये पर (अब) भी परीक्षा हो सकती है कि सामासिक और कारकीय में कितना अन्तर है।"

पत्र और विज्ञापन भाग ३, पृष्ठ १९६-१९७।

२—पं० भीमसेन सं० १९३८, पौष कृष्णा ११ के पत्र में लिखता है—

"………अभी स्त्रैणताद्धित छप चुके कोई १५ दिन हुए हैं आप १॥ महिना किस विचार से कहते हैं उसका शुद्धिपत्र बनाया उसमें भी कुछ काल ही लगता है। अब आख्यातिक के ३ फारम छप चुके। **शोधना इसी का नाम है कि जैसी कापी हो उस में प्रति पृष्ठ ड्योढ़ा तक काटा बनाया जावे और ३० सूत्र लिखे हैं वहां २८ सूत्र**[1] **लिखे गये तो यह बिलकुल लौट जाना नवीन बनाना है मुझको इस बात की बहुत चिन्ता रहती है कि आपके नाम से जो पुस्तक बनती है उनमें कुछ अशुद्धि न रह जावें और सबसे अपूर्व होवे।**

स्त्रैणताद्धित को ही देखें इसका पूर्वरूप कैसा है और अब कैसा

१. इस वाक्य में कुछ अशुद्धि है, अतः अस्पष्ट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छपवाया गया...। आपके लेखानुसार कृदन्त आख्यातिक के अन्त में ही छपवाया जावेगा......और आख्यातिक को रोककर बीच में अव्ययार्थ छपवा दिया है। बहुत शीघ्र इस महीने में आपके पास पहुँच जायगा।" पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ २०२-२०३।

३—पं० भीमसेन ता० १ फर्वरी १८८२ के पत्र में लिखता है—

"...........तथा अव्ययार्थ के पुस्तक में कोठे बनाने से और भी देरी हुई। और अब आख्यातिक की भूमिका सहित छः फारम छप गये हैं आगे को छपता जाता है और इस पुस्तक के बिलकुल लौटने और नवीन बनाने में सब महाभाष्य, सिद्धान्त और काशिका पुस्तकों का [देखना] होता है इस से छपने के लिये नवीन कापी बनाने में देर होती है और आप के यहां से ठीक शुद्ध कापी आवे तो इतनी ढील न हो। पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ २१०।

४—भीमसेन [अज्ञात तिथि के] पत्र में लिखता है—

"......आपके लिए कई बार लिखा कि सब व्याकरण के पुस्तक को देखकर आख्यातिक नवीन रचना करनी पड़ती है यह भी विचारा था कि शोधकर दूसरे से शुद्ध नकल करवा लूं तो मुझ को कुछ काल विशेष मिले और दो चार पत्रे शोधकर लिखवाये भी, उसमें मेरा परिश्रम तो कम न हुआ विशेष व्यय होने लगा **'दिनेश का लिखा नहीं शोधा'** उसके दो पत्रे परोक्षार्थ भेजता हूं।......आख्यात के १२ फार्म छप चुके हैं भ्वादिगण में थोड़ा ही बाकी है।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ २२४।

पं० ज्वालादत्त के पत्र

१—पं० ज्वालादत्त अपने पौष सुदी १० (सं० ?) के पत्र में लिखता है—

"......संस्कृत के बनने में संस्कृत इस नामिक की कापी से अलग लिख और जो अब नामिक को शोध रहा हूँ इसी तरह भाषा शोध और फिरि उस संस्कृत और भाषा को मिलाकर कापी लिख के कम्पोज को देता जाऊं.........नामिक की पहली कापी से मैंने भाषा की बहुत सफाई कर और नोट आदि देकर इसका छापने का आरम्भ करा दिया, यह वे संस्कृत छपता है...........सन्धि विषय और नामिक का दूसरी बार छपने में संस्कृत बन जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्वराधीनं व्यञ्जनम्) **'स्वयं राजन्त इति स्वराः'** इस पंक्ति के आशय पर छप गया, परन्तु पाठ ठीक नहीं……गलती जो आपने निकाली स्वीकार करता हूं।"

पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ १७३।

२—पं० ज्वालादत्त सन् १८८१ (तिथि ?) के पत्र में लिखता है—

"…………व्याकरण के पुस्तकों में अभी तो भाषा ही बहुत मैं काट देता हूं………नामिक की कापी जब मैं भेजूंगा तब मेरे भाषा के काटने में रुचि हो तो आगे को जैसी आज्ञा होगी वैसा ही करूंगा।"

पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ १७१-१७२।

ऋ० द० के वेदाङ्गप्रकाश विषयक पत्रांश

अब हम ऋषि दयानन्द के उन पत्रांशों को उद्धृत करते हैं, जिनमें वेदाङ्गप्रकाश के बनाने के संबन्ध में उल्लेख मिलता है—

१—ऋषि दयानन्द भाद्र बदि १२ सं० १९३९ वि० को मुन्शी समर्थदान को लिखते हैं—

"ज्वालादत्त चाहे रातदिन काम किया करे परन्तु तुम देख लिया करो कि कितना काम करता है, कितना नहीं। इसको व्याकरण बनाने में देर इसलिए लगती है कि **उसको व्याकरण का अभ्यास कम है** तभी बहुत सी पुस्तकें रखनी पड़ती हैं। जो इससे आख्यातिक न बन सके तो यहां भेज दो। **यहां भीमसेन आ जायेगा, तब उससे बनवाकर शुद्ध करके भेज देंगे।**"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६१२।

२—पुनः भाद्र सुदि [६ (?)] सं० १९३९ के पत्र में लिखते हैं—

"तुम्हारे लिखने से निश्चय हुआ कि सातवें दिन में **आख्यातिक** का एक फार्म तैयार होता है। इस का कारण मुख्य तो यह है कि **ज्वालादत्त को व्याकरण का बोध कम है** और आख्यातिक प्रक्रिया भी कठिन है इसलिये आख्यातिक के पत्रे यहां भेज दो **कल भीमसेन भी हमारे पास आ गया है यहां शीघ्र उसको बनवा और शुद्ध करके तुम्हारे पास भेज देंगे।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"........सौवर तथा पारिभाषिक के पत्रे भी बनवा कर भेजे जायेंगे।" पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६१४-६१५।

उपर्युक्त उद्धरणों का सारांश

पत्रों के उपर्युक्त उद्धरणों से तीन बातें स्पष्ट होती हैं—

१—वेदाङ्गप्रकाश प्रायः करके पं० भीमसेन, ज्वालादत्त और दिनेशराम के लिखे हुए हैं।

२—वेदाङ्गप्रकाशों का अन्तिम संशोधन भी इन्हीं लोगों ने किया था।

३—ज्वालादत्त आदि को व्याकरण का विशेष ज्ञान न था। अतः इन्होंने अपनी अल्पज्ञता के कारण वेदाङ्गप्रकाशों में बहुत सी अशुद्धियां की हैं। सम्भव है इन्होंने अपनी कुटिल प्रकृति[1] के कारण जान बूझ कर भी कुछ अशुद्धियां की हों।

वेदाङ्गप्रकाश के कुछ भागों में परिवर्तन

वेदाङ्गप्रकाश के जिन भागों की द्वितीयावृत्ति पं० भीमसेन और पं० ज्वालादत के प्रूफ-संशोधन काल में हुई उन में इन्होंने पर्याप्त परिवर्तन किया है। वर्णोच्चारणशिक्षा के द्वितीय संस्करण में भूमिका के नीचे निम्न विज्ञापन छपा है—

"यह ग्रन्थ जब प्रथम छपा था उस समय वैदिक यन्त्रालय का आरम्भ ही था इससे शीघ्रता के कारण इस के छपने में कहीं-कहीं अशुद्धता रह गई थी इस कारण अब के हम लोगों ने इस ग्रन्थ को दूसरी बार शुद्ध किया है।

ह० ज्वालादत्तशर्मणः
ह० भीमसेनशर्मणः"

यही विज्ञापन वर्णोच्चारणशिक्षा के तृतीय संस्करण में भी छपा है।

सन्धिविषय के द्वितीय संस्करण (सं० १९४५ आषाढ़ मास) के अन्तिम पृष्ठ पर निम्न विज्ञापन छपा है—

---

१. पं० भीमसेन, ज्वालादत्त और दिनेशराम कैसी नीच प्रकृति के थे, इस विषय में श्रीस्वामी जी आदि के पत्र परिशिष्ट संख्या ६ में देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह पुस्तक सन्धिविषय जिस समय प्रथम छपा था उस समय संक्षेपता के विचार से कुछ सूत्र न्यून रक्खे थे और शीघ्रता के कारण ही अशुद्धियां भी रह गई थीं अब द्वितीयावृत्ति में अनेक महाशयों की सम्मति से सन्धिसंबन्धि शुद्ध कर पूरा छपवाया है। अत एव पूर्व छपी हुई पुस्तक से अबकी बार सूत्र अधिक छपे हैं। ह० भीमसेनशर्मणः"

इन से स्पष्ट है कि वेदाङ्गप्रकाश के कुछ भागों के द्वितीय संस्करणों में पर्याप्त संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन हुआ है। **इस वस्तुस्थिति का ज्ञान न होने से परोपकारिणी सभा के मन्त्री जी की आज्ञानुसार संवत् १९९६ वि० में सन्धिविषय का जो संस्करण पं० धर्मदेवजी ने छपवाया, उस में कई एक वे अनावश्यक तथा असंबद्ध सूत्र पुनः सन्निविष्ट हो गये, जो सन्धिविषय के द्वितीय संस्करण में निकाल दियें गये थे।** परोपकारिणी सभा के अधिकारियों की नीति सदा यही रही है कि प्रत्येक पुस्तक प्रथम संस्करण के अनुसार छपाई जावे[1]। इस अज्ञतापूर्ण आदेश का जो अनिवार्य फल होता है, उसका उपर्युक्त सन्धिविषय का सं० १९९६ का संस्करण स्पष्ट प्रमाण है।

प्रथम संस्करण के संशोधक

पूर्व उद्धृत पत्रव्यवहार से स्पष्ट है कि वेदाङ्गप्रकाश का अन्तिम (प्रेस कापी का) संशोधन भी पं० भीमसेन और ज्वालादत्त नें किया था। वेदाङ्गप्रकाश के बहुत से भागों के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधकों के नाम छपे हैं। वे इस प्रकार हैं—

ग्रन्थनाम	संशोधकनाम	ग्रन्थनाम	संशोधकनाम
कारिकीय—	भीमसेन	पारिभाषिक	ज्वालादत्त
सामासिक—	,,	धातुपाठ—	,,
स्त्रैणताद्धित—	,,	गणपाठ—	,,
अव्ययार्थ—	,,	उणादिकोष—	,,
		निघण्टु—	,,

१. मुझे परो० सभा में सन् १९४३-४५ तक कार्य करते हुए श्री मन्त्री जी ने इस प्रकार के अनेक आदेश दिये थे। कुछ पत्र अभी भी मेरे पास सुरक्षित हैं। मैंने इस प्रकार के अदूरदर्शितापूर्ण आदेशों का सदा विरोध किया और अन्त में मुझे वहां के काम से त्याग पत्र देना पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदाङ्गप्रकाश के वर्तमान में जो संस्करण उपलब्ध हैं, उन में उणादिकोष को छोड़ कर अन्य किसी भाग पर संशोधक का नाम नहीं मिलता है। संशोधक का नाम न छापना अत्यन्त अनुचित बात है। कम से कम वेदाङ्गप्रकाश के भागों पर तो संशोधक का नाम अवश्य ही रहना चाहिये, जिससे संशोधन का भार संशोधकों पर रहे।

ऋषिकृत ग्रन्थों पर प्राचीन और नवीन संशोधकों का निर्देश

वेदाङ्गप्रकाश के ९ भागों से स्पष्ट है कि उन के संशोधकों का नाम महर्षि के जीवन काल में ही छपा था और पंचमहायज्ञविधि, आर्याभिविनय तथा संस्कारविधि के प्रथम संस्करणों पर भी पं० लक्ष्मण शास्त्री का नाम छपा मिलता है[1] इतना ही नहीं ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के ऊपर मुंशी समर्थदान का नाम छापने के विषय में स्वयं लिखा था—

"टाइटल पेज के ऊपर तो तुम्हारा नाम अवश्य रहना ही चाहिये"। पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६३९, पं० ३।

इस से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों के ऊपर संशोधक का नाम छापने की स्वयं आज्ञा दी थी।

संसार में ऐसी कोई भी प्रमुख ग्रन्थ-प्रकाशक संस्था नही होगी जो अपने ग्रन्थों पर संशोधकों का नाम न छापती हो। ग्रन्थ पर संशोधक का नाम छापने से उन की शुद्धि-अशुद्धि का उत्तरदाता संशोधक हो जाता है और प्रकाशक संस्था इस भार से बहुत सीमा तक मुक्त हो जाती है। अतः ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों पर संशोधक का नाम न छापने की श्रीमती परोपकारिणी सभा की जो नीति है, वह न केवल ऋ० द० के लेख के विपरीत है, अपितु बहुत हानिकारक भी है।

संशोधक का नाम न देने से अनर्थ

हम ने पूर्व पृष्ठ १२९ की टि० १ में लिखा हैं कि वै० यं० के छपे सत्यार्थप्रकाश के ३२ वें संकरण में पठनपाठन-विधि प्रकरण में उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् संशोधक ने टिप्पणी दी है—

---

१. देखो प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ की प्रतिलिपि, परिशिष्ट २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पहले अष्टाध्ययी श्लोकों में थी।' इस संस्करण पर संशोधक वा टिप्पणी लेखक का नाम न देने से यह मूर्खतापूर्ण टिप्पणी भी ऋ० द० की ही समझी जायेगी।

वेदाङ्गप्रकाशों के भागों का क्रम

वेदाङ्गप्रकाश के १४ भाग हैं। प्रत्येक भाग के (चार को छोड़कर) मुख पृष्ठ पर तीन-तीन क्रमांक छपते हैं। प्रथम—वेदाङ्गप्रकाश के भागों का। द्वितीय–अष्टाध्यायी के भागों का। तृतीय–पठनपाठन-व्यवस्था के क्रम का बोधक। वेदाङ्गप्रकाश के वर्तमान संस्करणों के मुख पृष्ठ पर जो संख्याएं छपी हैं वे परस्पर सर्वथा असम्बद्ध हैं। इस असम्बद्धता के तीन कारण हैं—

१—प्रथम संस्करण छपते समय भूल से संस्कृतवाक्यप्रबोध और व्यवहारभानु पर भी **वेदाङ्गप्रकाश का नाम तथा भाग निदर्शक अङ्क छप गया था**[1]। इस कारण वेदाङ्गप्रकाश के क्रमाङ्क की संख्या १४ के स्थान १६ हो गई।

२—द्वितीय संस्करण छपते समय संस्कृतवाक्यप्रबोध और व्यवहारभानु को वेदांगप्रकाश के भागों से पृथक् करके नया क्रमाङ्क छापना आरम्भ किया था, परन्तु वह क्रमाङ्क कुछ भागों पर ही छपकर रह गया। शेष भागों पर वही पुराना अशुद्ध क्रमाङ्क छप रहा है। सम्भवतः इस का कारण पं० भीमसेन और पं० ज्वालादत्त का वैदिक यन्त्रालय की सेवा से निवृत्त हो जाना हो। नये संशोधक को इस का ज्ञान न होने से पुराने क्रमाङ्क ही छपते रहे।

ये सब अशुद्धियां नीचे के कोष्ठक से भले प्रकार विदित हो जायेंगी। इस कोष्ठक में प्रथम संस्करण तथा वास्तविक क्रमाङ्क (जो होने चाहिए) उनका क्रमशः निर्देश किया है।

---

१. "देखिये व्यवहारभानु और संस्कृतवाक्यप्रबोध भीं वेदाङ्गप्रकाश में छाप दिये। यह बड़ी भूल की बात हुई है।"

पत्र और विज्ञापन, भाग ४, पृष्ठ ४५५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

		प्रथम संस्करण			वर्तमान में			चाहिये		
		वेदाङ्गप्रकाश	अष्टाध्यायी	पठनपाठन	वेदाङ्गप्रकाश	अष्टाध्यायी	पठनपाठन	वेदाङ्गप्रकाश	अष्टाध्यायी	पठनपाठन
१	वर्णोच्चारण-शिक्षा	१	×	१	१	×	१	१	×	१
२	संस्कृतवाक्यप्रबोध[1]	२	×	२	×	×	२	×	×	२
३	व्यवहारभानु[1]	३	×	३	×	×	३	×	×	३
४	सन्धिविषय	४	×	४	२	१	४	२	१	४
५	नामिक	५	×	५	३	२	५	३	२	५
६	कारकीय	६	३	६	४	३	६	४	३	६
७	सामासिक	७	४	७	५	२	७	५	४	७
८	स्त्रैणताद्धित	८	५	७	८	५	७	६	५	८
९	अव्ययार्थ	९	६	९	९	६	९	७	६	९
१०	आख्यातिक	१०	७	१०	८	७	७	१०	७	१०
११	सौवर	११	८	११	९	८	१०	९	८	११
१२	पारिभाषिक	१२	९	१२	१०	९	१२	१०	९	१२
१३	धातुपाठ	१३	१०	१३	७.१६.१९.१[2]			११	१०	१३
१४	गणपाठ	१४	११	१४	१४	११	१४	१२	११	१४
१५	उणादिकोष	१५	१२	१५	१३	१२	१४	१३	१२	१५
१६	निघण्टु	१६	×	१६	१४	×	१६	१४	×	१६

यह तो हुई मुख पृष्ठ पर छपे हुए क्रमाङ्क की बात । इससे भी भयङ्कर क्रमाङ्क की कुछ अशुद्धियां और मिलती हैं, जिन में मुख पृष्ठ पर कुछ संख्या छपी है और अन्दर भूमिका में कुछ संख्या लिखी है । यथा स्त्रैणताद्धित के मुख पृष्ठ पर उसे **पठनपाठन व्यवस्था का ७ वां भाग** कहा है और भूमिका में **उसे ८ वां भाग** लिखा है । इसी प्रकार आख्यातिक को मुख पृष्ठ पर उसे **अष्टाध्यायी का ७ वां भाग** लिखा है और **भूमिका में ९ छठा भाग** । इसी प्रकार मुख पृष्ठ इसे

१. द्र०—पूर्व पृष्ठ २१५ की टिप्पणी १ ।

२. इसे क्रमशः ७. १; ६. १; ९. १ पढ़ें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पठनपाठन व्यवस्था का १० वां पुस्तक कहा है और **भूमिका में ८ वाँ** लिखा हैं[1]। भला इस भूल की भी कोई सीमा है ? स्त्रैणताद्धित का नया संस्करण संवत् २००४ में छपा हैं, उस में भी यह अशुद्धि उसी प्रकार छपी है। पता नहीं, परोपकारिणी सभा ऐसी साधारण अशुद्धियां भी क्यों ठीक नहीं कराती ?

हमारे द्वारा संशोधन

हमने सन् १९४८-१९५० के मध्य 'आर्यसाहित्यमण्डल' अजमेर में कार्य करते हुए वेदाङ्गप्रकाश के सभी भागों का संशोधन किया था, परन्तु वर्णोच्चारणशिक्षा[2] और सन्धिविषय को छोड़ कर अन्य भागों का मुद्रण हमारे वहां से काशी चले जाने के पश्चात् हुआ। अतः अन्य भागों का यथावत् मुद्रण न हो सका।

—

१. आख्यातिक की क्रमांक की ये भूले पांचवें संस्करण तक मिलती है। छठे संस्करण के संशोधक पं० महेन्द्र शास्त्री ने भूमिका में अष्टाध्यायी तथा पठनपाठन-व्यवस्था के क्रमांक मुख पृष्ठ के अनुसार कर दिये हैं। स्त्रैणताद्धित के क्रमाङ्क पूर्ववत् अशुद्ध ही है।

२. वर्णोच्चारणशिक्षा में कुछ विषय विवादास्पद होने के कारण हमने उस का संशोधन नहीं किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशम अध्याय

वेदाङ्गप्रकाश के चौदह भाग

अब हम वेदाङ्गप्रकाश के १४ भागों का क्रमशः वर्णन करते हैं—

१—वर्णोच्चारण-शिक्षा

(माघ कृ० ४, सं० १९३६)

महर्षि ने वेदाङ्गप्रकाश के जितने भाग छपवाये उनमें वर्णोच्चारण-शिक्षा सर्व प्रथम है। पठन-पाठन-व्यवस्था में भी इस पुस्तक को प्रथम कहा हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि ने पाणिनीय शिक्षा की आर्य भाषा में व्याख्या की है। कहीं-कहीं पर महाभाष्य और अष्टाध्यायी के उपयोगी वचन तथा सूत्रों की व्याख्या भी लिखी है। पाणिनीय शिक्षा का मूल ग्रन्थ चिरकाल से लुप्त हो गया था, उस के स्थान में एक नई श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा प्रचलित हो गई हैं, जिसमें अनेक विषय पाणिनीय शिक्षा से विरुद्ध हैं। अर्हषि ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक अन्वेषण करके असली सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा का उद्धार किया। यह बात महर्षि ने स्वमं इस ग्रन्थ की भूमिका में इस प्रकार लिखी है—

"तथा अपाणिनीय शिक्षा को पाणिनिकृत मान के पाठ किया करते और उसको वेदाङ्ग में गिंनते हैं। क्या वे इतना भी नहीं जानते कि "**अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा**" अर्थ—मैं जैसा पाणिनिमुनि की शिक्षा का मत है जैसी शिक्षा करूंगा। इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह ग्रन्थ पाणिनिमुनि का बनाया नहीं, किन्तु किसी दूसरे ने बनाया है। ऐसे भ्रमों की निवृत्ति के लिये **बड़े परिश्रम से पाणिनिमुनिकृत शिक्षा का पुस्तक प्राप्त कर** उन सूत्रों की सुगम भाषा में व्याख्या करके **वर्णोच्चारण** विद्या की शुद्ध प्रसिद्धि करता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थरचना का काल

पाणिनीय शिक्षा की आर्य भाषा व्याख्या करने का समय ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

ऋतुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे माघमासे सिते दले ।
चतुर्थी[1] शनिवारे ऽयं ग्रन्थः पूर्त्ति समागतः ॥"

अर्थात् सं० १९३६ माघ शुक्ला ४ शनिवार के दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

महर्षि कार्तिक शुक्ला ७ सं० १९३६ से वैशाख कृष्णा ११ सं० १९३७ तक काशी में रहे थे[2] । अतः यह ग्रन्थ काशी में ही लिखा गया, यह निर्विवाद है । प्रथम संस्करण में भूमिका के अन्त में महर्षि के हस्ताक्षर नहीं छपे हैं । सम्भव है अनवधानता के कारण हस्ताक्षर रह गये होंगे ।

पाणिनीय शिक्षा की उपलब्धि का काल

१० जनवरी सन् १८८० को मुन्शी इन्द्रमणि के नाम लिखे हुए उर्दू पत्र से विदित होता है कि महर्षि को यह ग्रन्थ सन् १८७९ के अन्त में उपलब्ध हुआ था । पत्र का लेख इस प्रकार है—

"गरज है कि अन्दर एक महिने के कार छापेखाने का इजरा हो जावेगा । मेरा कस्द है कि पेशतर शिक्षा पुस्तक जो छोटी व हाल में तसनीफ हुई है, छपवाई जावे ।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३१६, पं० ६-८ ।

पूर्वोद्धृत वर्णोच्चारणशिक्षा की भूमिका तथा पत्र के इस लेख को मिलाकर पढ़ने से विदित होता है कि महर्षि को पाणिनीय शिक्षा का कोई हस्तलेख प्राप्त हुआ था । उसकी उन्होंने व्याख्या करके "वर्णोच्चारणशिक्षा" के नाम से उसे प्रकाशित किया । इस पुस्तक के अन्त में निम्न लेख मिलता है—

---

१. 'चतुर्थी शनिवारे' यह पाठ अशुद्ध है । चतुर्थी शब्द का '**माघे मासे सिते दले**' के साथ संबन्ध होने से 'शनिवारे' के साथ समास नहीं हो सकता—**सापेक्षमसमर्थं भवति** (महाभाष्य २।१।१) । पृथक् 'चतुर्थी' प्रथमान्त पद का सप्तम्यन्त शब्दों के साथ संबन्ध नहीं जुड़ता । अतः यहां '**चतुर्थ्यां**' पाठ होना चाहिये ।

२. देखो पूर्व पृष्ठ १८९ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीप्रणीतव्याख्यासहितपाणिनीयशिक्षासूत्र-संग्रहान्विता वर्णोच्चारणशिक्षा समाप्ता।"

इस लेख में "सूत्रसंग्रहान्विता" पद से किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि ऋषि ने व्याकरण आदि के ग्रन्थों में आये हुए शिक्षा के विभिन्न सूत्रों का संग्रह करके पाणिनि के नाम से छपवा दिया। क्योंकि महर्षि ने वर्णोच्चारणशिक्षा की भूमिका में स्पष्ट लिखा है—

"......बड़े परिश्रम से **पाणिनिमुनिकृत शिक्षा का पुस्तक प्राप्त कर......**

क्या पाणिनि ने कोई शिक्षा रची थी ?

कई विद्वानों का विचार है कि पाणिनि ने कोई सूत्रात्मिका शिक्षा नहीं रची थी। परन्तु उन का यह विचार सर्वथा निर्मूल है। इस में निम्न हेतु हैं—

१—आधुनिक पाणिनीय शिक्षा के प्रथम श्लोक से स्पष्ट है कि वर्तमान श्लोकात्मक शिक्षा पाणिनीय मतानुसार है। अतः उस की रचना से पूर्व कोई पाणिनीय शिक्षा अवश्य थी, यह स्पष्ट है।

२—पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरण आपिशलि और उत्तरवर्ती आचार्य चन्द्रगोमी दोनों ने अपने शिक्षा-सूत्र रचे थे[1] वे सूत्र इस समय प्राप्त हैं। इसी प्रकार आचार्य पाणिनि ने भी अवश्य कोई शिक्षा रची होगी।

३— पाणिनीय सम्प्रदाय के अनेक प्राचीन वैयाकरण कर्ता के नाम निर्देश के विना शिक्षा के अनेक सूत्र उद्धृत करते हैं। यदि वे सूत्र पाणिनि से भिन्न आचार्य के होते तो वे उन के नाम का निर्देश अवश्य करते। वे सूत्र पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों से प्रायः मिलते हैं, जहाँ कहीं स्वल्प पाठभेद है, वह उपलब्ध हस्तलेख के त्रुटित तथा अव्यवस्थित होने के कारण है।

इन हेतुओं से स्पष्ट है कि पाणिनि ने कोई शिक्षा अवश्य रची थी।

---

१. हमने शिक्षा-सूत्राणि के नाम से आचार्य आपिशलि, पाणिनि और "चन्द्रगोमी के सूत्रों का एक शुद्ध, सुन्दर और सटिप्पण संस्करण प्रकाशित किया है। यह रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) से मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋ० द० को उपलब्ध शिक्षा-सूत्रों की अपूर्णता

श्री स्वामी जी को पाणिनीय शिक्षा सूत्रों का जो हस्तलेख प्राप्त हुआ था, वह अनेक स्थानों में त्रुटित था। यह बात आपिशलि और पाणिनीय शिक्षा के सूत्रों की तुलना से व्यक्त है। कुछ एक विद्वानों का मत है कि वर्णोच्चारणशिक्षा में जो शिक्षा-सूत्र व्याख्यात हैं वे आपिशलशिक्षा के हैं, परन्तु यह उनका मिथ्या भ्रम है। आपिशल शिक्षासूत्र तथा पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों में पर्याप्त विभिन्नता है। सप्तम प्रकरण में ३ श्लोक ऐसे हैं जो आपिशल शिक्षा में नहीं है। अतः ये दोनों शिक्षाएं एक नहीं हो सकतीं।

डा० मनोमोहन घोष का पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों पर आक्षेप

डा० मनोमोहन घोष एम० ए० द्वारा सम्पादित कलकत्ता विश्व-विद्यालय से सन् १९३८ में **"पाणिनीय शिक्षा"** नाम का ग्रन्थ प्रकशित हुआ है उस में श्लोकात्मिका प्रचलित पाणिनीय शिक्षा के कई पाठ और व्याख्यायें छापी गई है। इस में सम्पादक ने प्रचलित पाणिनीय शिक्षा का एक स्वबुद्धि-कल्पित पाठ भी छापा है। इस ग्रन्थ की भूमिका में डा० घोष में ऋ० द० द्वारा प्रकाशित पाणिनीय शिक्षा की विस्तार से आलोचना की है। उस का सार यह है कि वर्णोच्चारण-शिक्षा में जो पाणिनीय शिक्षा के सूत्र छापे गये हैं, वे स्वामी दयानन्द द्वारा रचे हुए हैं।

आक्षेप का उत्तर

मनोमोहन घोष के उक्त भूमिकास्थ लेख की विस्तृत आलोचना हमने **'मूल पाणिनीय शिक्षा'** शीर्षक से पटना की 'साहित्य' पत्रिका के सन् १९५९ के अङ्क १ में प्रकाशित की है। उस में मनोमोहन घोष के सभी हेत्वाभासों का सप्रमाण निराकरण किया है और श्लोकात्मिका शिक्षा को पाणिनि-प्रोक्त मानने पर अष्टाध्यायी से जो विरोध आते हैं, उनको उजागार करके सूत्रात्मक पाठ का पाणि-नीयत्व सिद्ध किया है।

पाणिनीय शिक्षासूत्र की अन्य प्रति की उपलब्धि

'मूल पाणिनीय शिक्षा' शीर्षक लेख लिखने के पीछे हमें 'दि इण्डियन रिसर्च इन्स्टीटयूट' कलकत्ता से सन् १९३९ में प्रकाशित 'आपिशली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा' नाम का ग्रन्थ सन् १९५३ में उपलब्ध हुआ। इस के मुख पृष्ठ पर 'अध्यापक प० अमूल्यचरण विद्याभूषणकर्तृक सम्पादित और अनुदित' शब्द छपे हुए हैं। यह अनुवाद बंगला भाषा में है। इस में सम्पादन के नाम पर किया जाने वाला कोई प्रयत्न नहीं है। हां, तीन स्थलों पर (?) प्रश्न चिह्न अवश्य उपलब्ध होते हैं।

इस पुस्तक पर **'आपिशलीशिक्षा'** नाम छपा होने के कारण चिर-काल तक हमारा ध्यान इसकी ओर आकृष्ट नहीं हुआ। एक दिन अचानक मन में विचार उठा कि इस का पाठ आपिशली शिक्षा से मिलाया जाये। जब हमने आपिशली शिक्षा-सूत्रों के साथ इस का पाठ मिलाना आरम्भ किया तो हमें अत्यन्त सुखद आश्चर्य हुआ कि अमूल्यचरण द्वारा प्रकाशित सूत्रपाठ आपिशल शिक्षा की अपेक्षा पाणिनीय शिक्षा से अधिक मिलता है।[1] पं० अमूल्यचरण ने इस का सम्पादन के नाम पर कुछ संशोधन न करके हस्तलेख का शुद्ध अशुद्ध यथा उपलब्ध पाठ छाप दिया। यही हमारे लिये वरदान सिद्ध हुआ। सन् १९३९ तक डा० रघुवीर द्वारा प्रकाशित आपिशल शिक्षा का प्रकाशन नहीं हुआ था। ग्रन्थ के आद्यन्त में कहीं भी **आपिशली शिक्षा** का नाम उपलब्ध नहीं होता। उन्होंने यह नाम कैसे लिखा इस का भी उल्लेख इन्होंने नहीं किया। प्रतीत होता है अष्टम प्रकरण के २५ वें **'स एवमापिशलेः पञ्चदश ··'** सूत्र में आपिशलि का नाम देख कर उन्होंने इस नाम की कल्पना कर ली।

पाणिनीय शिक्षा के दो पाठ

इस प्रकार पं० अमूल्यचरण द्वारा प्रकाशित पाठ का पाणिनीयत्व सिद्ध हो जाने पर यह प्रतीत हुआ कि पं० अमूल्यचरण प्रकाशित सूत्र पाठ पाणिनीय शिक्षा का वृद्ध पाठ है और ऋ० द० द्वारा प्रकाशित लघुपाठ है। यह लघुपाठ भी पूरा नहीं है, खण्डित है। आठवां प्रकरण तो पूर्णतया खण्डित हैं।[1]

वर्णोच्चारणशिक्षा का प्रथम संस्करण

वर्णोच्चारणशिक्षा का प्रथम संस्करण सं० १९३६ के अन्त में

---

१. इस के लिये हमारे द्वारा सम्पादित **शिक्षा-सूत्राणि** के द्वितीय संस्करण (सं० २०२४) की भूमिका देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशी से प्रकाशित हुआ था। उस समय वैदिक यन्त्रालय आरम्भ ही हुआ था। इस कारण प्रथम संस्करण में वहुत सी अशुद्धियां रह गई थीं, जिन्हें द्वितीय संस्करण में पं० भीमसेन और ज्वालादत्त ने ठीक किया था। द्वितीय संस्करण स्वामीजी के स्वर्गामी होने के अनन्तर सं० १९४१ में प्रकाशित हुआ था।

इस संस्करण में भूमिका के नीचे निम्न विज्ञापन छपा है—

"यह ग्रन्थ जव प्रथम छपा था, उस समय वैदिक यन्त्रालय का आरम्भ ही था। इस से शीघ्रता के कारण इस के छपने में कहीं-कहीं अशुद्धता रह गई थी इस कारण अव के हम लोगों ने इसे दूसरी बार शुद्ध किया है।

ह० ज्वालादत्तशर्मण:
ह० भीमसेनशर्मण:"

—:o:—

२–सन्धिविषय (आषाढ़ सं० १९३७)

यह वेदाङ्गप्रकाश का दूसरा भाग है। इसमें तीन प्रकरण हैं—संज्ञा, परिभाषा और साधनप्रकरण। पं० भीमसेन के आश्विन सुदि ६ सं० १९३८ के पत्र से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का मूल लेखक भीमसेन है। देखो पूर्व पृष्ठ २०९ पर उद्धृत पत्र।

रचना वा प्रथम संस्करण का मुद्रण काल

सन्धिबिषय के वर्तमान संस्करणों में ग्रन्थ की भूमिका वा ग्रन्थ के अन्त में रचनाकाल का निर्देश उपलब्ध नहीं होता। परन्तु प्रथम संस्करण के अन्त में निम्न श्लोक उपलब्ध होता है—

नगगुणाङ्कविधुप्रमिते सरे शरतिथावथ मार्गसिते दले ।
विधुदिने निगमप्रथमाङ्गजःप्रथितवैदिकयन्त्रविनिर्गतः ॥

अर्थात् सं० १९३७, मार्गशीर्ष शुक्ला ५ सोमवार के दिन वेद के प्रथम अंग से उत्पन्न [सन्धिविषय] प्रसिद्ध वैदिक यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ।

इस के अनुसार सन्धिविषय का मुद्रण सं० १९३७, मार्गशीर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्ला ५, सोमवार को छप कर प्रकाशित हुआ था । इस का लेखन कुछ काल पूर्व हुआ होगा । उत्तरवर्ती संस्करणों में यह श्लोक नहीं मिलता । ऋ० द० ने आषाढ़ सुदि १ सं० १९३७ के पत्र में मुन्शी बख्तावरसिंह मैनेजर वैदिक यन्त्रालय को लिखा था—

"सन्धिविषय का [छपना] अब तक प्रारम्भ न हुआ होगा" ।

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३४५, पं० ४ ।

इस पत्र से ज्ञात होता है कि महर्षि ने सन्धिविषय की प्रेसकापी आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में प्रेस में भेज दी होगी ।

सन्धिविषय का संशोधन

सन्धिविषय के संशोधन के विषय में ऋषि के एक अज्ञाततिथि के पत्र में इस प्रकार लिखा है—

"अब हम वेदभाष्य के पत्रे तैयार कर रहे हैं और **सन्धिविषय के पत्रे भी शोधे जाते हैं** । दो चार दिन में वेदभाष्य और सन्धिविषय के पत्रे तुम्हारे पास पहुँचेगे ।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३४६, पं० ८-९ ।

इस पत्र से यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि सन्धिविषय का संशोधन ऋषि ने स्वयं किया था वा अन्य से कराया था ।

ज्येष्ठ शुक्ला ६ सं० १९३७ के पत्र में स्वामीजी ने लिखा है—

सन्धिविषय जो हमने शुद्ध कर लिखा है सो भी भेज देंगे" (पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३३६ पं० २४) । इस पत्र से इतना स्पष्ट है कि ऋषि ने सन्धिविषय की कापी का संशोधन थोड़ा बहुत अवश्य किया था । यहां **'लिखा है'** का अभिप्राय **'लिखवाया है'** से जानना चाहिये ।

सन्धिविषय के प्रथम संस्करण में लेखक और शोधक के प्रमाद से बहुत अशुद्धियां रह गई थीं । इस विषय में ऋषि ने १७ जनवरी सन् १८८२ को एक पत्र ज्वालादत्त के नाम भेजा था । उसका निम्न अंश द्रष्टव्य है—

"सन्धिविषय की तरह अशुद्ध न होने पावे । अब हमने सन्धि-विषय का शुद्धिपत्र मात्र देखा तो विदित हुआ कि जो कम विद्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला भी ध्यान देकर शोधे तो भी ऐसी अशुद्धि कभी न रह सके ।··· देखो तुम्हारे शुद्धिपत्र के अनुसार [भीमसेन के शोधे] ४० पृष्ठों में ५१ अशुद्धियां हैं और **तुमने शुद्ध का अशुद्ध किया। तुम्हारे २४ पृष्ठों में ५९ अशुद्धियां हैं।**······और जब हम सन्धिविषय का पाठ करेंगे। तब तुम्हारी और भीमसेन की न जाने कितनी अशुद्धियां निकलेंगी।"
पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४६४, पं० १४; ४६५, पं० १०।

द्वितीय संस्करण का संशोधन

सन्धिविषय का सं० १९४५ में द्वितीय संस्करण छपा था, उस के अन्त में पं० भीमसेन शर्मा के हस्ताक्षर से निम्न विज्ञापन छपा है—

"**विज्ञापन**—यह पुस्तक जिस समय छपा था उस समय संक्षेपता के विचार से कुछ सूत्र न्यून रखे थे और शीघ्रता के कारण कहीं-कहीं अशुद्धियां भी रह गईं थीं। अब द्वितीयावृत्ति में अनेक महाशयों की सम्मति से सन्धिसम्बन्धी विषय शुद्ध कर पूरा छपवाया है। अत एव प्रथम छपी हुई पुस्तक से अब की बार सूत्र अधिक हैं।

ह० भीमसेनशर्मण:"

द्वितीय संस्करण के मुख पृष्ठ पर '**भीमसेनज्वालादत्तशर्मभ्यां संशोधितः**' छपा है।

वै० यं० का सं० १९९६ का भ्रष्ट संस्करण

सन्धिविषय के प्रथम संस्करण में कुल ३१० सूत्र थे। द्वितीय संस्करण में उन से अनावश्यक और अप्रासंगिक ८ सूत्र निकाल दिये और ३० सूत्र बढ़ा दिये। इस प्रकार द्वितीय संस्करण में ३३२ सूत्र छपे थे। द्वितीय संस्करण से सप्तम संस्करण तक इसी प्रकार ३३२ सूत्र छपते रहे। **सं० १९९६ के संस्करण में द्वितीय संस्करण में पृथक् किये हुए अप्रासंगिक ८ सूत्र वापस सन्निविष्ट कर दिये** इस प्रकार इस संस्करण की सूत्र संख्या ३४० हो गई। इसी प्रकार प्रथम संस्करण में अष्टाध्यायी के सूत्रों के पते शुद्ध दिये थे, परन्तु इस नये संस्करण में वे भी अशुद्ध कर दिये गये।

हमारा संशोधित संस्करण

गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस की प्राचीन व्याकरण और वेद-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैरुक्तप्रक्रिया के पाठचक्रम में वेदाङ्गप्रकाश के कुछ भाग सन्निविष्ट कर दिये हैं। अतः यह आवश्यक हो गया कि वेदाङ्गप्रकाशों का शुद्ध और छात्रोपयोगी टिप्पणियों से युक्त संस्करण प्रकाशित किया जाय। आर्यसाहित्यमण्डल लिमिटेड अजमेर के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री मथुराप्रसाद जी शिवहरे ने यह भार मुझे सौंपा। तदनुसार मैंने सन् १९४८ में वेदाङ्गप्रकाश के सभी भागों का संशोधन करके प्रेसकापी बना दी। उनमें से "सन्धिविषय" सन् १९४८ में प्रकाशित हो चुका है, "आख्यातिक" तथा अन्य भाग मेरे अजमेर से काशी चले जाने पर छपे। अतः उन पर सम्पादक के रूप में मेरा नाम होने पर भी मैं उन का उत्तरदाता नहीं हूं।

—:०:—

३—नामिक (चैत्र शु० १४ सं० १९३८)

नामिक वेदाङ्गप्रकाश का तृतीय भाग है। इस में सुबन्त का विषय है। इसमें नाम (संज्ञा शब्दों) का व्याख्यान होने से यह नामिक कहाता है।

पं० भीमसेन के आश्विन शु० ६ सं० १९३८ के पत्र से ज्ञात होता है। कि इस भाग का मूल लेखक भीमसेन है[1]। इस पत्र के साथ पं० ज्वालादत्त का पौष सु० १० सं० (?) का पत्र[2] पढ़ने से विदित होता है कि नामिक का जो प्रथम संस्करण छपा था, उसका अन्तिम संस्कार ज्वालादत्त का किया हुआ है। यह बात ऋषि के पूर्ण संख्या ३९८, ३९९ (भाग १, पृष्ठ ४५७-४५८) से भी व्यक्त होती हैं।

रचना काल

इस ग्रन्थ का रचना काल अन्त में इस प्रकार लिखा है—

वसुकालाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
चतुर्दश्यां बुधवारे नामिकः पूरितो मया ॥

---

१. देखो पृष्ठ २०९ पर उद्धृत।

२. देखो पूर्व पृष्ठ २१० पर उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनुसार इस ग्रन्थ के लेखन की समाप्ति चैत्र शुक्ला १४ बुधवार सं० १९३८ में हुई थी।

नामिक का प्रथम संस्करण ज्येष्ठ सं० १९३८ में प्रकाशित हुआ था। यह काल इसके मुख पृष्ठ पर छपा है। इस से प्रतीत होता है कि उपर्युक्त काल या तो ग्रन्थ लेखन का है या अन्तिम प्रेस कापी लिखने का। सन्धिविषय के अन्त में लिखा गया काल मुद्रण का है, यह उस के **'प्रथितवैदिकयन्त्रविनिर्गतः'** पद से स्पष्ट है। द्र०—पूर्व पृष्ठ २२३ पर उद्धृत श्लोक।

प्रथम संस्करण में अशुद्धि

ऋषि के ७ फरवरी सन् १८८२ के पत्र से ज्ञात होता है कि नामिक का प्रथम संस्करण बहुत अशुद्ध छपा था। इन अशुद्धियों का उत्तरदायित्व पं० ज्वालादत्त पर है। यह भी इस पत्र से व्यक्त है। देखो पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ४२९, भाग १, पृष्ठ ४७७, ४७८।

संवत् १९९५ में नामिक का जो संस्करण वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित हुआ है, उसमें ३३ वें पृष्ठ से हमने कुछ संशोधन किया है। इस संस्करण में नामिक में व्याख्यात पदों की सूची भी ग्रन्थ के अन्त दे दी, जिससे अभीष्ट शब्दों के रूप जानने में सुगमता होगी।

—:o:—

४—कारकीय (भाद्र कृष्णा ८ सं० १९३८)

यह वेदाङ्गप्रकाश का चतुर्थ भाग है। इसमें कारक प्रकरण की व्याख्या होने से इसका नाम कारकीय है। पं० भीमसेन के आश्विन शु० ६ सं० १९३८ के पूर्व पृष्ठ २०९ पर उद्धृत पत्र से विदित होता है कि इस भाग का मुख्य लेखक **पं० भीमसेन** है। इसका संशोधक भी **पं० भीमसेन** ही है, क्योंकि इसके प्रथम संस्करण पर **पण्डित भीमसेन शर्मणा संशोधितः** के रूप में पं० भीमसेन का ही नाम अङ्कित है।

रचना-काल

कारकीय का रचना काल ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे नभस्यस्यासिते दले ।
अष्टम्यां बुधवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्ति गतः शुभः ॥

अर्थात्—सं० १९३८ भाद्र कृष्णा ८ बुधवार के दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

प्रथम संस्करण का मुद्रण काल

इसके प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ से ज्ञात होता है कि कारकीय के मुद्रण की समाप्ति भाद्र कृष्णा १२ सं० १९३८ में हुई थी। अतः स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का लेखन और मुद्रण प्रायः साथ-साथ ही हुआ है।

—:०:—

५—सामासिक

(भाद्र कृष्णा १२ सं०१९३८)

यह वेदाङ्गप्रकाश का ५ वां भाग है। इसमें समास का व्याख्यान होने से इसका नाम सामासिक है। पूर्व पृष्ठ २०९ पर उद्धृत आश्विन शुदि ६ सं० १९३८ के भीमसेन के पत्र से विदित होता है कि इस भाग का मूल लेखक **पं० दिनेशराम** था। इस पत्र में सामासिक के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"दिनेशराम आदि लोगों ने जैसा काशिक में लिखा है वैसा ही इन (सामासिक आदि) पुस्तकों में लिख दिया बहुधा तो काशिक का संस्कृत ही रख दिया है। उसमें बहुतेरा महाभाष्य से विरुद्ध भी है।"

पं० भीमसेन ने सामासिक के विषय में जो कुछ लिखा है वह अक्षरशः सत्य है। इस पुस्तक में सूत्रस्थ पद-ग्रहण का प्रयोजन सर्वत्र संस्कृत में ही लिखा है और वह भी प्रायः काशिका के शब्दों में। वेदाङ्गप्रकाश के और किसी भाग में पद-ग्रहण का प्रयोजन संस्कृत में नहीं लिखा, सर्वत्र भाषा में ही व्याख्यान किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखन काल

ग्रन्थ का लेखनकाल पुस्तक के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

वसुकालाङ्कभूवर्षे भाद्रमासासिते दले।
द्वादश्यां रविवारेऽयं सामासिकः पूर्णोऽनघाः ॥

अर्थात्—विक्रम सं० १९३८ भाद्र कृष्णा १२ रविवार के दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था।

सामासिक के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर मुद्रण काल भी यही छपा है। अर्थात् ग्रन्थ के समाप्त होने और मुद्रण कार्य की परिसमाप्ति दोनों का काल एक ही है। लेखन और मुद्रण कार्य के साथ-साथ होने पर भी चार छ दिनों का अन्तर होना आवश्यक है। अतः दोनों में से एक अवश्य चिन्त्य है।

यद्यपि प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक भीमसेन शर्मा का नाम छपा है, तथापि उसने दिनेशराम के लिखे हुये ग्रन्थ में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं किया, केवल प्रूफों का ही संशोधन किया है, ऐसा प्रतीत होता है, अन्यथा यह भाग इतना अशुद्ध न रहता।

६—स्त्रैणताद्धित

(मार्गशीर्ष शु० ५ सं० १९३८)

स्त्रैणताद्धित वेदाङ्गप्रकाश का छठा भाग है। इसमें अष्टाध्यायी के स्त्री प्रत्यय तथा तद्धित प्रत्ययों का व्याख्यान है। तद्धित प्रकरण के सब सूत्र इस भाग में नहीं लिखे, केवल आवश्यक सूत्रों का ही समावेश किया है।

स्त्रैणताद्धित का प्रथम लेखक कौन है, यह अज्ञात है, परन्तु इसका संशोधन पं० भीमसेन ने किया था। यह प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ तथा पौष कृष्णा ११ सं० १९३८ (१८ दिसम्बर १८८१) के भीमसेन के पत्र से विदित होता है। पत्र का लेख इस प्रकार है—

'स्त्रैणताद्धित को ही देखें इसका पूर्व रूप कैसा है और अब कैसा छपवाया गया।" पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ २०३ पं० १०-११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रैणताद्धित में **'जीविकार्थे चापण्ये'** (अ० ५।३।९९) सूत्र पर एक नोट छपा है, उसे प्रथम भीमसेन ने लिखा था। प्रेस के मेनेजर दयाराम ने उस का प्रूफ देखने के लिये स्वामीजी महाराज के पास भेज दिया था। उसे शोध कर उसके ऊपर स्वामीजी ने जो टिप्पणी लिखी थी, वह इस प्रकार है—

"कोई नोट व विज्ञापन शास्त्रार्थ खण्डन मण्डन और धर्माधर्म विषय का ज्ञापक हो वह हमको दिखलाए बना कभी न छापना चाहिये, यह मेरे पास भेजा सो बहुत अच्छा किया। जो दिखलाये विना छाप देते तो हमको इसके समाधान में बहुत श्रम करना पड़ता। भीमसेन जो व्याकरणादि शास्त्रों को पढ़ा है उतना ही उसका पाण्डित्य है। अन्यत्र वह बालक है। इसको इस बात की खबर भी नहीं कि इस लेख से क्या-क्या कहां विरोध होकर क्या-क्या विपरीत परिणाम होंगे। इसलिए यह नोट जैसा शोध के भेजा है वैसा ही छपवाना।"

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ४७३, भाग २, पृष्ठ ५१६।

भीमसेन का लिखा हुआ तथा महर्षि का शोधा हुआ नोट ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ४७४ भाग २, पृष्ठ ५१७-५२० पर छपा है। इस में ऋ० द० द्वारा शोधित टिप्पणी ऊपर छपी है, और पं० भीमसेन द्वारा लिखित टिप्पणी नीचे बारीक अक्षरों में छापी है। स्त्रैणताद्धित में यह नोट ठीक वैसा ही नहीं छपा, जैसा कि महर्षि ने शोधा था। पीछे से किसी ने उसमें न्यूनाधिक किया है।

ग्रन्थ का लेखन काल अन्त में इस प्रकार लिखा है—

वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षे सिते दले।
पञ्चम्यां शनिवारेऽयं ग्रन्थः पूर्ति गतः शुभः॥

अर्थात्—सं० १९३८ मार्गशीर्ष शु० ५ शनिवार के दिन यह ग्रन्थ लिखकर समाप्त हुआ।

प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर मुद्रणकाल मार्गशीर्ष शु० ८ सं० १९३८ छपा है। अर्थात् लेखन और मुद्रण की समाप्ति में केवल तीन दिन का अन्तर है। अतः इस पुस्तक का लेखन वा संशोधन तथा मुद्रण साथ-साथ ही हुआ होगा। प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक का नाम **भीमसेन शर्मा** छपा है। अतः सम्भव है, ग्रन्थ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में लिखा हुआ काल भीमसेन द्वारा ग्रन्थ के संशोधन का होगा।

विशेष

चैत्र शुक्ला १४ सं० १९४४ के छपे हुए स्त्रैणताद्धित के द्वितीय संस्करण के अन्त में "**अथ स्त्रैणताद्धितशुद्धाऽशुद्धपत्रम्**" शीर्षक दो पृष्ठों का संशोधन छपा है। उत्तर संस्करण इन अशुद्धियों विना शोधे ही छापा गया। इस कारण सं० १९६९ के चौथे संस्करण में भी ये अशुद्धियां पूर्ववत् वर्तमान हैं, परन्तु कोई संशोधन पत्र नहीं दिया। यह कितना भयङ्कर प्रमाद है, इस पर कुछ लिखने की आवश्यता नहीं।

७—अव्ययार्थ

(आश्विन शु० ६, से पूर्व सं० १९३८)

"यह वेदाङ्गप्रकाश का सप्तम भाग है। इसमें संस्कृत भाषा में विशेषतया प्रयुक्त होने वाले कुछ अव्ययों का अर्थ तथा वाक्य में किस प्रकार प्रयोग करना चाहिये, यह दर्शाया है।

इस पुस्तक की भूमिका या अन्त में कहीं पर लेखनकाल नहीं दिया है। प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर माघ कृष्णा १० सं० सं० १९३८ छपा है। पौष कृष्णा ११ सं० १९३८ को लिखे हुए भीमसेन के पत्र में लिखा है—

"आख्यातिक को कुछ रोक कर अव्ययार्थ छपवा दिया है। वह बहुत शीघ्र इस महिने में आपके पास पहुँच जावेगा। परन्तु इसका नम्बर ताद्धित के आगे नवम रहेगा सो आप कृपा करके शीघ्र आज्ञा देवें।"
पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ २०३।

इससे विदित होता है कि अव्ययार्थ के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर जो माघ कृष्णा १० लिखा है, वह टाइटिल पेज के छपने का काल है। ग्रन्थ पौष कृ० ११ से पूर्व छप गया था।

पं० भीमसेन के आश्विन शु० ६ गुरुवार सं० १९३८ के पत्र से ज्ञात होता है कि अव्ययार्थ इससे पूर्व बन चुका था। पत्र का लेख इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तथा ऋ० यजु० के पत्रे और अन्वयार्थ आये, उनकी भी रसीद आपके निकट भेज दी पहुँची होगी।"

पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ १६३, पं० ५-६।

संशोधक

प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक का नाम **भीमसेनशर्मा** छपा है। इस भाग का लेखक कौन है, यह अज्ञात है।

८—आख्यातिक

(पौष कृ० ९ से पूर्व सं० १९३८)

आख्यातिक वेदाङ्गप्रकाश का आठवां भाग है। यह सब भागों से बड़ा है। इसके पूर्वार्ध में धातुप्रक्रिया और उत्तरार्ध में कृदन्त प्रक्रिया[1] लिखी है। आख्यात नाम क्रिया का है, उस का व्याख्यान होने से ग्रन्थ का नाम आख्यातिक है।

आख्यातिक का लेखक

पूर्व (पृष्ठ २१० पर) उद्धृत भीमसेन के (अज्ञाततिथि वाले) पत्र से ज्ञात होता है कि आख्यातिक का प्रथम लेखक **दिनेशराम** है। भीमसेन ने दिनेशराम के लिखे हुए आख्यातिक में पर्याप्त संशोधन किया है, यह भी भीमसेन के पूर्व पृष्ठ २०९-२१० पर उद्धृत पौष कृष्णा ११ सं० १९३८ तथा अज्ञात तिथि वाले पत्रों से स्पष्ट है। भीमसेन

---

१. आख्यातिक की भूमिका ग्रन्थ पूर्ण तैयार होने से पूर्व ही लिखी गई और छप गई। देखो पूर्व पृष्ठ २१० पर उद्धृत भीमसेन का पत्र संख्या ३। उसमें आख्यातप्रक्रियाओं का ही उल्लेख है, कृदन्त का नहीं। भीमसेन पौष कृष्णा ११ सं० १९३८ के पत्र में लिखता है—'**आप के लेखानुसार कृदन्त आख्यातिक के अन्त में छपेगा**···(पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ २०३, पं० १५। इससे प्रतीत होता है कि पहले कृदन्त को आख्यातिक के अन्तर्गत रखने की इच्छा नहीं थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने संशोधन को **"बिलकुल लौट जाना नवीन बनाना कहता है।"**

ऋषि दयानन्द ने मुंशी समर्थदान के नाम लिखे हुए भाद्र वदि १२ तथा भाद्र सुदि ६ (?) सं० १९३९ के दो पत्रों में आख्यातिक के विषय में इस प्रकार लिखा है—

१—"उसको (ज्वालादत्त को) व्याकरण का अभ्यास कम है, है, तभी बहुत सी पुस्तकें रखनी पड़ती हैं। जो इससे आख्यातिक न बन सके तो यहां भेज दो। यहाँ भीमसेन आ जायगा तब उससे वनवा कर शुद्ध करके भेज देंगे।"

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ५७९, भाग २, पृष्ठ ६१२।

२—"ज्वालादत्त को व्याकरण का वोध कम है और आख्यातिक प्रक्रिया भी कठिन है। इसलिये उससे यथावत् न बन सकेगी इसलिये आख्यातिक के पत्रे उससे लेकर यहां भेज दो। कल भीमसेन भी हमारे पास आ गया हैं यहां शीघ्र उसको बनवा और शुद्ध करके तुम्हारे पास भेज देंगे।

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ५८१, भाग २, पृष्ठ ६१४।

इन उद्धरणों और भीमसेन के पूर्व निर्दिष्ट पत्रों को मिलाकर पढ़ने से ज्ञात होता है कि आख्यातिक का लेखन पहले दिनेशराम ने प्रारम्भ किया था और उसका संशोधन पं० भीमसेन ने किया, परन्तु कुछ काल बाद इसका लेखन कार्य पं० ज्वालादत्त को सौंपा गया, परन्तु उससे भी लेखनकार्य न हो सकने पर पुनः भीमसेन के आधीन किया गया। इस प्रकार आख्यातिक के लेखन और संशोधन में **दिनेशराम, ज्वालादत्त** और **भीमसेन**, इन तीन पण्डितों का हाथ है।

प्रथम संस्करण का मुद्रण

आख्यातिक के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर इसका मुद्रण काल पौष कृष्णा ९ सं० १९३९ छपा है। पं० भीमसेन के पौष कृष्णा ११ सं० १९३८ के पत्र से ज्ञात होता है कि उक्त तिथि तक आख्यातिक के तीन फार्म छप चुके थे (देखो पूर्व पृष्ठ २०९)। तदनुसार इस ग्रन्थ की रचना और मुद्रण में लगभग १ वर्ष से अधिक काल लगा था। आख्यातिक के प्रथम संस्करण पर इसके संशोधक का नाम उपलब्ध नहीं होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९–सौवर (भाद्र शुदि १३, सं० १९३९)

यह वेदाङ्गप्रकाश का नवमां भाग है। इसमें लोक तथा वेदादि प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त होने वाले उदात्तादि स्वरों का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में स्वर विषय के अत्यन्त आवश्यक और प्रसिद्धतम सूत्र तथा वार्तिकों का ही संग्रह है। भूमिका में लिखा है कि शेष सूत्र अष्टाध्यायी की वृत्ति में लिखे जावेंगे।

रचना तथा मुद्रण काल

इस पुस्तक के अन्त में **"भाद्र शुक्ला १३ चन्द्रवार सं० १९३९"** छपा हुआ मिलता है। यह ग्रन्थ की रचना का काल है। इस की पुष्टि ऋ० द० के आश्विन बदि ६ सं० १९३९ को मुन्शी समर्थदान को लिखे हुए पत्र से होती है। उस में लिखा है—

"हमने सौवर भेजा था सो छापते होंगे"। पत्र और विज्ञापन पूर्ण संख्या ५८५, भाग २, पृष्ठ ६१६, पं० १७।

भूमिका के अन्त में **'स्थान महाराणा जी का उदयपुर, सं० १९३९ आश्विन बदि १३** छपा है। यह काल सम्भव है भूमिका लिखकर भेजने या भूमिका के छपने का होगा।

सौवर का मुद्रण काल प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर **सं० १९३९, कार्तिक कृष्णा १** छपा है।

याज्ञवल्क्य-शिक्षा का श्लोक

सौवर की भूमिका के अन्त में याज्ञवल्क्य शिक्षा का एक श्लोक उद्धृत है। पं० लेखराम कृत जीवन चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ५९१ से विदित होता है कि ऋ० द० ने "बनेड़ा" (राजस्थान) के निवासकाल (सं० १९३८, कार्तिक कृ० ३ से कार्तिक शु० ४= १०-२६ अक्टूबर १८८१) में वहां के राजकीय ग्रन्थागार से याज्ञवल्क्य-शिक्षा की प्रतिलिपि कराई थी (उस समय तक छपी नहीं थी)। उसी से सौवर में उक्त श्लोक उद्धृत किया होगा।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—पारिभाषिक

(आश्विन शुक्ल, सं० १९३९)

यह ग्रन्थ वेदाङ्गप्रकाश का दसवां भाग है। इसमें महाभाष्य में ज्ञापित परिभाषा-वचनों' की व्याख्या है। इस ग्रन्थ के लिखने में नागेशभट्ट कृत 'परिभाषेन्दुशेखर' के क्रम का आश्रय लिया है। वस्तुतः महाभाष्य में ये परिभाषाएं जिस क्रम से ज्ञापित हैं, उसी क्रम से व्याख्या करनी उचित थी। सीरदेव और पुरुषोत्तमदेव आदि प्राचीन वैयाकरणों ने अपनी परिभाषावृत्तियों में महाभाष्यस्थ क्रम ही रक्खा है।

रचना तथा मुद्रण-काल

इस ग्रन्थ की भूमिका में ग्रन्थ का रचना काल इस प्रकार छपा है—

"स्थान महाराणा जी का उदयपुर आश्विन शु० सं० १९३९।"

यहां तिथि विशेष का निर्देश नहीं है। ऋ० द० ने आश्विन बदि ६ सं० १९३९ के पत्र में लिखा है—

"और कोई ८ वा १० दिन में पारिभाषिक तैयार कराकर भेज देंगे।" पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६१७, पं० १७-१८।

इस से प्रतीत होता है कि आश्विन बदि ३० (अमावास्या) तक ग्रन्थ तैयार कर के भेज दिया होगा।

इसका प्रथम संस्करण पौष कृष्णा ९ सं० १९३९ में छपकर प्रकाशित हुआ था। यह काल प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर छपा है।

संशोधक

इसके प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक का नाम **पं० ज्वालादत्त** छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११–धातुपाठ

(पौष बदि १०, सं० १९३९)

यह वेदाङ्गप्रकाश का ग्यारहवां भाग है। यह पाणिनि मुनि प्रणीत मूल ग्रन्थ है। पूर्व निर्दिष्ट आख्यातिक इसी ग्रन्थ की व्याख्या है। उसमें धातुएं मध्य-मध्य में व्यवधान से पठित होने के कारण विद्यार्थियों को कण्ठाग्र करने में असुविधा होती है। अतः उनकी सुगमता के विचार से यह मूल ग्रन्थ पृथक् छपवाया है। और जिन्हें धातुपाठ कण्ठाग्र नहीं है, उनकी सुविधा के लिये अन्त में अकारादि क्रम से विस्तृत धातुसूची छपवाई है।

मुंशी समर्थदान ने १५-८-८३ को एक पत्र स्वामीजी को लिखा था, जिस का अभिप्राय था—"इसकी सूचो में गण, आत्मनेपद, परस्मैपद आदि का निर्देश करना व्यर्थ है, क्योंकि इनका ज्ञान मूल ग्रन्थ से हो ही जाता है। सूची में छापने से व्यर्थ में कागज कम्पोज आदि का व्यय बढ़ेगा। इस विषय में जैसी आपकी आज्ञा हो लिखिये।"

पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ ४४६, पं० १३-२२ ।

मुद्रण काल

मूल धातुपाठ के अन्त में धात्वादि सूची से पूर्व ग्रन्थ छपने का काल पौष बदि १० गुरुवार संवत् १९३९ छपा है। यह काल मूल धातुपाठ के छपने का हैं। धात्वादिसूची सहित ग्रन्थ छपकर प्रकाशित होने का नहीं है। इस में निम्न हेतु हैं—

१—मुन्शी समर्थदान के १५-५-८३ के पत्र से ज्ञात होता है कि धातुपाठ की सूची उक्त तारीख के आसपास यन्त्रालय में छपने के लिये पहुंची थी। (देखो पूर्व उद्धरण)

२—मुन्शी समर्थदान ने २४-८-८३ के अन्य पत्र में लिखा था—"धातुपाठ की सूची आपने भेजी वैसी छाप देंगे" (वही भाग ४, पृष्ठ ४६०)।

इस से विदित होता हैं कि धातुपाठ की सूची उक्त तारीख के बाद छपी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—धातुपाठ के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर ग्रन्थ का मुद्रण-काल कार्तिक शुदि २ सं० १६४० छपा है। अर्थात् महर्षि के निधन के दो दिन पश्चात् प्रकाशित हुआ था।

इन हेतुओं से स्पष्ट है कि धातुपाठ के अन्त में छपा हुआ मुद्रण-काल धात्वादि सूची के विना मूल ग्रन्थ के छपने का है। यद्यपि अन्त के पाठ में **'अकारादिक्रमसूचीपत्रेण सह धातुपाठो यंत्रयितः'** छपा है, पुनरपि धात्वादि सूची इस काल के पश्चात् छपीं, यह उपरि निर्दिष्ट मुन्शी समर्थदान के पत्रों से स्पष्ट है। भूमिका के अन्त में तिथ्यादि का उल्लेख नहीं मिलता। सम्भव है वही तिथि यहां अन्त में दे दी हो।

संशोधक

धातुपाठ के प्रथम संस्करण पर इसके संशोधक का नाम **पण्डित ज्वालादत्त** छपा है।

विशेष विचार

मूल धातुपाठ पाणिनि मुनि का बनाया हुआ है, परन्तु अनेक आधुनिक विद्वान् इसे पाणिनि मुनि-प्रोक्त नहीं मानते। धातुओं के अर्थ-निर्देश को कोई पाणिनीय मानते हैं, दूसरे भीमसेन द्वारा संगृहीत कहते हैं। धातुपाठ पर प्राचीनकाल में अनेक वृत्तियां लिखी गईं थी। इन सब विषयों की हमने अपने "संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास" ग्रन्थ के द्वितीय भाग में धातुपाठ के प्रकरण में विस्तार से विवेचना की है। पाठक उसे अवश्य देखें।

१२—गणपाठ

(माघ शु० १०, सं० १९३९)

यह वेदाङ्गप्रकाश का बारहवां भाग है। यह भी मूल्य ग्रन्थ पाणिनि मुनि विरचित हैं। इसमें कहीं-कहीं वार्त्तिक पाठ के गण भी छपे हैं, वे प्रक्षिप्त हैं। इस ग्रन्थ में कुछ गण छूट गये हैं, इस कारण यह ग्रन्थ खण्डित सा प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना तथा मुद्रण काल

इस पुस्तक की भूमिका के अन्त में माघ शु० १० सं० १९३९ लिखा हुआ है। इसके मुद्रण का काल प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर श्रावण कृष्णा १४ सं० १९४० छपा हुआ है। गणपाठ के छप जाने का उल्लेख मुन्शी समर्थदान के २०-८-८३ (=भाद्र कृ० २, सं० १९४० के पत्र में भी है। देखो पत्र और विज्ञापन, भाग ४, पृष्ठ ४५४, पं० ११।

संशोधक

गणपाठ के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक का नाम **पण्डित ज्वालादत्त छपा है।**

यदि इस पुस्तक में बीच-बीच में छूटे हुए गण तथा अन्त में गण-पाठ के शब्दों की सूची छाप दी जाये तो ग्रन्थ बहुत उपयोगी हो जावे।

१३–उणादिकोष

(माघ कृष्णा १, सं० १९३९)

उणादिकोष वेदाङ्गप्रकाश का १३ वां भाग है। इसमें व्याकरण-शास्त्र के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग उणादिसूत्रों की सरल सुबोध व्याख्या है। इस भाग में यह विशेषता है कि यह संस्कृत में ही रचा गया है, केवल भूमिका के कुछ पृष्ठ हिन्दी भाषा में हैं।

उणादिसूत्र संस्कृत व्याकरण में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। पाणिनीय व्याकरण से सम्बन्ध रखने वाले दो प्रकार के उणादि-सूत्र हैं—एक पञ्चपादी और दूसरा दशपादी। दोनों प्रकार के सूत्रपाठों पर अनेक प्राचीन विद्वानों ने टीकाएं लिखी हैं। उन टीकाकारों के देश काल का वर्णन हमने स्वसम्पादित **"दशपादी-उणादिवृत्ति"** के उपोद्घात तथा **"संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास"** के द्वितीय भाग में उणादिपाठ के प्रकरण में विस्तार से किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उणादिसूत्रों की यह प्रकृत व्याख्या पञ्चपादी उणादिसूत्रों पर है। अनेक विद्वान् इन सूत्रों को शाकटायन प्रणीत मानते हैं, परन्तु यह सर्वथा अशुद्ध है। इस की विवेचना हमने "संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास" के द्वितीय भाग के उणादिपाठ के प्रकरण में विस्तार से की है। ऋषि दयानन्द पञ्चपादी उणादिसूत्र को पाणिनि मुनि रचित मानते हैं। यह उन्होंने अपने पूर्ण संख्या २० के पत्र में भी लिखा हैं (द्र० भाग १, पृष्ठ ५४, पं० ८)। ऋ० द० के समान अन्य कई विद्वान् भी पञ्चपादी उणादिसूत्र को पाणिनि विरचित मानते हैं (द्र०–सं० व्या० शा० का इतिहास, उणादि प्रकरण)। हमारा विचार है कि ये पञ्चपादी उणादिसूत्र आपिशलि की रचना हैं। देखो हमारा "संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास" भाग २, उणादि प्रकरण।

वृत्ति का रचयिता

हम पूर्व साधारण रूप से लिख चुके हैं कि वेदाङ्गप्रकाश की रचना पण्डित **दिनेशराम, ज्वालादत्त** और **भीमसेन** आदि की है, परन्तु ऋषि के मार्गशीर्ष सुदि १० मंगलवार सं० १९३९ के पत्र से विदित होता है कि **उणादिसूत्रों की व्याख्या ऋषि ने स्वयं लिखी थी**। इस बात की पुष्टि ग्रन्थ की अन्तरङ्ग परीक्षा से भी होती है। इस व्याख्या में अनेक ऐसी विकेषतायें हैं, जो इसके ऋ० द० प्रणीत होने में दृढ़ प्रमाण हैं। हम यहां एक प्रमाण उपस्थित करते हैं—

सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में पृथिवी शब्द का निर्वचन करते हुए लिखाहै—"**प्रथ विस्तारे**······**यः प्रथते सर्वं जगद् विस्तृणाति स पृथिवी**।" आ० स० शताब्दी सं० २, पृष्ठ ३१-३२ (रामाकट्र सं०)।

धातुपाठ में '**प्रथ**' धातु का विस्तार अर्थ नहीं है, वहां "**प्रख्याने**" अर्थ लिखा है।

उणादिकोष में पृथु और पृथिवी शब्द का निर्वचन क्रमशः इस प्रकार किया है—

प्रथते कीर्तिं वा विस्तारयति स पृथू राजविशेषो विस्तीर्णः पदार्थो वा (उणादि १।२८)।

प्रथते विस्तीर्णा भवति पृथवी, पृथिवी, पृथ्वी······इत्येकार्थास्त्रयः (उणादि १।१५०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों ग्रन्थों में समान रूप से प्रथ धातु के विस्तार अर्थ का निरूपण होने से स्पष्ट है कि इस वृत्ति और सत्यार्थप्रकाश का लेखक एक ही व्यक्ति है ।

उणादिकोष का ऊपरि उद्धृत पाठ उसके प्रथम संस्करण के अनुसार है। द्वितीय संस्करण में भीमसेन वा ज्वालादत्त ने मूर्खता से इनका संशोधन इस प्रकार कर दिया है—

प्रथते कीर्ति वा प्रख्यायति स पृथू राजविशेषो[1] प्रख्यात: पदार्थो वा ।

महर्षि द्वारा लिखी गई उणादिकोष की यह व्याख्या समस्त उणादि-व्याख्याओं से उत्कृष्ट है। इस व्याख्या की विशेषता हमने स्व-संपादित दशपादी उणादिवृत्ति के उपोद्धत तथा संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास भाग २, उणादि के वृत्तिकार प्रकरण में विस्तार से दर्शाई है। अत: हम यहां उस का पिष्टपेषण नहीं करते ।

रचना काल

उणादिकोष की भूमिका के अन्त में रचना काल "माघ कृष्णा १ सं० १६३६" छपा है, परन्तु मार्गशीर्ष सुदि १० सं० १६३६ के ऋषि के पत्र से ज्ञात होता है कि **इस तिथि तक उणादिसूत्रों की वृत्ति बन चुकी थी।** केवल सूचीपत्र बनाना शेष था। देखो पत्र और विज्ञापन भाग २, पृष्ठ ६३८, पं० १०-१२ ।

मुंशी समर्थदान के एक पत्र से ज्ञात होता है कि ता० २७-८-८३ को उणादिकोष का सूचीपत्र छप रहा था। देखो पत्र और विज्ञापन, भाग ४, पृष्ठ ४६४, पं० २ ।

उणादिकोष का प्रथम संस्करण आश्विन कृष्णा ३ सं० १६४० में छपकर प्रकाशित हुआ था। यह काल प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ के ऊपर छपा है।

संशोधक

इस ग्रन्थ के वैदिक यन्त्रालय से जो चार संस्करण प्रकाशित हुए

१. यहां संशोधक ने संशोधन करते समय प्रथम सं० में 'विस्तीर्ण' शब्द के परे रहने पर जो सन्धि हुई थी, उसका संशोधन भी प्रमादवश नहीं किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, उन पर इस के संशोधक का नाम **पं० ज्वालादत्त** छपा हुआ है। वैदिक यन्त्रालय से छपी हुई केवल यही एक ऐसी पुस्तक है, जिस पर प्रथम संस्करण के बाद भी संशोधक का नाम छप रहा है।

उणादिकोष का शुद्ध संस्करण

ऋ० द० कृत इस सर्वतोभद्र वृत्ति के वैदिक यन्त्रालय से छपे संस्करण अत्यन्त भ्रष्ट हैं। प्रथम संस्करण के ऋ० द० के लिखे अनेक पाठ द्वितीय संस्करण में बदल दिये गयें। इस का एक उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं। इसलिये हमारी लगभग ४० वर्ष से यह इच्छा थी कि ऋ० द० के उणादिकोष की वृत्ति का एक शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया जाये इस के साथ एक इच्छा और भी थी कि इस वृत्ति पर विस्तृत विवरण लिखा जाये। इन में से प्रथम इच्छा की पूर्ति रा० सा० चौधरी प्रतापसिंह जी (करनाल) के सहयोग से पूर्ण हुई। हमने उनके 'रा० ब० चौ० नारायणसिंह प्रतापसिंह धर्मार्थ ट्रस्ट (करनाल) की ओर से सं० २०३१ (सन् १९७४) में इस वृत्ति का एक सुन्दर शुद्ध संस्करण छपवाया है। इस में शतशः टिप्पणियां हैं और अन्त में विविध प्रकार के १२ परिशिष्ट वा सूचियां दी हैं। प्रथम परिशिष्ट में 'हम ऋ० द० की वृत्ति पर कैसा विवरण लिखना चाहते थे' के निदर्शनार्थ १४ पृष्ठों में प्रथम सूत्र की वृत्ति पर विवरण छापा है। यदि कोई ऋ० द० का भक्त उन की वृत्ति पर इसी प्रकार एक विस्तृत विवरण लिख दे, तो यह व्याकरण के वाङ्मय में अद्भुत एवं अनुपम कार्य होगा।

—:o:—

१४– निघण्टु

(मार्गशीर्ष शु० १४, सं० १९३८)

यह वेदाङ्गप्रकाश का चौदहवां भाग है। यह ग्रन्थ मूल मात्र है। इसके रचयिता यास्कमुनि है। अनेक आधुनिक ऐतिहासिक निघण्टु को यास्क विरचित नहीं मानते। उनके मत का सप्रमाण खण्डन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय इतिहास के उद्भट विद्वान् श्री पं० भगवद्दत्तजी ने अपने वैदिक वाङ्मय के इतिहास के 'वेदों के भाष्यकार' नामक भाग में भले प्रकार किया है। इस विषय को पाठक उन्हीं के ग्रन्थ में देखें।

महर्षि ने सर्व साधारण के लाभार्थ इस ग्रन्थ को अनेक हस्तलिखित प्रतियों से मिलाकर शुद्ध करके छपवाया था। विशेष पाठान्तर नीचे टिप्पणी में दर्शाए हैं।

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित के पृष्ठ ६५१ पर बनेड़े की एक घटना इस प्रकार लिखी है—

"बनेड़े में महाराज ने सरस्वती भण्डार नामक राज-पुस्तकालय के निघण्टु से अपने निघण्टु का मिलान करके ठीक किया।"

ऐसा ही उल्लेख पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) के पृष्ठ ५६१ में मिलता है।

महर्षि ने बनेड़ा में कार्तिक कृ० ३ से कार्तिक शु० ४ (सं० १९३८) तदनुसार १०-२६ अक्टूबर (सन् १८८१) तक निवास किया था।

परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में निघण्टु की दो छपी हुई प्रतियां हैं। एक है देवराजयज्वा कृत टीका सहित और दूसरी प्रो० राथ सम्पादित निरुक्त के साथ छपी हुई। देवराजयज्वावाली पुस्तक बम्बई के सेठ मथुरादास ने स्वामीजी को भेंट की थी। उस पर सम्पादकीय वक्तव्य के प्रारम्भिक पृष्ठ पर गुजराती में—"**स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने शेठ मथुरादास तरफ थी नजर कर्यु ता० २२ फरवरी १८८२**" लिखा है। इस पुस्तक के मूल निघण्टु के पाठ पर काली स्याही से कुछ संशोधन किया हुआ है, परन्तु यह संशोधन स्वामीजी के हाथ का प्रतीत नहीं होता।

प्रो० राथ द्वारा सम्पादित निरुक्तान्तर्गत निघण्टु पर काली पेंसिल से कुछ पाठ भेद लिखे हुये हैं और वे **ऋषि दयानन्द के हाथ के हैं**। अतः सम्भव है, ये संशोधन स्वामीजी ने बनेड़ा में ही किये होंगे। यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये कि स्वामीजी के अपने संग्रह में भी मूल निघण्टु की कुछ हस्तलिखित प्रतियां थीं।

निघण्टु के प्रत्येक खण्ड के अन्तिम पद पर स्वर-चिह्न उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि उसकी अगले 'इति' पद से सन्धि हो जाने से स्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तित हो जाता है। पूर्व निर्दिष्ट राथ के संस्करण पर **स्वामीजी ने प्रथमाध्याय के प्रारम्भिक १० खण्डों के अन्तिम पदों का स्वर पेंसिल से लगाया है।** वैदिक यन्त्रालय के सं० १९८९ से पूर्व के छपे निघण्टुओं में प्रथमाध्याय के १४ खण्ड तक खण्ड के अन्तिम पद पर स्वर उपलब्ध होते हैं। हमने ऋषि की शैली को ध्यान में रखते हुए सम्पूर्ण निघण्टु के प्रत्येक खण्ड के अन्त्य पद पर स्वर चिह्न दे दिये हैं। यह संशोधन हमने सन् १९४५ के प्रारम्भ में किया था।

संशोधन काल

निधिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षसिते दले।
चतुर्थ्यां गुरुवारेऽयं निघण्टुः शोधितो मया॥

अर्थात् सं० १९३९ मार्गशीर्ष शुक्ला १४ गुरुवार (१४ दिसम्बर १९८२) को निघण्टु का संशोधन किया।

निघण्टु की भूमिका में संशोधन स्थान उदयपुर लिखा है। तिथि का निर्देश नहीं है। ऋषि ने मार्गशीर्ष सुदि १० मंगलवार सं० १९३९ के पत्र में मुन्शी समर्थदान को लिखा है—"**निघण्टु सूचीपत्र के सहित तुम्हारे पास भेज दिया है।**"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६३८।

इस से प्रतीत होता है कि मार्गशीर्ष शुक्ला ४ सं० १९३९ को निघण्टु का शोधन के कर मार्ग सुदि १० (सं० १९३९) तक छपने को भेज दिया था।

मुद्रण काल

निघण्टु का मुद्रण आश्विन कृष्णा ३ सं० १९४० में समाप्त हुआ था। यह काल इसके प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर छपा है। मुंशी समर्थदान ने २०-८-८३ (भाद्र कृष्णा २, सं० १९४०) के पत्र में लिखा है—"**आज निघण्टु की सूची छप चुकी।**"

पत्र और विज्ञापन, भाग ४, पृष्ठ ४५४।

निरुक्त ब्राह्मण आदि के प्रसिद्ध शब्दों की सूची

ऋषि के मार्गशीर्ष शुक्ला १० मंगलवार सं० १९३९ के पत्र से ज्ञात होता है कि ऋषि निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रसिद्ध शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सूची बनाकर निघण्टु के अन्त में छापना चाहते थे। पत्र का लेख इस प्रकार है—

"निरुक्त और ब्राह्मणों के प्रसिद्ध शब्दों की संक्षिप्त सूची भी बनाकर भेजेंगे सो निघण्टु की सूची के अन्त में छपवाना।"

पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६३८, पं० १३-१५।

निरुक्त और शतपथ ब्राह्मण की एक सूची परोपकारिणी सभा के संग्रह में सुरक्षित है, क्या यह वही सूची है, जिसका ऊपर के पत्र में उल्लेख है? पत्र में वर्णित सूची निघण्टु के अन्त में क्यों नहीं छपी, यह अज्ञात हैं।

मुंशी समर्थदान के २०-८-८३ के पत्र में निघण्टु को वेदाङ्ग-प्रकाश में सन्निविष्ट करने पर आपत्ति की थी और इस विषय में स्वामीजी से आज्ञा मांगी थी।

पत्र और विज्ञापन, भाग ४, पृष्ठ ४५५, पं० १०-२५।

इससे इतना स्पष्ट हैं कि निघण्टु की वेदाङ्गप्रकाश में गणना ऋषि की आज्ञा से हुई थी। सम्भव है यदि स्वामीजी कुछ दिन और जीवित रहते तो वे वेदाङ्गप्रकाश के अन्तर्गत वेद के अन्य अङ्गों की पुस्तकों का भी प्रकाशन करते।

संशोधक

निघण्टु के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ पर संशोधक का नाम **पं० ज्वालादत्त** छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकादश अध्याय

प्रसिद्ध शास्त्रार्थ[1]

ऋषि दयानन्द के जीवनचरितों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ऋषि ने अपने प्रचार-काल में विपक्षियों से अनेक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ किये थे। कुछ एक शास्त्रार्थ नियमित रूप से लिखे गये थे और उसी समय छप कर प्रकाशित भी हुये थे। उन में से जिन शास्त्रार्थों का हमें निश्चित ज्ञान हो सका, उनका वर्णन हम इस अध्याय में करते हैं—

१–प्रश्नोत्तर हलधर

(श्रावण कृष्णा ८ सं० १९२६

महर्षि के १२ अप्रेल सन् १८७८ ई० को दानापुर-निवासी बाबू माधोलाल के ७ अप्रेल १८७८ के पत्र[2] के उत्तर में लिखे हुए पत्र में **"प्रश्नोत्तर हलधर"** नामक एक 'आना मूल्य' की लघु पुस्तक का उल्लेख मिलता हैं। देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन', भाग १, पृष्ठ १४५, पं० १६।

पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित से विदित होता है कि पं० हलधर ओझा से स्वामीजी के दो शास्त्रार्थ हुए थे। प्रथम-ता० १९, २० जून सन् १८६९ ई० (ज्येष्ठ शुक्ला १०, ११ स० १९२६ वि०) को **फर्रुखाबाद** में, और दूसरा—३१ जुलाई सन् १८६९ ई० (श्रावण कृष्णा ८ सं० १९२६) को **कानपुर** में हुआ था। देखो जीवन-चरित पृष्ठ १४०, १५०। द्वितीय शास्त्रार्थ के मध्यस्थ कानपुर के

---

१. इस प्रकरण में जिन शास्त्रार्थों का विवरण लिखा गया है, उन में से प्रथम 'प्रश्नोत्तर हलधर' को छोड़ कर सभी को हमने 'दयानन्द-शास्त्रार्थसंग्रह' तथा 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन' नामक संग्रह में छापा है। इन का सम्पादन डा० श्री भवानीलाल भारतीय ने किया है।

२. द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पूर्ण संख्या ३४, पृष्ठ १५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्कालिक असिस्टेण्ट कलक्टर डबल्यू थेन (w. rhaina) साहब थे। थेन साहब संस्कृत अच्छी प्रकार समझते थे।

श्री पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ६२७-६४१ पर हलधर ओझा के साथ हुए दोनों शास्त्रार्थों का विस्तृत वर्णन मिलता है। पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित में भी पृष्ठ १४०-१४२ तथा १५०-१५२ तक कुछ प्रश्नोत्तर संगृहीत हैं।

ये दोनों शास्त्रार्थ संस्कृत में हुए थे, क्योंकि स्वामी जी उन दिनों केवल संस्कृत में ही भाषण करते थे।

इन दोनों शास्त्रार्थों का वर्णन हिन्दी में "फर्रुखाबाद का इतिहास" नामक ग्रन्थ (आर्य समाज फर्रुखाबाद द्वारा प्रकाशित, सन् १९३१ ई०) के पृष्ठ १०८—११४ में उपलब्ध होता है।

प्रश्नोत्तर हलदर नामक पुस्तक में इन दोनों शास्त्रार्थों में से किसी शास्त्रार्थ के प्रश्नोत्तरों का उल्लेख रहा होगा। हमारे विचार में ये प्रश्नोत्तर कानपुर शास्त्रार्थ के रहे होंगे। यह पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। ये 'प्रश्नोतर' पुस्तकरूप में हिन्दी में छपे थे या संस्कृत में, यह भी ज्ञात नहीं है।

'फर्रुखाबाद का इतिहास' के पृष्ठ ११३ पर लिखा है—

"स्वामीजी यहां से अगस्त (१८६९ ई०) के आरम्भ में शृङ्गी-रामपुर, जलालाबाद और कन्नौज होते हुए कानपुर पधारे।" यह अयुक्त है, क्योंकि ३१ जुलाई सन् १८६९ को कानपुर में हलधर ओझा के साथ शास्त्रार्थ हुआ था, यह हम ऊपर लिख चुके हैं। इसी प्रकार पृष्ठ ११४ पर कानपुर शास्त्रार्थ के मध्यस्थ डबल्यू थेन[1] की सम्मति का जो भाषानुवाद छपा है, वह भी ठीक नहीं है। उस भाषानुवाद में १७ अगस्त सन् १८६९ को शास्त्रार्थ होना लिखा है, परन्तु उसी पृष्ठ पर मध्यस्थ डबल्यू थेन की जो सम्मति अंग्रेजी में छापी है, उसमें १७ अगस्त को शास्त्रार्थ होने का कोई वर्णन नहीं है। इसी प्रकार डबल्यू थेन की सम्मति के नीचे 'कानपुर' शब्द के साथ जो "७-८-१८६९" तारीख दी हुई थी, उसे भी नहीं छापा गया है।

---

१. हिन्दी में तथा अंग्रेजी में छपी सम्मति में डबल्यू. थेन को डबल्यू थेरा W. Thaira छापा है, जो कि अशुद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत होता है इतिहास लेखक को १७ अगस्त की भूल पं० हृदयनारायण की ओर से १७ अगस्त को दिये गये विज्ञापन के कारण हुई होगी है। उक्त विज्ञापन में स्पष्ट लिखा है कि "उपर्युक्त प्रशंसनीय महोदय की मिति ७ अगस्त सन् १८६९ की लिखी अंग्रेजी चिट्ठी......नीचे लिखी जाती है" नीचे जो अंग्रेजी चिट्ठी छपी है उस में भी 'कानपुर' शब्द के आगे "७-८-१८६९" छापना रह गया है। कानपुर शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में थेन साहब की सम्मति की अविकल प्रतिलिपि और उस का भाषानुवाद पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित पृष्ठ १५२ से नीचे दे रहे हैं—

Gentlemen.

At the time in guestion, I decided in favour of Dayanand Saraswati Fakir, and believe his argnmeuts are in accordance with vedas. I think he won the day, If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days.

Cawnpore. 7-8-1869 Yours obediently

W. thaine

भद्र पुरुषो उस समय मैंने दयानन्द सरस्वती फकीर के पक्ष में अपना निर्णय दिया था और मुझे विश्वास है कि उन की युक्तियां वेद के अनुकूल थीं। मेरे विचार में उन की विजय हुई। यदि आप कहेंगे तो मैं अपने निर्णय के कारण थोड़े दिनों में बतला दूंगा।

कानपुर ७-८-१८६९ हस्ताक्षर—आप का आज्ञानुवर्ती

डब्लू थेन

२—काशी-शास्त्रार्थ

(कार्तिक सं० १९२६ वि०)

काशी पौराणिकों का सुदृढ़ गढ़ है। वहां के पण्डितों की धर्मव्यवस्था सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रामाणिक मानी जाती है। अत एव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी महाराज के मन में पौराणिकों के गढ में जा कर मूर्तिपूजा आदि वेदविरुद्ध मन्तव्यों का खण्डन करने का विचार चिरकाल से था। तदनुसार गङ्गा के किनारे भ्रमण और उपदेश करते हुए कार्तिक कृ० २ या ३ सं० १९२६ वि० (२२ या २३ अक्टूबर १८६९ ई०) को काशी पधारे। वहां जाते ही बड़े-बड़े विज्ञापन छपवा कर काशी के दिग्गज पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये आहूत किया। महर्षि के आह्वान से समस्त नगर में खलबली मच गई और सुदृढ़ माना जाने वाला गढ़ भी चलायमान हो उठा। महाराज काशी-नरेश के प्रोत्साहन से पण्डितों ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया और उस की तैयारी के लिये पर्याप्त समय तक रातों जाग-जाग कर तैयारी की। अन्त में कार्तिक सुदि १२ मंगलवार सं० १९२६ वि० (१६ नवम्बर १८६९ ई०) के दिन महाराज काशी नरेश की अध्यक्षता में पण्डितों की अपार सेना अकेले महारथी दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करने के लिये "आनन्द बाग"[1] नामक धर्म-क्षेत्र में एकत्रित हुई। इस शास्त्रार्थ में महाराज काशी-नरेश के आश्रित तथा काशी के अन्य अनेक पण्डितों ने भाग लिया था, जिन में स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती, पं० बालशास्त्री, ताराचरण तर्करत्न आदि प्रमुख थे।

शास्त्रार्थ का मुख्य विषय "**मूर्तिपूजा वेदविहित है वा नहीं**" यह था, परन्तु काशी के पण्डितों ने इस में अपनी विजय असम्भव जान कर विषयान्तर में शास्त्रार्थ करने लगे। यह सारा शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में ही हुआ था।

इस 'काशीशास्त्रार्थ' नामक पुस्तक में इसी प्रसिद्ध शास्त्रार्थ का यथार्थ वर्णन है। इस पुस्तक के अवलोकन से स्पष्ट विदित होता है कि काशी के तात्कालिक बड़े-बड़े विश्रुत, पण्डित वेद-विद्या से सर्वथा विहीन थे।

पं० सत्यव्रत सामश्रमी विरचित 'ऐतरेयालोचन' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १२७ से ज्ञात होता है कि इस शास्त्रार्थ में पक्ष-प्रतिपक्ष दोनों ओर

---

१. यह स्थान काशी में दुर्गाकुण्ड तालाब के पास है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पं० सत्यव्रत सामश्रमी लेखक चुने गये थे[१]। पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने इस शास्त्रार्थ का विवरण अपनी **'प्रत्नकम्रनन्दिनी'** (The Hindu Commentator) दिसम्बर सन् १८६९ के अङ्क में संस्कृत में प्रकाशित किया था, जो कि इस 'काशीशास्त्रार्थ' से पर्याप्त मिलता है। यद्यपि काशीशास्त्रार्थ नाम से प्रकाशित पुस्तिका और 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' में प्रकाशित शास्त्रार्थ के विवरण[२] में कुछ भेद है, तथापि मौलिक भेद कुछ नहीं है। कुछ प्रश्नोत्तर आगे पीछे छपे हैं।

काशी-शास्त्रार्थ का लेखक

यद्यपि इस ग्रन्थ के मुख पृष्ठ या आद्यन्त में कहीं पर भी महर्षि के नाम का उल्लेख नहीं है, तथापि इस ग्रन्थ के संस्कृत भाग की महर्षि के अन्य ग्रन्थों की संस्कृत से तुलना करने पर स्पष्ट विदित होता है कि इस ग्रन्थ का संस्कृत भाग अवश्य ही स्वामीजी महाराज का लिखा हुआ है। **निस्तार्य, निस्सृतम्, कोलाहाल** आदि अनेक अन्यत्र अप्रयुक्त असाधारण पद इसके सुदृढ़ प्रमाण हैं।

प्रथम संस्करण

काशी का यह प्रसिद्ध शास्त्रार्थ कुछ समय पश्चात् ही मुंशी हरवंसलाल की सम्मति से पं० गोपीनाथ पाठक ने 'बनारस लाइट यन्त्रालय' में पुस्तकरूप में मुद्रित कर दिया था। इस के अन्त में ऋ० द० ने प्रश्नोत्तर से जो सत्योपदेश किया था, वह भी शास्त्रार्थ के साथ ही दूसरे भाग के रूप में छपा था। पं० लेखराम कृत जीवन-चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१६ के अनुसार यह संस्करण दिसम्बर सन् १८६९ में अर्थात् शास्त्रार्थ से लगभग १ मास पश्चात् ही छप

---

१. परमहो काश्यामानन्दोद्यानविचारे यत्र वयमास्म मध्यस्थाः, विशेषतो वादिप्रतिवादिवचसामनुलेखनेऽहमेक एवोभयपक्षतो नियुक्तः। ऐतरेयोलोचन पृष्ठ १२७।

२. हमने 'दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह' नाम से सं० २०२७ (सन् १९७०) में जो शास्त्रार्थ संग्रह छापा था, उस के द्वितीय परिशिष्ट में पृष्ठ २१४–२३८ तक पं० सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' पत्रिका में प्रकाशित पाठ भी हिन्दी अनुवाद के सहित छापा है। उस का पुन संशोधित संस्करण गत वर्ष सं० २०३९ (सन् १९८२) में प्रकाशित हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। यह संस्कृत और भाषा में २४ पृष्ठों में प्रकाशित हुआ था। यह सस्करण हमारे देखने में नहीं आया।

'तत्त्वबोधिनी' नाम्नी मासिक पत्रिका के ज्येष्ठ मास सं० १९२७ के पृष्ठ २७ पर 'नई पुस्तक समालोचना' स्तम्भ के अन्तर्गत जो समालोचना छपी है, उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"**शास्त्रार्थ व सत्यधर्मविचार**—"दयानन्द सरस्वती नामक किसी दिगम्बर संन्यासी का काशी के पंडितों से विचार हुआ था। एक दिन प्रश्नोत्तर समेत जो उपदेश दिया था वही उपदेश मुंशी हरवन्सलाल की सम्मति से गोपीनाथ पाठक ने पुस्तकाकार में 'बनारस लाइट यन्त्रालय' में मुद्रित किया है। यह संस्कृत भाषा में रचित है और हिन्दी भाषा के अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ है।

शास्त्रार्थ की पुस्तक (प्रथम भाग) का विचार—काशी में जिस प्रकार विचार हुआ था उसी प्रकार विस्तार पूर्वक इसमें लिखा है। दयानन्द सरस्वती स्वामी बोले कि पाषाणादिनिर्मित प्रतिमा का पूजन शैव, शाक्त इत्यादि बहुत से सम्प्रदाय और रुद्राक्ष माला प्रभृति तथा रेखा तिलक आदि के धारण करने का विधान वेद में बिल्कुल नहीं मिलता। वेदविरुद्ध आचरण और वेद में जिसकी विधि नहीं है उसका अनुष्ठान करना महापाप का कारण है। वर्तमान काशीराज के उद्योग से नानादेश के पंडितों ने उक्त मत का खण्डन करने के लिये आपस में विचार किया किन्तु पुस्तक के पढ़ने से विदित होता है कि कोई पण्डित वेद से प्रतिमापूजा प्रभृति व्यवस्थाओं का प्रवर्तन (सिद्ध) करके स्वामी जी को परास्त न कर सका। इसके स्वामी जी को सबसे बड़ा वेद जानने वाला पंडित कहके मानना चाहिये।

किन्तु पुस्तक के पढ़ने से एक विषय में इस स्थान पर उनकी वितण्डा (मिथ्या तर्क) प्रतीत होती हैं अर्थात् इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वेद के समय में एक प्रकार के पुराण प्रचलित थे, और वेद पढ़ने से यह विदित होगा कि वे सब पुराण वेद के अन्तर्गत हैं। परन्तु स्वामी जी ने बुद्धि की चतुरता से पुराणों का होना ही लुप्त कर दिया।

'सत्यधर्म विचार' नाम के दूसरे भाग में—प्रश्नोत्तररूप से सत्योपदेश दिया है, उससे बहुत-सी उत्कृष्ट बातें विदित हुईं। स्वामी जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें स्त्रियों के लिये न्यून से न्यून १५ वर्ष की अवस्था में व्याह देने की व्यवस्था देते हैं और 'कुमार्यवस्था में रजस्वला होने से माता-पिता पापी होते हैं'—यह जो लोगों का संस्कार है इसका वह खण्डन करते हैं (यह भी उत्कृष्ट है) किन्तु वे भ्रम के वश हो, देवर द्वारा क्षेत्रज सन्तानोत्पत्ति करने की वहुत बुरी व्यवस्था प्रदान करते हैं। 'कोई शास्त्र सम्पूर्ण प्रमाण है और कोई शास्त्र समस्त अप्रमाण है', उनका यह जो संस्कार है इसी से उनका यह भूल हुआ है।" (तत्वबोधिनी मासिक पत्रिका; ज्येष्ठ मास, संवत् १७९२, सं० ३२१, पृष्ठ ३६)।

हम ने यह उद्धरण पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ १५६ से उद्धृत किया है। उद्धरण के अन्त में **सं० १७९२** छपा है। वह शालिवाहन **शक संवत्** है। तदनुसार वि० सं० १९२७ जानना चाहिये।

इस से दो मास पूर्व चैत्र सं० १९२७ (अप्रेल सन् १८८०) की '**ज्ञानप्रदायिनी**' पत्रिका (लाहौर) में इस की समालोचना छपी थी। द्र० पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ १४७-१५८।

'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या १४ पर स्वामी पूर्णानन्द के नाम से 'प्रश्नोत्तररूप' एक विज्ञापन छपा है। इस में चौबीसवें प्रश्न के उत्तर में (भाग १, पृष्ठ ४७ पर) 'सत्यधर्मविचार' का निर्देश है। यह सम्भवतः काशी-शास्त्रार्थ ही प्रतीत होता है। इसके विषय में 'जिसने यन्त्रालय में छपवाई है उस का मत उस (पुस्तक) में है, मेरा मत नहीं' लिखने का कारण सम्भवतः इस में ब्राह्मण ग्रन्थों का वेद के नाम से निर्देश होना रहा होगा।

जनवरी सन् १८८० ई० (सं० १९३६) के 'आर्यदर्पण' पत्रिका के पृष्ठ १० से ज्ञात होता है कि काशी-शास्त्रार्थ का एक संस्करण मुंशी हरवंशलाल के "**स्टार प्रेस**" काशी से सं० १९२७ वि० में प्रकाशित हुआ था 'आर्यदर्पण' का लेख निम्न प्रकार है—

"अब हम इन सब भ्रम की बातों के नाश के लिये उस शास्त्रार्थ को जिसको मुंशी हरवंशलाल ने सं० १९२७ में छपवाया था शुद्ध करके और उस पर कितने एक नोट लिख के यहां आर्य भाषा और उर्दू में ठीक-ठीक प्रकाशित करते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लेख से यह सन्देह होता है कि हरवंशलाल ने अपने **स्टार** प्रेस में भी उक्त शास्त्रार्थ छपवाया था। यदि मुन्शी बख्तावरसिंह के लेखन में भूल न हुई हो तो यह काशीशास्त्रार्थ का **द्वितीय संस्करण** रहा होगा।

आर्यदर्पण में जो आर्यभाषानुवाद छपा था, वह पूर्व पं० गोपीनाथ द्वारा प्रकाशित अनुवाद से भिन्न था अथवा वही था, यह भी ज्ञात नहीं होता। उर्दू अनुवाद तो निश्चित ही मुन्शी बख्तावरसिंह का किया हुआ था।

यह अनुवाद 'आर्यदर्पण' के उपर्युक्त अंक के पृष्ठ १०-२० तक प्रकाशित हुआ है। **काशीशास्त्रार्थ के जो संस्करण वैदिक यन्त्रालय में छपे हैं, उनमें आर्यदर्पण वाला भाषानुवाद ही छपा है।** आर्यदर्पण के इसी अंक में पृष्ठ २१ से २४ तक **'एडीटोरियल नोट्स'** के नाम से एक नोट छपा है। वही नोट अति स्वल्प भेद से वर्तमान में 'मैनेजर वैदिक यन्त्रालय' के नाम से भूमिकारूप में छपा हुआ मिलता है। परन्तु सं० १९३७, १९३९ वाले संस्करणों की भूमिका के अन्त में 'मैनेजर वैदिक यन्त्रालय' का नाम नहीं है।

मुंशी बख्तावरसिंह के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय से काशी-शास्त्रार्थ का **प्रथम बार मुद्रण** सं० १९३७ में हुआ था। इस संस्करण पर प्रथम आदि संख्या का निर्देश नहीं था। वस्तुतः यह काशी शास्त्रार्थ का द्वितीय अथवा तृतीय संस्करण था। क्योंकि इस का प्रथम संस्करण काशी निवासी मुंशी हरवंशलाल की प्रेरणा से पं० गोपीनाथ पाठक ने 'लाइट प्रेस' बनारस में छपवाया था। आर्यदर्पण में निर्दिष्ट हरवंशलाल द्वारा स्टार प्रेस में छपवाया पृथक् संस्करण हो तो वैदिक यन्त्रालय में छपा १९३७ का तृतीय संस्करण होना चाहिये। तदनन्तर वैदिक यन्त्रालय से काशी शास्त्रार्थ का दूसरा संस्करण सं० १९३९ में प्रकाशित हुआ। वैदिक यन्त्रालय के तात्कालिक प्रबन्धकर्ता मुंशी समर्थदान को 'लाइट प्रेस' तथा 'स्टार प्रेस' बनारस में छपे संस्करणों का ज्ञान नहीं रहा होगा। अत एव उसने सं० १९३९ में छपे संस्करण पर द्वितीय संस्करण छाप दिया। अजमेर से सन् १९२५ में छपे शताब्दी-संस्करण में भाग १, पृष्ठ ७९७ के सामने काशी-शास्त्रार्थ के विभिन्न संस्करणों की जो तालिका छपी है, उस में सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९२६ (सन् १८६९) के संस्करण का निर्देश है, परन्तु वैदिक यन्त्रालय सं० १९३७ में जो प्रथम बार छपा है, उस का निर्देश नहीं है।

काशी-शास्त्रार्थ में प्रयुक्त 'वेद' शब्द

काशीशास्त्रार्थ में अनेक स्थानों पर ब्राह्मण और उपनिषत् ग्रन्थों के लिये 'वेद' शब्द का प्रयोग मिलता है। यथा—

यद्वै किञ्चन मनुरवदत् तद् भेषजं भेषजताया इति सामवेदे ।[1]
पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते ।[2]
यदि वेदेष्वयं पाठो न भवेत्......।[3]

इन उद्धरणों में प्रथम में ताण्ड्य ब्राह्मण के लिये, द्वितीय में शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् के लिये तथा तृतीय में छान्दोग्योपनिषद् के लिये 'वेद' शब्द का प्रयोग किया है।

वैदिक यन्त्रालय काशी के छपे काशी-शास्त्रार्थ के संस्करणों में ऐसे स्थानों पर '**पण्डितानामेव मतमङ्गीकृत्योक्तमतो नेदं स्वामिनो मतम्।** "**इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं, नेदं स्वामिनो मतं वेदितव्यम्**' इत्यादि टिप्पणियां मिलती हैं, परन्तु इस अभिप्राय वाली तथा अन्य टिप्पणियां सभी पीछे से दी गई हैं। क्योंकि सं० १९२६ तक ऋ० द० ब्राह्मण ग्रन्थों को 'वेद' ही मानते थे। '**ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं**' इस मत का साङ्गोपाङ्ग प्रतिपादन सर्व प्रथम ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ही मिलता है। संस्कारविधि के प्रथम संस्करण में भी क्वचित् ब्राह्मण के लिये वेद शब्द उपलब्ध होता है। आर्याभिविनय में यजुर्वेद के मन्त्रों का आरम्भ तैत्तिरीय आरण्यक के '**सह नाववतु**' मन्त्र से होता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद-संज्ञा का खण्डन करने पर भी ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में मन्त्र ब्राह्मण मान को वेदने वालों के द्वारा प्रयुक्त **मन्त्र-भाग** और **ब्राह्मण-भाग** शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। यथा—

अथ कोऽयं वेदो नाम मन्त्रभागसंहितेत्याह। पृष्ठ ९१।✲
मन्त्रभागस्यैव वेदसंज्ञां मत्वा......। पृष्ठ ९९।
ब्राह्मणभागस्यापि वेदसंज्ञा...। पृष्ठ ९१।

---

१. द्र०—दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह, पृष्ठ २७। ✲रालाकट्रसंस्क०
२. द्र०—वही, पृष्ठ ३७। ३. द्र०—वही, पृष्ठ ४१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार के प्रयोग प्रायः करके अनिच्छन् अनवधानतावश हो जाते हैं। भाग और भागी, अवयव और अवयवी का परस्पर अविनाभाव संबन्ध है। भाग शब्द का प्रयोग किसी एक पदार्थ के दो वा अधिक अवयवों के लिये होता है। सभी भागों को मिलाकर उस पदार्थ की पूर्णता होती है। जैसे कोई कहे कि यजुर्वेद में गद्यभाग और पद्यभाग हैं। इस का तात्पर्य होगा यजुर्वेद की सम्पूर्णता दोनों पर पर आश्रित है। इसी प्रकार 'मन्त्रभाग' और 'ब्राह्मणभाग' शब्दों का प्रयोग किसी एक वस्तु की अपेक्षा रखते हैं। साम्प्रतिक वैदिकों के यहां तो मन्त्र ब्राह्मण दोनों की वेद संज्ञा स्वीकृत होने से मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग प्रयोग सार्थक हैं। परन्तु केवल मन्त्र-संहिता की वेद संज्ञा पक्ष में मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग शब्दों का प्रयोग अनर्थक और भ्रामक हैं। अतः आर्य विद्वानों को ऐसे प्रयोग से सावधानता पूर्वक बचना चाहिये। इसी प्रकार हम प्रायः आर्य समाज के विद्वानों और नेताओं के मुख से कार्य के आरम्भ के लिये **श्रीगणेश** शब्द का प्रयोग सुनते हैं। परन्तु इस प्रयोग के पीछे जो पौराणिक भावना 'प्रत्येक कर्म के आरम्भ में मंगलार्थ गणेश पूजा करनी चाहिये' को ध्यान में नहीं रखते। ऐसे ही किसी असम्भव बात के लिये झट मुहावरा प्रयुक्त कर देते हैं—'न नौ मन तैल होवे न राधा नाचे'। इस प्रकार के परम्परा से प्राप्त पौराणिक मान्यता प्रयुक्त सभी शब्दों वा मुहावरों के प्रति हमें अत्यन्त सजग रहना चाहिये।

उर्दू अनुवाद

'आर्यदर्पण' जनवरी १८८० ई० के अङ्क में काशीशास्त्रार्थ का जो भाषानुवाद छपा था, उसके साथ ही दूसरे कालम में इसका उर्दू अनुवाद भी प्रकाशित हुआ था। यह उर्दू अनुवाद मुंशी बख्तावरसिंह, तात्कालिक प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय का किया हुआ है। आषाढ़ सं० १९३७ में छपे यजुर्वेदभाष्य के १५ वें अंक के अन्त में वैदिक यन्त्रालय से प्राप्त होने वाली पुस्तकों की सूची में 'काशीशास्त्रार्थ भाषा वा उर्दू =)" छपा है। इससे ज्ञात होता है कि पूर्वोक्त 'आर्य दर्पण' में छपा हुआ हिन्दी उर्दू भाषा युक्त काशी शास्त्रार्थ पृथक् पुस्तककार भी छपा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—हुगली-शास्त्रार्थ और प्रतिमापूजन-विचार (चैत्र सं० १९३०)

सं० १९३० के आरम्भ में श्री स्वामीजी महाराज का शास्त्रार्थ **प्रतिमा-पूजन** विषय पर (संस्कृत में) पण्डित ताराचरण तर्करत्न के साथ हुगली में हुआ था। तर्करत्नजी महाराज काशीनरेश की राज-सभा के प्रतिष्ठित पण्डित थे। वे जिला चौवीस परगना बङ्गाल प्रान्त में 'भाटपाड़ा'[1] नामी स्थान के निवासी थे, जो कि हुगली नदी के बांयें तट पर संस्कृत का अच्छा केन्द्र है। यह शास्त्रार्थ ऋ० द० की कलकत्ता यात्रा के समय हुआ था।

उक्त शास्त्रार्थ मङ्गलवार चैत्र शुक्ला ११ सं० १९३० वि (८ अप्रेल १८७३ ई०) को हुगली में हुआ था। यही शास्त्रार्थ सं० १९३० में आर्यभाषा में छपकर प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक के विषय में श्री पण्डित लेखरामजी ने निम्नलिखित विवरण प्रकाशित किया है—

"सं० १९३० (सन् १९७३) में यह शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में हुआ, उसी समय उसका अनुवाद बङ्गला भाषा में मुद्रित किया गया, और बहुत शीघ्र ही सं० १९३० वि० (सन् १९७३ ई०) में **'लाइट प्रेस बनारस'** में २८ पृष्ठ का **बा० हरिश्चन्द्र** एक मूर्तिपूजक ने जो कि गोकुलिया गोस्वामी मत में था, उसे शब्दशः आर्य भाषा में छपवा कर मुद्रित किया। आज तक पांच बार छप चुका है, परन्तु पृथक् पुस्तक (अर्थात् हुगली शास्त्रार्थ मात्र) विक्रयार्थ नहीं मिलता।

पण्डित लेखराम सं० जीवनचरित्र पृष्ठ ७८१।[2]

यह पुस्तक हिन्दी भाषा में प्रथमवार **'प्रतिमापूजन-विचार'** के

---

१. भाटपाड़ा नाम का स्थान हुगली नगर से दक्षिण व पूर्व दिशा में लगभग चार मील की दूरी पर है और हुगली नगर वास्तव में हुगली नदी के दाहिने तट पर है, अतः दोनों स्थानों के बीच हुगली नदी है।

२. यह पृष्ठ संख्या उर्दू संस्करण की है। यह भाषानुवाद ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ १० पर दी गई पं० भगवद्दत्त जी की टिप्पणी से उद्धृत किया है। हिन्दी सं० में पृष्ठ ८१७ का पाठ बहुत अशुद्ध है। उस में सं० १९३४ तदनुसार सन् १८७७ में हुगली जाने का निर्देश किया है। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम से १८×२२ के आठ पृष्ठ वाले आकार में २८ पृष्ठों में प्रकाशित हुई थी[1]। उसके मुख पृष्ठ पर निम्न लेख छपा है—

प्रतिमापूजन विचार

श्री मद्द्यानन्द सरस्वती स्वामी और ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ जो कि हुगली में हुआ था। उसे बाबू हरिश्चन्द्र की आज्ञा से बनारस लाइट छापेखाने में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित किया सं० १९३०।

BENARES
PRINTED AT "THE LIGHT PRESS."
1873

इस पुस्तक में दो भाग हैं, पूर्वार्ध (१—१३ पृष्ठ तक) में उक्त हुगली शास्त्रार्थ है और उत्तरार्ध (१४—२८ तक) में प्रतिमापूजन पर स्वतन्त्र विचार है।

यह हुगली-शास्त्रार्थ (अर्थात् पूर्वार्ध भाग) फरवरी १८८० ई० के 'आर्यदर्पण' पृष्ठ ३५—४२ तक (आर्यभाषा और उर्दू दोनों में), तथा पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ २३४—२३७ तथा पण्डित देवेन्द्रनाथ सं० जीवनचरित पृष्ठ २३६—२३८ तक छपा है, परन्तु कहीं भी अपने शुद्ध रूप में नहीं है।

अब यह हुगली शास्त्रार्थ तथा प्रतिमापूजन विचार "**विज्ञापन-पत्रमिदम्**" इस शीर्षक से श्री पण्डित भगवद्दत्तजी द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" नामक संग्रह के भाग १ में पृष्ठ ९—३१ तक छपा है। इसमें पृष्ठ ९-२० पंक्ति १०

पंक्तियां आगे ही सं० १९३० तदनुसार सन् १८७३ में छपने का उल्लेख किया है। इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी संस्करण में लेखक वा मुद्रक के प्रमाद से भयङ्कर भूलें हुई हैं। इसी प्रसंग में लाइट प्रेस बनारस से १८ पृष्ठों में मुद्रण का निर्देश मिलता है, जब कि यह १८×२२ अठपेजी आकार के २८ पृष्ठों में छपा था।

१. इसकी एक प्रति श्री पण्डित भगवद्दत्तजी बी० ए०, माडलटाउन, लाहौर के संग्रह में थी। वह सन् १९४७ के उपद्रवों में वहीं नष्ट हो गई। उसी के आधार पर उन्होंने 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में इसे छपवाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक **"हुगली शास्त्रार्थ"** है और पृष्ठ २० पंक्ति ११ से **"प्रतिमापूजन विचार"** का प्रारम्भ होता है। दोनों को पृथक्-पृथक् दर्शाने के लिए हमने 'प्रतिमापूजन-विचार' के आरम्भ में **[प्रतिमादिशब्द-विचार]** ऐसा शीर्षक दे दिया है।

यहां पर ध्यान रहे कि मूल ग्रन्थ संस्कृत में ही लिखा गया था, क्योंकि ऋषि दयानन्द उस समय तक संस्कृत में ही सम्भाषण करते थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और स्वामी दयानन्द सरस्वती

पं० लेखराम जी के लेखानुसार हुगली शास्त्रार्थ को काशी के बा० हरिश्चन्द्र जो गोकुलिया गोस्वामी मत के अनुयायी थे, ने प्रथम बार सं० १९३० में हिन्दी भाषा में छापा था (द्र०—पृष्ठ २५५)।

ये बाबू हरिश्चन्द्र वे ही व्यक्ति हैं जो आगे चल कर हिन्दी-जगत् में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम से विख्यात हुए। बा० हरिश्चन्द्र पहले ऋ० द० के घोर विरोधी थे। काशी शास्त्रार्थ के समय भी ये उपस्थित थे (द्र०—पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ १५० पर शास्त्रार्थ में उपस्थित व्यक्तियों की सूची। इस सूची में बाईं ओर के व्यक्तियों में १३ वीं संख्या पर इनका नाम है)। शास्त्रार्थ के पश्चात् बाबू हरिश्चन्द्र ने ऋ० द० के विरोध में 'दयानन्द दूषण-मालिका' नाम की एक पुस्तक छपवाई थी।

बाबू हरिश्चन्द्र का यह विरोध कुछ मास तक ही रहा। पं० लेखराम जी कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ १७८ से ज्ञात होता है कि ऋषि दयानन्द ने तीसरी बार ज्येष्ठ सं० १९२७ में काशी आ कर 'अद्वैतमतखण्डन' पुस्तक लिखी और बनारस के लाइट प्रेस में छपवा कर प्रकाशित की थी। उस की प्रतिलिपि बा० हरिश्चन्द्र ने 'कविवचन-सुधा' नामक पत्रिका के खण्ड १ संख्या १४-१५ ज्येष्ठ आषाढ़ सं० १९२७ के अंकों में प्रकाशित की। (द्र० पं० लेखराम कृत जीवनचरित पृष्ठ १७६)। इस परिप्रेक्ष्य में ही उन के द्वारा सं० १९३० में हुगली शास्त्रार्थ को प्रकाशित करने को देखना चाहिये।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र यद्यपि अन्त तक गोस्वामी मत के अनुयायी ही रहे, परन्तु ये उदारप्रकृति के व्यक्ति थे। इस के दो प्रमाण हम नीचे उपस्थित करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मयुग (साप्ताहिक) के सन् १९७६ के अगस्त सितम्बर के अंकों में 'राय कृष्णदास' का 'भारतेन्दु संस्मरण' नामक लेखमाला छपी है। उस के १२ सितम्बर १९७६ के अंक में पृष्ठ २१ पर ४० वें संस्मरण में राय कृष्णदास ने लिखा है—

१—'भारतेन्दु जी की मान्यता थी कि भारतवर्ष में किसी नये धर्म की आवश्यकता नहीं, वैष्णवधर्म में एकेश्वरवाद पहले से विद्यमान है, साथ ही समाजसुधार की सारी गुंजाइशें भी। अपने इसी दृष्टिकोण से वे स्वामी दयानन्द के मत प्रवर्तन का प्रबल विरोध किया करते थे। यह होते हुए भी **स्वामी जी के व्यक्तित्व का उन्हें पूरा आदर था।**

जिस समय वह काशी पधारे केवल दो व्यक्ति उन्हें स्टेशन पर लाने गये थे, भारतेन्दु जी तथा बा० माधोदास (डा० भगवान्दास के पिता)।

[राय कृष्णदास ने इस घटना के काल का उल्लेख नहीं किया। ऋ० द० के किसी जीवनचरित में हमें यह घटना देखने को नहीं मिली। सम्भव है यह घटना चौथी वार फाल्गुन सं० १९२८ में आने के समय की होगी, क्योंकि इस बार वे बा० माधोदास के भाई लाला मधुसूदनदास के बगीचे में ठहरे थे। तीसरी बार जब ज्येष्ठ सं० १९२७ में काशी पधारे थे और बा० माधोदास के बाग में ठहरे थे, तब वे गंगातट पर भ्रमण करते हुए आये थे। रायकृष्णदास के लेखानुसार बा० हरिश्चन्द्र रेलवे स्टेशन पर लेने गये थे। अतः उक्त घटना का चौथी बार काशी-गमन के समय का होना अधिक संभव है।

२—'इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका के सम्पादक-मण्डल में भी स्वामी जी को रखा था।'

इस के नीचे हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका के '४ जुलाई १८७४ ई० खण्ड १, संख्या २०' के मुख पृष्ठ १-२ का फोटो छापा है। उस में भीतर के पृष्ठ २ पर 'श्री हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका के सहायक सम्पादक' शीर्षक के नीचे **श्री स्वामी दयानन्द** का नाम मिलता है। धर्मयुग में छपा हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका का फोटो बहुत खराब है। उस से ब्लाक नहीं बन सकता, अतः हम उसे प्रकाशित करने में असमर्थ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—सत्यधर्म-विचार या मेला चांदापुर

उर्दू (१२ अप्रेल १८७८ ई० से पूर्व[1])

हिन्दी (श्रावण शु० १२ सं० १६३७)

संयुक्त प्रान्त के शाहजहांपुर नामक जिले में 'चांदापुर' नामी एक वस्ती है। जो शाहजहांपुर नगर से दस मील पर दक्षिण की ओर है। वहीं के मुन्शी प्यारेलाल जमींदार ने धर्मचर्चा के लिये एक मेला ता० १६ २०, मार्च सन् १८७७ ई० (चैत्र शु० ५, ६ सं० १६३४ वि०) को लगाया था। इस मेले में अनेक पादरी, मौलवी और पण्डित एकत्रित हुये थे। स्वामी जी महाराज को भी इस में निमन्त्रित किया गया था। वे चाहते थे कि यह मेला दो सप्ताह तक रहे। अन्त में उन को यह विश्वास दिलाया गया कि 'मेला कम से कम ५ दिन रहेगा'। इसी निश्चय के अनुसार वे चांदापुर गये परन्तु पादरियों और मौलवियों की गड़बड़ी के कारण यह मेला केवल दो दिन ही रहा।

इस मेले में विचार के लिये निम्न पांच विषय नियत किये गये थे—

१. ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से, किस समय, और किस उद्देश्य से रचा।

२ ईश्वर सर्वव्यापक है या नहीं है?

३ ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है?

४ वेद, बाइवल और कुरान के ईश्वर का वाक्य होने में क्या प्रमाण है?

५ मुक्ति क्या पदार्थ है? और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है?

इस मेले में समय की संकीर्णता के कारण पूर्व निश्चित पांच प्रश्नों में से केवल प्रथम और पञ्चम प्रश्न पर ही परस्पर विचार हुआ था।

---

१. स्वामी जी के १२ अप्रेल सन् १८७८ ई० के पत्र में इसका उल्लेख के। देखो 'पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ १४५, पं० १५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सत्यधर्मविचार' नामक पुस्तक में इसी पारस्परिक विचार वा शास्त्रार्थ का उल्लेख है। पुस्तक की रचना का काल अन्त में इस प्रकार लिखा है—

"ऋषिकालाङ्कचन्द्राब्दे नभश्शुक्ले दले तिथौ।
द्वादश्यां मङ्गले वारे ग्रन्थोऽयं पूरितो मया ॥[1]

अर्थात्—श्रावण शुक्ला १२ मंगलवार सं० १६३७ को यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

यह काल मेला चांदापुर के आर्यभाषा में लिखने का है। उर्दू-भाषा में वह इससे पूर्व छप गया था, यह आगे लिखा जायगा।

सत्यधर्म-विचार के हिन्दी संस्करण का लेखक

उपर्युक्त रचना काल बोधक श्लोक में **'मया'** (=मैंने) पद से कौन व्यक्ति संकेतित है, यह स्पष्ट विदित नहीं होता। परन्तु ग्रन्थ की आर्यभाषा के साथ ऋ० द० की भाषा की तुलना की जाये तो विदित होता है कि इसे ऋ० द० ने स्वयं लिखा था। इस ग्रन्थ में दिये हुए सृष्ट्युत्पत्तिकाल की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति प्रकरण के साथ तुलना करने से हमारे विचार की पुष्टि होती है। दोनों ही ग्रन्थों में भुक्त और भोगकाल की संख्या समान हैं। दोनों में सन्धिकाल की गणना नहीं की गई है।[2]

वैदिक यन्त्रालय से इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण हिन्दी और उर्दू दोनों में सं० १६३७ में प्रकाशित हुआ था। इसके बायें कालम में आर्य भाषा और दाहिने कालम में उर्दू भाषा में छपा हैं। इसके ऊपर महिने का उल्लेख नहीं है, तथापि ऋषि के भाद्र सुदि ६ शुक्रवार सं० १६३७ वि० (१० सितम्बर १८८० ई०) के पत्र से ज्ञात होता है कि मेला चांदापुर उक्त तिथि से पूर्व वैदिक यन्त्रालय काशी से छप कर प्रकाशित हो गया था। देखो 'पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४०३, पं० ११।

---

१. यह श्लोक वैदिक यन्त्रालय से सं० १६३७ में दो कालम में हिन्दी उर्दू में छपे ग्रन्थ के अन्त में छपा हुआ मिलता है।

२. द्र०—'दयानन्द सरस्वती के शास्त्रार्थ और प्रवचन' पृष्ठ ८६-८८; तथा पृष्ठ ८७ की टिप्पणी भी देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेला चांदापुर—उर्दू

१२ अप्रेल सन् १८७८ के ऋषि के एक पत्र से विदित होता है कि मेला चांदापुर का वृत्तान्त उर्दू भाषा में छप कर उक्त तारीख से पूर्व ही प्रकाशित हो गया था और उसका उस समय मूल्य—) । (सवा आना था । देखो 'पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ १४५, पं० १५ ।

पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८२२ पर इस संबन्ध में लिखा है—

'स्वयं मेले के प्रवन्धकों की ओर से यह इसी मास में **रफाहे आम** प्रेस स्यालकोट में प्रकाशित हुआ ।[१]"

इस लेख में 'इसी मास में' का अर्थ अस्पष्ट है । यदि इसे 'उसी मास में' पढ़ें तो अर्थ होगा जून या जुलाई सन् १८७७ । 'रफाहे आम' प्रेस स्यालकोट से छपा उर्दू संस्करण हमें देखने को नहीं मिला ।

सन् १८७७ ई० के काल में हिन्दू लोग भी अधिकतर उर्दू भाषा का ही ज्ञान रखते थे, अतः सम्भवत है इसी कारण उर्दू संस्करण पहले छापा गया होगा । यह भी सम्भव है इस शास्त्रार्थ को मुन्शी प्यारेलाल के लेखक ने उर्दू में ही लिखा होगा । ऋषि दयानन्द ने इस का आर्यभाषा में जो लेखन किया, उस में उर्दू में छपे अथवा लिखे गये शास्त्रार्थ का सहारा लिया वा नहीं, यह हम नहीं जानते क्योंकि हमें स्यालकोट में प्रथम छपा उर्दू का संस्करण उपलब्ध नहीं हुआ ।

—:०:—

५—जालन्धर-शास्त्रार्थ

(आश्विन सं० १९३४)

'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' नामक संग्रह के भाग २, पृष्ठ ५६६, पं० १६ पर '**जालन्धर की बहस**' संज्ञक एक पुस्तक का

१. मेले के प्रबन्धकों ने निकटवर्ती शाहजहांपुर अथवा बरेली नगर में न छपवाकर दूरवर्ती स्यालकोट में क्यों छपवाया ? यह भी विचारणीय है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेख मिलता है। यह पत्र ऋषि ने १३ मई सन् १८८२ को पण्डित सुन्दरलालजी के नाम लिखा था। जीवनचरित से व्यक्त होता है कि २४ सितम्बर सन् १८७७ (आश्विन वदि २ सं० १९३४) सोमवार के दिन प्रातः ७ बजे जालन्धर के मौलवी अहमद हुसैन (उर्फ वली मुहम्मद तपाखी) से स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुआ था। यह शास्त्रार्थ जालन्धर के सरदार विक्रमसिंहजी के सामने पुनर्जन्म और करामात विषय पर हुआ था। पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित में केवल इतना ही लिखा है कि इस शास्त्रार्थ को एक मुसलमान ने अक्षरशः छपवा दिया है।

पं० लेखरामजी द्वारा संगृहीत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८२२ में इसके विषय में निम्न लेख मिलता है—

"इस को उसी समय मिर्जा मुवहिद जालन्धरी ने 'पंजाबी प्रेस' में दिसम्बर मास सन् १८७७ में प्रकाशित कराया। दूसरी बार जून जुलाई १८७८ ई० के आर्यदर्पण में छपा, तीसरी बार मिर्जा मुवहिद साहब ने अपने 'वजीरे हिन्द' प्रेस स्यालकोट में छपवाया, चौथी बार लाहौर और पांचवी बार आर्य समाज अमृतसर ने १८८६ ई० में छपवाया। खुद मुसलमानों का फैसला हैं कि मौलवी साहब कामयाब नहीं हुए और करामात सिद्ध नहीं कर सके।"

यह शास्त्रार्थ पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) में पृष्ठ ७५२—७५८ तक छपा हुआ मिलता हैं।

पं० गोपाल रावजी कृत दयानन्ददिग्विजयार्क के संवत् १९३८ वि० (सन् १८८१ ई०) में प्रकाशित प्रथम खण्ड के पृष्ठ ५८ पर फकीर मुहम्मद मीरजामू जालन्धरी द्वारा प्रकाशित उपर्युक्त शास्त्रार्थ की भूमिका छपी है, उसे हम उपयोगी समझ कर वहीं से लेकर नीचे उद्धृत करते हैं—

"फकीर मुहम्मद मीरजामू जालन्धरी सभ्यगणों को इस रिसाले के तैयार होने के कारणों से आगाह करता है कि ता० १३ सितम्बर सन् १८७७ को स्वामी दयानन्दजी साहब जालन्धर भी बतौर दौरे के तशरीफ लाये और जनाब फैजमाब सरदार बावकार विक्रमसिंह साहब आहलूवालिया की कोठी में फरोकश होकर वेद के मुताबिक जिस को वह कलाम इलाही तसव्वुर करते हैं कथा सुनाने लगे, फकीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने सरदार साहब ममदूह की खिदमत आलिया में दरख्वास्त को कि स्वामी साहब और मोलवी अहमद हुसैन साहब की गुफ्तगू भी किसी माकूली मसले में सुननी चाहिये। ये जनाब ममदूह ने पसन्द किया और स्वामी जी ने भी कबूल करके २४ सितम्बर के ७ बजे सुवह का वक्त करार दिया मोलवी साहब वक्त मुअय्यनह पर खास व आम हिन्दू व मुसल्मान शहर के आ गये मुबाहसा अर्थात् शास्त्रार्थ हस्ब ख्वाइश मौलवी साहब मसले तनासुख और स्वामी जी की मर्जी के मुताबिक मसले करामात मुकर्रर हुआ यानी स्वामीजी तनासुख (पुनर्जन्म) को साबित करें और मौलवी साहब उसकी तरदीद (खण्डन) करें और मौलवी साहब अहल अल्लाह की करामात साबित करें और स्वामी साहब उसकी तरदीद (खण्डन) करें गुफ्तगू शुरू होने से पहले यह बात भी करार पाई की तुर्फैन (दोनों तर्फ) से कोई शख्स खिलाफ तहजीब (सभ्यता) गुफ्तगू न करेगा और स्वामीजी की तरफ से यह भी प्रकाशित हुआ कि कोई साहब गुफ्तगू खतम होने पर हारजीत तसव्वुर न करे अगर करेगा तो मुतअस्सिब (पक्षपाती) और जाहिल समझा जायगा क्योंकि ये मसाइल ऐसे नहीं हैं कि दो तीन दिन की गुफ्तगू में तसफ़िया हो जाय या हारजीत मुतसव्वुर हो मगर हां जब रिसाला गुफ्तगू बाहमी तबै होगा (छपेगा) तो खुद हाथ कंगन को आरसी का मसला होगा और आकिलां खुद मेदानन्दका ज़हूर जो सवाल जवाब होंगे वह बाद दस्तखत लाला अमीरचन्द्र साहब और मुन्शी मुहम्मद हुसैन साहब महमूद तवा होंगे (छपेंगे) बाद खतम होने गुफ्तगू के मौलवी साहब की तरफ से खिलाफ़ अम्ल आलमाना सरज़द हुआ बनज़र इन्साफ़ उसको भी ज़ाहिर कर देना मुनासिब है, और वह यह है कि बाद तमाम होने गुफ्तगू के मौलवी साहब इमाम नासरुद्दिन के दरवाजे पर गये और कुछ फ़खरिया बाज़ सुनाकर मुसलमान हारजीत से अपने नजूद बेवजूद की शुहरत के तलबगार हुए अर्थात् मुसलमानों से कहा कि आप लोग अभी कोई ऐसी तजवीज करें कि जिस मैं जीता नहीं तो भी मेरी ही जीत प्रसिद्ध हो जाय अगर्चि अहिल इल्म और वज़ादार मुसलमान इस शुहरत (मिथ्या-प्रसिद्धी) की ख्वाइश को जाहलों का खेल समझ कर किनारा कश हो गये मगर जुलाहे आदि वे लोग जो मुर्ग लाल और बटेर और अगन वग़ैर की लड़ाई को आदी और हार जीत की शुहरत के शायक हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने मोलवी साहब को बज़ा याफ़ता करार दिया, और घोड़े पर चढ़ाकर शहर की गली कूचों में खूब फिराया और हार जीत का गुल मचाया मगर ख़ास वज़ादार और मुज्जिज़ आदमियों ने इसे बहुत ना पसन्द किया।" इस में ( ) कोष्ठ में छपे शब्द मूल पाठ के नहीं है]

इस मुबाहिसे की सवाल जवाब नाम की एक किताब है उसकी दीवाचा अर्थात् भूमिका की यह नकल है जो ऊपर लिखी है चूंकि इसके देखने से ही असल हाल खुल जाता है इसलिये अगाड़ी के सवाल जवाब नहीं लिखे गये। उक्त किताब के अन्त में बड़े दो प्रतिष्ठित रईसों ने यह इबारत लिख कर दस्तखत किये हैं।

"हमारे रोबरू जो मरातिव गुफ्तगू मुअय्यन हुए थे वह वाकई यही थे जो इस दीवाचा में दर्ज है।

द० लाला अमीरचन्द साहब द० मुहम्मद हुसेन महमूद

६—सत्यासत्यविवेक (आश्विन १९३०)

इस पुस्तक में पादरी टी० जी० स्काट के साथ स्वामीजी का जो शास्त्रार्थ भादों सुदि ७, ८, ९ सं० १९३६ (ता० २५, २६, २७ अगस्त १८७९ ई०) को बरेली में हुआ था, उसका वर्णन है। यह शास्त्रार्थ लिखित हुआ था और निम्न विषयों पर हुआ था—

प्रथम दिन—आवागमन पर।

द्वितीय दिन—ईश्वर कभी देह धारण करता है या नहीं ?

तृतीय दिन—ईश्वर अपराध क्षमा करता है या नहीं ?

इस शास्त्रार्थ का वर्णन पण्डित लेखरामजी के द्वारा संगृहीत जीवन चरित्र में इस प्रकार मिलता है—

"यह प्रस्ताव हुआ कि पादरी टी० स्काट साहब से स्वामीजी का शास्त्रार्थ हो। दोनों ने प्रसन्नता पूर्वक इसे स्वीकार किया और २५ अगस्त सोमवार शास्त्रार्थ की तिथि निश्चित की गई।

यह शास्त्रार्थ बड़े आनन्दपूर्वक जैसा कि 'दो सभ्य शिक्षित और योग्य पुरुषों में होना चाहिए' वैसा ही हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी और पादरी टी० जी० स्काट साहब के मध्य राजकीय पुस्तकालय बरेली में तीन दिन २५, २६, २७ अगस्त सन् १८७९ ई० (भादों सुदि ७, ८, ९ सं० १९३६) में हुआ। और लाला लक्ष्मीनारायण साहब खजान्ची व रईस बरेली इस सभा के सभापति थे।

पहिले रोज आवागमन यानी मसला तनासुख पर, जिसका स्वामीजी मण्डन करते थे और पादरी साहब खण्डन। दूसरे रोज इस पर कि ईश्वर देह धारण करता है, जिसका पादरी साहब मण्डन और स्वामीजी खण्डन करते थे। तीसरे रोज इस पर कि ईश्वर अपराध भी क्षमा करता है, जिसका पादरी साहब मण्डन और स्वामीजी खण्डन करते थे।

इस शास्त्रार्थ की यह आवश्यक शर्त थी कि शास्त्रार्थ लिखित होगा। तीन लेखक एक स्वामीजी की तरफ, दूसरा पादरी साहब की तरफ, और तीसरा सभापति की तरफ बैठकर सम्पूर्ण शास्त्रार्थ को अक्षरशः लेखबन्द करते जावें। जिस समय एक व्यक्ति नियत समय पर बोल चुके तो उसका लिखा हुआ सभा में उपस्थित जनता को सुना दिया जावे और उस पर उस व्यक्ति के हस्ताक्षर कराये जावें और शास्त्रार्थ समाप्त होने पर सभापति के हस्ताक्षर हों। इन इन तीनों प्रतियों में से एक प्रति स्वामीजीजी के पास, दूसरी पादरी साहब के पास और तीसरी सभापति के पास सनद रहे। ताकि पीछे से घटा बढ़ा न सके। चुनांचे स्वामीजी और पादरी साहब की दस्तखती असली तहरीर की अक्षरशः प्रतिलिपि छपाई जाती है, पाठक अपनी बुद्धि से विचार कर अन्तिम निर्णय निकाल लें।.........

हम इस शास्त्रार्थ को अक्षरशः असल प्रति से जिस पर स्वामी जी और पादरी साहब के हस्ताक्षर हुए हैं। उसके अनुसार स्वामीजी की आज्ञा से प्रकाशित करते हैं इसमें एक शब्द भी परिवर्तन नहीं हुआ है। सही छापने में यहां तक ध्यान रखा गया है कि जहां जिस व्यक्ति के हस्ताक्षर थे वहां 'दः' का शब्द लिखकर उन्हीं का नाम लिख दिया है। पाठक दोनों महानुभावों की बातचीत को सचाई की आंखों से देखें और हठ को नजदीक तक न आने दें जिससे युक्त और अयुक्त का ज्ञान भली प्रकार हो जायगा। कई महानुभावों ने कहा कि शास्त्रार्थ का 'फल' भी प्रकाशित कर देना चाहिये लेकिन हमने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राय देना उचित नहीं समझा। इसलिए इसके नतीजे का भार पाठकों पर ही छोड़ा जाता है।"

द्र०—पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०)[1] पृष्ठ ४७९-४८०।

प्रथमवार उर्दू में छपा

यह शास्त्रार्थ असली लिखित कापी के अनुसार "**सत्यासत्य-विवेक**" नाम से उर्दू में प्रकाशित हुआ है। इसका प्रथम संस्करण 'आर्यभूषण' प्रेस शाहजहांपुर में छपा था, उसका मूल्य चार आना था। और यह सितम्बर १८७९ को छपा था। यह संस्करण हमारे देखने में नहीं आया। इसका विज्ञापन ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के आश्विन सं० १९३६ के ११ वें अंक के अन्त में छपा था। अतः इसका प्रकाशन शास्त्रार्थ के कुछ दिन बाद ही हो गया था। उक्त विज्ञापन इस प्रकार है—

"सत्यासत्य विवेक

इस पुस्तक में सविस्तर वृतान्त तीनों दिन के शास्त्रार्थ कि जो स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और पादरी टी० जी० स्काट साहब का राजकीय पुस्तकालय बरेली में, इस प्रकार की प्रथम दिन अनेक जन्म के विषय में, दूसरे दिन अवतार अर्थात् ईश्वर देह धारण कर सकता है इस विषय में और तीसरे दिन इस विषय में कि ईश्वर पाप क्षमा कर सकता है, हुआ था। बहुत उत्तम फारसी लिपी और उर्दू भाषा में मुद्रित हुआ है। इस शास्त्रार्थ में प्रत्येक विषय पर उत्तम प्रकार से खण्डन-मण्डन हुआ है कि जिसके देखने से सत्यप्रेमी जनों को सत्य और असत्य प्रगट होता है। जो विद्यार्थी मिशन स्कूलों में पढ़ते हैं और बहुत करके गुमराह होते हैं उनको यह पुस्तक गुमराही से बचाती है। डाक महसूल सहित।)।। मूल्य भेज कर मंगवा लें।"

आर्यभाषानुवाद

पं० लेखराम कृत जीवनचरित में उर्दू में मुद्रित इस शास्त्रार्थ का

१. देहली से छपे हिन्दी संस्करण में कुछ भेद है जो कि विभिन्न अनुवादकों के द्वारा अनुवाद करने में प्रायः हो जाता है। मूल आशय में भेद नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री जगत् कुमार शास्त्री ने आर्यभाषा में अनुवाद करके प्रथमवार स्वसम्पादित 'श्रीमद्दयानन्द-ग्रन्थ-संग्रह' में प्रकाशित किया था। गोविन्दराम हासानन्द द्वारा यह पृथक् पुस्तकाकार भी छपा था। से वही लेकर यह शास्त्रार्थ पहले 'रामलाल कपूर ट्रस्ट' द्वारा प्रकाशित दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह' में छपा था और अब (सं० २०३६) 'ऋ० द० स० के शास्त्रार्थ और प्रवचन' नामक संग्रह में छापा गया है।

७—उदयपुर-शास्त्रार्थ (भाद्र १९३९)

महर्षि के उदयपुर निवास के समय में मौलवी अब्दुल रहमान सुपरिटेण्डेण्ट पुलिस व जज अदालत उदयपुर के साथ स्वामीजी का लिखित शास्त्रार्थ हुआ था। यह शास्त्रार्थ निम्न तारीखों में अधोलिखित विषयों पर हुआ था—

११ सितम्बर सोमवार १८८२	(अ) इलहामी पुस्तक कौन है ?
	(ब) सृष्टि की उत्पत्ति
१३ सितम्बर बुधवार १८८२	(अ) वेद
	(ब) प्रकृति
१७ सितम्बर रविवार १८८२	वेद

इस शास्त्रार्थ का उल्लेख ऋषि के भाद्र सुदि (?) सं० १९३९ के पत्र में भी मिलता। उसमें लिखा है—

"यहां श्री महाराणाजी प्रतिदिन मिलते हैं और समागम करते हैं। और एक मौलवी से प्रश्नोत्तर प्रतिदिन होते हैं और वे लिखे भी जाते हैं। सो तुम्हारे पास भेजेंगे।" पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६१५, पं० १४-१५।

यह शास्त्रार्थ श्री पण्डित लेखरामजी द्वारा संगृहीत ऋषि-जीवन में अक्षरश: छपा है। उसके आरम्भ में पण्डित लेखरामजी का निम्न नोट छपा है—

"मुबाहिसा स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और मौलवी अब्दुल रहमान सुपरिटेण्डेण्ट पुलिस व जज अदालत उदयपुर मुल्क मेवाड़।

पण्डित वृजनाथजी हाकिम सायर मुल्क मेवाड़ (जो उस वक्त इस मुबाहिसा के लिखने वाले थे) ने बयान किया कि मैं उस वक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीजी के दरमियान मुतर्जब (अनुवादक) भी था अरबी के दकीक (क्लिष्ट) अल्फ़ाज़ों का तर्जुमा स्वामीजी को और संस्कृत के दकीक अल्फ़ाज़ का तर्जुमा मौलवीजी को बता दिया करता था। यह मुबाहिसा मैंने उस वक्त अपने हाथ से लिखा, जिसकी दो असल कापी मेरे पास पैंसिल की लिखी हुई अभी तक मौजूद हैं। तीन आदमी इस मुबाहिसा के लिखने वाले थे—एक पण्डित वृजनाथजी हाकिम सायर, दूसरे मिर्जा मोहम्मदखां वकील, हाल मेम्बर कौंसिल टोंक, तीसरे मुन्शीराम नारायणजी सरिश्तादार बागे कलां सरकारी, जिनमें से पहिले और तीसरे साहिबान की असल कापियां हमको मिली हैं और जिनकी मौलवी साहब ने भी तसदीक की है मगर उनकी दानाई और ईमानदारी पर अफसोस है। उस वक्त तो कोई माकूल जबाब न बन आया और न बाजे अजां दिसम्बर १८८९ में बेबुनियाद और झूठे हवाले से कुछ का कुछ असल ताहरीर के खिलाफ शायाकर के अपनी दीनदारी का शबोफां दिखलाया। इस मुबाहिसा के रोज सामईन हिन्दू मुसलमान खास आम को वहुत कसरत थी यहां तक कि श्री दरबार वैकुण्ठवासी महाराज सज्जनसिंहजी भी मुबाहिसा समाग्रत फर्माने को तशरीफ फर्मा हुए थे।"

यह अंश पं० लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित से लिया गया है। हिन्दी अनुवाद हिन्दी संस्करण में पृष्ठ ७९५-७९६ पर देखें।

इस नोट के आगे उक्त शास्त्रार्थ छपा है और अन्त में निम्न नोट दिया है—

"पाण्ड्या मोहनलालजी ने कहा कि मौलवी साहब के मुबाहिसा के अव्वल रोज तो (राणा साहब) नहीं आये थे मगर उन्होंने मुबाहिसा तहरीरी होना मंजूर फरमाया था। आखिर रोज श्री हजूर तशरीफ लाये थे और मौलवी साहब की जिद्द देख कर दरबार ने दरशाद फरमाया जो कुछ स्वामीजी ने कहा है वह बेशक ठीक है। फिर मुबाहिसा नहीं हुआ। कविराज श्यामलदासजी ने भी इसकी ताईद की।"

यह अंश भी उर्दू संस्करण से लिया गया है। हिन्दी सं० में पृष्ठ ८०४ पर देखें।

प्रतीत होता है यह शास्त्रार्थ केवल पण्डित लेखरामजी संगृहीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनचरित में ही छपा है। इसका पृथक् प्रकाशन भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि कोई प्रकाशक ऋषि के समस्त प्रसिद्ध शास्त्रार्थों का का एक संग्रह प्रकाशित कर देवे तो यह महान् उपकार का कार्य होगा।'[1]

शास्त्रार्थ अजमेर और मसूदा

उपर्युक्त सात शास्त्रार्थों के अतिरिक्त **शास्त्रार्थ अजमेर** और **शास्त्रार्थ मसूदा**, ये दो शास्त्रार्थ भी 'दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह' (रा० ला० क० (ट्रस्ट) तथा 'ऋ० द० स० के शास्त्रार्थ और प्रवचन' नामक संग्रह में छपे हैं। इन शास्त्रार्थों का सम्पादन डा० भवानीलाल भारतीय ने किया है।

शास्त्रार्थ अजमेर मार्गशीष सु० ५ सं० १९३५ (=२८ नवम्बर १८७८) सोमवार को हुआ था।

शास्त्रार्थ मसूदा में दो शास्त्रार्थ संकलित हैं। प्रथम जैन साधु सिद्धकरण के साथ श्रावण वदी २ सं० १९३८ (=१३ जुलाई १८८१) बुधवार को हुआ था और दूसरा बाबू बिहारीलाल ईसाई के साथ रावराजा बहादुरसिंह मसूदा के साथ श्रावण सु० ४, सं० १९३८ (=३० जुलाई १८८१) शनिवार को हुआ था।

इस प्रकार डा० भवानीलाल भारतीय द्वारा सम्पादित 'दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह' में 'प्रश्नोत्तर हलधर' को छोड़कर ८ शास्त्रार्थों का संकलन है। आर्षप्रचार ट्रस्ट देहली द्वारा प्रकाशित 'दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह' में प्रामाणिक शास्त्रार्थों के अतिरिक्त सामान्यरूप से हुए अनेक प्रश्नोत्तरों का भी संकलन मिलता है।

---

१. यह लेख इस पुस्तक के सन् १९५० के प्रथम संस्करण के काल का है। इस के पश्चात् आर्ष प्रचार ट्रस्ट देहली से जो 'दयानन्द शास्त्रार्थ-संग्रह, छपा, उस में यह हिन्दी में छपा है। वहीं से लेकर श्री भारतीय जी द्वारा सम्पादित और रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह' में भी छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वादश अध्याय

प्रवचन-संग्रह

ऋषि दयानन्द ने अपने प्रचार-काल में कई सहस्र व्याख्यान दिये होंगे, परन्तु उनके संकलन की कोई व्यवस्था न हो सकने के कारण आर्य जनता उन व्याख्यानों में प्रकट किये गये अनेक उपयोगी एवं महत्त्व-पूर्ण विचारों से वञ्चित रह गई। व्याख्यता के व्याख्यान को संकलित करने की शार्टहैण्ड प्रणाली पर्याप्त पुरानी होने पर भी उस काल में इस के जानने वाले सर्वत्र सुलभ न थे। टैपरिकार्ड प्रणाली तो अभी की देन हैं। इन के अभाव में भी ऋ० द० के व्याख्यानों का सार संकलित किया जा सकता था, परन्तु आर्यचनों की उदासीनता के कारण यह प्रयत्न नहीं हुआ।

ऋषि दयानन्द के सम्पूर्ण कार्यकाल में केवल एक ही ऐसा अवसर आया जिस में उन के व्याख्यानों का संक्षेप संकलित किया गया। वह अवसर था २० जून से ५ सितम्बर १८७५ का पूनाप्रवास का। पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित के अनुसार पूना नगर और कैम्प (छावनी) में ऋषि दयानन्द ने क्रमशः १५ और ३५ व्याख्यान अर्थात् ५० व्याख्यान दिये थे। इन के अतिरिक्त नये शोध के अनुसार ४ और व्याख्यानों की सूचना मिली है। इस प्रकार पूना में ५४ व्याख्यान हुए थे।

पूना-प्रवचन (सन् १८७५)

इस प्रकार उक्त ५४ व्याख्यानों में से केवल पूना नगर में दिये गये १५ व्याख्यानों का ही संकलन उपलब्ध होता है। जहां तक हमें ज्ञात हुआ हैं, पूना के व्याख्यानों के संकलन का श्रेय श्री महादेव गोविन्द रानाडे को है। कैम्प के व्याख्यानों के समय वे रुग्ण हो गये थे। इस कारण व्याख्यान सुनने के लिये जाने पर भी वे उन का संकलन नहीं कर पाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी में प्रथम प्रकाशन

प्रतिदिन के व्याख्यानों का प्रकाशन—ऋ० द० के प्रतिदिन के व्याख्यान प्रायः दूसरे वा तीसरे दिन मराठी में छप कर प्रकाशित हो जाते थे। एक सूचना के अनुसार मराठी भाषा में अनुवाद पूना हाई स्कूल के सहायक मुख्याध्यापक **श्री गणेश जनार्धन आगाशे बी० ए०** ने किया था।

पं० देवेन्द्रनाथ के लेखानुसार मराठी भाषा प्रकाशित व्याख्यानों का सम्पादन **श्री महादेव गोविन्द रानाडे** ने किया था। पं० जयचन्द्र विद्यालंकार ने भी लिखा है। पूने वाले व्याख्यान मराठी अखबार में छपे। फिर उन का संग्रह और सम्पादन मराठी में महादेव गोविन्द-रानाडे जैसे विद्वान् ने किया। (राष्ट्रिय इतिहास का अनुशीलन, पृ० २४)।

यह हो सकता है कि प्रतिदिन पुस्तिका के रूप में छपने वाले आगाशे महोदय के द्वारा किये गये मराठी अनुवाद को श्री महादेव गोविन्द रानाडे देख लेते होंगे, परन्तु उपलब्ध प्रतिदिन के व्याख्यान की छपी हुई पुस्तिकाओं में सम्पादन जैसा गुरुतर कार्य कुछ विदित नहीं होता। पं० जयचन्द्र का लेख 'पहले अखबारों में छपे फिर उन का संग्रह करके महादेव गोविन्द रानाडे ने किया' तो उस समय की प्रतिदिन की छपी पुस्तिकाओं की उपलब्धि से ही निरस्त हो जाता है।

मराठी का अन्य संस्करण

श्री हरि सखाराम तुंगार महोदय ने मथुरा जन्म-शताब्दी के अवसर पर ऋ० द० के पूना के व्याख्यानों का एक मराठी अनुवाद **'आर्य धर्मेन्द्र दयानंद सरस्वती यांची पुणें येथील व्याख्याने'** नाम से प्रकाशित किया। इस संस्करण में ७, १०, ११, १२, १३, १४ व्याख्यानों को किसी हिन्दी संस्करण के आधार पर पुनः मराठी रूपान्तर किया गया है।

गुजराती-अनुवाद

पूना-प्रवचन के मराठी संस्करण का ऋ० द० के जीवनकाल में दिसम्बर सन् १८८१ से पूर्व ही गुजराती भाषा में अनुवाद होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्वामी दयानन्द सरस्वती नु भाषण' नाम से प्रकाशित हो गया था। इस का उल्लेख 'चीखली' जिला सूरत के सुखराम त्र्यम्बकराम के १६-१२-१८८१ के पत्र में मिलता है। उसी पत्र से इस की एक प्रति अहमदाबाद के 'गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी' के पुस्तकालय में थी ऐसा विदित होता है। लाला लाजपतराय के लेखानुसार मराठी संस्करण के प्रकाशन के कुछ काल पश्चात् ही उस का गुजराती अनुवाद प्रकाशित हो गया था।

हमने दो बार अहमदाबाद जाकर गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी के पुस्तकालय में इसे उपलब्ध करने का प्रयास किया, परन्तु हमें वहां सफलता नहीं मिली और न आज तक कहीं अन्य स्थान से गुजराती अनुवाद उपलब्ध हुआ।

गुजराती के अनुवाद—श्री इन्दुलाल मोतीलाल पटेल के २७-१ १९८३ के पत्र से ज्ञात हुआ है कि पूना के प्रवचनों का गुजराती भाषा में रावबहादुर **श्रीकृष्णलाल मोहनलाल झाबेरी** ने किया था। किस ने इसे छापा था, अभी यह तक ज्ञात नहीं हुआ।

आर्यभाषा-अनुवाद

१. **पं० भगवतीप्रसाद शुक्ल** —इन्होंने पूना के व्याख्यानों का मराठी से आर्यभाषा में अनुवाद किया था। इस के विषय में म० मुन्शीराम जी (स्वा० श्रद्धानन्द जी) ने उपदेश-मञ्जरी के अपने उर्दू अनुवाद की भूमिका में लिखा है—

'इसी असना में (शायद लेखराम जी की दर्खास्त पर) आर्यसमाज के पुरुषार्थी और धार्मिक सभासदों यानी ठाकुरसिंह साहब मन्सबदार व पं० श्री निवासरावजी नायब मुहासिब धाराशिव रियासत हैदराबाद ने पं० भगवतीप्रसाद शुक्ल साकिन मौजा कलंब से इन्हीं पन्द्रह व्याख्यानों का देवनागरी में तर्जुमा कराया'।

हमें पं० भगवतीप्रसाद शुक्ल का पूना के व्याख्यानों का आर्यभाषानुवाद देखने को नहीं मिला।

२. **पं० गणेश रामचन्द्र**—इन्होंने पूना-प्रवचनों के आरम्भ के ९ प्रवचनों का आर्यभाषा में अनुवाद किया था, जिसे बा० रामविलास शारदा ने ७ पुस्तिकाओं में 'आर्य पुस्तक प्रचारिणी सभा राजस्थान'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर से प्रकाशित किया था। इन पुस्तिकाओं में से तृतीय पुस्तिका को छोड़ कर शेष हमारे पास हैं। इन का प्रकाशन सं० १९५०(=सन् १८९३) में हुआ था। पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१९ पर पं० गणेश रामचन्द्र द्वारा ८ नम्बर प्रकाशित करने का उल्लेख है। इस में सम्भवतः पूर्व निर्दिष्ट १५ वें आत्मवृत्त-विषयक व्याख्यान पुस्तिका की भी गणना सम्मिलित होगी।

३. **बदरीदत्त शर्मा**—इन के द्वारा अनूदित १५ व्याख्यानों का प्रथम संस्करण 'उपदेशमञ्जरी' नाम से सन् १९१० (सं० १९६७) में छपा था। इस के ६ संस्करण छपने का उल्लेख आर्यसमाज-साहित्य-सर्वस्व' भाग १ में मिलता है। इस के प्रकाशक बरेली के श्यामलाल वर्मा बुक्सेलर हैं।

पं० बदरीदत्त का संस्करण—पं० बदरीदत्त का जो संस्करण छपा है उस में आरम्भ के ९ व्याख्यानों का भाषानुवाद पं० गणेश रामचन्द्र कृत ही उपलब्ध होता है। कहीं-कहीं साधारण पाठ-भेद है। १०-१५ तक के व्याख्यानों का भाषानुवाद पं० बदरीदत्त ने म० मुन्शीरामजी द्वारा प्रकाशित उर्दू अनुवाद से किया है। यह इन दोनों की तुलना से स्पष्ट है। इस प्रकार पूना के व्याख्यानों के आर्यभाषा में छपे सभी संस्करण 'आधा तीतर आधा बटेर' की उक्ति को चरितार्थ करते हैं।

४. **श्रीराम शर्मा**—इन्होंने पूना-प्रवचन के नाम से पूना के १५ व्याख्यान छपवाये थे। यद्यपि इन का आधार तो पं० बदरीदत्त शर्मा का संस्करण ही है, तथापि इन्होंने इस में भाषा का यथेष्ट परिमार्जन किया हैं।

आर्यभाषा के अन्य संस्करण—पूना के व्याख्यानों के आर्यभाषा में उपदेशमञ्जरी वा पूना-प्रवचन के नाम से अनेक संस्करण छपे हैं। परन्तु इन सब का आधार पं० बदरीदत्त शर्मा का संस्करण ही है।

हमारा सं० २०२६ का संस्करण—हम ने सं० २०२६ में 'ऋषि-रूप धर्मार्थ ट्रस्ट' द्वारा पूना-प्रवचन का संस्करण प्रकाशित किया था। उन का आधार संख्या २-३-४ के संस्करण ही थे। हमने इस संस्करण में यथामति पाठों को शोधन, उद्धृत वचनों के पते, और अनेकविध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणियाँ दी थी। इस दृष्टि से हमारा संस्करण उस समय तक छपे संस्करणों में सर्वोत्तम था। डा० भवानीलाल भारतीय ने परोपकारिणी सभा से सं० २०३३ में जो संस्करण छपवाया था, उस में हमारे पाठ और उस में दी गई बहुत सी टिप्पणियों को स्वीकार करने की मुक्त कण्ठ से घोषणा की थी। तत्पश्चात् पं० राजवीर शास्त्री ने आर्ष-प्रचार ट्रस्ट देहली से इस का जो संस्करण छापा, उस का आधार उन्होंने श्री भारतीय जी के संस्करण को बनाया। दूसरे रूप में उन्होंने भारतीय जी के संस्करण के माध्यम से हमारे पाठ और टिप्पणियों को स्वीकार किया।

पूना के व्याख्यानों के मराठी-पाठ की उपलब्धि

लगभग २०-२५ वर्ष से मैं पूना के सन् १८७५ के छपे मराठी पाठ की उपलब्धि के लिये प्रयत्नशील रहा, परन्तु फर्वरी सन् १९८२ को अकस्मात् भण्डारकर इंस्टीटयूट पूना से ३-१५ तक के १३ व्याख्यानों के १८७५ में छपे टैक्ट उपलब्ध हो गये (इस की कहानी हमारे नये संस्करण में देखें)। आरम्भ के १-६ तथा ८-९ व्याख्यानों का मराठी पाठ परोपकारिणी सभा ने सन् १९६३ में छापा था (यह बहुत अशुद्ध छपा है)। उस से दो व्याख्यानों की पूर्ति हो गई।

पूर्ववर्ती अनुवादों में गड़बड़ी—मराठी संस्करण के उपलब्ध होने पर पर हमने पूर्ववती भाषानुवादों की मराठी पाठ से तुलना की तो ज्ञात हुआ कि पुराने अनुवादकों ने अनुवाद में मनमाने ढंग से पाठों को बढ़ाया और घटाया है। अतः हमने सन् १९८२ में 'ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन'[1] नामक जो संग्रह प्रकाशित किया, उस में मूल मराठी पाठ से सीधा आर्यभाषा में अनुवाद किया। इस दृष्टि से हमारा प्रस्तुत सन् १९८२ का अनुवाद जहां पूर्व संस्करणों की गड़बड़ी से मुक्त है, वहां वह प्रामाणिक भी है।

उर्दू अनुवाद

म० मुन्शीराम जी ने पूना के व्याख्यानों का उर्दू अनुवाद प्रथम-वार सन् १८९८ में 'उपदेशमञ्जरी' के नाम से प्रकाशित किया था।

१. दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह, और, दयानन्द-प्रवचन-संग्रह के नाम से इन्हें पृथक्-पृथक् भी छापा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भवतः पं० बदरीदत्त के आर्यभाषानुवाद के 'उपदेशमञ्जरी' नाम के निर्देश का मूल यही उर्दू अनुवाद रहा होगा।

म० मुन्शीराम जी के उर्दू अनुवाद के मूल आधार पं० गणेश रामचन्द्र और पं० भगवतीप्रसाद शुक्ल के अनुवाद रहे होंगे।

—:०:—

बम्बई-प्रवचन

(३० दि० १८८१ से २४ जून १८८२)

ऋषि दयानन्द ३० दिसम्बर १८८१ को बम्बई पधारे। इस वार २४ जून १८८२ तक लगभग ६ मास बम्बई में रहे। इस बम्बई-प्रवास काल में उन के २४ व्याख्यान हुए। इन व्याख्यानों का सार आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई की उस समय की गुजराती में लिखित 'कार्यवाही-संचिका' में संकलित है।

हमें उक्त कार्यवाही की झेरोक्स (फोटोस्टेट) कापी तत्कालीन आर्यसमाज के मन्त्री महोदय की कृपा और श्री पं० दयाशंकर जी के प्रयास से कुछ समय के लिये प्राप्त हुई।[1] हमने इस के गुजराती पाठ की नागराक्षरों में प्रतिलिपि बिसनगर (महसाना-गुजारत) के ऋषि-भक्त श्री चौकसी छगनलाल गंगाराम जी पटेल के सुपुत्र गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री कमलेशकुमार जी से करवाई और उस का भाषानुबाद बम्बई निवासी श्री जगदेवसिंह जी से करवा कर वेदवाणी के फर्वरी-मार्च सन् १९८२ के अंकों में प्रकाशित की।

इस कार्यवाही में से व्याख्यान के सारांश भाग को पृथक् करके उस का गुजराती से स्वयं अनुवाद करके इन्हें **बम्बई-प्रवचन** के नाम से सन् १९८२ में प्रकाशित 'ऋशि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन' नामक संग्रह में प्रथमवार प्रकाशित किया है।

उक्त कार्यवाही-संचिका में ५ फर्वरी १८८२ के दिन दिये गये

१. इस कार्यवाही-संचिका की उपलब्धि का पूरा बिवरण हम ने 'बम्बई-प्रवचन' के आरम्भ में दे दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्यान के सारांश के पश्चात् लिखा है—"......**सविस्तार जानने के लिये १२ फर्वरी का गुजराती का समाचार पत्र देखें, उसमें पत्रकर्त्ता ने यथावत् लिखा है उसे लोगों ने बांचा होगा।**

इस सूचना से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों का कार्यवाही में लिखित सार-संग्रह से विस्तृत विवरण उस समय के समाचार पत्रों में प्रकाशित होता था। उस समय गुजराती में 'जामेजमशेद' और 'मुम्बई समाचार' नामक पत्र छपते थे (मुम्बई समाचार इस समय भी छप रहा है)। यदि इन की पुरानी फाइलें ढूंढने पर मिल जायें तो पूना-प्रवचनों के समान ही **बम्बई-प्रवचनों** का विस्तृत विवरण प्राप्त हो सकता है।

मैं अपनी चिरकालीन अस्वस्थता के कारण इस कार्य को करने में असमर्थ हूं। पं० लेखराम तथा श्री मामराज जी जैसा कोई लगन वाला व्यक्ति ही इस कार्य को कर सकता है। आजकल ऐसे व्यक्तियों का अभाव ही दिखाई पड़ता है। मैंने बम्बई के अनेक परिचित् व्यक्तियों को इस कार्य के लिये कहा, परन्तु दिखावटी ऋषिभक्त व्यक्ति भला कब 'लोहे के चने चबाना' सदृश ऐसे परिश्रमसाध्य कार्य कर सकता है? धन्य हैं पं० लेखराम जी पं० देवेन्द्रनाथ जी, म० मुन्शीराम जी, पं० भगवदद्त्तजो और मामराज जी, जिन्होंने से ऋ० द० के जीवनचरित और पत्रव्यवहार सम्बन्धी खोज में अपना बहुमूल्य काल अर्पित किया। ऋ० द० के जीवनसम्बन्धी अन्वेषण में अपना जीवन लगाकर जहां इन महानुभावों ने दयानन्द के जीवन एवं पत्रव्यवहार को अमरता प्रदान की, वहां दयानन्द के साथ ये स्वयं भी अमर हो गये। जब तक इस धरातल पर दयानन्द अपने यशःकाय से अमर रहेंगे तब तक इन महानुभावों का नाम भी उसी तरह अमर रहेगा जैसे राम के साथ महाबली हनुमान् का नाम अमर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रयोदश अध्याय

पत्र और विज्ञापन

ऋषि दयानन्द के लिखे और लिखवाये समस्त मुद्रित ग्रन्थों का वर्णन हम पिछले अध्यायों में कर चुके हैं। इस अध्याय में ऋषि दयानन्द के लिखे पत्रों और विज्ञापनों के जो संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनका संक्षेप से उल्लेख करते हैं—

पत्रों और विज्ञापनों के संग्राहक

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवनकाल में विभिन्न व्यक्तियों को सहस्रों पत्र लिखे थे और अनेक विज्ञापन छपवाये थे। उनके संग्रह का कार्य निम्न महानुभावों ने किया है—

१—श्री पण्डित लेखरामजी

श्री पण्डित लेखराम जी ने ऋषि दयानन्द के जीवनचरित लिखने के लिए प्रायः समस्त उत्तर भारत में भ्रमण किया था। उन्होंने ऋषि के जीवन की घटनाओं के संग्रह के साथ-साथ ऋषि के लिखे हुए पत्रों और विज्ञापनों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा ऋ० द० के प्रति लिखे गये पत्रों और विज्ञापनों का भी संग्रह किया था। वह संग्रह उनके द्वारा संकलित उर्दू भाषा में प्रकाशित ऋषि दयानन्द के वृहद् जीवनचरित में प्रसंगवश यत्र तत्र छपा हैं। यह जीवनचरित ऋ० द० जीवन से सम्बद्ध घटनाओं और दस्तावेजों का ऐसा अपूर्व संग्रह है कि इसके विना अगला कोई भी चरित-लेखक एक कदम भी नहीं चल सकता।

इस ग्रन्थ का आर्यसमाज नया बांस, देहली के सत्प्रयास से सं० २०२८ में आर्यभाषानुवाद भी प्रकाशित हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२–श्री महात्मा मुन्शीरामजी

श्री स्वर्गीय श्रद्धानन्दजी का पूर्व नाम महात्मा मुन्शीराम था। उन्होंने ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के नाम लिखे गये तथा अन्य व्यक्तियों के द्वारा ऋषि को लिखे गये उभयविधि पत्रों का संग्रह किया था। उनमें से कुछ पत्रों को उन्होंने पहले 'सद्धर्म-प्रचारक' के सं० १९६६ के कुछ अंकों में प्रकाशित किया था। तत्पश्चात् सं० १९६६ में ही उन्होंने "**ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार**" (प्रथम भाग) नाम से कुछ पत्रों का संग्रह छपवाया था। यद्यपि इस संग्रह में ऋषि के अपने लिखे हुए पत्र बहुत स्वल्प हैं, अधिकतर पत्र ऋषि के नाम भेजे गए विभिन्न व्यक्तियों के हैं, तथापि यह संग्रह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस संग्रह की भूमिका से विदित होता है कि श्री महात्मा मुन्शीरामजी के पास और भी बहुत से पत्रों का संग्रह था। जिसे वे 'द्वितीय भाग' में छापना चाहते थे। परन्तु अपने को ऋषि-भक्त मानने वाले आर्यजनों का सहयोग न मिलने से दूसरा भाग नहीं छप सका। अवशिष्ट पत्रों के संग्रह की क्या दशा हुई, इसका हमें कोई ज्ञान नहीं।

३–श्री पण्डित भगवद्दत्तजी

आपने सं० १९७२ से ऋषि दयानन्द के पत्रों और विज्ञापनों तथा ऋषि के जीवन-कार्य से सम्बन्ध रखने वाली विविध सामग्रियों का अनुसन्धान तथा संग्रह प्रारम्भ किया। उन्होंने सं० १९७५, १९७६, १९८३ १९८४ में क्रमशः चार भागों में ऋषि के स्वलिखित २४६ पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह प्रकाशित किया। इसके अनन्तर भी वे शनैः शनैः इसी कार्य के अनुसन्धान में लगे रहे। सं० २००२ तक उन के पास ऋषि दयानन्द के लगभग ५०० पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह हो गया था।

माननीय पण्डितजी ने उपलब्ध समस्त पत्रों और विज्ञापनों का तिथि क्रम से सम्पादन करके रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर के द्वारा उनको प्रकाशित किया। यह संग्रह 'ट्रस्ट' ने सं० २००२ में २०×३० अठपेजी आकार के ५५० पृष्ठों में छपवाकर प्रकाशित किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय पण्डितजी ने ऋषि दयानन्द का प्रामाणिक जीवनचरित लिखने के लिए भी बहुत सी सामग्री पत्रों के अनुसन्धान काल में संगृहीत कर ली थी और वे उसे व्यवस्थित करना ही चाहते थे कि सं० २००४ में देशविभाग-जनित भयङ्कर उपद्रवों में वह सम्पूर्ण महत्त्वपूर्ण सामग्री माडलटाउन लाहौर में उनके घर में ही छूट गई। उसके साथ ही ऋषि दयानन्द के हस्तलिखित शतशः असली पत्र और ऋषि के नाम आये हुए अन्य व्यक्तियों के पत्र नष्ट हो गये। आर्य-समाज के इतिहास में यह एक ऐसी दुःखद घटना है कि जिसका पूरा होना सर्वथा असम्भव है।

यह बड़े सौभाग्य की वात है कि श्री माननीय पण्डितजी के पास ऋषि के द्वारा लिखे हुए जितने पत्र और विज्ञापन संगृहीत थे, वे देश-विभाजन से कुछ काल पूर्व ही रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हो गये थे और उसकी कुछ कापियां वाहर निकल चुकी थीं। अन्यथा आर्य-जाति ऋषि के इन महत्त्वपूर्ण पत्रों से भी सदा के लिये वञ्चित रह जाती और माननीय पण्डितजी का सारा परिश्रम निष्फल जाता।

—:०:—

४—श्री महाशय मामराजजी

श्री महाशय मामराजजी खतौली जि० मुजफ्फरनगर के निवासी थे। आप के हृदय में ऋषि दयानन्द के प्रति कितनी श्रद्धा भरी थी, यह वही जान सकता है, जिसे उनके साथ कुछ समय रहने का सौभाग्य मिला हो। वे ऋषि के कार्य के लिये सदा पागल बने रहते थे। श्री पण्डित भगवद्दत्तजी ने पत्रों का जो महान् संग्रह किया था, उसमें आपका बहुत बड़ा भाग है। आपने जिस धैर्य और परिश्रम से ऋषि के पत्रों की खोज और संग्रह का कार्य किया है, वह केवल आप के ही अनुरूप हैं। यदि श्री पण्डित भगवद्दत्तजी को आप जैसा कर्मठ सहयोगी न मिलता तो वे कदापि इतना बड़ा संग्रह नहीं कर सकते थे। आपने भी ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत सी पुरानी सामग्री का बृहत् संग्रह किया था और उसका अधिक भाग श्री पण्डित भगवद्दत्तजी के ही पास माडलटाउन (लाहौर) में रक्खा हुआ था। अतः इनका बहुत सा संग्रह भी वहीं नष्ट हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—श्री० पं० चमूपति जी एम० ए०

श्री पण्डित चमूपतिजी को ठाकुर किशोरीसिंह से ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार का एक बहुमूल्य संग्रह प्राप्त हुआ था। उसमें ऋषि दयानन्द के तथा अन्यों के ऋषि के नाम लिखे हुए लगभग १७२ पत्रों का संग्रह था। उसे उन्होंने सं० १९९२ (=सन् १९३५) में गुरुकुल कांगड़ी से प्रकाशित किया था। इस संग्रह में ऋ० द० के अन्तिम समय के राजस्थान के विशिष्ट व्यक्तियों से सम्बद्ध पत्र हैं। इस दृष्टि से यह संग्रह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

ऋ० द० के समस्त उपलब्ध पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह

हमने ऊपर ऋषि दयानन्द के पत्रों और विज्ञापनों के अनेक संग्रह कर्ता विद्वानों का उल्लेख किया है। इन्होंने यथा अवसर अनेक पत्रों और विज्ञापनों के संग्रह प्रकाशित किये थे। उनमें ऋषि दयानन्द के जितने पत्र और विज्ञापन छपे थे, उनका तथा अन्य उपलब्ध अमुद्रित पत्रों और विज्ञापनों का बृहत् संग्रह प्रथमबार रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर ने सं० २००२ (सन् १९४५) में २०×३० अठपेजी आकार के ५५० पृष्ठों में प्रकाशित किया था। इसका सम्पादन आर्यसमाज के विख्यात पण्डित और भारत के प्राचीन इतिहास के धुरन्धर विद्वान् श्री पण्डित भगवद्दत्तजी ने किया था, यह हम पूर्व लिख चुके हैं।

पत्रों की महत्ता

किसी भी स्वर्गीय व्यक्ति के जीवन और उसकी महत्ता को जानने के लिये उसके द्वारा लिखे गये पत्र अत्यन्त उपयोगी साधन होते हैं। पत्रों में प्रत्येक व्यक्ति अपने विचार अत्यन्त विस्पष्ट और सरलता से प्रकाशित करता है। इस दृष्टि से पत्रों का महत्व उसके द्वारा लिखे गये ग्रन्थों से भी अधिक माना जाता है। ऋषि दयानन्द के पत्रों से अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयों और घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है, जिन पर उनके लिखे हुए ग्रन्थों और जीवनचरित्रों से कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता।

ऋषि दयानन्द के इन पत्रों और विज्ञापनों से जिन-जिन विषयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर प्रकाश पड़ता है, उनका निर्देश इन पत्रों के सम्पादक माननीय पण्डित भगवद्दत्तजी ने अपनी विस्तृत भूमिका में विस्तार से किया है। इसलिये हम उसका यहाँ पिष्टपेषण करना उचित नहीं समझते हैं। हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे एक बार उस भूमिका को आदि से अन्त तक अवश्य देखें। पत्रों की महत्ता का दिग्दर्शक मेरा भी एक लेख आर्यजगत् लाहौर के सं० २००३ फाल्गुन मास के अङ्क में छपा है।

हमारे इस ग्रन्थ के अवलोकन से भी पाठकों को इन पत्रों की महत्ता का कुछ परिचय अवश्य हो जायगा। हमारे इस ग्रन्थ का मुख्य आधार वस्तुतः ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार ही है। इसके विना यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कदापि नहीं लिखा जा सकता था।

ऋ० द० के पत्रों और विज्ञापनों का द्वितीय संस्करण

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा सं० २००२ में लाहौर में प्रकाशित 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' नामक संग्रह सन् १९४७ के देश-विभाजन के समय लाहौर में जला दिया गया। सौभाग्य से इस की कुछ प्रतियां देशविभाजन से पूर्व पञ्जाब से बाहर पहुंच गईं थीं।

देशविभाजन के कुछ वर्ष पश्चात् जब रामलाल कपूर ट्रस्ट का कार्य 'अजमतगढ़ पैलेस (मोतीझील) काशी' में पुनः आरम्भ किया गया तो लाहौर में छपे हुए नष्ट हुए ग्रन्थों के पुनः प्रकाशन की व्यवस्था की गई। सन् १९५३ के अन्त में 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' के पुनः प्रकाशन का निश्चय हुआ। इस बार इस के पुनः सम्पादन का भार मुझे स्वीकृत करना पड़ा, क्योंकि श्री पं० भगवद्दत्त जी काशी से दूर देहली में विराजमान थे, तथा देशविभाजन-जनित अपनी परिस्थितियों से जूझ रहे थे।

मैंने सम्पूर्ण पूर्व मुद्रित संग्रह को पुनः व्यवस्थित किया। ऋ० द० के पत्रों, अन्य व्यक्तियों के द्वारा लिखे गये पत्रों तथा पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित के आधार पर अनेक पत्राशयों, पत्र-सूचनाओं, तथा तार-पारसल आदि की सूचनाओं का संकलन करके उन्हें यथास्थान जोड़ने का प्रयत्न किया। पचासों नई टिप्पणियां लिखीं और ८ परि-शिष्टों की सामग्री संकलित की। इस कार्य को अधिक से अधिक उपादेय बनाने के लिये दूर बैठे हुए ही ऋषि भक्त श्री मामराज जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रों द्वारा अत्युपयोगी सुझाव देते रहे और मुझे प्रोत्साहित करते रहे। एक दो बार इस कार्य के लिये काशी भी पधारे।

सन् १९५४ के आरम्भ में ही मैं भयंकर 'अम्लपित्त' रोग से पीड़ित हो गया और निरन्तर सवा वर्ष तक इस के प्रकोप से पीडित रहा। काशी छोड़ने पर ही इस रोग से छुटकारा मिला। काशी का जलवायु सदा मेरे प्रतिकूल रहा है। इस से पूर्व भी दो बार काशी-वास के समय वहां से बीमार होकर ही लौटा था। अस्तु, इसी अस्वस्थ अवस्था में मैंने यथाकथचित् इस संग्रह के द्वितीय संस्करण का सम्पादन किया और यह सन् १९५५ में प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में प्रथम संस्करण की पूर्ण संख्या ५०० से बढ़कर ६८० हो गई। मैंने ऋषि दयानन्द के पत्रों से संबद्ध विभिन्न विषयों पर जो परिशिष्ट तैयार किये थे, वे ग्रन्थ का आकार बढ़ जाने से साथ में नहीं छापे गये। वेदवाणी में क्रमशः छाप कर परिशिष्ट के रूप में अलग से प्रकाशित किये गये।

इसी अवसर में म० मुन्शीराम जी तथा चमूपति जी द्वारा प्रकाशित संग्रहों में अन्य व्यक्तियों द्वारा ऋ० द० को लिखे गये पत्रों की प्रेसकापी भी तैयार कर ली थी। उसे भी छपवाना चाहता था, पर प्रकाशित न कर सका। सन् १९६१ में अजमेर चले जाने पर परोपकारिणी सभा के 'परोपकारी' पत्र में इन्हें क्रमशः छापने की व्यवस्था की। चार अंकों में ही प्रकाशित हो पाये थे कि एक विशिष्ट व्यक्ति के विरोध के कारण पत्र के सम्पादक ने आगे छापना बन्द कर दिया।

तृतीय संस्करण

सन् १९५५ में प्रकाशित 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' का द्वितीय संस्करण सन् १९७० में दुष्प्राप्य हो चुका था। उस के पुनः छपवाने की कोई व्यवस्था नहीं बन रही थी। इस सुदीर्घ काल में ऋ० द० के अनेक नवीन पत्र, पत्रांश और विज्ञापन संगृहीत हो चुके थे। उधर मेरा स्वास्थ्य सन् १९७७ से ही खराब रहने लग गया था। मेरे द्वारा संगृहीत सामग्री कहीं म० मुन्शीराम जी और पं० भगवद्दत्त जो द्वारा संकलित सामग्री के समान मेरे जीवन के साथ ही नष्ट न हो जाये, इस विचार से मैंने सन् १९७९ में ऋ० द० के द्वारा लिखे गये तथा ऋषि दयानन्द के अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखे गये सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रों और विज्ञापनों के नये बृहत् संस्करण को ३ भागों में प्रकाशित करने का संकल्प किया। इस कार्य के लिये वैदिक-धर्मप्रेमी ऋषि-भक्त आर्यजनों से आर्थिक सहायता देने का अनुरोध किया। इस प्रकार आर्यजनों से प्राप्त आर्थिक सहयोग और रामलाल कपूर ट्रस्ट के सहयोग से नवीन संस्करण छापने का उपक्रम किया।

आरम्भ में दो भागों में ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन तथा एक भाग में ऋ० द० के नाम लिखे गये पत्र-विज्ञापनों को प्रकाशित करने का विचार था। परन्तु कार्य करते हुए ऋ० द० के प्रति लिखे गये पत्रों और विज्ञापनों की संख्या बढ़ जाने से इस के भी दो भाग करने पड़े। इस प्रकार इस ग्रन्थ को चार भागों में प्रकाशित करने में ऋषि-भक्त आर्य सज्जनों से लगभग बाईस सहस्र रुपयों की सहायता प्राप्त हुई और रा० ला० क० ट्रस्ट ने लगभग पचास सहस्र रुपया अतिरिक्त व्यय किया। इस प्रकार लगभग ७०-७२ हजार रुपयों के महान् व्यय से यह नवीन बृहत् संस्करण प्रकाशित हुआ।

इस का प्रथम भाग सन् १९८० में, द्वितीय भाग सन् १९८१ में, तृतीय भाग सन् १९८२ में तथा चतुर्थ भाग इसी वर्ष (१९८३) प्रकाशित हुआ है।

मैं जानता हूं कि देशविभाजन के बाद से आर्यजनों में स्वाध्याय की रुचि बहुत घट गई है और दिन दूनी रात चौगुनी मंहगाई की वृद्धि के कारण स्वाध्यायशील आर्य भी ग्रन्थ-क्रय करने में असमर्थ से हो रहे हैं। पुनरपि इस विकट परिस्थिति में भी ऋ० द० के जीवन तथा आर्यसमाज के इतिहास से सम्बद्ध यह अत्यन्त उपयोगी सामग्री नष्ट न हो जाये, इस दृष्टि से आर्य जनता द्वारा प्रदत्त राशि और ट्रस्ट द्वारा अतिरिक्त व्यय-राशि, (मिला कर ७० हजार रुपयों) को **इदं दयानन्दाय इदं न मम** की भावना से व्यय कर दिया। इस से यह ऐतिहासिक सामग्री लगभग १०० वर्षों के लिये सुरक्षित हो गई। इसी से सहायता करने वाले आर्यजनों और रामलाल कपूर ट्रस्ट को सन्तोष करना चाहिये। इस का मूल्यांकन इस समय न हो सके तो भी भावी में तो होगा ही, ऐसा विश्वास रखे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्दश अध्याय

ऋषि दयानन्द के बनाये वा बनवायें

अमुद्रित ग्रन्थ

ऋषि दयानन्द के बनाये और बनवाये हुए मुद्रित ग्रन्थों का वर्णन हम पूर्व कर चुके। अब हम उन ग्रन्थों के विषय में लिखेंगे, जो ऋषि दयानन्द ने बनाये वा बनवाये हैं, किन्तु अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान न होने के बराबर है, क्योंकि ये ग्रन्थ मुद्रित न होने के कारण हमें लेखन-काल में देखने को नहीं मिले। श्री आचार्यवर पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के साथ सन् १९३१ और सन् १९३५ में मैंने इन में से कुछ ग्रन्थों को देखा अवश्य था, परन्तु उस समय उन्हें साधारण दृष्टि से ही देखा था। अतः इस समय उनके विषय में विशेष स्मरण नहीं है।

वैदिक यन्त्रालय की सन् १९९१, ९२, ९३ की जो सम्मिलित रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, उसके अन्त में वैदिक यन्त्रालय में विद्यमान पुस्तकों की एक सूची छपी है[1]। उसके अन्तिम १२ वें पृष्ठ के दूसरे कालम में "**श्रीमद्दयानन्द सरस्वती कृत सर्व सूची पुस्तक हस्तलिखित**" शीर्षक के नीचे निम्न अमुद्रित पुस्तकों का उल्लेख मिलता है—

१—चतुर्वेद विषय सूची[2]	१	९—तैत्तिरीयोपनिषद् मिश्रित सूची	१
२—ऋग्वेद मन्त्र सूची	१	१०—ऋग्वेद विषयस्मरणार्थ सूची	१
३—यजुरथर्व मन्त्र सूची	१	११—निरुक्त शतपथमूल सूची	१
४—अथर्वमन्त्र सूची	१	१२—शतपथ ब्राह्मण सूची	१
५—अकारादि क्रम से चार वेद और ब्राह्मणों की सूची	९	१३—धातुपाठ सूची	१
		१४—वार्तिक सङ्केत सूची	१
६—निरुक्तादि विषय सूची	३	१५—निघण्टु सूची	१
७—ऐतरेय ब्राह्मण सूची	१	१६—कुरान सूची	१
८—शतपथ ब्राह्मण विषय सूची	१	१७—बाइबल सूची	१
		१८—जैन धर्म सूची	१

१. इस में से हस्तलिखित पुस्तकों की सूची परिशिष्ट १, पृष्ठ २९५-२९६ पर हमने दी हैं।

२. इस 'चतुर्वेद-सूची' को परोपकारिणी सभा ने सं० २०२८ में छपवा दिया है। इस का वर्णन इस संस्करण में पूर्व पृष्ठ ११९—१२४ तक किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सूची के अतिरिक्त स्वामी जी के हस्तलिखित ग्रन्थों की एक और सूची छपी है। यह परोपकारिणी सभा के सं० १९४२ (सन् १८८५) के "**आवेदन**"[1] नामक रिपोर्ट में पृष्ठ ७-१९ तक छपी है। उस सूची में उपर्युक्त पुस्तकों में से संख्या ३, १२ को छोड़ कर शेष सब पुस्तकों का उल्लेख है। देखो पुस्तक संख्या ११८ से १३४ तक इनके अतिरिक्त उसमें कुछ अन्य पुस्तकों का भी उल्लेख मिलता है। यथा—

१९—४४ वार्तिकपाठ सभाष्य १, स्वामी जी के बड़े भाष्य से छटवा कर लिखी।

२०—७३ मनुस्मृति के उपयोगी श्लोकों का संग्रह पुस्तक १ लिखी।

२१—७४ विदुरप्रजागर के उपयोगी श्लोकों का संग्रह पुस्तक १ लिखी।

२२—८१ ओषधियों का यादी पत्र स्वामी जी के लिखे हुए १।

२३—८३ कुरान हिन्दी भाषा में अनुवाद, स्वामी जी का बनाया हुआ, लिखी १।

२४—९४ प्राकृत भाषा का संस्कृत भाषा के साथ अनुवाद अस्त-व्यस्त, स्वामीजी का बनाया, लिखित पुस्तक १।

२५—९५ जैन फूटकर श्लोकों का संग्रह स्वामी जी कृत लिखी १।

२६—९६ रामसनेही मत गुटका लिखा'।

ऋषि दयानन्द द्वारा लिखे या लिखवाये हुए इन २६ अमुद्रित ग्रन्थों का उल्लेख परोपकारिणी सभा के पुराने रिकार्ड में मिलता है। इन २६ पुस्तकों में से कौन-कौन सी पुस्तक इस समय परोपकारिणी सभा के संग्रह में सुरक्षित है, यह हम नहीं जानते।

आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्त जो जिज्ञासु की नोट बुक में निम्न अमुद्रित हस्तलिखित पुस्तकों का नाम निर्दिष्ट हैं —

१–चतुर्वेद विषय सूची	९–कुरान की सूची
२–ऐतरेय ब्राह्मण सूची	१०–जैनमत श्लोक
३–शतपथ विषय सूची	११–ऋग्वेद सूक्त सूची
४–ऋग्वेद विषय सूची	१२–शतपथ श्लिष्ट प्रतीक सूची
५–अथर्वकाण्ड १९, २० विषय सूची	१३–निरुक्त शतपथ की मूल सूची
६–ऐतरेयोपनिषद् विषय सूची	१४–कुरान मूल हिन्दी
७–छान्दोग्योपनिषद् सूचीपत्र	१५–वार्तिकपाठ आठों अध्यायों का।
८–इञ्जील की सूची	१६–महाभाष्य का संक्षेप

१. यह आवेदन-पत्र 'ऋ० द० और आर्य-समाज से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख' नामक संग्रह में पृष्ठ ९४—१०४ तक छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१–कुरान का हिन्दी अनुवाद

(कार्तिक १९३५)

ईसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबल के पादरियों द्वारा किये हुए हिन्दी अनुवाद ऋषि दयानन्द के काल में छप गये थे। अतः उसकी समीक्षा करने में उन्हें कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। कुरान का हिन्दी अनुवाद उस समय नहीं हुआ था। अतः मुसलमानों के मत की समीक्षा के लिये उसका हिन्दी अनुवाद आवश्यक था। ऋषि दयानन्द उर्दू या अरबी फारसी नहीं जानते थे। अत एव उन्होंने सर्व प्रथम कुरान का हिन्दी अनुवाद कराया। यह अनुवाद किस से करवाया यह विदित नहीं है। परन्तु ऋषि दयानन्द के एक पत्र से ज्ञात होता है कि इस अनुवाद का संशोधन मुन्शी मनोहरलाल जी रईस गुड़हट्टा, पटना निवासी ने किया था। मुन्शीजी अरबी फारसी के अच्छे विद्वान् थे। ऋषि का पत्र इस प्रकार है—

"मुंशी मनोहरलाल जी [आनन्दित] रहो।

आप ले जाइये सब, परन्तु जितना शोधा जाय उतना भेज दें वा सब को शोध से शीघ्र भेजियेगा। क्योंकि इसका काम हमको बहुत पड़ता है। और जगन्नाथ के हाथ और भी सब पूरे पत्र भेजते हैं। आप संभाल लीजिये।

मि० मा० ३० मंगल

१०४ से लेकर १२५ पृष्ठ सब हैं।"

पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या २६९ भाग १, पृष्ठ ३२०।

यहां संवत् का तथा महीने के नाम का पूर्ण उल्लेख न होने से पत्र का काल सन्दिग्ध है। मार्गशीर्ष ३० मंगल सं० १९३४ में था, माघ ३० मंगल १९३६ में पड़ा था।

मुन्शी मनोहरलाल जी से स्वामी जी का पुराना परिचय था। सं० १९३१ वाले सत्यार्थप्रकाश के लिये कुरान मत समीक्षा का जो १३ वां समुल्लास लिखा था, उसके विषय में स्वामी ने इस प्रकार लिखा था—

"जितना हमने लिखा है इसको यथावत् सज्जन लोग विचार करें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षपात छोड़ के तो जैसा हमने लिखा वैसा ही उनको निश्चय होगा। यह कुरान के विषय में जो लिखा गया है सो पटना शहर ठिकाना गुड़हट्टा में रहने वाले मुन्शी मनोहरलाल जो कि अरबी में भी पण्डित हैं उनके सहाय से और निश्चय करके कुरान के विषय में हमने लिखा है इति।"

पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४३, टि० १, पं० २४-२८।

श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर के पुस्तकालय में महर्षि द्वारा कुरान का आर्यभाषा में करवाया हुआ अनुवाद विद्यमान है। यह पुस्तकाकार में देशी कागज पर लिखा है, इसकी जिल्द बंधी हुई है। इस कुरान के अन्त में लेखन काल "कार्तिक शुक्ला ९ सं० १९३५ (३ नवम्बर १८७८)" लिखा है। अतः यह निश्चित है कि यह ग्रन्थ कार्तिक १९३५ में तैयार हो गया था।

ऋ० द० हिन्दी कुरान छापना चाहते थे

ऋषि दयानन्द ने २४ अप्रैल सन् १८७९ के पत्र में दानापुर के बाबू माधोलालजी को लिखा था—

"कुरान नागरी में पूरा तैयार है, परन्तु अभी तक छापा नहीं गया।" पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ २५९, २६०।

इस पत्र से व्यक्त होता है कि ऋषि दयानन्द कुरान के इस हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित कराना चाहते थे।

मुझे स्मरण आता है कि सन् १९३१ में जब आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी ऋषि के हस्तलेख देखने अजमेर पधारे थे, उस समय ऋषि के अस्त-व्यस्त दशा में पड़े हुए हस्तलेखों को संभलाते हुए मैंने कुरान का एक हिन्दी अनुवाद और भी देखा था। वह नीले फुलस्केप साइज पर लिखा हुआ था। सम्भव है, वह प्रथम सत्यार्थप्रकाश लिखते समय तैयार कराया होगा। अथवा इसी अनुवाद की रफ कापी होगी। ग्रन्थ लिखते समय उसे पुनः देखने का सौभाग्य नहीं मिला।

इस विषय में पूर्व पृष्ठ ५३–५५ भी देखें।

पृष्ठ ५३ की टि० ३ की भूल का संशोधन

इस हिन्दी कुरान के विषय में पूर्व पृष्ठ ५३ की टि० ३ में अनव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धानतावश मुझ से कुछ भूल हो गई है। इस टिप्पणी में पृष्ठ ५४ पर 'ऋ० द० द्वारा कराये गये कुरान के हिन्दी अनुवाद को भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र द्वारा किये गये हिन्दी अनुवाद से ३ वर्ष पूर्व का लिखा है। यह भूल है। ऋ० द० द्वारा कराया गया अनुवाद सं० १९३५ अर्थात् सन् १८७८ का हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कुरान के हिन्दी अनुवाद का काल सन् १८७७ है। अतः उस के १ वर्ष पूर्व होने पर भी ऋ० द० का प्रयत्न इस लिये श्लाघनीय है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का किया गया हिन्दी अनुवाद प्रारम्भिक खल्पभाग का था, परन्तु ऋ० द० का कराया अनुवाद पूरे कुरान का है।

—:o:—

३—शतपथ श्लिष्ट (?) प्रतीक सूची

यह सूची पृष्ठ १५-९१ तक ७७ पृष्ठों में समाप्त हुई है।

४—निरुक्त-शतपथ की मूल सूची

इस सूची में १०९ पृष्ठ हैं।

५—वार्तिकपाठसंग्रह

महाभाष्य में से वार्तिकों को छांटकर इसमें पृथक् संकलन किया है। इस में पूरे आठों अध्यायों के वार्त्तिकों का संग्रह है। इस के अन्त में 'पद्मनाभ शर्मा' के हस्ताक्षर हैं। यह कौन व्यक्ति हैं, इसका हमें कुछ ज्ञान नहीं। सम्भव है, इस का नाम कोई व्यक्ति स्वामीजी के पास लेखक रहा हो और उसी से स्वामीजी ने यह कार्य कराया हो।

६—महाभाष्य का संक्षेप

यह ग्रन्थ १३४ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। इसमें पूरे महाभाष्य का उपयोगी अंश का संक्षेप संगृहीत है। सम्भव हैं, इसका संग्रह स्वामीजी ने अष्टाध्यायी भाष्य की रचना के लिये कराया हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महत्त्वपूर्ण अमुद्रित कृति

७—ऋग्वेद ६१ के सूक्तों का अनेकार्थ

ऋषि दयानन्द ने सं० १९३३ में लाजरस प्रेस काशी से वेदभाष्य के नमूने का अंक प्रकाशित किया था। (द्र०—पूर्व पृष्ठ १२४-१२६) उसमें ऋग्वेद के प्रथम सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के दो-दो विस्तृत अर्थ किये थे। उसी ढंग का अगले ६१ सूक्तों का किया हुआ भाष्य भी परोपकारिणी सभा के संग्रह में सुरक्षित है। वेदभाष्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसे हम ऋग्वेद का **बृहद्भाष्य** कह सकते हैं। हमारे पास इस भाष्य के पर्याप्त भाग की प्रतिलिपि हैं। इस का हमने 'रा० वा० चौ० नारायणसिंह प्रतापसिंह धर्मार्थ ट्रस्ट (करनाल) द्वारा प्रकाशित स्वसम्पादित ऋग्वेदभाष्य में उपयोग किया है। इस के साहाय्य से अनेक भ्रष्टपाठों का संशोधन किया है।

हमारी तो यह मनोकामना है कि ऋषि के लिखे हुए या उनकी प्रेरणा से लिखे गये एक-एक अक्षर की रक्षा करना परम आवश्यक है। पता नहीं किस ग्रन्थ के किस कोने में कोई अपूर्व रत्न छिपा हो, जिसमें ऋषि की बुद्धि का विशेष चमत्कार हो। अतः प्रत्येक ग्रन्थ का नहीं-नहीं एक-एक अक्षर का मुद्रण होना आवश्यक है, जिससे वह चिरस्थायी हो सके। ऋषि के ग्रन्थों का सम्पादन उच्चकोटि के विद्वानों के द्वारा होना चाहिये।

आर्ष-पाठविधि के उद्धारक, पदवाक्यप्रमाणज्ञ, महावैयाकरण, जिज्ञासूपाह्व स्व० **श्री पं० ब्रह्मदत्त जी** आचार्य के शिष्य सारस्वतवंशावतंस भारद्वाजगोत्रीय वैदिक धर्म के प्रचार के लिये उत्सर्गीकृतकाय श्री **पं० गौरीलाल आचार्य** के पुत्र **युधिष्ठिर मीमांसक** विरचित **"ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास"** नामक ग्रन्थ समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय का शेष अंश

बम्बई आ० स० के नियम और व्याख्या

श्री पं० लेखराम के लेखानुसार बम्बई में चैत्र शुक्ला ५ शनिवार सं० १९३२ (गुजराती सं० १९३१) में जो प्रथम आर्यसमाज स्थापित हुआ था, उस के २६ नियम ऋषि दयानन्द ने २४-३० नवम्बर (सन् १८७४) के मध्य रचे थे (जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ २६६)। ऋ० द० के सं० १९३१ (१९३२) चैत्र शु० ६ रविवार को श्री गोपालराव हरि देशमुख को लिखे पत्र से विदित होता है कि उक्त तिथि से पूर्व आर्यसमाज के नियमों में २ नियम बढ़ाये गये थे (द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ५७, पं० ३-८)।

२८ नियमों की व्याख्या—ऋ० द० सं० १९३२ चैत्र वद्य ९ (?) शनिवार को पं० गोपालराव हरि देशमुख को लिखते हैं—**'आर्यसमाज के नियम और उसकी व्याख्या पुस्तक छपता है'** (पृष्ठ ५८, पं० २-३)।

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या हमने 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के भाग २ के अन्त में तृतीय परिशिष्ट में पृष्ठ ९०८-९१८ तक छापी है। यह नियमों की व्याख्या श्री दामोदरदास सुन्दरदास लिखित 'मुम्बई आर्यसमाजनों इतिहास' पुस्तक में विद्यमान है। उस में व्याख्याकार के नाम का उल्लेख नहीं हैं। ग्रन्थ की अन्तरंग परीक्षा होता से ज्ञात है कि यह व्याख्या ऋ० द० की स्वलिखित है।

उदाहरण के लिये १७ वें नियम की व्याख्या में महाभाष्यस्थ **'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे'** परिभाषा को उद्धृत करना यह सिद्ध करता कि नियमों की व्याख्या किसी वैयाकरण की लिखी हुई है। १५ वें नियम की व्याख्या में पुंसवन-संस्कार का जो वीर्य रक्षा प्रयोजन लिखा है, वह भी ऋ० द० का स्वमन्तव्य है। संस्कारविधि में भी पुंसवन-संस्कार का यही प्रयोजन लिखा है। अन्य आचार्य इस संस्कार का प्रयोजन लड़का उत्पन्न होना मानते हैं। इन दो उदाहरणों से स्पष्ट है कि बम्बई आर्यसमाज के आद्य २८ नियमों और उसकी व्याख्या ऋ० द० कृत ही है।

इस का निर्देश चतुर्थ अध्याय के पृष्ठ ७८ में **'वेदभाष्य के नमूने'** से पूर्व करना चाहिये था, परन्तु वहां उल्लेख करना छूट गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट १

ऋ० द० कृत ग्रन्थों के हस्तलेखों का विवरण

ऋषि दयानन्द विरचित जितने ग्रन्थों का हमने पूर्व वर्णन किया है, उन सब ग्रन्थों के हस्तलेख इस समय प्राप्य नहीं हैं। ऋषि ने अपने किन-किन ग्रन्थों के हस्तलेख सुरक्षित रखवाए, इसका कोई व्यौरा प्राप्त नहीं होता। स्वामीजी के ग्रन्थों के हस्तलेखों का सब से प्राचीन उल्लेख **परोपकारिणी सभा के वि० सं० १९४२ (सन् १८८५ ई०) के वार्षिक "आवेदन-पत्र" में उपलब्ध होता है।** दूसरा उल्लेख **वैदिक यन्त्रालय की सन् १८९१, ९२, ९३ की सम्मिलित रिपोर्ट के अन्तिम भाग में मिलता है।** इन दोनों स्थानों में हस्तलेखों के नाममात्र का उल्लेख है, विशेष वर्णन कुछ नहीं है।

ऋग्वेद-भाष्य और यजुर्वेद-भाष्य के हस्तलेखों का कुछ विशेष वर्णन **ब्रह्मचारी रामानन्द के एक पत्र** में मिलता है। रामानन्द ने यह पत्र पं० मोहनलास विष्णुलाल पाण्ड्या के पत्र के उत्तर में लिखा था। उक्त पत्र पौष कृष्णा ३ रविवार सं० १९४० (=१६ दिसम्बर १८८३) का है। तदनुसार यह वर्णन ऋषि के निधन के लगभग डेड़ मास पीछे का है। अतः यह सब से पुराना और प्रामाणिक वर्णन है।

अब हम क्रमशः इन तीनों स्थानों में उपलब्ध ऋषि दयानन्द विरचित ग्रन्थों के हस्तलेखों के वर्णन का उल्लेख करेंगे।

१—आवेदन-पत्र

आवेदन पत्र के मुख पृष्ठ पर निम्न लेख है—

वार्षिक आवेदन[1]

पण्डित श्री मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या

---

१. यह आवेदन पत्र श्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने श्रीमती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपमन्त्री श्रीमती परोपकारिणी सभा निवेदित
श्रीमद्दयानन्द स्वामी कृत स्वीकार पत्र सम्बधिनी
श्रीमती परोपकारिणी सभा कार्यालय उदयपुर
ता० १६ दिसम्बर सन् १८८५ ई०

इस **वार्षिक आवेदन-पत्र** के पृष्ठ ७–१९ तक ऋषि दयानन्द के संग्रह में विद्यमान **लिखित तथा मुद्रित ग्रन्थों की सूची** छपी है। उस के विषय में परोपकारिणी सभा के तात्कालिक उपमन्त्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्डचा ने उक्त आवेदन पत्र के पृष्ठ २ पर इस प्रकार लिखा हैं—

"पुस्तकों की एक फैहरिस्त इसके साथ पेश करता हूं कि **जिस पर (क) चिह्न है यह सब पुस्तकें मेरे पास उदययुर में धरी** हैं, और उसी के साथ दूसरी पुस्तकों की एक फैरिस्त (ख) **चिह्न** की जो मुंशी समर्थदानजी ने मेरे पास भेजी है, पेश करता हूँ। उसमें लिखी **सब पुस्तकें वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं।**"[1]

विशेष—यद्यपि मुद्रित आवेदन-पत्र के मुख पृष्ठ पर ता० ६ दिसम्बर सन् १८८५ छपा हैं, परन्तु यह सूची सम्भवतः सन् १८८४ के आरम्भ (सं० १९४० के अन्त) में ही तैयार हो गई थी। इस में निम्न प्रमाण है—

आगे उद्धृत की जा रही सूची में वेष्टन नं० २० में लिखा है—

परोपकारिणी सभा के सन् १८८३ के अधिवेशन में प्रस्ताव नं० ७ के अनुसार तैयार कराई थी। प्रस्ताव इस प्रकार पारित हुआ था—

प्रस्ताव नं० ७—सबकी सम्मति से स्वीकार हुआ कि पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्डचा सब पुस्तकें, कागज और हिसाब आदि को संभाल लें और शोध करने के पीछे एक फैरिस्त तैयार करे कि……। पृष्ठ ३

१. हम ने उक्त क.ख. संकेतित पुस्तकों की पूरी सूची वेदवाणी के सन् १९८२ के मार्च मास के अङ्क में पृष्ठ ९४ से १०४ तक छापी है। तथा इसे 'ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख' संज्ञक ग्रन्थ में भी पृष्ठ ९४—१०४ तक मुद्रित किया है। पाठक ऋ० द० की लिखित और मुद्रित पुस्तकों की इस सूची को अवश्य देखें। उस से अनेक नई बातों का ज्ञान होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"......इसी में **संस्कार विधि के पत्रे है अर्थात् उनकी शुद्ध प्रति कर के छपवानी होगी।"**

संस्कारविधि का मुद्रण आश्विन बदी ५ बुधवार सं० १९४१ अर्थात् नवम्बर सन् १८८४ में समाप्त हुआ था (देखो पूर्व पृष्ठ १०९)। संस्कारविधि के मुद्रण में न्यूनातिन्यून ६-७ मास तो लगे ही होंगे। यतः उक्त आवेदन पत्र में इस के छपवाने का निर्देश है अतः सूची तैयार करने का हमारा अनुमानित काल लगभग सही है।

उक्त आवेदन पत्र में मुद्रित पुस्तकों की सूची में ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के हस्तलेखों का जो उल्लेख मिलता है, वह निम्न प्रकार है—

वेष्टन नं० १६ दयानन्द स्वामी सरस्वती कृत सर्व सूचीपत्र—

क्रमाङ्क ११८	चारों वेदों का अकारादि क्रम से सूची	१	लिखी
११९	ऋग्वेद सूचीपत्र	१	"
१२०	अथर्ववेद के मन्त्रों की सूची	१	"
१२१	उपनिषदों की सूची	१	"
१२२	अकारादि क्रम से चार वेद और ब्राह्मणों की सूची	९	"
१२३	ऐतरेय ब्राह्मण सूची	१	"
१२४	शतपथ ब्राह्मण सूची	१	"
१२५	निरुक्त सूची	१	"
१२६	निरुक्त और शतपथ अमूल (?) सूची		"
१२७	निघण्टु सूची	३	"
१२८	धातुपाठ सूची २ अकारादि क्रम से	१	"
१२९	उणादि सूची	२	"
१३०	वार्त्तिक सूची	३	"
१३१	ऋग्वेद के विषयों की याद के लिये सूची	२	"
१३२	कुरान की सूची	१	"
१३३	बाइबल की सूची	१	"
१३४	जैनियों की सूची	१	"

वेष्टन नं० १८ श्री स्वामीजी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशुद्ध लेख[1] अर्थात् **संस्कृत शोधकर**[1] भाषा बनाने का ।
वेष्टन नं० १९ श्री स्वामीजी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का **शुद्ध लेख**[1] भाषासहित जो छापने योग्य ।
वेष्टन नं० २० श्री स्वामीजी कृत ऋग्वेदभाष्य भाषासहित, इसकी शुद्ध प्रति लिखी जाकर वेष्टन संख्या १९ में रखनी और इसी में **संस्कारविधि के पत्रे है अर्थात् उनकी शुद्ध प्रति करके छपवानी होगी ।**
„ „ २१ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सौवर, पारिभाषिक, उणादि, कुछेक अष्टाध्यायी की संख्या और संस्कारविधि के रद्दी कागज ।

वेष्टन नं० १४ क्रमाङ्क ९४ प्राकृत भाषा का संस्कृत शब्दों के साथ अनुवाद अस्त व्यस्त स्वामीजी का बनाया लिखित पुस्तक १
„ „ ९५ जैन फुटकर श्लोकों का संग्रह स्वामीजी कृत लिखी १
„ „ ११ क्रमाङ्क ८१ औषधियों की यादी पत्र स्वामीजी के लिखे हुए
„ „ १२ क्रमाङ्क ८३ कुरान हिन्दी भाषा में अनुवाद स्वामी जी का बनाया लिखी १
„ „ ६ क्रमाङ्क ४४ वार्तिकपाठ सभाष्य १ स्वामीजी का बड़े भाष्य से छंटाया लिखी १

२—वैदिक यन्त्रालय की रिपोर्ट

वैदिक यन्त्रालय की सन् १८९१, ९२, ९३ की सम्मिलित रिपोर्ट के अन्त में पृष्ठ ११, १२ पर स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों के हस्त-लेखों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

---

१. यहां 'अशुद्ध लेख' का अभिप्राय पाण्डुलिपि (रफ कापी) से है और 'संस्कृत शोधकर' का अभिप्राय लेखक प्रमाद से हुई अशुद्धियों को दूर करके मुद्रणयोग्य 'प्रेस कापी' से है । ऐसा ही प्रयोग रामानन्द के आगे उद्धृत पत्र में भी मिलता है । लेखक को 'पाण्डुलिपि' या 'रफ कापी' तथा 'प्रेसकापी' शब्दों का का ज्ञान नहीं था । उसने साधारण शब्दों से अपना भाव लिख दिया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असली कापियों की सूची

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका लिखित कापी	१
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका रफ कापी आदि से ईश्वर विषय तक	१
यजुर्वेद भाष्य कापी असली	१
यजुर्वेद भाष्य कापी नकली*	१
ऋग्वेद भाष्य कापी असली	१
,, ,, ,, नकली*	१
ऋग्वेद मन्त्रों की व्याख्या पत्रे ७	१
वर्णोच्चारणशिक्षा अपूर्ण कापी	१
सन्धिविषय कापी अपूर्ण	१
नामिक	१
कारकीय	१
सामासिक	१
स्त्रैणतद्धित	१
अव्ययार्थ	१
सौवर	१
आख्यातिक	१
पारिभाषिक	१
धातुपाठ	१
गणपाठ	१
उणादिकोष	१
निघण्टु	१
निरुक्त†	१
अष्टाध्यायी मूल†	१
संस्कृतवाक्यप्रबोध	१
भ्रमोच्छेदन	१
अनुभ्रमोच्छेदन	१
आर्योद्देश्यरत्नमाला	१
गोकरुणानिधि	१
वेदविरुद्धमतखण्डन	१
शास्त्रार्थ फिरोजाबाद†	१
शास्त्रार्थ काशी	१
भ्रान्तिनिवारण	१
पञ्चमहायज्ञविधि	१
सत्यार्थप्रकाश	१
संस्कारविधि	१
स्वीकारपत्र	१
वेदभाष्यविषयक शंकासमाधान निरूपण*	१
वेदभाष्य विज्ञापन कापी	१
शतपथ ब्राह्मण†	१
श्रीमद्दयानन्द सरस्वती कृत सर्व सूची पुस्तक हस्तलिखित	
चतुर्वेद विषय सूची	१
ऋग्वेद मंत्र सूची	१
यजुरथर्व मंत्र सूची	१
अथर्वमन्त्र सूची	१
अकारादि क्रम से चार वेद और ब्राह्मणों की सूची	६
निरुक्त आदि विषय सूची	३
एतरेय ब्राह्मण सूची	१
शतपथ ब्राह्मण विषय सूची	१
तैत्तिरीयोपनिषदादि मिश्रित सूची	१

* नकली का अभिप्राय यहां प्रतिलिपि की हुई प्रेसकापी से है।

† यह ग्रन्थ ऋषि दयानन्दकृत नहीं है।

* यह भ्रान्तिनिवारण की ही दूसरी कापी है। देखो आगे पृष्ठ ८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद विषय स्मरणार्थ सूची	१	निघण्टु सूची	३
निरुक्त शतपथ मूल सूची	१	कुरान सूची	१
धातुपाठ सूची	१	बाइबल सूची	१
वार्त्तिक संकेत सूची	३	जैनधर्म पुस्तक सूची	१

३—रामानन्द का पत्र

परोपकारिकारिणी सभा के उपमन्त्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने ऋषि दयानन्द के निधन के पश्चात् ब्र० रामानन्द को छप रहे ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेदभाष्य की स्थिति देखकर उस का विवरण तैयार करके देने को कहा था। उस के अनुसार ब्रह्मचारी रामानन्द ने ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेदभाष्य के विवरण के साथ पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या को जो पत्र लिखा था वह इस प्रकार है—

[1]श्रीयुत माननीयानेकशुभगुणगणाऽलंकृतब्रह्मकर्मसमर्थश्रीमत्पंडितवर्य मोहनलालविष्णुलालपण्ड्याऽभिधेयेष्वितों रामानन्दब्रह्मचारिणोऽनेकधा प्रणतियः समुल्लसन्तुतरामिति ॥

भगवन् आपने जो मुझे श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्यतर्य्य श्री १०८ श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामीजी कृत ऋग्वेदादिभाष्य के विषयों की परीक्षा करके श्रीमती परोकारिणी सभा में निवेदन के लिये (एक सारांश) बनाने को प्रेरणा की थी सो आपकी आज्ञानुसार उसको बनाकर आपकी सेवा में सर्मपित कर्ता हूं, अवलोकन कीजियेगा।

इत्यलं प्रशंसनीयबुद्धिमद्वर्य्येषु

मिति पौष कृष्ण ३, शुभचिन्तक
रवि सम्वत् १९४० रामानन्द ब्रह्मचारी

ऋग्वेद भाष्य	यजुर्वेद भाष्य
श्रीयुत् परमहंस परिव्राजकाचार्य्यवर्य्य श्री १०८ मद्दयानन्द सर-	यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण हो गया अर्थात् ४०वें अध्याय की समाप्ति

१. यह पत्र मूल पत्रानुसार छापा गया है। मूल पत्र ऋ० द० के पत्रों के अनुसन्धानकर्त्ता श्री मामराज के पास था। इसकी फोटो कापी श्री बा० हरविलास शारदा, मन्त्री परोपकारिणी सभा ने भी कराई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वती जी कृत ऋग्वेदादिभाष्य की व्यवस्था निम्नलिखित प्रमाणे जानना चाहिये—

अर्थात्

ऋग्वेद का भाष्य १ मंडल के आरम्भ से ७ मंडल के ६२वें सूक्त के २ मन्त्र तक रचा गया।

१ मंडल के आरम्भ से ८६ सूक्त के ५ मन्त्र तक मुद्रित हो चुका अर्थात् ५०+५१ अङ्क तक।

१ मंडल ८६ सूक्त के ६ मन्त्र से ९१ सूक्त के ३ मन्त्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुंशी समर्थदान जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

१ प्रथ[म] मंडल के ९१ सूक्त के ४ मंत्र से १ प्रथम मंडल के ११४ वें सूक्त के ५वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति लिखी हुई छपाने योग्य है।

१ प्रथम मंडल के १४४वें सूक्त के ६ मन्त्र से १ मंडल के १२४वें सूक्त के १२वें मन्त्र तक की भाषा बनी हुई है।

१ मंडल के.....मन्त्र से १ मंडल के.....सूक्त की समाप्ति पर्यन्त का भाष्य पं० ज्वालादत्त जी [के पा]स भाषा बनाने के लिये पर्यन्त रचा।

१५वें अध्याय के ११ मन्त्र तक का भाष्य मुद्रित हो गया अर्थात् ५० और ५१ अङ्क तक।

१५वें अध्याय के १२वें मन्त्र से लेकर २१वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुंशी समर्थदानजी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं।

१५वें अध्याय के २२वें मन्त्र से २३वें अध्याय के ४९ मन्त्र तक छपने योग्य शुद्ध प्रति लिखी हुई है।

२३वें अध्याय के ५०वें मन्त्र की भाषा बनी हुई[1] शुद्ध प्रति में लिखने योग्य है।

२३वें अध्याय के ५१वें मन्त्र से ६५ मन्त्र तक अर्थात् अध्याय की समाप्ति पर्यन्त की भाषा नहीं बनी।

२४वें अध्याय.....अध्याय तक का भाष्य भाषा बनाने के लिये पं० ज्वालादत्तजी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

२७ वें अध्याय वे आरम्भ से ४० वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त

१. ज्वालादत्त के भाद्र कृष्णा ६ [सं० १९३९] के पत्र के आरम्भ में यजु० के अ० २३ के ५१ मन्त्रों की भाषा बनाकर भेजने का उल्लेख है, परन्तु इसी पत्र में आगे ५० मन्त्र की भाषा का ही उल्लेख मिलता है। द्र० पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पूर्ण संख्या २७५, पृष्ठ २५९, पं० ६ तथा पृष्ठ २६०, पं० ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

१ मंडल के १४४वें सूक्त से ७ मंडल के ६२ सूक्त के २ मन्त्र तक का भाष्य अशुद्ध संस्कृत* में बना हुआ हैं।

१ मंडल के ६१वें सूक्त के ५वें मन्त्र से १ मंडल के ११४वें सूक्त के ५वें मन्त्र के ऋग्वेदभाष्य के रद्दी पत्रे हैं अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई।

का अशुद्ध संस्कृत* भाष्य बना हुआ है अर्थात् बिना शुधो संस्कृत है।

१३ वें अध्याय के २१ वें मन्त्र से २३ वें अध्याय के २९ वें मन्त्र तक के रद्दी पत्रें हैं अर्थात् शुद्ध हो गई।

मिती पौष कृष्ण ३ रवि सं० १९४०"

ब्र० रामानन्द का उपर्युक्त पत्र २८ दिसम्बर १८८३ की परोपकारिणी सभा के प्रथम अधिवेशन में पढा गया—

"एक पत्र इस विषय पर पढ़ा गया कि स्वर्गवासी स्वामी जी ऋग और यजुर्वेद भाष्य का कौन सा भाग समाप्त और असमाप्त छोड़ गये हैं। प्रतीत होता है कि समग्र यजुर्वेद का भाष्य स्वामी जी पूरा कर गये हैं परन्तु बहुत थोड़ा भाग उसका अब तक मुद्रित हुआ है और ऋग्वेद का सप्तम मण्डल तक।" द्र० सभा की रिपोर्ट पृष्ठ ३।

—:o:—

हस्तलेखों का विवरण

अब हम ऋषि दयानन्द विरचित ग्रन्थों के उन हस्तलेखों का विवरण उपस्थित करते हैं जो इस समय तक परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान हैं। यह विवरण वस्तुतः उस ढंग का नहीं हैं जिस प्रकार का आवश्यक होता है, परन्तुः हम सम्प्रति इससे अधिक विवरण देने में असमर्थ हैं, क्योंकि परोपकारिणी के अधिकारियों की हमें हस्तलेख देखने की आज्ञा प्राप्त नहीं हुई। अतः हमें इतने से ही

२. यहां अशुद्ध संस्कृत से अभिप्राय उस रफ कापी का हैं जिसे श्री स्वामी जी महाराज ने पुनः नहीं शोधा। पूर्व पृष्ठ ४ की टि० १ भी देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय सन्तोष करना पड़ा। मैंने हस्तलेखों का अगला विवरण अपने पूज्य आचार्य श्री पं ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु की नोट बुकों से संगृहीत किया है। उन्होंने दो तीन बार विशेष समय लगाकर ऋषि के हस्तलेखों को सुव्यवस्थित किया था। उसी समय उन्होंने उनके कुछ नोट लिये थे। वे नोट किसी विशेष उद्देश्य से नहीं लिखे गये थे, केवल अपनी जानकारी के लिये लिखे थे। अतः उन में वह पूर्णता नहीं है जो कि पुस्तकलेखन-कार्य के लिये आवश्यक होती है। यह भी सम्भव है कि इन नोटों में कुछ भूल चूक हो गई हो, फिर भी इन नोटों से ऋषि के हस्तलेखों के विषय में पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। इस लिये उन्हें ही हम व्यवस्थित करके नीचे प्रकाशित कर रहे हैं। भविष्य में यदि प्रभु की कृपा से परोपकारिणी सभा के अधिकारियों को सुबुद्धि प्राप्त होगी और वह लेखकों और सम्पादकों को हस्तलेख देखने और मिलाने का अवसर प्रदान करेगी, तभी इन हस्तलेखों का पूर्ण विवरण हम प्रकाशित करने में समर्थ होंगे।[1] अस्तु।

१—आर्योद्देश्यरत्नमाला

इस पुस्तिका के हस्तलेख की दो प्रतियां हैं—एक अपूर्ण और दूसरी पूर्ण है।

पाण्डुलिपि का विवरण

पृष्ठ—इस कापी में केवल ४ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २७ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर हैं।

विशेष वक्तव्य—इस प्रति के चारों पृष्ठ स्वामीजी के अपने हाथ से लिखे हुए हैं। बीच में कहीं पेंसिल का भी लेख है। यह कापी रत्न नं० १ से ५६ (निन्दा) तक है।

संशोधित कापी का विवरण

यह कापी संशोधित तथा परिवर्धित है। यह हस्तलेख पूर्ण है।

पृष्ठ—इस कापी में १२ पृष्ठ हैं।

---

१. यह लेख सन् १९५० का है। इतने सुदीर्घ काल में न परोपकारिणी सभा ने हमें वह अवसर प्रदान किया और नाही पूर्ण विवरण प्रस्तुत करने में हम समर्थ हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २१ पंक्तियां हैं।

अक्षर —प्रति पंक्ति लगभग २४ अक्षर हैं।

संशोधन— इस कापी में लाल स्याही से श्री स्वामीजी के हाथ का संशोधन और परिवर्धन पर्याप्त मात्रा में है। पृष्ठ संख्या १० से पेंसिल का भी संशोधन है और वह भी स्वामीजी के हाथ का है।

२—भ्रान्तिनिवारण

इस ग्रन्थ की दो हस्तलिखित प्रतियां हैं। इन में एक अपूर्ण है और दूसरी पूर्ण। इन दोनों में कोई प्रेस कापी नहीं है।

कापी नं० १

पृष्ठ—इस प्रति में ८ पृष्ठ हैं। यह अपूर्ण है।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २८ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ३१ अक्षर हैं।

कागज—सफेद हाथी छाप का पतला फुल्स्केप आकार का लगा है।

कापी नं० २

पृष्ठ—इस प्रति में ४६ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २७ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २५ अक्षर हैं।

संशोधन—इस में लाल स्याही तथा पेंसिल का श्री स्वामीजी के हाथ का संशोधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है।

३—अष्टाध्यायीभाष्य

अष्टाध्यायी भाष्य के तीन भाग हैं। चौथे अध्याय तक पहला, पांचवां और छठे का दूसरा और सातवें का कुछ भाग तीसरा। पृष्ठ संख्या आरम्भ से दूसरे भाग अर्थात् छठे अध्याय के अन्त तक एक ही जाती है।

पृष्ठ संख्या—इस ग्रन्थ में प्रति अध्याय निम्न पृष्ठ संख्या है—

अध्याय १—पृष्ठ १-१२० तक द्वितीय पाद के अन्त तक।

पृष्ठ २२१-२४३ तक तृतीय चतुर्थ पाद का यह भाग नष्ट हो गया है।

कागज—सन् १८७७ का पतला हाथी छाप फुल्स्केप आकार का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशोधन—संशोधन पृष्ठ १-१२० तक लाल स्याही का मिलता है। यह संशोधन पं० भीमसेन के हाथ का है। कहीं कहीं काली स्याही का संशोधन भी है, वह लेखक के हाथ का है। स्वामीजी के हाथ का संशोधन इस ग्रन्थ में आदि से अन्त तक कहीं नहीं है।

अध्याय २—पृष्ठ संख्या २४४-३६६ तक।

संशोधन—कुछ नहीं है।

अध्याय ३—पृष्ठ संख्या ३६७-६६९ तक।

विशेष वक्तव्य—इस भाग में केवल प्रथम पाद के ४० वें सूत्र तक भाषानुवाद है। अगले भाग में पृष्ठ संख्या दोनों ओर डाली गई है, परन्तु सामने का पृष्ठ भाषानुवाद के लिये खाली छोड़ा गया है। ऐसा ही सिलसिला अगले अध्यायों में भी वर्तमान है। संशोधन किसी के हाथ का नहीं है।

अध्याय ४—पृष्ठ संख्या ६७०-९२८ तक।

वि० व०—भाषा नहीं है, पृष्ठ संख्या दोनों ओर है, परन्तु सामने का पृष्ठ भाषानुवाद के लिये खाली रखा गया है। संशोधन नहीं है।

अध्याय ५—पृष्ठ संख्या ९२९-१०६२ तक।

वि० व०—भाषा नहीं है। पृष्ठ संख्या दोनों ओर है, परन्तु सामने का पृष्ठ भाषानुवाद के लिये खाली रखा गया है। संशोधन नहीं है।

अध्याय ६—पृष्ठ संख्या १०६४-१२३० तक।

वि० व०—पृष्ठ १०७०, ७१, ७२ खाली हैं, भाषा नहीं हैं। पृष्ठ संख्या दोनों ओर है। भाषा के लिये सामने का पृष्ठ खाली है। अन्त अन्त के ६ पृष्ठ पीले कागज पर भिन्न स्याही से लिखे गये हैं। वस्तुतः मूल लेखक से भिन्न किसी व्यक्ति ने अध्याय की पूर्ति करने के लिये ये पृष्ठ लिखे हैं।

अध्याय ७—इस भाग में अष्टा० ७-१-१ से ७-२-६८ तक सूत्रों की व्याख्या है। इसकी पृष्ठ संख्या नहीं ली गई। इस भाग की रचना शैली पूर्व से सर्वथा भिन्न है। प्रतीत होता है किसी पण्डित ने स्वामीजी के ग्रन्थ को पूरा करने के लिये यह यत्न किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—संस्कृतवाक्यप्रबोध

इस ग्रन्थ की केवल एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है और वह भी अपूर्ण है।

पृष्ठ—इस में ३९ पृष्ठ हैं। परन्तु पृष्ठ संख्या १९–२४ तक बीच के ६ पृष्ठ नष्ट हो गये हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २९ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २८ अक्षर हैं।

कागज—हाथी छाप का पतला फुलसकेप आकार का।

लेखक—इस में दो लेखकों का लेख प्रतीत होता है।

संशोधन—इसमें स्वामीजी के हाथ का संशोधन पर्याप्त है।

५—व्यवहारभानु

इस ग्रन्थ की केवल एक हस्तलिखित प्रति है, यह पाण्डुलिपि (रफकापी) प्रतीत होती है। इसकी प्रेस कापी उपलब्ध नहीं है।

पृष्ठ—इस में ३८ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २८ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २८ अक्षर हैं।

कागज—इस में बारीक हाथी छाप का फुलसकेप कागज वर्त्ता गया है।

संशोधन—इस कापी में अन्त तक कालो स्याही से स्वामीजी महाराज के हाथ के संशोधन विद्यमान हैं। शेखचिल्ली की कहानी स्वामीजी के स्वहस्त से परिवर्धित है।

६—भ्रमोच्छेदन

इस पुस्तक का एक ही हस्तलेख उपलब्ध है।

पृष्ठ—इस में ३२ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग १८ पंक्तियां हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग १७ अक्षर हैं।

कागज—नीला बढ़िया पतला कागज लगा है।

संशोधन—इस में श्री स्वामीजी के हाथ का पर्याप्त संशोधन औरपरिवर्धन विद्यमान है।

अन्त में स्वामीजी के हस्ताक्षर और निम्न लेखन-काल लिखा है—

शुक्र मास सं० १८३७ कृष्ण पक्ष २ मंगलवार १८३७।

—:०:—

७—अनुभ्रमोच्छेदन

इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित कापी है। यह कापी पूर्ण है।

पृष्ठ संख्या--इस में २१ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २७ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग……हैं।

संशोधन—इस में लाल स्याही से श्री स्वामी के हाथ के पर्याप्त संशोधन हैं।

८—गोकरुणानिधि

इस पुस्तक की केवल एक हस्तलिखित प्रति है।

पृष्ठ—इस कापी ३१ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २४ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर हैं।

कारज—नीला अच्छा फुलसकेप आकार का।

लेखक—एक ही है। लेख सुन्दर है।

संशोधन—इस कापी में लाल स्याही से स्वामीजी के हाथ के संशोधन तथा परिवर्धन पर्याप्त मात्रा में हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—स्त्रैणताद्धित

इस ग्रन्थ का एक मात्र अपूर्ण हस्तलेख है।

पृष्ठ—हस्तलेख के केवल २३ पृष्ठ प्राप्त होते हैं।

पंक्ति—..............।

अक्षर—..............।

संशोधन—कहीं-कहीं स्वामीजी के हाथ का संशोधन प्रतीत होता है।

—:०:—

१०—सौवर

इस ग्रन्थ की केवल एक हस्तलिखित प्रति है और वह भी अपूर्ण है। अन्तिम १८ वां पृष्ठ आधा फटा हुआ है।

पृष्ठ—इस में १८ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २७ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर हैं।

संशोधन—हलकी काली स्याही का स्वामीजी के हाथ का संशोधन अन्त तक है।

—:०:—

११—पारिभाषिक

इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति है और यह पूर्ण है।

पृष्ठ संख्या—इस हस्तलेख में ५२ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—..........।

अक्षर—............।

कागज—पतला हाथी छाप का फुल्स्केप आकार का।

संशोधन—इस पर कुछ संशोधन स्वामीजी के हाथ के प्रतीत होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२—सत्यार्थप्रकाश

सत्यार्थप्रकाश के संशोधित संस्करण की दो हस्तलिखित प्रतियां हैं, ये दोनों पूर्ण है। इन में एक पाण्डुलिपि (रफ कापी) है और दूसरी संशोधित प्रेस कापी है। चौदहवें समुल्लास की इनके अतिरिक्त एक प्रति और है।

१—पाण्डुलिपि का विवरण

पृष्ठ संख्या—इस प्रति की पृष्ठ संख्या आदि से लेकर अन्त तक एक ही है, केवल भूमिका और स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकरण की पृष्ठ संख्या पृथक् है। यथा—

१—६ तक भूमिका
१-५४२ तक १-११ समुल्लास
५४३-६१७ तक १२ वां समुल्लास
६१८-७०० तक १३ वां समुल्लास
७०१-७६४ तक १४ वां समुल्लास
१-८ तक स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकरण

विशेष वक्तव्य—पृष्ठ ६४५ से आगे दो पृष्ठ बढ़ाये हैं। पृष्ठ संख्या ६५१ भूल से दो बार लिखि गई है। पृष्ठ संख्या ६५७ के पश्चात् ४ पृष्ठ बढ़ाये हैं। पृष्ठ संख्या ७०७ के स्थान में ७०६ लिखा गया है। पृष्ठ संख्या ७४२ दो बार लिखी गई है। पृष्ठ संख्या ७७० से ७७९ तक १० पृष्ठ संख्या भूल से छूट गई है। विषय सर्वत्र ठीक हैं। पृष्ठ ७९४ से आगे ३ पृष्ठ संख्या रहित अल्लोपनिषद की समीक्षा के हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ २१—२४ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २३, २४ अक्षर हैं।

लेखक—यह हस्तलेख अनेक लेखकों के हाथ का लिखा हुआ हैं।

कागज—हाथी छाप फुल्स्केप पतला सन् १८८१ का बर्ता गया है।

संशोधन—प्रायः लाल स्याही का संशोधन ऋषि दयानन्द के हाथ का है। यह आदि से अन्त तक बहुत मात्रा में विद्यमान है। कहीं कहीं पेंसिल से भी संशोधन है। पेंसिल का संशोधन प्रायः पृष्ठ १-४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक और ३९७–५४२ तक मिलता है; अन्यत्र प्रायः लाल स्याही का संशोधन है।

२— संशोधित प्रेसकापी का विवरण

पृष्ठ—इस कापी की पृष्ठ संख्या आदि से अन्त तक एक ही जाती हैं। चौदहवें समुलस में पृष्ठ संख्या की कुछ अशुद्धि है। यदि उसे ठीक कर दिया जाय तो कुल पृष्ठ संख्या ४२८ होती है। यथा—

१–३७५ तक १–१३ समुल्लास
३७६–४६५ तक १४ वां समुल्लास
४६६–४७३ तक स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकरण

विशेष वक्तव्य—पृष्ठ संख्या ४१५ के स्थान में भूल से ४५१ संख्या लिखी गई है। पृष्ठ संख्या ४५३ से आगे फिर भूल से १४१ संख्या लिखी गई जो १५१ तक जाती है।

पंक्ति – प्रति पृष्ठ ३३–३६ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति ३०–३६ अक्षर हैं।

कागज—प्रायः फुल्स्केप रूलदार मोटा कागज बर्ता गया है। पृष्ठ संख्या ९३–१०५ तक पतला हाथी छाप का है। पृष्ठ संख्या ३३७–३४४ तक बिना रूल का कागज है।

लेखक—इस प्रति में आरम्भ से १३ वें समुल्लास तक एक ही लेखक का लेख है। १४ वां समुल्लास दूसरे व्यक्ति के हाथ का लिखा हुआ है।

संशोधन—इस हस्तलेख में काली और गुलाबी स्याही से ऋषि दयानन्द के हाथ का संशोधन आरम्भ से १३ वें समुल्लास के अन्त तक विद्यमान हैं।

वि० व०—ऋषि दयानन्द के आश्विन बदि १३ सं० १९४० के पत्र से ज्ञात होता है कि उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास की पृष्ठ ३४४ तक की प्रेस कापी स्वयं शोधकर प्रेस में भेज दी थी। देखो पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ८०६, पं० २३ तथा पूर्व पृष्ठ ४१-४२।

३—चौदहवें समुल्लास की तीसरी कापी

यह पूर्वोक्त प्रेस कापी की ही प्रतिलिपि है और इसकी पृष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या में भी वही अशुद्धि हैं जो प्रेस कापी में है। इस कापी के अन्त में पं० भीमसेन का ८-४-१८८६ का निम्न लेख है —

"यह कापी सत्यार्थप्रकाश की पं० उमरावसिंहजी रुड़की के पास शोधने को भेजी, तब शिवरत्न कम्पोजीटर से समर्थदान ने नकल कराई·····सो पचास पृष्ठ के ११०६ श्लोक हुए, सो ५०० श्लोक रुपये के हिसाब से २☰) हुए, सो आज चुकाए।"

१३–पञ्चमहायज्ञविधि (सं० १९३१)

यह कापी सं० १९३१ में लिखी गई पञ्चमहायज्ञविधि की है। यह कापी पूर्ण है। पञ्चमहायज्ञविधि के ९ पृष्ठ और भी हैं, पर वे अव्यवस्थित हैं।

पृष्ठ—इस कापी में ३१ पृष्ठ हैं। प्रारम्भ के चार पृष्ठों में बीच में रेखा डाल कर दो कालम बनाए हैं और एक कालम को एक पृष्ठ माना है।

पंक्ति— ·············· ।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २७ अक्षर हैं।

कागज—नीला साधारण मोटा फुल्स्केप।

संशोधन—इस में स्वामीजी के हाथ का पेंसिल से किया हुआ पर्याप्त संशोधन हैं और आदि से अन्त तक विद्यमान है।

कापी नं० २

यह कापी पञ्चमहायज्ञविधि के मूल मन्त्रपाठ की है। इस में १३ पृष्ठ हैं। इस पर "मूल पञ्चमहायज्ञविधि छपवाने के लिये नकल कराई गई" ऐसा लेख है।

१४–संस्कारविधि

प्रथम संस्करण

संस्कारविधि प्रथम संस्करण (सं० १९३२) की एक हस्तलिखित कापी है। यह कापी पूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ—इस कापी में ११६ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग ३३, ३४ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर हैं।

कागज—नीला रूलदार फुल्स्केप आकार का कागज इस में लगा हुआ है।

लेखक—इस सम्पूर्ण कापी का एक ही लेखक है।

संशोधन—लाल स्याही और पेंसिल का है। स्वामीजी के हाथ का संशोधन भी पर्याप्त है।

संशोधित संस्करण

संस्कारविधि के संशोधित द्वितीय संस्करण (सं० १६४०) की दो हस्तलिखित प्रतियां है। एक पाण्डुलिपि (रफ कापी) है और दूसरी संशोधित (प्रेस कापी)। इन दोनों का व्यौरा इस प्रकार है—

१—पाण्डुलिपि

यह संस्कारविधि के संशोधित संस्करण की रफ कापी है। प्रारम्भ का सामान्य प्रकरण कुछ खण्डित तथा अव्यवस्थित सा है। शेष ग्रन्थ पूरा है।

पृष्ठ—इस की पृष्ठ इस प्रकार है—

१-१८ तक भूमिका तथा सामान्य प्रकरण का खंडित भाग।

१-१८४ तक गर्भाधान से अन्त्येष्टि संस्कार पर्यन्त।

वि० व०—पृष्ठ संख्या १५९ के आगे अनवधानता से केवल ६० संख्या लिखी गई है अर्थात् सौ का अंक छूट गया। इसी प्रकार अन्त तक ८४ संख्या चली है। पृष्ठ १५८ से आगे ७ पृष्ठ और बढ़ाये हैं उन पर पृथक् पृष्ठ संख्या नहीं है। तदनुसार इस कापी में कुल पृष्ठ १८+१८४+७=२०९ हैं।

पंक्ति—············।

अक्षर—············।

कागज—सन् १८७८ तथा १८८१ का हाथी छाप का फुल्स्केप आकार का लगा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशोधन—इस में काली पेंसिल का सारा संशोधन स्वामीजी के हाथ का है। कहीं-कहीं स्याही का भी संशोधन है।

२—संशोधित (प्रेस) कापी

इस कापी का हस्तलेख प्रारम्भ से गृहस्थाश्रम पर्यन्त है अर्थात् इस कापी में अन्त्य के तीन संस्कार नहीं है।

पृष्ठ—इस में आदि से गृहस्थाश्रम पर्यन्त १७२ पृष्ठ हैं ।

वि० व०—अन्त्य के वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि संस्कारों का मुद्रण पहली रफ कापी से हुआ है। प्रेस में भेजते समय रफ कापी पर ही प्रेस कापी की अगली अर्थात् १७३ आदि संख्याएं डाली गई हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग ३०, ३१ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ३५ अक्षर हैं।

कागज--पृष्ठ १७२ तक सफेद मोटा बिना रूल का फुल्स्केप आकार का है।

लेखक—आदि से अन्त तक एक ही है ।

संशोधन—लाल और काली स्याही से किया है। इस में पृष्ठ ४७ तक काली स्याही का स्वामीजी के हाथ का है।

वि० व०—ऋ० द० के 'पत्र और विज्ञापन' ग्रन्थ के भाग २ पृष्ठ ७९२ पर छपे पत्र से ज्ञात होता है कि स्वामीजी ने इसके केवल ४७ पृष्ठ शोधकर प्रेस में भेजे थे। ४७ वें पृष्ठ पर **कर्णवेध संस्कार** समाप्त होता है।

—:०:—

१५—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

इस ग्रन्थ की असम्पूर्ण और सम्पूर्ण कापी मिलाकर छः हस्त-लिखित कापियां विद्यमान हैं। उनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार हैं—

कापी नं० १

यह हस्तलेख सम्पूर्ण है तथा इस में केवल संस्कृत भाग है।

पृष्ठ—इस कापी की पृष्ठ संख्या आदि से अन्त तक क्रमशः जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। अन्त के व्याकरण विषय के ८ पृष्ठ पृथक् हैं। तथा पृष्ठ संख्या ८७ से आगे ४ पृष्ठ बढ़ाए हैं। इस प्रकार इस में कुल पृष्ठ १३५+४+८=१४७ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग ३२ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २४ अक्षर हैं।

कागज—आरम्भ में कुछ पतला नीला रूलदार फुल्स्केप आकार का है, शेष नीला बढ़िया कागज है। अन्त के ८ पृष्ठ हाथ के बने हुए मोटे कागज पर लिखे हैं।

लेखक—इस कापी में पृष्ठ १-६० तक एक लेखक के हाथ के लिखे हैं, तथा पृष्ठ ६३ से अन्त तक दूसरा लेखक है। बीच के पृष्ठों का लेखक इन दोनों से भिन्न प्रतीत होता है।

संशोधन—इस कापी में काली और लाल स्याही से ऋषि के हाथ का संशोधन है। इस में स्थान-स्थान पर हड़ताल का भी प्रयोग किया गया है।

वि० व०—इस कापी में केवल संस्कृत भाग है, भाषानुवाद नहीं है। विषय भी न्यूनाधिक तथा आगे पीछे हैं।

कापी नं० २

यह हस्तलेख भी केवल संस्कृत भाग का है, यह कापी सम्पूर्ण है।

पृष्ठ—इस में १४० पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग ३०-३२ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २४ अक्षर हैं।

कागज—पृष्ठ ३१ तक नीला बढ़िया चिकना रूलदार फुल्स्केप आकार का है, आगे बहुत मोटा चिकना सफेद देशी हाथ का बना हुआ प्रयुक्त हुआ है।

लेखक—इस कापी के लेखक दो तीन प्रतीत होते हैं।

संशोधन—इस में लाल स्याही तथा काली पेंसिल का संशोधन स्वामीजी के हाथ का है। कहीं कहीं काली स्याही का संशोधन लेखक के हाथ का भी है। पेंसिल के संशोधन भी पर्याप्त मात्रा में हैं।

वि० व०—यह कापी केवल संस्कृत भाग की है अर्थात् भाषानुवाद नहीं है, विषय भी न्यूनाधिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कापी नं० ३

यह हस्तलेख अपूर्ण है, आदि से केवल वेद-नित्यत्व प्रकरण तक है।

पृष्ठ संख्या—इस कापी में केवल ५१ पृष्ठ हैं।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग १६ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ३६ अक्षर हैं।

कागज—हाथ का बना हुआ मोटा सफेद कागज है।

संशोधन—इस कापी में केवल लेखक के हाथ के संशोधन हैं। कहीं कहीं हड़ताल का भी प्रयोग किया है।

वि० व०—इस कापी में संस्कृत और हिन्दी दोनों हैं।

कापी नं० ४

यह हस्तलेख दो भागों में विभक्त है। दोनों भाग मिलाकर पूर्ण हाते हैं। इस में भूमिका के सं० १९८५ के छठे संस्करण के पृष्ठ ३७७–३९९[1] तक का विषय उपलब्ध नहीं होता।

(क) यह भाग आरम्भ से गणित विद्या की समाप्ति पर्यन्त है। इस में संस्कृत और हिन्दी दोनों भाग हैं।

पृष्ठ—इस भाग में १८० पृष्ठ हैं।

वि० व०—पृष्ठ १४७ से आगे १० पृष्ठ परिवर्धित हैं। वे उक्त १८० संख्या से पृथक् है अर्थात् कुल पृष्ठ संख्या १९० है।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग १६ पंक्तियां हैं।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ३६ अक्षर हैं।

कागज—देशी हाथ का बना हुआ कागज है।

संशोधन—काली स्याही से ऋषि के हाथ के बहुत संशोधन हैं। अन्त में लाल स्याही से भी संशोधन किया गया है

(ख)—यह भाग गणित विद्या विषय से आगे का है। इस में केवल भाषानुवाद है। यह भाषानुवाद किस हस्तलेख के आधार पर किया है, यह तुलना करने पर ही ज्ञात हो सकता है।

पृष्ठ संख्या—इस भाग में १३८ पृष्ठ हैं। पृष्ठ संख्या ४ दो बार लिखी गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २६ पंक्तियाँ हैं ।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २६ अक्षर हैं ।

कागज—नीला फुल्स्केप आकार का कागज वर्ता गया है ।

लेखक—इस भाग में दो तीन लेखकों के हाथ का लेख है ।

संशोधन—काली स्याही से स्वामीजी के हाथ का संशोधन अन्त तक वर्तमान है ।

कापी नं० ५

यह हस्तलेख दो खण्डों में पूर्ण हुआ है ।

(क)

पृष्ठ—इस भाग में १-२०९ तक पृष्ठ हैं ।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग १० पंक्तियां हैं ।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ४२ अक्षर हैं ।

कागज—सफ़ेद मोटा देशी हाथ का बना हुआ है ।

लेखक—यह भाग कई लेखकों के हाथ का लिखा हुआ है ।

संशोधन—श्री स्वामीजी के हाथ का संशोधन इस भाग में सर्वत्र विद्यमान हैं ।

(ख)

पृष्ठ—इस भाग में पृष्ठ संख्या ११२-३२२ तक है ।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २६ पंक्तियां हैं ।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग ४२ अक्षर हैं ।

कागज—रूलदार नीला फुल्स्केप आकार का लगा है ।

लेखक—इस भाग में कई लेखकों के हाथ का लेख है ।

संशोधन—इस भाग में आदि से अन्त तक स्वामीजी के हाथ का संशोधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है ।

कापी नं० ६

इस कापी का हस्तलेख आदि से अन्त तक पूर्ण है । पूर्ण संख्या आदि से अन्त तक एक ही है ।

पृष्ठ—इस कापी में ४१० पृष्ठ हैं ।

पंक्ति—प्रति पृष्ठ लगभग २७ पंक्तियां हैं ।

अक्षर—प्रति पंक्ति लगभग २४ अक्षर हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कागज—नीला मोटा कागज लगाया है ।

लेखक—इस कापी में कई लेखकों के हाथ का लेख है ।

संशोधन—इस कापी में स्वामीजी के हाथ के संशोधन पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं । कुछ संशोधन लेखकों के हाथ के भी हैं ।

वि० व०—ऊपर निर्दिष्ट ६ कापियों में से एक भी प्रेस कापी नहीं है । प्रतीत होता है इस की प्रेस कापी लाजरस प्रेस बनारस तथा निर्णयसागर प्रेस बम्बई जहां इसका प्रथम संस्करण छपा था, रह गई है । इस प्रकार प्रतीत होता है ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका की एक के बाद एक संशोधित होकर ७ कापियां लिखी गईं ।

१६—ऋग्वेद-भाष्य

ऋग्वेद भाष्य की तीन हस्तलिखित कापियां हैं । इन में प्रथम पाण्डुलिपि (रफ़ कापी) है । यह आरम्भ से ७ वें मण्डल के ६२वें सूक्त के २ रे मन्त्र तक हैं । दूसरी इसकी संशोधित कापी है । यह केवल प्रथम मंडल के प्रारम्भ के ७७ सूक्त तक है । तीसरी संशोधित प्रेस कापी है । यह आदि से ७ वें मण्डल के ६२ वें सूक्त के २ रे मन्त्र तक है । इन का विशेष वर्णन इस प्रकार है--

१—पाण्डुलिपि

पाण्डुलिपि (रफ कापी) का व्यौरा इस प्रकार हैं—

प्रथम मण्डल—पृष्ठ १ से ४२४ तक, सूक्त १–३२ तक ।
४२५ से ६२१ तक, सूक्त ३३–३९ तक नष्ट हो गये हैं ।
६२२ से २५२२ तक, सूक्त ४०–१९१ तक ।

द्वितीय मण्डल—पृष्ठ—पृष्ठ २५२३ से २९५६ तक ।

तृतीय मण्डल—पृष्ठ २९५७–३०३८ तक ।
तथा पृष्ठ १ से ५५७ तक ।

चौथा मण्डल—पृष्ठ ५५८ से ९४८ (शुद्ध ११३८) तक ।

बि व०—लेखक ने पृष्ठ संख्या ९७० पर भूल से ७८० संख्या लिख अर्थात् १९० की भूल हो गई । यह भूल बराबर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त तक जाती है। संशोधक ने भूल को ठीक करके लाल स्याही से शुद्ध संख्या डाली है, परन्तु वह भी ८९२ पर समाप्त हो जाती है।

पांचवां मण्डल—पृष्ठ ९४९ से १६९३ तक।

षष्ठ मण्डल—पृष्ठ १६९४ से २४४५ तक।

सप्तम मण्डल—पृष्ठ १ से ५०५ तक

कागज—इस हस्तलेख में कई प्रकार का कागज वर्ता गया है। कहीं नीला, कहीं हाथी छाप का फुल्स्केप कागज है। हाथी छाप का कागज सन् १८७७ से १८८२ तक का लगा है। कुछ भाग का कागज अत्यन्त जीर्ण है, हाथ लगाने से टूटता है।

संशोधन—इस कापी में प्रारम्भ से मं० १, सू० १०० तक हिन्दी संस्कृत दोनों में तथा आगे द्वितीय मण्डल की समाप्ति पर्यन्त केवल संस्कृत श्री स्वामीजी के हाथ का संशोधन उपलब्ध होता है। परन्तु वह उत्तरोत्तर कुछ न्यून होता गया है। दूसरे मण्डल में मन्त्रसङ्गति भाग "........विषयमाह" का पाठ स्वामी का अपने हाथ का लिखा हुआ है। तीसरे मण्डल के १५ सूक्त के दूसरे मन्त्र तक कहीं-कहीं स्वामीजी के हाथ का संशोधन है, परन्तु इस के आगे अर्थात् ३।१५।३ से स्वामीजी के हाथ का संशोधन इस पाण्डुलिपि पर भी कुछ नहीं है। अर्थात् ऋग्वेदभाष्य ३।१५।३ से ७।६२।२ तक का भाग सर्वथा असंशोधित पाण्डुलिपि (रफ कापी) मात्र है।

वि० व०—इस कापी में ऋ० ३।१५।३ से चौथे मण्डल और पांचवें मण्डल के पूर्वार्ध (पृष्ठ १३३७) तक मन्त्रसङ्गति भाग "...... विषयमाह" का पाठ विद्यमान नहीं है। अतः इतने भाग की मन्त्र-सङ्गति प्रेस कापी में पण्डितों द्वारा लिखी गई प्रतीत होती है। अत एव इस भाग की मन्त्रसङ्गति अनेक स्थानों में अशुद्ध और असम्बद्ध हैं। छठे मण्डल में मन्त्रसङ्गति का पाठ प्रारम्भ से अन्त तक है, परन्तु वह उसी लेखक के हाथ का नहीं है, जिस से स्वामीजी ने वेदभाष्य लिखाया है। अतः सम्भव हैं यह मन्त्रसङ्गति भी पीछे से पण्डितों ने बढ़ाई होगी, अथवा यह भी हो सकता है ऋषि ने पीछे से किसी अन्य व्यक्ति से लिखवा दी हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—संशोधित कापी (क)

यह कापी प्रथम कापी=पाण्डुलिपि की संशोधित प्रति है। यह प्रारम्भ से लेकर प्रथम मण्डल के ७७ वें सूक्त तक है।

पृष्ठ—इस कापी में १ से १०६८ तक है।

कागज—हाथी छाप सन् १८७७ का पतला फुल्स्केप है।

संशोधन—इस कापी में स्वामीजी महाराज के हाथ का संशोधन बहुत मात्रा में विद्यमान है ।

३—संशोधित प्रेस कापी

यह संशोधित प्रेस कापी है। इसका विवरण इस प्रकार है—

पृष्ठ—१ से आरम्भ होकर २००९ तक क्रमशः चलती है। इस के आगे पुनः पृष्ठ संख्या ६८० से चलती है। यहां पृष्ठ ६८० संख्या आरम्भ क्यों हुआ, यह अज्ञात है। यह पृष्ठ संख्या ६८० से प्रारम्भ होकर ८९४ पर समाप्त होती है। इस के बाद पुनः संख्या १ से आरम्भ होती है और वह १३२८ पर समाप्त होती है। यहीं पांचवें मण्डल की भी समाप्ति होती है। इस के अनन्तर छठे मण्डल के आरम्भ से नई संख्या आरम्भ होती है और छठे मण्डल के अन्त में १७३५ संख्या पर समाप्ति होती है। सातवें मण्डल के प्रारम्भ से पुनः नई संख्या आरम्भ होती है। और वह ६२ वें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक चलती हैं ।

कागज—इस हस्तलेख में अनेक प्रकार का कागज व्यवहृत हुआ है।

संशोधन—प्रथम मण्डल के १०० सूक्तों तक स्वामीजी के हाथ का संशोधन पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। प्रथम मण्डल के ११४ वें सूक्त तक कहीं-कहीं कुछ संशोधन स्वामीजी के हाथ के प्रतीत होते हैं। प्रथम मण्डल के ११४ वें सूक्त से आगे स्वामीजी के हाथ का कोई संशोधन इस कापी में नहीं हैं। **इन मण्डलों में लाल स्याही का जो संशोधन है, वह पं० भीमसेन और ज्वालादत्त का है।**

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७—यजुर्वेदभाष्य

यजुर्वेद भाष्य की तीन हस्तलिखित कापियां हैं। इन में प्रथम पाण्डूलिपि (रफ कापी) है। यह आरम्भ से अन्त तक है। बीच के ६, ७, ८ ये तीन अध्याय अप्राप्य हैं। दूसरी संशोधित कापी है। यह आरम्भ से चतुर्थाध्याय के ३६ वें मन्त्र तक है। तीसरी प्रेस कापी है यह आदि से अन्त तक पूर्ण है। इनका विशेष व्यौरा इस प्रकार है—

१—पाण्डुलिपि

पाण्डुलिपि (रफ कापी) का व्यौरा इस प्रकार है—

पृष्ठ—इस में बीच-बीच में कई बार नई पृष्ठ संख्याएं प्रारम्भ हुई हैं। वे निम्न प्रकार हैं—

१—१९९ तक अ० १ मं० १—अ० ३ मं० ४८ तक।
१०१—२९२ तक अ० ३ मं० ४९—अ० ५ के अन्त तक।
अध्याय ६, ७, ८ नहीं है।
१—७५१ तक अ० ९ म० १—अ० १८ के अन्त तक।
१—१९८ तक अध्याय १९, २०।
१८१०—३५९४ तक अध्याय २१–४० तक।

वि० व०—अ० ३ मं० ४८ के आगे पृष्ठ संख्या २०१ के स्थान में भूल से १०१ पृष्ठ संख्या पड़ी है। प्रथमाध्याय के आरम्भ से २० वें अध्याय के अन्त तक (बीच के तीन अनुपलब्ध अध्याय छोड़ कर) पृष्ठ संख्या १३४१ होती है। २१ वें अध्याय की पृष्ठ संख्या १८१० से प्रारम्भ की है। प्रतीत होता है यह संख्या पिछली सब पृष्ठ संख्याओं को जोड़ कर प्रारम्भ की है। यदि हमारा अनुमान ठीक हो तो बीच के नष्ट हुए ६, ७, ८ इन तीन अध्यायों की पृष्ठ संख्या ४६८ रही होगी।

कागज—इस में सब कागज फुल्स्केप आकार का लगा है। आरम्भ के पांच अध्यायों में नीले रंग का मोटा और कुछ पतला कागज व्यवहृत हुआ है। शेष सब कागज पतला हाथी छाप का लगा है।

संशोधन—प्रारम्भ में ५ वें अध्याय तक काल और लाल स्याही का संशोधन है। आगे केवल काली स्याही का है। अध्याय १६ से २६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक कहीं-कहीं काली पेंसिल का भी संशोधन है। २७ वें अध्याय से अन्त तक जो लाल स्याही के संशोधन हैं। वे पं० भीमसेन वा पं० ज्वालादत्त के हैं। इस कापी के ऋषि दयानन्द के हाथ के संशोधन अ०२३ से अ० ४० तक केवल संस्कृत भाग में हैं।

संशोधित कापी

यह संशोधित कापी चतुर्थ अध्याय के ३६ वें मन्त्र तक ही है।

पृष्ठ—१-३५५ तक।

कागज—नीला तथा सफेद हाथी छाप का फुल्स्केप आकार का लगा है।

संशोधन—इस प्रति में स्वामीजी के हाथ के संशोधन पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं।

३—प्रेस कापी

इस कापी की पृष्ठ संख्या इस प्रकार है—

१—३५५ तक अध्याय १—५ तक।
३०१ (?)—१७८ (?) तक अध्याय ६।
१—९६५ तक अध्याय ७—१९।
१०१ (?)—९५९ तक अध्याय २०—४०।

कागज—प्रारम्भ के ५ अध्याय तक नीला मोटा और पतला फुल्स्केप आकार का है। आठवें अध्याय से आगे सफेद विना रूल का फुल्स्केप कागज लगा है।

संशोधन—अध्याय १५ तक लाल और काली स्याही का एक जैसा संशोधन है। इस कापी में अध्याय २१ के पृष्ठ २२२ तक स्वामीजी के हाथ के संशोधन हैं।

विशेष विवरण—रामानन्द के पूर्व[१] छपे पत्र से ज्ञात है कि प्रेस कापी २३ वें अध्याय के ४९ वें मन्त्र तक ही स्वामीजी के जीवन काल में तैयार हुई थी। शेष कापी पं० भीमसेन और पं० ज्वाला-प्रसाद ने उनके निधन के अनन्तर तैयार की।

१. देखो परिशिष्ट १, पृष्ठ २९६-२९८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट २

ऋषि दयानन्द विरचित ग्रन्थों के प्रथम और द्वितीय संस्करणों के मुखपृष्ठों की प्रतिलिपि

ऋषि दयानन्द विरचित ग्रन्थों का इतिहास पूर्व पृष्ठों में लिखा जा चुका है। उसमें स्थान-स्थान पर इन ग्रन्थों के प्रथम और द्वितीय संस्करणों के मुखपृष्ठों (टाइटिल पेजों) का उल्लेख किया है। प्रथम और द्वितीय संस्करणों के मुखपृष्ठों से ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के विषय में अनेक ऐतिहासिक बातें विदित होती हैं। हमें ऋषि दयानन्द कृत समस्त मुद्रित ग्रन्थों के प्रथम और द्वितीय संस्करण देखने को प्राप्त नहीं हुए। परोपकारिणी सभा के संग्रह में भी कई ग्रन्थों के प्रथम और द्वितीय संस्करण नहीं हैं। अतः जिन ग्रन्थों के हमें प्रथम और द्वितीय संस्करण उपलब्ध हुए, उनके मुख पृष्ठों की प्रतिलिपि इस प्रकरण में उद्धृत की जाती है, जिससे उनसे व्यक्त होने वाली ऐतिहासिक बातें चिरकाल के लिये सुरक्षित हो जावें।

नीचे हम जिन पुस्तकों के प्रथम और द्वितीय संस्करणों के मुख पृष्ठों की प्रतिलिपियां दे रहे हैं, उनमें से कुछ प्रतिलिपियां हमने आचार्यवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के संग्रह में विद्यमान पुस्तकों से की हैं, कुछ प्रतिलिपियां ऋषि दयानन्द के पत्र और तत्सम्बन्धी अनेक ऐतिहासिक विषयों के अन्वेषक महाशय श्री मामराजजी आर्य खतौली-निवासी ने अपने संग्रह की पुस्तकों से करके भेजी हैं और कतिपय प्रतिलिपियां हमने परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित पुस्तकों से की हैं।

हमें जिन पुस्तकों के प्रथम संस्करण प्राप्त हुए उनके मुख पृष्ठों की और जिन पुस्तकों के द्वितीय संस्करण के मुख पृष्ठ भी उपयोगी समझे गये, उनकी प्रतिलिपि हम नीचे दे रहे हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—इस प्रकरण में जिस पुस्तक के आकार का निर्देश न किया जाये, उसे २०×२६ अठपेजी आकार का समझें।

१–सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण[1]

अथ सत्यार्थप्रकाश

श्री स्वामी दयानंदरचित

श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर सी एस आई

की

आज्ञाऽनुसार

मुनशी हरिबंशलाल के अधिकार से इस्टार

प्रेस मुहल्ल: रामापूर में छापी गई ।।

सन् १८७५ ई०

बनारस

पहली बार १००० पुस्तकें मोल फ़ी पुस्तक ३)

२–सत्यार्थप्रकाश द्वितीय संस्करण[2]

ओ३म्

अथ सत्यार्थ प्रकाशः ।।

वेदादिविविधसच्छास्त्रप्रमाणैः समन्वितः

श्री मत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिविरचितः

पण्डितज्वालादत्तभीमसेनशर्म्मभ्यां संशोधितः

सर्वथा राजनियमे नियोजितः

प्रयागनगरे

मनीषिसमर्थदानस्य प्रबन्धेन वैदिक यन्त्रालये मुद्रितः

सन् १८८४

द्वितीयवारम् २००० मूल्यम् २।।

उत्तमत्ता यह है कि डाकव्यय किसी से नहीं लिया जाता

---

१. यह संस्करण २०×२८ अठपेजी आकार के ४×४०७=४११ पृष्ठों में छपा था। २. यह संस्करण २०×२६ अठपेजी आकार के ६+५९२+३=६०१ पृष्ठों में छपा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३–पञ्चमहायज्ञविधि बम्बई संस्करण[1]

अथ

सभाष्यसन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधिः

एतत्पुस्तकम्

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यत्वाद्यनेकगुण

सम्पद्विराजमानश्रीमद्वेदविहिताचारधर्मनिरूपक-

"श्रीमद्दयानन्दसरस्वती" स्वादिविरचितमिदम्

तदाज्ञया

दाधीचकुलोत्पन्नवेदमतानुयायी व्यासोपनामा

बैजजाथसूनुलालजीशर्मा

मुद्राकरणार्थोद्योगकर्ता

वेदमतानुयायी केण्युपाव्हनारायणात्मज

लक्ष्मणशास्त्रिभिः संशोध्य

सर्वलोकोपकारार्थम्

मुंब्याम्

रघुनाथकृष्णाजीना "मार्यप्रकाश"

मुद्रायन्त्रे स्वाम्यर्थं डोग्रोपनाम्ना

नारायणतनुजभिकीबाख्येन मुद्रयित्वा

प्रसिद्धिन्नीतम्

प्रथमा वृत्तिः शकाब्द १७९६

---

१. यह संस्करण २०×३० सोलह पेजी आकार के ४० पृष्ठों में छपा था। अन्त में पृष्ठ ३३–४० तक लक्ष्मीसूक्त सभाष्य छपा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४–पञ्चमहायज्ञविधि संशोधित (बनारस) संस्करण[1]

अथ पञ्चमहायज्ञविधिः

।। छन्दः शिखरणी ।।

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः सरस्व-
त्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया ।। इयं ख्याति-
र्यस्य प्रकटसुगुणा वेदशरणास्त्यनेनायं ग्रन्थो
रचित इति बोद्धव्यमनघाः ।। १ ।।

।। श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितः ।।

।। वेदमन्त्राणां संस्कृतप्राकृतभाषार्थसहितः ।।

श्रीयुतविक्रमादित्यमहाराजस्य चतुस्त्रिंशोत्तरे एकोनविंशे संवत्सरे भाद्रपौर्णमायां समापितः ।।

सन्ध्योपासनाग्निहोत्रपितृसेवाबलिवैश्वदेवातिथिपूजानित्यकर्मानुष्ठानाय संशोध्य यन्त्रयितः

।। अस्य ग्रन्थस्याधिकारः सर्वथा स्वाधीन एव रक्षितः ।।

।। काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य यन्त्रालये मुद्रिता ।।

संवत् १९३४ । मूल्य ।=)

---

१. यह संस्करण २०×३० सोलह पेजी आकार के ६४ पृष्ठों में छपी थी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—वेदविरुद्धमतखण्डन[1]

वेदविरुद्धमतखण्डनोयङ्ग्रन्थः

सम्मतिरत्र वेदमतानुयायिपूर्णानन्दस्वामिनः

पूर्णानन्दस्वामिन आज्ञया वेदमतानुयायिना कृष्णदाससूनुना

श्यामजिना भाषान्तरङ्कृतम्

प्रसिद्धकर्त्ता वेदमतानुयायी ललूभाईसुतद्वारिकादासः

वेदविरुद्धमतखण्डन

वेदमतानुयायी पुर्णानन्द स्वामिनी संमति छे.

पूर्णानन्दस्वामिनी आज्ञाथी भाषान्तरकर्त्ता वेदमतानुयायी

श्यामजी कृष्णदास

प्रसिद्धकर्त्ता भणशाली द्वारिकादास लल्लुभाई

गीति

वेदविरुद्ध जे धर्मो सम्प्रदाय कृष्ण आदि अवतारो;
छे पापो ना मूलो, तोड़ो तेमने झट तमे यारो ।

मुम्बई

"निर्णयसागर" छापाखानामां छाप्युं छे

संवत् १९३०

किमत त्रण आणा

१. यह संस्करण २०×२६ अठ पेजी आकार के ४७ पृष्ठों में छपा था। २३ पृष्ठ में संस्कृत भाग छपा था और २४ पृष्ठ में गुजराती अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—वेदान्तिध्वान्तनिवारण[1]

वेदान्तिध्वान्तनिवारण[1]

अर्थात्

आधुनिक वेदान्तियों के मत में, वेदादि सत्यशास्त्रों

के पठन पाठन छूटजाने से ध्वान्त नाम अन्धकार

जो फेल गया है उसका निवारण

सो

नन्दिमुखा ब्राह्मण श्यामजी विश्राम ने

स्वदेश हितार्थ छपा के प्रसिद्ध किया

मुंबई,

ओरियण्टल छापखाने में छपवाया,

संवत् १६३२ इ० सन् १८७६

मुल दो आने

---

१. यह संस्करण १८×२२ अठपेजी आकार में छपा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७–शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण[1]

शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारणोऽयं ग्रन्थ:

अर्थात् स्वामीनारायणमतदोषदर्शनात्मक:

आर्यसमाजस्थेन

कृष्णवर्मसूनुना श्यामजिता

भाषान्तरं कृतम्

शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण[2]

अर्थात् स्वामिनारायणमत दोष दर्शक

भाषान्तर कर्त्ता

आर्यसमाजस्थ

श्यामजी कृष्णवर्मा

मुम्बई मध्यें

ओरियण्टल छापाखाना मां छाप्युं

१८७६

कीमत चार आना

---

१. यह संस्करण १८×२२ अठ पेजी आकार के २८ पृष्ठों में छपा था। इस में १२ पृष्ठ संस्कृत और १६ पृष्ठ गुजराती भाषा के हैं।

२. यहां से आगे का अंश गुजराती लिपि में छपा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८–आर्याभिविनय प्रथम संस्करण[1]

अथ

"आर्याभिविनयः प्राकृतभाषानुवादसहितः"

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यत्वाद्यनेकगुणसम्पद्विराज
मानश्रीमद्वेदविहिताचारधर्मनिरूपकश्रीमद्विरजानन्द
सरस्वतीस्वमिनां महाविदुषां शिष्येण श्रीमद्दयानन्द
सरस्वतीस्वामिनर्ग्वेदादि
वेदमन्त्रैर्विरचितः
स च तदाज्ञया
दाधीचवंशावतंसव्यासोपनामवैजनाथात्मजलालजीशर्मा
मुद्राकरणार्थोद्योगकर्त्ता
तत्
कोटग्रामस्थकेणीत्युपाव्हभट्टनारायणसूनुलक्ष्मणशर्मणा
संशोध्य
लोकोपकाराय

मुम्बयाम्
चक्षूराङ्कभूपरिमिते शाके १९३२[2] वैशाख शुक्ल १४श्या
"मार्य्य-मंडलाख्या" यसमुद्रणालये संस्कृत्य प्रकाशितः
प्रथमसंस्करणम्
(एतत् सप्तषष्टच्युत्तराष्टादशशतहायनसम्बधिनि (१८६७)
पञ्चविंशतौ (२५) राजनियमे सन्निवेशयित्वा सर्वाधि
कारोऽपि ग्रन्थकर्त्रा स्वाधनी एव रक्षितोस्ति)

शकाब्द १७९८ किंच हूणाब्द १८७६

मूल्यं ।। सार्धरौप्यमुद्रा

---

१. यह संस्करण १८×२२ अठ पेजी आकार के ७४ पृष्ठों में छपा था ।

२. यह संवत् १९३२ गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार है । उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार संवत् १९३३ जानना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९–आर्याभिविनय द्वितीय संस्करण[1]

आर्याभिविनयः ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती

स्वामिना विरचितः ।

मुंशी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिक यंत्रालय प्रयाग में

मुद्रित हुआ ।

यह पुस्तक एक्ट २५ स. १८६७ के अनुसार

रजिष्टरी किया गया है ।

संवत् १९४० माघ शुक्ला ११

दूसरी बार १००० छपे मूल्य

---

१. यह संस्करण १७×२७ के ३२ पेजी आकार के २५७ पृष्ठों में छपा था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—संस्कारविधि प्रथम संस्करण[1]

ॐ नमः सर्वशक्तिमते जगदीश्वराय

अथ

संस्कारविधिः

वेदादिसत्यशास्त्रवचनप्रमाणैर्युक्तः गर्भाधानादिषोडशसंस्कारविधानैः

भूषितः

आर्यभाषाव्याख्यासहितः

श्रीमदनवद्यविद्यालंकृतानांमहाविदुषांश्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वा

मिनांशिष्येणश्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनानिर्मितः

श्रीयुत केशवलालनिर्भयरामोपकारेणयन्त्रितोजातः

श्रीयुत लक्ष्मणशास्त्रिणा शोधितः

मुम्बयाम्

"एशियाटिकाख्या" यन्त्रे संस्कृत्य प्रकाशितः

प्रथम संस्करणम्

विक्रम सं० १९३३ शालिवाहन श० १७९८ किञ्च खिस्ति श० १८७७

अस्याधिकारो ग्रन्थकर्त्रा स्वामिना स्वाधीन एव रक्षितः—

अत एव राजनियमे नियोजितः

मूल्य १॥ रौप्यमुद्रा

---

१. यह संस्करण २०×२६ अठ पेजी आकार के ४+१५३+७= १६४ पृष्ठों में छपा था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११–संस्कारविधि द्वितीय संस्करण

ओ३म्

अथ संस्कारविधिः

—:०:—

वेदानुकूलैर्गर्भाधानाद्यन्तेष्टिपर्य्यन्तैः षोडशसंस्कारैः समन्वितः

आर्यभाषया प्रकटीकृतः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितः

पण्डितज्वालादत्तभीमसेनशर्म्मभ्यां संशोधितः

—:०:—

अस्याधिकारः श्रीमत्परोपकारिण्या सभया स्वाधीन एव रक्षितः

सर्वथा राजनियमे नियोजितः

प्रयागनगरे

मनीषिसमर्थदानस्य प्रबन्धेन वैदिकयंत्रालये मुद्रितः ।

संवत् १९४१

द्वितीयवारम् १००० मूल्य १॥)

उत्तमता यह है कि डाक व्यय किसी से नहीं लिया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२–संस्कारविधि तृतीय संस्करण

ओ३म्

अथ संस्कारविधिः ।

वेदानुकूलैर्गर्भाधानाद्यन्तेष्टिपर्यन्तैः षोडशसंस्कारैः समन्वितः

आर्यभाषया प्रकटीकृतः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वती

स्वामिना निर्मितः

पण्डितज्वालादत्तभीमसेनयज्ञदत्तशर्मभिः संशोधितः

सर्वथा राजनियमे नियोजितः

पण्डितज्वालादत्तशर्मणः प्रबन्धेन

(प्रयाग)

वैदिक यन्त्रालये मुद्रितः

अस्याधिकारः श्रीमत्परोपकारिण्या सभया स्वाधीन एव रक्षितः

श्रीमद्दयानन्दाब्द ७

संवत् १९४७

पौष शुक्ल

तृतीयवारम् मूल्य १॥)

५००० डाक व्यय ≡)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३–वेदभाष्य का (दूसरा) नमूना[1]

॥ वेदभाष्यम् ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम् ।

॥ संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्वितम् ॥

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तरप्रापण-
मूल्येन सहितं ।=) एतद् द्वादशमासानां मिलित्वा
वार्षिकं ४॥) एतावद् भवति ॥

इस ग्रन्थ के प्रतिमास एक एक नंबर का मूल्य भारतखण्ड के भीतर
डाक महसूल सहित ।=) और वार्षिक मूल्य ४॥)

अस्य ग्रन्थस्य ग्रहणेच्छा यस्य भवेत् स काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य
वा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपमस्य वार्षिकं मूल्यं
प्रेषयेत् स प्रतिमासमेकं प्राप्स्यति ॥

इदं भाष्यं काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य यंत्रालये मुद्रितम् ॥

संवत् १९३३ ।

अस्य ग्रन्थस्याधिकारो भाष्यकर्त्रा मया सर्वथा स्वाधीन एव रक्षितः

---

१. प्रथम सं० १९३१ का छपा वेदभाष्य का नमूना हमें उपलब्ध नहीं हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४–ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

(प्रथम अंक)

।। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ।।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिना निर्मिता ।

।। संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विता ।।

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तरप्रापण-
मूल्येन सहितं ।=) एतद् द्वादशमासानां मिलित्वा
वार्षिकं ४।।) एतावद् भवति ।

इस ग्रन्थ के प्रतिमास एक एक नंबर का मूल्य भारतखण्ड के भीतर
डाकमूल्य सहित ।=) और वार्षिकमूल्य ४।।)

अस्य ग्रन्थस्य ग्रहणेच्छा यस्य भवेत् स काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य
वा दयानन्दसरस्वतीस्वमिनः समीपमस्यं वार्षिकं मूल्यं
प्रेषयेत् स प्रतिमाससमेकं प्राप्स्यति ।।

———

अंक (१)

———

अयं ग्रन्थः काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य यन्त्रालये मुद्रितः

———

संवत् १९३४ ।

———

अस्य ग्रन्थस्याधिकारो भाष्यकर्त्रा मया सर्वथा स्वाधीन एव रक्षितः

विदित हो कि सं० १९३४ वैशाख महीने में देश पञ्जाब लुधियाना वा
अमृतसर में स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी निवास करेंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५–ऋग्वेदभाष्य (प्रथम अंक)

REGISTERED NO. 8

।। ऋग्वेदभाष्यम् ।।

।। श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम् ।।

संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्वितम्

अस्यैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तरप्रापण-

मूल्येन सहितं ।—) ।।, द्वादशमासानां मिलित्वा

वार्षिकं ४) एतावद्भवति

इस ग्रन्थ के प्रतिमास एक एक नम्बर का मूल्य भारतखंड के भीतर

डाकमूल्यसहित ।—) ।। और वार्षिकमूल्य ४)

अस्य ग्रन्थस्य ग्रहणस्येच्छा यस्य भवेत्स मुम्बापुर्यां रा० रा० बाबू

हरिश्चन्द चिन्तामणेर्वा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपं

वार्षिकं मूल्य प्रेषयेत्स प्रतिमासं प्राप्स्यति ।।

अंक (१)

अयं ग्रन्थो मुम्बापुर्यां "निर्णयसागर" यन्त्रालये मुद्रितः ।।

———

संवत् १९३५

———

अस्य ग्रन्थस्पाधिकारो भाष्यकर्त्रा मयास्वाधीन एव रक्षितः ।।

विदित हो कि संवत् १९३५ भाद्रमास अन्त पर्य्यन्त मध्यदेश के मेरठ नगर में पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे ।

इस अंक में दो नवीन विज्ञापन दिये गये हैं सब सज्जन ग्राहक पढ़ लेवें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६–यजुर्वेदभाष्य (द्वितीय अंक)[1]

REGISTERED N0. 8

।। यजुर्वेदभाष्यम् ।।

।। श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम् ।।

संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्वितम्

अस्यैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तरप्रापण-

मूल्येन सहितं ।—)।।, द्वादशमासानां मिलित्वा

वार्षिकं ४) एतावद्भवति

इस ग्रन्थ के प्रतिमास एक एक नम्बर का मूल्य भारतखंड के भीतर

डाकमूल्यसहित ।—) ।।, और वार्षिक मूल्य ४)

अस्य ग्रन्थस्य ग्रहणस्येच्छा यस्य भवेत्स मुम्बापुर्यां रा० रा० बाबू

हरिश्चन्दचिन्तामणेर्वा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपं

वार्षिकं मूल्य प्रेषयेत्सप्रतिमासं प्राप्स्यति ।।

अंक (२)

अयं ग्रन्थो मुम्बापुर्यां "निर्णयसागर' यन्त्रालये मुद्रितः ।।

संवत् १९३५

अस्यग्रन्थस्याधिकारो भाष्यकर्त्रा मयास्वाधीन एव रक्षितः ।।

---

१. यजुर्वेदभाष्य के प्रथम संस्करण की हमारी प्रति में प्रथम अंक का मुखपृष्ठ नहीं है। इसलिये निदर्शनार्थ दूसरे अंक का दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७–आर्योद्देश्यरत्नमाला[1]

आर्य्योद्देश्यरत्नमाला

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती
स्वामिनिर्मिता ।। ईश्वरा
दितत्त्वलक्षणप्रकाशि-
का ।। आर्यभाषाप्रकाशो
ज्ज्वला ।। आर्य्यादिमनुष्य हितार्थ ।।
आर्य्यावर्त्तान्तर्गत पञ्जाब देश
नगर अमृतसर में छापेखाने
चश्मनूर में छपवा के प्रसिद्ध
किया इस ग्रन्थ के छापने का
अधिकार किसी को नहीं दिया
गया है । मूल्य—) ।।

१८–भ्रान्तिनिवारण प्रथम संस्करण[2]

भ्रान्तिनिवारण

अर्थात्
पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न आदिकृत
वेदभाष्यपरत्व प्रश्न पुस्तक का
पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती
जी की ओर से प्रत्युत्तर
जिसको
मुन्शी बख़्तावरसिंह एडीटर
आर्य्य दर्पण ने
आर्यभूषण प्रेस, शाहजहांपुर में
मुद्रित किया

---

१. यह प्रथम संस्करण मुखपृष्ठ सहित २०×२६ सोलह पेजी आकार के २×३०=३२ पृष्ठों में लीथो प्रेस में छपा था ।

२. यह प्रथम संस्करण १८×२२ अठपेजी आकार के ५५ पृष्ठों में समाप्त हुआ है और लीथो प्रेस में छपा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९–संस्कृतवाक्यप्रबोध

॥ अथ वेदाङ्ग प्रकाशः ॥[1]

तत्रत्यः ।

द्वितीयो भागः ॥

। संस्कृतवाक्यप्रबोधः ।

॥ पाणिनिमुनि प्रणीता ॥

॥ श्रीमत्स्वामि दयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहिता ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायाम् ॥

द्वितीयं पुस्तकम्

॥ इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ॥

क्योंकि

॥ इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

॥ वैदिक यंत्रालय काशी में लक्ष्मीकुण्ड पर ॥

। श्रीयुत महाराजे विजयनगराधिपति के स्थान में ।

॥ मुंशी बख़तावरसिंह के प्रबन्ध से छपके प्रकाशित हुई ॥

संवत् १९३६

मूल्य ।—)और बाहर से मँगाने वालों को)॥ दो पैसे महसूल देना होगा ।

---

१. इस पुस्तक पर भूल से "वेदाङ्ग प्रकाश," "पाणिनिमुनिप्रणीता" और "कृतव्याख्या सहिता" शब्द छपे हैं। देखो अगले 'व्यवहारभानु' पुस्तक की प्रतिलिपि के नीचे का नोट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२०–व्यवहारभानु

।। अथ वेदाङ्ग प्रकाशः ।।

तत्रत्यः ।।

।। तृतीयो भागः ।।

व्यवहार भानुः

।। पाणिनि मुनिप्रणीता ।।

।। श्रीमत्स्वामि दयानन्दसरस्वती कृतव्याख्यासहिता ।।

।। पठनपाठन व्यवस्थायाम् ।।

तृतीयं पुस्तकम् ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

।। इसको रजिस्टरी कराई गई है ।।

।। वैदिक यंत्रालय काशी में लक्ष्मी कुण्ड पर ।।

। श्री युत महाराजे विजयनगरा धिपति के स्थान में ।

। मुंशी बखतावरसिंह के प्रबन्ध से छप के प्रकाशित हुई ।

संवत् १९३६

मूल्य ।) और बाहर से मँगाने वालों को)।। दो पैसे महसूल देना होगा ।

नोट—यहां भी पूर्ववत् भूल से "वेदाङ्गप्रकाशः" और "पाणिनिमुनि-प्रणीता" आदि शब्द छपे हैं । देखो अन्त में छपा शुद्धाशुद्धि-पत्र—

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	५	पाणिनिमुनि प्रणीता	०
१	६	कृतव्याख्यासहिता	निर्मितः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१—भ्रमोच्छेदन

भ्रमोच्छेदन

जो

राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद के निवेदन के उत्तर में।

श्रीमत्स्वामीदयानन्द सरस्वती ने

सज्जन आर्यों के हितार्थ

निर्माण किया है।

इस पुस्तक को छापने का अधिकार किसी को नहीं है।

॥ वैदिक यंत्रालय काशी में लक्ष्मीकुण्ड पर ॥

॥ श्री युत महाराजे विजयनगराधिपति के स्थान में।

मुंशी बख्तावर सिंह के प्रबन्ध से छपके प्रकाशित हुआ

संवत् १९३७

२२—अनुभ्रमोच्छेदन

ओ३म्

नमोनिर्भ्रमायजगदीश्वराय॥

अथ

॥ **अनुभ्रमोच्छेदन** ॥

राजाशिवप्रसादजी के द्वितीय निवेदन के

उत्तर में।

प्रकाशित किया॥

यह ग्रन्थ लाला सादीराम के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय में छपा।

संवत् १९३७

बनारस

प्रति पुस्तक मूल्य—) डाक महसूल) ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३–गोकरुणानिधि

ओ३म्

नमो विश्वम्भराय जगदीश्वराय

अथ

।। गोकरुणानिधिः ।।

गाय आदि पशुओं की रक्षा से सब प्राणियों के

सुख के लिये ।।

अनेक सत्पुरुषों की सम्मति के अनुसार आर्यभाषा

में बनाया हैं ।।

इस के अनुसार वर्तमान करने से संसार का बड़ा

उपकार है।

संवत् १९३७ पौष

यह ग्रन्थ लाला सादीराम के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय बनारस, में

मुद्रित हुआ

पलिवार १००० छापा गया

प्रतिपुस्तक डाक महसूल समेत मूल्य =)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४–वर्णोच्चारणशिक्षा

।। अथ वेदाङ्ग प्रकाशः ।।

———

तत्रत्यः ।

प्रथमो भागः ।।

। **वर्णोच्चारणशिक्षा** ।

।। पाणिनि मुनिप्रणीता ।।

।। श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती कृतव्याख्यासहिता ।।

।। पठनपाठनव्यवस्थायाम् ।।

प्रथमं पुस्तकम् ।

———

।। इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।।

क्योंकि

।। इसकी रजिस्टरी कराई गई है ।

———

।। वैदिक यंत्रालय काशी में लक्ष्मी कुण्ड पर ।।

।। श्री युत महाराजे विजयनगरा धिपति के स्थान में ।।

।। मुंशी बख्तावरसिंह के प्रबन्ध से छप के प्रकाशित हुई ।।

———

संवत् १९३६

मूल्य =) और बाहर के मँगाने वालों को)।। दो पैसे महसूल देना होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५–सन्धिविषय

॥ अथ वेदाङ्ग प्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

चतुर्थो भागः ।

॥ **सन्धिविषयः** ॥

॥ पाणिनि मुनिप्रणीतः ॥

॥ श्रीमत्स्वामीदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्थम् पुस्तकम् ।

बाराणस्यां लक्ष्मीकुण्डोपगत श्रीमन्महाराजविजय-
नगराधिपस्य स्थाने वैदिकयन्त्रालये शादीरामस्य
प्रबन्धेन मुद्रितम् ॥

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ॥
क्योंकि
इस की रजिस्टरी कराई गई है ।

बनारस में लक्ष्मीकुण्ड पर वैदिक यन्त्रालय में श्रीमन्महाराज विजय-
नगराधिपति के स्थान में लाला शादीराम के प्रबन्ध में छपा ।

संवत् १९३७ मार्ग ।

मूल्य ।।)

और बाहर के मँगानेवालों को)।। डाक महसूल सहित ।।)।। देने होंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६—नामिक

।। वेदाङ्गप्रकाशः ।।

तत्रत्यः ।

पञ्चमो भागः ।।

।। नामिकः ।।

।। पाणिनि मुनिप्रणीतः ।।

।। श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।।

प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चमं पुस्तकम् ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इसकी रजिस्टरी कराई गई है ।।

संवत् १९३८ ज्येष्ठ शुक्ल

मूल्य ।।)

और बाहर से मँगाने वालों को)।। डाक महसूल सहित ।।)।। देने होंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७–कारकीय

॥ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

षष्ठो भागः ॥

॥ **कारकीयः** ॥

॥ पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां ॥

तृतीयो भागः

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

॥ पण्डित भीमसेन शर्मणा संशोधितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां षष्ठम्पुस्तम् ॥

प्रयाग नगरे वैदिक यन्त्रालये पण्डित दयाराम शर्मणः

प्रबन्धेन मुद्रितम् ॥

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९३८ भाद्र कृष्णा १२

पहिलीबार १५०० पुस्तक छपे मूल्य ।=)

और बाहर से मँगाने वालों को)॥ डाक महसूल सहित ।=)॥ देने होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८—सामासिक

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

सप्तमो भागः ॥

॥ सामासिकः ॥

॥ पाणिनिमुनि प्रणीतायामष्टाध्याय्यां ॥

चतुर्थो भागः ॥

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

॥ पण्डित भीमसेन शर्मणा संशोधितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां सप्तमं पुस्तम् ॥

प्रयाग नगरे वैदिक यन्त्रालये पण्डित दयारामशर्म्मणः

प्रबन्धेन मुद्रितम् ॥

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९३८ भाद्र कृष्णा १२

पहिली बार १५०० पुस्तक छपे मूल्य ॥)

और बाहर से मँगाने वालों को)॥ डाक महसूल सहित ॥)॥ देने होंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२९–स्त्रैणतद्धित

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

———

तत्रत्यः ।

अष्टमो भागः ।

॥ स्त्रैणतद्धित ॥

॥ पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां ॥

पञ्चमो भागः ।

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

॥ पण्डित भीमसेन शर्मणा संशोधितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां सप्तम्पुस्तकम् ॥

प्रयागनगरे वैदिक यन्त्रालये पण्डित दयारामशर्मणः प्रबन्धेन मुद्रितम् ॥

———

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है

———

संवत् १९३८ मार्गशीर्ष शुक्ला ८

पहिली बार १००० छपे मूल्य १।)

और बाहर से मंगाने वालों को -)॥ डाक महसूल सहित १।)॥ देने होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०—अव्ययार्थ

।। अथ वेदाङ्गप्रकाशः ।।

———

तत्रत्यः।

नवमो भागः ।।

।। **अव्ययार्थः** ।।

।। पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां ।।

षष्ठो भागः ।।

।। श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।।

।। पण्डितभीमसेनशर्म्मणा संशोधितः ।।

।। पठनपाठनव्यवस्थायां नवमम्पुस्तकम् ।।

प्रयाग नगरे वैदिक यन्त्रालये पण्डित दयारामशर्म्मणः

प्रबन्धेन मुद्रितम् ।।

———

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है।

क्योंकि

इसकी रजिस्टरी कराई गई है ।।

———

संवत् १९३८ माघ कृष्णा १०

पहिली वार १००० पुस्तक छपे मूल्य ≡)

और बाहर के मँगाने वालों को)।। डाक महसूल सहित ≡)।। देने होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३१—आख्यातिक

।। अथ वेदाङ्गप्रकाशः ।।

———

तत्रत्यः ।

दशमो भागः ।।

।। **आख्यातिकः** ।।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।
पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां सप्तमो भागः ।
पठनपाठनव्यवस्थायां दशमम्पुस्तकम् ।

—:०:—

मुनशी समर्थदान के प्रबन्ध से
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

———

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ।

———

संवत् १९३९ पौष कृष्णा ९
पहिली बार १००० पुस्तक छपे
मूल्य २।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२—सौवर

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

———

तत्रत्यः ।

एकादशो भागः ॥

॥ सौवरः ॥

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यामष्टमो भागः ।

॥ पठनपाठनव्यवस्थायामेकादशं पुस्तकम् ॥

———

मुनशी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

———

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

———

संवत् १९३९ कार्तिक कृष्णा १

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ≡)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३३—पारिभाषिक

।। अथ वेदाङ्गप्रकाशः ।।

———

तत्रत्यः ।

द्वादशो भागः ।।

।। **पारिभाषिकः** ।।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां नवमो भागः ।
श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्ययासहितः ।
पण्डित ज्वालादत्तशर्म्मणा संशोधितः ।
पठनपाठनव्यवस्थायां द्वादशं पुस्तकम् ।

———

मुनशी समर्थदान के प्रबन्ध से
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

———

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इसकी रजिस्टरी कराई गई है ।

———

संवत् १९३९ पौषकृष्णा ९

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३४—धातुपाठ

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

———

तत्रत्यः ।

त्रयोदशो भागः ॥

॥ धातुपाठः ॥

पाणिनिमुनि प्रणीतायामष्टाध्याय्यां

दशमो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतसूचीपत्रेणसहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्मणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां त्रयोदशं पुस्तकम् ।

———

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

———

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है।

क्योंकि

इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

———

संवत् १९४० कार्तिक शुक्ला २

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३५—गणपाठ

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

———

तत्रत्यः ।

चतुर्दशो भागः ॥

॥ **गणपाठः** ॥

पाणिनिमुनि प्रणीतायामष्टाध्याय्याम्

एकादशो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्मणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्दशं पुस्तकम् ।

———

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

———

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इसकी रजिस्टरी कराई गई है ॥

———

संवत् १९४० श्रावण कृष्णा १४

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ।≡)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३६—उणादिकोष

।। वेदाङ्गप्रकाशः ।

———

तत्रत्यः ।

पंचदशो भागः ।।

उणादिकोषः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां

द्वादशो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्म्मणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चदशं पुस्तकम् ।

———

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

———

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है।

क्योंकि

इसकी रजिस्टरी कराई गई है।

———

संवत् १९४० आश्विन कृष्णा २

पहिली बार १००० पुस्तक छ

मूल्य ।।।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३७—निघण्टु

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

———

तत्रत्यः ।

षोडशो भागः ॥

निघण्टुः ।

यास्कमुनिनिर्मितो वैदिकः कोषः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतशब्दानुक्रमणिकया

सहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्मणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां षोडशं पुस्तकम् ।

—:०:—

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

———

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इसकी रजिस्टरी करवाई गई है ।

———

संवत् १९४० आश्विन कृष्णा ३

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३८—काशी शास्त्रार्थ[1]

॥ ओं खम्ब्रह्म ॥

॥ काशीस्थः शास्त्रार्थः ॥

अर्थात्

॥ शास्त्रार्थ काशी ॥

———

जो संवत् १९२६ में स्वामी दयानन्द सरस्वती और काशी के
स्वामी विशुद्धानन्द बालशास्त्री आदि पण्डितों के बीच
दुर्गाकुंड के समीप आनन्द बाग में
हुआ था

———

वैदिक यंत्रालय काशी में लक्ष्मी कुण्ड पर
श्री युत महाराजे विजयनगराधिपति के स्थान में
मुंशी बखतावर सिंह के प्रबन्ध से छप के प्रकाशित हुआ

———

संवत् १९३७

---

१. वैदिक यन्त्रालय में प्रथमवार छपे 'काशी शास्त्रार्थ' की प्रतिलिपि है। सं० १९२६ में 'बनारस लाइट प्रेस' में छपे काशीशास्त्रार्थ की प्रति हमें उपलब्ध नहीं हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३९–काशीशास्त्रार्थ

॥ ओं खम्ब्रह्म ॥

काशीशास्त्रार्थ

अर्थात्

जो संवत् १९२६ में स्वामी दयानन्दसरस्वती और काशी के

स्वामी विशुद्धानन्द बालशास्त्री आदि पण्डितों के बीच

दुर्गाकुंड के समीप आनन्द बाग में

हुआ था सो

दूसरी बार[1]

मुंशी समर्थदान के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में

छप के प्रकाशित हुआ।

संवत् १९६९ माघ शु० १५

दूसरी बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य=)

---

१. यहां दूसरी बार से अभिप्राय वैदिक यन्त्रालय में मुद्रित संस्करण से है, क्योंकि इसका प्रथम संस्करण सं० १९२६ में 'बनारस लाइट प्रेस' में छपा था। द्वितीय संस्करण सं० १९३७ में वैदिक यन्त्रालय काशी में छपा था। अतः यह तृतीय संस्करण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४०–सत्यधर्मविचार

सत्यधर्मविचार[1]

अर्थात्

धर्म चर्चा ब्रह्मविचार

चांदापुर

जो सं० १८७७ ई० में

स्वामी दयानन्दसरस्वती जी और मौलवी मुहम्मद कासम साहब

और पादरी स्काट साहब के बीच हुआ था

जिसको

मुंशी बखतावरसिंह एडीटर आर्यदर्पण ने शोधकर भाषा और उर्दू में

वैदिक यन्त्रालय काशी में अपने प्रबन्ध से छापकर

प्रकाशित किया ।

संवत् १९३७

इस पुस्तक को छापने का किसी को अधिकार नहीं है ।

---

१. यह संस्करण दो कालमों में छपा था अर्थात् बाईं कालम में आर्यभाषा में और दाहिनी कालम में उर्दू में छपा था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट ३

सत्यार्थप्रकाश प्रकरण का अवशिष्ट अंश

१—सत्यार्थप्रकाश प्र० सं० (सन् १८८५) का हस्तलेख

हम पूर्व लिख चुके हैं कि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण[1] का एक हस्तलेख मुरादाबाद निवासी राजा श्री जयकृष्णदासजी के गृह में सुरक्षित है। परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री दीवान बहादुर हरविलास जी शारदा ने बहुत प्रयत्न करके उसको मंगवाकर उसका फोटो करा लिया है, और वह सभा के संग्रह में सुरक्षित है। हमें इस फोटो को भले प्रकार देखने का अवसर नहीं मिला।[2] सत्यार्थप्रकाश सम्बन्धी समस्त विवरण छपजाने के अनन्तर खतौलीनिवासी ऋषि के अनन्य भक्त श्री मामराजजी आर्य ने १९-१०-४९ के विस्तृत पत्र में उक्त हस्तलेख के विषय में विस्तृत विवरण लिखकर भेजा है, उसे हम अत्यन्त उपयोगी समझकर इस परिशिष्ट में दे रहे हैं। स्मरण रहे कि श्री मामराजजी ने ऋषि दयानन्द के पत्रों को खोजते हुए इस हस्तलेख को ६-१४ जनवरी सन् १९३३ में देखा था[3] उन्होंने इसकी मुद्रित ग्रन्थ से कुछ तुलना और कुछ आवश्यक अंश की प्रतिलिपि भी की थी।

---

१. इस सत्यार्थप्रकाश के विषय में श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी ने "आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त" नामक एक पुस्तक सन् १९१७ में छपाई थी। इस में सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण की महत्ता तथा इस के प्रकाशन से न घबराने का उल्लेख किया था। और इस संस्करण की जंग लगी तलवार से उपमा दी थी। इस 'आदिम सत्यार्थप्रकाश' को हमने वेदवाणी के नवम्बर १९६८ के **सत्यार्थप्रकाश-परिशिष्ट** नामक अङ्क में प्रकाशित किया है।

२. यह सन् १९५० की बात है। उस के पीछे हमने सितम्बर १९७२ में इस फोटो कापी को भले प्रकार देखा था। उसी के आधार पर पूर्व पृष्ठ ३७ का 'हस्तलेख में मिलावट कैसे की गई' सन्दर्भ लिखा है।

३. इस हस्तलिखित प्रति को श्री अलखधारीजी मुरादाबादवालों ने २७ अक्टूबर सन् १९४४ में देखा था। इस विषय पर उनका एक लेख नारायण-स्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ ३१३–३१६ तक छपा है। इस लेख में उत्तरार्ध के ४ थे (चौदहवें) समुल्लास के पृष्ठ ४९५ के स्थान में ५९५ भूल से छपे हैं। हस्तलेख में ४९५ ही पृष्ठ हैं। इसी लेख में हस्तलेख के अन्त में लिखी दिनचर्या का कुछ भाग भी छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तलेख का विवरण[1]

इस हस्तलेख में दो भाग हैं। समुल्लास १–१० प्रथम और ११–१४ तथा उस के परिशिष्ट पर्यन्त दूसरा। दोनों की पृष्ठ संख्या पृथक् पृथक् हैं। इनका व्यौरा इस प्रकार है:—

प्रथम समुल्लास पृष्ठ ३७ की ५ वीं पंक्ति तक हैं।
द्वितीय " " ५१ " ११ " " " "
तृतीय " " १३७ " ९ " " " "
चतुर्थ " " २३६ " १८ " " " "
पञ्चम " " २७५ " २ री " " "
षष्ठ " " ३५७ " १८ वीं " " "
सप्तम " " ४१० " १२ " " " "
अष्टम " " ४३५ " १५ " " " "
नवम " " ४९४ " १७ " " " "
दशम " " ५१४ " ··· " " " "
एकादश " "१–१६५" १२ " " " "
द्वादश " " १८६ " अन्तिम " " ",$
त्रयोदश " " ३६३ " ३ री " " "
चतुर्दश " " ४६८ " २ " " " "
आगे पृष्ठ ४९५ तक-सब मनुष्य का हिताहित, दिनचर्या, संस्कृत सनातन विद्या का पठन और पाठन का क्रम वर्णन।

विशेष वक्तव्य—प्रथम भाग पृष्ठ ५९ से पितृतर्पणादि का उल्लेख है। तृतीय समुल्लास के अन्त तक मुद्रित ग्रन्थ के ९३ पृष्ठ हैं। चतुर्थ

$ मुद्रित ग्रन्थ में १२ वें समुल्लास की समाप्ति "·········लोग कभी न मानै" पर हुई है। परन्तु हस्तलेख में इतना अंश अधिक है— "यह जैनों के मत के विषय में लिखा गया है। इसके आगे मुसलमानों के विषय में लिखा जायगा।"

१ यद्यपि हमने इसी विवरण के आधार पर संक्षिप्त विवरण पूर्व पृष्ठ २३–२६ तक छाप चुके हैं, फिर भी हम उसे यहां पूर्ववत् विस्तार से छाप रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुल्लास के अन्त तक मुद्रित ग्रन्थ में १५३ पृष्ठ है। ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ २९[1] से विदित होता है कि ग्रन्थ की मांग अधिक होने से ऋषि दयानन्द से १२० मुद्रित पृष्ठों का भाग १) रु० में बेचना आरम्भ कर दिया था। सप्तम समुल्लास के अन्त तक मुद्रित ग्रन्थ में २५२ पृष्ठ हैं। दशम समुल्लास मुद्रित ग्रन्थ में पृष्ठ ३०८ की पंक्ति १२ तक छपा है उससे आगे ग्यारहवां प्रारम्भ होता है। एकादश समुल्लास मुद्रित में ३९५ पृष्ठ पर और द्वादश ४०७ पृष्ठ पर समाप्त हुआ है। त्रयोदश समुल्लास में मुसलमान मत की समीक्षा है। और चतुर्दश में ईसाई मत को। अन्त के भाग पृष्ठ ४६८-४७५ में से कुछ अंश रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर से प्रकाशित 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' ग्रन्थ के पृष्ठ २४–२९[2] तक छपा है।

कुरान मत की समीक्षा पृष्ठ १८७, १८८ कुछ फटे हैं। और पृष्ठ २८८ है ही नहीं, पृष्ठ ३६६–३६९ तक अधिक फटे हुए हैं। उन्हें श्री मामराजजी ने पढ़ते समय गोंद से जोड़ दिया था। आगे पृष्ठ ३७४ से ३७७ तक इस कापी में नहीं हैं। सम्भव है वे किसी कारण नष्ट हो गये हों।

लेखक—प्रथम भाग के पृष्ठ ४४८ की ७ वीं पंक्ति से पृष्ठ ४५९ की ९ वीं पंक्ति तक का लेखक भिन्न व्यक्ति है।

संशोधन—इस कापी में ऋषि दयानन्द के हाथ का संशोधन नहीं है। **तेरहवां समुल्लास अर्थात् कुरान मत समीक्षा मुंशी इन्द्रमणि मुरादाबाद-निवासी के पास संशोधनार्थ भेजा गया था** (देखो 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पृष्ठ २८[3])। उन्होंने इस समुल्लास में कई स्थानों पर लाल और काली स्याही से संशोधन किया है।

कुरान मत समीक्षा का तेरहवां समुल्लास पटना शहर के निवासी मुंशी मनोहरलाल की सहायता से स्वामीजी ने लिखा है। ये

---

१. यह पृष्ठ संख्या प्रथम संस्करण की है। नये तृतीय संस्करण में भाग १, पृष्ठ ५२, पं० १ तथा पृष्ठ ५३, पं० १।

२. यह पृष्ठ संख्या प्रथम संस्करण की है। वर्तमान तृतीय संस्करण में पृष्ठ संख्या हमने यह पूरा विज्ञापन छपवा दिया है। द्र०—भाग १, पृष्ठ ३५–४३।

३. यह पृष्ठ संख्या प्रथम संस्करण की है। नये तृतीय संस्करण में भाग १, पृष्ठ ४९, पं० १३ देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशय अरबी के अच्छे पण्डित थे। दूसरे भाग के पृष्ठ ३६२ पर सात पंक्तियों में इस बात का उल्लेख है। ये पंक्तियां पेंसिल से काट रक्खी हैं। सम्भव है ये पंक्तियां इस कारण से काट दी गई होंगी कि मतान्ध मुसलमान मुंशी मनोहरलाल को कष्ट न देवें[3]। ऐतिहासिक दृष्टि से ये पंक्तियां बहुमूल्य हैं। इसलिये श्री मामराजजी ने १३-१-३३ को इनकी प्रतिलिपि कर ली थी और उन्होंने 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पृष्ठ २६[4] के नीचे टिप्पणी में ये पंक्तियां छपवा दी हैं।

हस्तलेख की परिस्थिति—यह हस्तलेख आदि से अन्त तक बहुत साफ़ लिखा हुआ है, कहीं भी विशेष कटा फटा नहीं है। इस से प्रतीत होता है कि यह वह कापी नहीं है, जिसे स्वामीजी ने लेखक को आमने सामने बैठा कर बोल कर लिखवाई है, क्योंकि इस प्रकार लिखी गई कापी में बहुत संशोधन हुआ करता है। अतः यह कापी उस से लिखी गई शुद्ध प्रति है। यदि स्वामीजी की स्वसन्मुख लिखवाई हुई कापी प्राप्त हो जाती तो लेखकों द्वारा किये गये परिवर्तन आदि का निश्चय भले प्रकार हो सकता था। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह वह कापी भी नहीं है जिस से सत्यार्थ-प्रकाश का प्रथम संस्करण छपा था, क्योंकि प्रेस में गई हुई कापी अत्यन्त सावधानता रखने पर भी कम्पोजीटरों के काले हाथों से मैली अवश्य हो जाती है। यह कापी इस प्रकार के चिह्नों से सर्वथा रहित है, अर्थात् सर्वथा साफ है। हस्तलेख के दूसरे भाग में चार पृष्ठ व्यर्थ हैं। ये काले चिह्नों से मैले हो रहे हैं। इनके अवलोकन से प्रतीत होता है कि ये उस कापी के पृष्ठ हैं जो सत्यार्थप्रकाश छपने के लिये प्रेस में भेजी गई होगी। इस से विदित होता है कि सत्यार्थप्रकाश की पाण्डुलिपि से दो शुद्ध कापियां तैयार की गई, एक प्रेस में छपने के लिये गई और दूसरी राजा जयकृष्णदासजी के पास सुरक्षित रही। सत्यार्थप्रकाश के मुद्रित संस्करण में और इस हस्तलिखित कापी में भेद है या नहीं, यह भी मिलान करके अवश्य देखना चाहिये।

---

१. श्री पं० लेखरामजी की हत्या पटना के रहने वाले एक मतान्ध कसाई ने की थी।

२. नये तृतीय संस्करण में भाग १, पृष्ठ ४३, टि० २ के अन्तर्गत पं० २४-२८ देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन से पृथक् एक छोटी सूची है, जिसमें केवल २॥ पृष्ठ लिखे हुए हैं।

२—सत्यार्थप्रकाश सं० १९३२ के निवेदन

सं० १९३२ (सन् १८७५) में छपे सत्यार्थप्रकाश के मुख पृष्ठ की पीठ पर तीन निवेदन छपे हैं, उनकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—

निवेदन १

यह पुस्तक श्री स्वामी दयानंद सरस्वती ने मेरे व्यय से रची है और मेरे ही व्यय से यह मुद्रित हुई है उक्त स्वामी जी ने इस्का रचनाधिकार मुझ को देदिया है और उस्का मैं अधिष्ठाता हूं और मेरी ओर से इस पुस्तक की रजिष्टी कानून २० सन् १८४७ के अनुसार हुई है सिवाय मेरे वा मेरी आज्ञा के इस पुस्तक के छापने का किसी को अधिकार नहीं हैं।

द० श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर सी एस आई

निवेदन २

जिस पुस्तक के आदि और अन्त में मेरे हस्ताक्षर और मोहर न हों वह चोरी की है और उस्का क्रयविक्रय नहीं हो सकता।

द० श्री राजा जयकृष्णदास बहादुर सी एस आई

निवेदन ३

इस पुस्तक के पाठकों से मेरी यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ के छपवाने से मेरा अभिप्राय किसी विशेष मत के खंडन मंडन करने का नहीं किन्तु इस्का मुख्य प्रयोजन यह है कि सज्जन और विद्वान् लोग इस्को पक्षपात रहित होकर पढ़े और विचारें और जिन विषयों में उनकी दयानन्द स्वामी के सिद्धान्तोंसे सम्मति न हो उन विषयों पर अपनी अनुमति प्रबल प्रमाणपूर्वक लिखें जिस से धर्म का निर्णय और सत्यासत्य की विवेचना हो मुख से शास्त्रार्थ करने में किसी बात का निर्णय नहीं होता परन्तु लिखने से दोनों पक्षों के सिद्धान्त ज्ञात हो जाते हैं और सत्य विषय का निर्णय हो जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिये आशा है कि सब पंडित और महात्मा पुरुष इस्की यथावत समालोचना करैंगें और यह न समझेंगे कि मुझ को किसी विशेष मत की निन्दा अभिप्रेत हो छापने में शीघ्रता के कारण इस ग्रन्थ में बहुत अशुद्धता रह गयी हैं आशा है पाठकगण इस अपराध को क्षमा करेंगे ।

३—सत्यार्थप्रकाश सं० १९४१ का निवेदन

सं० १९४१ में छप कर प्रकाशित हुए संशोधित सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भ में मुंशी समर्थदान का एक "निवेदन" छपा है। वह इस प्रकार है:—

निवेदन

परमपूज्य श्री स्वामीजी महाराज ने यह "सत्यार्थप्रकाश" ग्रन्थ द्वितीय बार शुद्ध करके छपवाया है। प्रथमावृत्ति में अन्त के कई प्रकरण कई कारणों से नहीं छपे थे सो भी इसमें संयुक्त कर दिये हैं। इस ग्रन्थ में आदि से अन्त पर्यन्त मनुष्यों को वेदादिशास्त्रानुकूल श्रेष्ठ बातों के ग्रहण और अश्रेष्ठ बातों के छोड़ने का उपदेश लिखा गया है ॥

मतमतान्तरों के विषय में जो लिखा गया है वह प्रीतिपूर्वक सत्य के प्रकाश होने और संसार के सुधारने के अभिप्राय से लिखा गया है किन्तु निन्दा की दृष्टि से नहीं। इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य यही है कि अविद्याजन्य नाना मतों के फैलने से संसार में जो द्वेष बढ़ गया है इसमें एक मतावलंबी दूसरे मतानुयायी को द्वेष दृष्टि से देखता है वह दूर होके संसार में प्रेम और शान्ति स्थिर हो ॥

जिस प्रेम और प्रीति से श्री स्वामीजी महाराज ने यह ग्रन्थ बनाया है उसी प्रीति से पाठकों को देखना चाहिये। पाठकों को उचित हैं कि आदि से अन्त तक इस ग्रन्थ को पढ़ कर प्रीतिपूर्वक विचार करें। क्यों कि जो मनुष्य इसके एक खण्ड को देखेगा उस को इस ग्रन्थ का पूरा-पूरा अभिप्राय न खुलेगा।

आशा है जिस अभिप्राय से यह ग्रन्थ बनाया है। उस अभिप्राय पर पाठकगण दृष्टि रख कर लाभ उठावेंगे और ग्रन्थकर्त्ता के महान् परिश्रम को सुफल करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रन्थ में कई स्थलों में टिप्पणि का[1] भी आवश्यकता थी इस लिये मैंने जहां-जहां उचित समझा वहां-वहां लिख दी ।

यह ग्रन्थ प्रथमावृत्ति में छपा था उसको बिके बहुत दिन होगये । इस कारण से शतशः लोगों की शीघ्रता छपने के विषय में आई इस कारण से यह द्वितीयावृत्ति अत्यन्त शीघ्रता में हुई है[2] । छापते समय ग्रन्थ के शोधने और विरामादि चिह्नों के देने में जहां तक बना बहुत ध्यान दिया, परन्तु शीघ्रता के कारण से कहीं-कहीं भूल रह गई हो तो पाठकगण ठीक कर लें ।

(मुंशी) समर्थदान,
प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय
प्रयाग,

आश्विन कृष्णपक्ष
संवत् १९३९

४—सत्यार्थप्रकाश पांचवीं आवृत्ति की भूमिका

यह आवृत्ति प्रथम समुल्लास से १२ वें समुल्लास के अन्त तक नीचे लिखी प्रतियों से मिलाई है—

---

१. मुंशी समर्थदान ने सत्यार्थप्रकाश में जहां-जहां टिप्पणी दी थी वहां वहां अन्त में अपना नाम लिख दिया था । जब इस ग्रन्थ के कुछ छपे हुए फार्म श्री स्वामीजी महाराज के पास पहुंचे, तब उन्होंने लिखा कि टिप्पणी में अपना नाम मत दो । देखो ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन भाग १, पृष्ठ ६३९। मुंशी समर्थदान ने स्वामीजी की आज्ञानुसार अपने नाम पर चिप्पी चिपकवा दी । सत्यार्थप्रकाश के नीचे की प्रायः सब टिप्पणियां समर्थदान की हैं। शताब्दी संस्करण से इन टिप्पणियों पर समर्थदान का नाम "स० दा०" छपता है। द्वितीय और चौदहवें समुल्लास की टिप्पणी पर "स० दा०" संकेत नहीं है, परन्तु हैं वे भी समर्थदान की यह सत्यार्थप्रकाश की प्रेस कापी के देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है ।

२. निवेदन के इन शब्दों से प्रतीत होता है कि यह निवेदन सम्पूर्ण ग्रन्थ के छपजाने पर लिखा गया, परन्तु स० प्र० के द्वितीय संस्करण (सं० १९४१) को देखने से विदित होता है कि यह निवेदन ग्रन्थ मुद्रण के प्रारम्भ में ही लिखा गया था, क्योंकि यह निवेदन सत्यार्थप्रकाश के प्रथम फार्म के प्रथम पृष्ठ पर छपा है अर्थात् पृष्ठ १ पर निवेदन, पृष्ठ २ खाली और पृष्ठ १-६ तक भूमिका छपी है । आगे पृष्ठ ९ से सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास का आरम्भ होता है । इस संस्करण में कुल ५९२ पृष्ठ हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी हुई दोनों असली कापियें—

दूसरी, तीसरी और चौथी बार की छपी कापियां—

इसके अतिरिक्त भूतपूर्व श्रीयुत् पण्डित लेखरामजी आर्यमुसाफ़िर उपदेशक आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब और लाला आत्मारामजी पूर्व-मन्त्री आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने जो कृपा करके छापे आदि की भूल चूक और अन्य पुस्तकों के हवाले की एक सूची दी थी उस सब को सामने रख कर आवश्यकतानुसार बहुत विचार के पश्चात् इसमें उचित शुद्धियां की गईं हैं। एक आध विषय में बाहर से सामाजिक विद्वानों से भी सम्मति ली गई है—

यह बड़ा कठिन कार्य था तो भी जितना समय मिल सका उतना इसमें श्रम किया गया—

शुद्ध और उत्तम छापने की बहुत कोशिश की गई, फिर भी छापे वालों की असावधानी से अशुद्धियें रह गईं। उनका एक शुद्धाशुद्ध-पत्र दे दिया है।

फिर भी कहीं-कहीं कुछ अशुद्धि रह गई हो तो पाठक क्षमा करेंगे और कृपा कर सूचना देंगे—

आगामी आवृत्ति यदि फिर इतना श्रम करके छापी जावेगी तो बहुत उत्तम होगी—

शिवप्रसाद
मन्त्री प्रबन्धकर्तृ सभा,
वैदिक यन्त्रालय

अजमेर
ता० २४ नवम्बर १८९७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट ४

वै० य० के छपे संस्कारविधि के संस्करणों में

पाठों का भयङ्कर घोटाला

'वैदिक-यन्त्रालय अजमेर द्वारा संस्कार-विधि के २४ संस्करण छपे हैं, उनकी संक्षिप्त विवेचना आगे की जायेगी। हमने संस्कार-विधि पर जो कार्य किया है, उससे हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि ऋषि दयानन्द ने श्रीमती परोपकारिणी सभा और वैदिक यन्त्रालय की स्थापना जिन उदात्ततम उद्देश्यों को लेकर की थी', उन्हें पूरा करना तो दूर रहा, **ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को ही अपने मूलरूप में स्थिर न रखा जा सका**। ऋषि दयानन्द के महान् साहित्यिक उद्देश्य को सम्मुख रखकर किसी भी आर्यसंस्था ने उनके इष्ट क्षेत्र में प्रमुखरूप से कार्य नहीं किया। अतः उक्त संस्था द्वारा ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ जैसे भी छप रहे हैं, उन्हीं से ही आर्य जनता को संतोष करना पड़ता है।

संस्कारविधि पर कार्य का संकल्प

मैंने संवत् २०१० के चतुर्थ चरण में संस्कार-विधि पर गृह्य-सूत्रादि कर्मकाण्डीप ग्रन्थों के साहाय्य से टीका-टिप्पणी लिखने का उपक्रम किया था।

---

१. अगला सम्पूर्ण लेख मूलतः रामलाल कपूर ट्रस्ट से लघु आकार के संवत् २०२३ में प्रकाशित संस्करण के लिये 'सम्पादकीय' के रूप में लिखा गया था। उसी में साधारण संशोधन करके यहां दिया जा रहा है।

२. द्र०—स्वीकार-पत्र धारा १—'वेद और वेदाङ्ग वा सत्यशास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने-कराने, पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने, छापने-छपवाने आदि'। तथा द्र०—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, पृष्ठ ४१६, द्वि० संस्करण—'यह छापाखाना केवल सत्यशास्त्र के प्रचार के लिये किया गया, रोजगार के लिये नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भिक कठिनाई—कुछ ही कार्य करने पर मुझे विदित हुआ कि संस्कार-विधि के जिस पाठ (संवत् २००६ वाले) को ऋषि दयानन्द का मानकर कार्य करने के लिए मैं उद्यत हुआ हूं, वह पूर्णतया ऋषि दयानन्द का नहीं है। इसमें संशोधकों ने अपने अज्ञान से बहुत से पाठ परिवर्तित कर दिये हैं, और उनके प्रमाद से बहुत से पाठ भ्रष्ट हो गये हैं। इसलिए प्रथम यह आवश्यक है कि ऋषि दयानन्द-सम्मत मूल पाठ को जानने का प्रयत्न किया जाये, उसके पश्चात् उस पर कुछ लिखा जाये।

संस्कारविधि के मूल पाठ का निश्चय—मूल पाठ के निश्चय और उसमें उत्तरोत्तर हुए परिवर्तनों के लिए मैंने संस्कार-विधि के ऋषि दयानन्द के द्वारा परिशोधित द्वितीय संस्करण से लेकर २४ वें संस्करण[1] तक सभी संस्करणों के पाठ मिलाये।

हस्तलिखित पाठ से मिलान—संस्कारविधि के दो हस्तलेख हैं—प्रथम पाण्डुलिपि (रफ कापी), और द्वितीय संशोधित प्रतिलिपि। इन दोनों से मुद्रित संस्कारविधि की तुलना, जो बहुत काल पूर्व में की जा चुकी थी[2], से भी मिलान किया गया।[3]

मुद्रित और हस्तलिखित पाठों की तुलना का परिणाम—ऋषि दयानन्द के मूल पाठ का परिज्ञान करने के लिये सभी मुद्रित और हस्तलिखित पाठों की तुलना करने पर मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि—'**इस ग्रन्थ में उत्तरोत्तरपाठ-परिवर्तन वा परिवर्धन होकर ग्रन्थ का स्वरूप अत्यन्त भ्रष्ट हो चुका है।**'[4] अतः पहले संस्कारविधि का आदर्श परिशुद्ध संस्करण तैयार करना चाहिए।

पाठ-शोधन कार्य का आरम्भ—संवत् २०११ में मैंने संस्कारविधि के पाठ का शोधन और आदर्श संस्करण तैयार करने का उपक्रम किया। यह कार्य मैं सामान्य-प्रकरण के अन्त तक ही कर पाया। उसके पश्चात् अम्लपित्त के भयानक प्रकोप, तथा कुछ काल पश्चात्

१. संवत् २००६ का छपा संस्करण।

२. यह तुलना हमने संभवतः सन् १६३६ में की थी।

३. यह निर्देश संवत् २०११ के आरम्भ के कार्य का है।

४. यही स्थिति सत्यार्थप्रकाश के संशोधन काल में वै० य० से छपे सत्यार्थप्रकाश के पाठों की भी हमारे सन्मुख उपस्थित हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाराणसी से देहली आ जाने के कारण यह आरब्ध कार्य मध्य में ही रुक गया। तत्पश्चात् सं० २०२२ में रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से संस्कारविधि का परिशुद्ध संस्करण प्रकाशित करने का निश्चय होने पर उक्त पाठ-शोधन कार्य को पूर्ण किया। तदनुसार रा० ला० क० ट्रस्ट की ओर से सं० २०२३ में संस्कारविधि का प्रथम परिशुद्ध एवं सटिप्पण संस्करण प्रकाशित हुआ।

वै० यं० मुद्रित संस्करणों का वर्गीकरण

संस्कारविधि के परिशुद्ध संस्करण को प्रकाशित करने के लिये हमें वै० यं० के छपे प्रायः सभी संस्करणों से पाठ मिलाये। उनके अनुसार संस्कारविधि के पाठों की दृष्टि से वै० यं० के छपे संस्करणों का निम्न वर्गीकरण बनता है—

प्रथम वर्ग—द्वितीय संस्करण[1] से लेकर छठे संस्करण तक का पाठ एक समान है। जहां-कहीं नाममात्र का भेद मिलता है, वह मुद्रण पत्र (प्रूफ) संशोधकों के दृष्टिदोष से हुआ है।

द्वितीय वर्ग—७ वें संस्करण से लेकर १२ वें संस्करण तक का पाठ प्रायः समान है। ७वें संस्करण में मन्त्रादि उद्धरणों के कुछ पते दिये गये हैं। उनके कारण पूर्व पाठ से कुछ पाठ-भेद हुआ है।

तृतीय वर्ग--शताब्दी संस्करण[2] से लेकर १७वें संस्करण तक प्रायः एक समान पाठ है।

शताब्दी-संस्करण में लगभग ३० नई टिप्पणियां दी गई हैं। इन पर विशेष चिह्न न होने के कारण ये टिप्पणियां ऋषि दयानन्द की मूल ग्रन्थान्तर्गत टिप्पणियों में मिलकर उन्हीं की लिखी हुई प्रतीत होती हैं। १७वें संस्करण तक टिप्पणी गत ही भेद है। मूल प्राठ प्रायः वही है, जो १२वें संस्करण तक छपता रहा हैं। शताब्दी संस्करण के संस्कर्ता श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय थे।

इस प्रकार मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि द्वितीय

---

१. यहां प्रथम संस्करण का निर्देश हमने इसलिये नहीं किया है कि ऋषि दयानन्द ने स्वयं उसमें परिवर्तन करके द्वितीय संस्करण तैयार किया था।

२. यह बारहवें संस्करण के पश्चात् और तेरहवें संस्करण से पूर्व सन् १९२५ में छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण से लेकर १७ वें संस्करण तक मूल पाठ (परिवर्धित टिप्पणियों को छोड़ कर) ६० प्रतिशत सुरक्षित रहा।

चतुर्थ वर्ग—१८वें संस्करण में मूल पाठ में अत्यधिक परिवर्तन हुआ। वही परिवर्तित पाठ २१वें संस्करण तक छपता रहा। १८वें संस्करण में शताब्दी संस्करण में प्रवर्धित कुछ टिप्पणियां हटा दी गईं, और कुछ नई जोड़ दी गईं।

१८ वां संस्करण श्री पं० जयदेव शर्मा चतुर्वेद-भाष्यकार ने श्री हरविलास जी शारदा, मन्त्री परोपकारिणी सभा के आदेश से प्रेस कापी के अनुसार तैयार किया था। इस में किस प्रकार पाठों का परिवर्तन हुआ, उस का एक उदाहरण हम नीचे उपस्थित करते हैं[1]—

निष्क्रमण संस्कार में पुराना पाठ है—

"चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति।

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र का वचन है।

जननाद् यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तस्य तृतीयायाम्। यह पारस्कर गृह्यसूत्र में भी है।

इसके स्थान में अठारहवें संस्करण में पाठ इस प्रकार छपा है—

"चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति। यह पारस्कर गृह्यसूत्र [१।१७।५, ६।।] का वचन है। जननाद् यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तस्य तृतीयायाम्। यह गोभिल गृह्यसूत्र [२।८।१-५] में भी है।"

यद्यपि यह संशोधन ठीक है तथापि मूलपाठ में परिवर्तन का किसी को क्या अधिकार है? नीचे टिप्पणी दी जा सकती थी।

पञ्चम वर्ग—२२वां संस्करण श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी द्वारा मुद्रणलिपि (प्रेस कापी) के आधार पर पुनः संशोधित हुआ। उसमें पुनः कुछ मौलिक परिवर्तन हुए। उद्धरणों के अनेक पते बढ़ाये गये। वैदिक यन्त्रालय से प्रकाशित उत्तरवर्ती संस्करण इसी २२वें संस्करण के अनुसार हैं।

पाठकों की सुगमता के लिये हम इस वर्गीकरण को चित्र द्वारा स्पष्ट करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

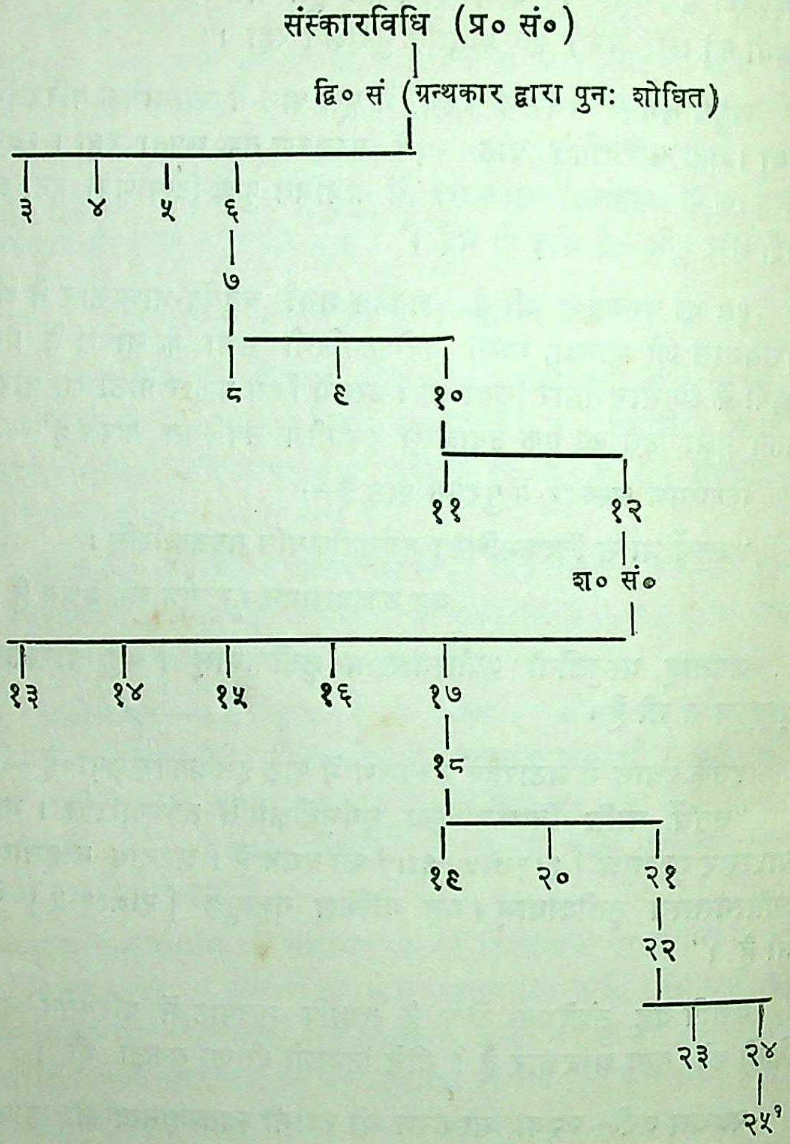

इस चित्र के अनुसार संशोधकों द्वारा संस्कार विधि में ६ बार परिवर्तन हुआ है ।

१. यह संस्करण हमारे छोटे आकार के द्वितीय संस्करण (संवत् २०२५) के पश्चात् छपा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो हुआ पाठ-परिवर्तन के अनुसार वैदिक-यन्त्रालय के छपे संस्करणों का वर्गीकरण। अब हम परिवर्तित पाठों का वर्गीकरण करके उनका एक-एक उदाहरण उपस्थित करते हैं।

परिवर्तित पाठों का वर्गीकरण

उपर्युक्त संस्करणों में संस्कारविधि के पाठों में जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें निम्न विभागों में बांटा जा सकता है—

१—**उद्धरणों के पते देनेवालों द्वारा परिवर्तन**—ऋषि दयानन्द के मूल हस्तलिखित ग्रन्थ में तथा द्वितीय संस्करण में वहुत थोड़े से उद्धरणों के पते दिये गये थे। उसी के अनुसार ६ संस्करणों तक पाठ छपता रहा। ७वें संस्करण में प्रथम बार उन मन्त्रादि के पते देने का प्रयत्न किया गया, जिनका पता २–६ संस्करणों में नहीं दिया गया था। अतः प्रथम परिवर्तन का आरम्भ यहीं से हुआ। ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि में किस मन्त्र का कौनसा पाठ किस ग्रन्थ से उद्धृत किया है, इसके लिये विशेष प्रयत्न न करके पता देनेवाले महानुभावों को जो भी मिलता-जुलता पाठ मिला, उसी के अनुसार उन्होंने मन्त्रादि का पाठ बदल कर पता दे दिया। यथा—

गृहाश्रमप्रकरण के आरम्भ में अथर्ववेद के २७ मन्त्र उदधृत हैं। उनमें आरम्भ के दो ऐसे मन्त्र हैं, जिनमें प्रथम मन्त्र अक्षरशः और द्वितीय मन्त्र केवल अन्तिम पद के भेद से ऋग्वेद में भी मिलता है। ७वें संस्करण में इन मन्त्रों का पता लिख दिया। और द्वितीय मन्त्र के अथर्ववेद-अनुसारी अन्तिम पद **स्वस्तकौ** के स्थान पर ऋग्वेदीय स्वे गृहे पाठ बना दिया। परन्तु व्याख्या में कोष्ठान्तर्गत अथर्ववेदोय (**स्वस्तकौ**) पाठ छपता रहा। इतने सुदीर्घ काल में किसी भी संशोधक ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

उक्त भूल की ओर स्वर्गीय श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का ध्यान गया, और उन्होंने २२ वें संस्करण के लिये शोधन की गई कापी में मन्त्रपाठ के अनुसार अर्थ में भी (**स्वस्तकौ**) को हटाकर (**स्व गृहे**) पाठ बना दिया। इस प्रकार उन्होंने अपनी दृष्टि से मन्त्र और व्याख्या में एकरूपता तो कर दी, परन्तु एक नया दोष उत्पन्न हो गया, जिसकी ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। व्याख्या में **उत्तम गृहवाले**' अर्थ किया गया है (जिसे श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी रहने दिया)। यह अर्थ **स्वस्तकौ** पद का है, न कि **स्वे गृहे** पदों का। इसके साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि उक्त पाठ के पूर्व में **क्रीडन्तौ** और पीछे **'मोदमानौ'** द्विवचनान्त पद और उनके अर्थ लिखे हैं। दोनों के बीच में **'स्वस्तकौ'** द्विवचनान्त पद और उसकी व्याख्या ही युक्त हैं, भिन्न विभक्तिवाले **स्वे गृहे** पदों और उनके अर्थों का सम्बन्ध कैसे हो सकता है? श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी से यह भूल उनके संस्कृत-भाषा में व्युत्पन्न न होने के कारण हुई है। २४वें संस्करण में (जो रा० ला० क० ट्रस्ट के प्रथम संस्करण के बाद छपा) यह भूल ठीक की गई।

सातवें संस्करण के पश्चात् इस प्रकार के उद्धृत-पाठों में परिवर्तन १०वें संस्करण में पुनः हुए, और ऐसे परिवर्तन उत्तरोत्तर बढ़ते ही गये। इस प्रकार के परिवर्तनों के निदर्शनों के लिये हमने रा० ला० क० ट्रस्ट के संस्करण में कतिपय टिप्पणियां दी हैं।

२—मूलपाठ में परिवर्तन—यद्यपि १७ वें संस्करण तक भी कहीं-कहीं मूल पाठ में भेद उपलब्ध होता है, परन्तु वह बहुत साधारण हैं। मूल पाठ में भारी परिवर्तन अकस्मात् १८वें संस्करण में उपलब्ध होता है।

अठारहवें संस्करण में पाठ-परिवर्तन का कारण—१८वें संस्करण में किये पाठ-परिवर्तन को समझने के लिये द्वितीय संस्करण के मुद्रित पाठ की पृष्ठभूमि जाननी आवश्यक है। वह इस प्रकार है—

ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि के पुनः संशोधन की पाण्डुलिपि (रफ कापी) स्वर्गवास से पूर्व पूर्ण कर ली थी। और **उसकी ४७ पृष्ठ की मुद्रणलिपि** (प्रेस कापी) तैयार करके यन्त्रालय में भेज दी थी[१]। ऋषि दयानन्द के निर्वाण के अनन्तर पं० भीमसेन आदि ने पाण्डुलिपि (रफ कापी) के आधार पर यथोचित संशोधन करके अवशिष्ट मुद्रणलिपि (प्रेस कापी) तैयार की।[२] ग्रन्थ के छपते समय भी उसमें अनेक उचित परिवर्तन हुये, जो कि स्वाभाविक थे। प्रत्येक विज्ञ लेखक जानता है कि प्रेस में उसके ग्रन्थ की जो कापी छापने

१. द्र०—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ४७१, ४८१।

२. द्र०—द्वि० सं० का मुख पृष्ठ—'ज्वालादत्तभीमसेनशर्मभ्यां संशोधितः'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये दी जाती है, ग्रन्थ के छपने पर उसका अक्षरशः वही रूप नहीं रहता। यही स्थिति संस्कारविधि की प्रेस-कापी और उस से छपे द्वितीय संस्करण की हुई। इस कारण हस्तलिखित प्रेसकापी की अपेक्षा द्वितीय संस्करण का पाठ अधिक प्रामाणिक हैं। **ऐसा न मानने पर सत्यार्थप्रकाश द्वितीय संस्करण जहां तक ऋषि के जीवनकाल में छप गया था[1], और हस्तलेख से उसमें छपते समय जो-जो अन्तर कर दिया[2], वह भी अप्रामाणिक हो जायगा।** अतः सब दृष्टियों से हस्तलेख की अपेक्षा उसके आधार पर छपा हुआ परिष्कृत पाठ ही अधिक प्रामाणिक माना जाता है। हां, छपे संस्करण में प्रेस-संशोधकों की भूल से जहां पाठ छूट गया हो, वा भ्रष्ट हो गया हो, उतने मात्र का संशोधन हस्तलेख के प्रमाण से किया जा सकता है।

१८वें संस्करण के लिये संशोधित करते हुये स्व० श्री पंडित जयदेव जी ने[3] इस तथ्य की ओर ध्यान देकर श्री दीवान बहादुर हरविलास जी, मन्त्री, परोपकारिणी सभा के आदेशानुसार प्रेस कापी के अनुरूप पाठ बनाकर १८वां संस्करण छपवा दिया। इस कारण यह संस्करण पूर्व संस्करणों से अत्यधिक भिन्न हो गया। इतना ही नहीं, कई स्थानों पर पाठ विसंगत हो गये, और कई स्थानों पर ऋषि दयानन्द के अन्य ग्रन्थों के पाठों से विरोध भी उत्पन्न हो गया।

विसङ्गत पाठ—विसङ्गत पाठ का एक उदाहरण '**प्रजापते न त्वदेता०**' मन्त्र की व्याख्या से उपस्थित करते हैं—

पूर्व पाठ	**१८वें संस्करण का पाठ**
······(ता) उन (एतानि	······(ता) उन (एतानि)

---

१. ऋषि के स्वर्गवास से दो मास पूर्व तक ३२० पृष्ठ छप चुके थे (द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग ४, पृष्ठ ४६०-४६४)। अतः निर्वाण तक लगभग १२ समुल्लास छप गये होंगे।

२. द्र०—म० पत्र और विज्ञापन, भाग ४, पृष्ठ ४६०-४६४, मुन्शी समर्थदान का ऋषि दयानन्द के नाम पत्र। मुन्शी समर्थदान को स० प्र० छपते समय भाषादि में संशोधन करने का अधिकार 'ऋषि दया० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६२०, ७६४ पर मुन्शी समर्थदान के नाम पत्र।

३. अठारहवां संस्करण पं० जयदेव जी द्वारा संशोधित है। यह उन्होंने अपने एक पत्र में स्वीकार [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता है।······	**इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए भूगोलादि जगत् का बनानेहारा और (परि ता) व्यापक (न) नहीं (बभूव) है (ते) आप के भक्ति करने हारे हम जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता है।······—**

इस १८वें संस्करण के पाठ की विसङ्गतता इसी से स्पष्ट है कि उसमें मन्त्रगत '**ता परि न बभूव ते**' इन पांच पदों तथा उनके अर्थों की पुनरुक्तता है। इतना ही नहीं, **परि** का सम्बन्ध एक बार **ता** से बताया है, और दूसरी बार **बभूव** से।

परिवर्तित पाठ का अन्य ग्रन्थों से विरोध—परिवर्तित पाठ का ऋषि दयानन्द के अन्य ग्रन्थों से भी विरोध कई स्थलों पर उपलब्ध होता है। कहीं-कहीं तो संस्कारविधि में ही पूर्वापर-विरोध हो गया है। इसके लिये हम नामकरण संस्कार में नीचे टिप्पणीस्थ **नर्क्षवृक्ष०** श्लोक की व्याख्या से एक पाठ उद्धृत करते हैं—

पूर्व पाठ	१८वें संस्करण का पाठ
·········(वृक्ष) चम्पा तुलसी इत्यापि···········	**(वृक्ष) आम्रा अश्वत्था बदरी इत्यादि······**
(पक्षी) कोकिला हंसा इत्यादि	**(पक्षी) श्येनी काकी इत्यादि···।**

सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास में उक्त श्लोक की व्याख्या में इस प्रकार पाठ मिलता है—

······तुलसिया, गेंदा, गुलाबी चम्पा, चमेली आदि वृक्ष नामवाली ······कोकिला, मैना आदि पक्षी नामवाली······।[1]

सत्यार्थप्रकाश का पाठ संस्कारविधि के पूर्व पाठ से ही साम्य रखता है, न कि १८वें संस्करण के परिवर्तित पाठ से। यह हस्तामलकवत् स्पष्ट है।—

पूर्वापर-विरोध—१८वें संस्करण के परिवर्तित पाठ का स्व-

१. हमारा संस्करण पृष्ठ १५६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ के पाठ से भी विरोध हो गया है। उक्त **नर्क्षवृक्ष०** श्लोक विवाह प्रकरण में पुनः व्याख्यात है। उसका पाठ १८वें संस्करण में ही इस इस प्रकार छपा है—

(पक्षी) पक्षी अर्थात् कोकिला हंसा इत्यादि।

इस प्रसङ्ग में (वृक्ष) पद की व्याख्या त्रुटित है, अन्यथा उस से विरोध प्रकट हो जाता।

टिप्पणियों में परिवर्धन-परिवर्तन—तीसरा परिवर्तन शताब्दी संस्करण और उसके अनुसार छपे संस्करणों की टिप्पणियों का उस से पूर्व तथा १८वें संस्करण की टिप्पणियों से दिखाई देता है। हम पूर्व लिख चुके हैं कि शताब्दी-संस्करण में मूल ग्रन्थकार की टिप्पणियों के अतिरिक्त लगभग ३० टिप्पणियां बढ़ाई गयीं थी, और १८वें संस्करण में उनमें से कुछ टिप्पणियां मूल पाठ में परिवर्तन करके हटा दीं, और कुछ नई जोड़ दी गईं।

अन्य अक्षम्य भूलें

उपर्युक्त परिवर्तनों के अतिरिक्त इन संस्करणों में अन्य अनेक प्रकार की अक्षम्य भूलें हैं। यथा—

१. **उद्धरणों के अशुद्ध पते देना**—संस्कारविधि में अनेक उद्धरणों के पते अशुद्ध दिये गये हैं—यथा—नामकरण संस्कार में **"भद्रं कर्णेभि०:"** मन्त्र का पाठ यजुर्वेदीय होने पर भी उस का पता ऋग्वेद का दिया गया। और इसी ऋग्वेद के पते से व्यामुग्ध होकर उत्तरवर्ती संस्करणों में यजुर्वेदीय ँ**कार** हटाकर अनुस्वार कर दिया गया। पुनरपि मन्त्र में आज तक उपलब्ध **व्यशेमहि** पाठ उच्चैः घोष कर रहा है कि मेरा पाठ यजुर्वेदीय है ऋग्वेदीय नहीं, जैसा कि मेरे सम्बन्ध में पता छापा जा रहा है (ऋग्वेद का पाठ—**व्यशेम** है, यजुर्वेद का **व्यशेमहि**)। इस मन्त्र पर ऋग्वेद का पता देने पर भी आज तक **व्यशेमहि** याजुष पाठ ही छप रहा है।

ऐसे ही एक और भयानक दोष की ओर संकेत कर देना उचित होगा। **'यदस्य कर्मणो०'** मन्त्र पर पता 'शतपथ कं० (कां०) १५।६। ४।२४' छप रहा है। २२वें संस्करण में 'पा० १।-।१०' पता और बढ़ाया गया है। शतपथ में इस मन्त्र का पाठ बहुत भिन्न है, फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इस मन्त्र पर आंख मींच कर शतपथ का पता दे दिया गया (पारस्कर में तो प्रतीकमात्र ही है)। इसी अशुद्ध पते से भ्रान्त होकर श्री पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा ने कई बार (लाहौर में रहते हुए तथा उसके पश्चात् भी) आर्य पत्रों में लेख छपवाये कि '**यदस्य कर्मणो०**' मन्त्र का पाठ अशुद्ध छप रहा है, उसे शुद्ध कर देना चाहिये। वस्तुतः मन्त्रपाठ ठीक है, उसका यथार्थ पता न देने से ही श्री पं० ठाकुरदत्तजी को भ्रान्ति हुई थी। हमने स्वसम्पादित संस्करण में ऐसे सभी अशुद्ध पतों का शोधन कर दिया है। विशिष्ट पाठों पर यथास्थान टिप्पणियां भी दी गई हैं।

संशोधन पत्र के अनुसार पाठ को शुद्ध न करना—द्वितीय संस्करण के अन्त में दिये गये संशोधनपत्र के अनुसार अन्तिम संस्करण तक संशोधन न होना, अर्थात् अशुद्ध पाठ का छपते रहना। यथा—

पृ०	पं०	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
७३	१८	**मे सविता**	**मे देवः सविता**
७३	२२	**वाक् म**	**वाक् च म**
६४	१	**वाङ्म)**	**वाक् च म)**
१०७	१२	**ऋतमग्ने**	**ऋतमग्रे**

यह संशोधन द्वितीय संस्करण के अन्त में छपे संशोधनपत्र में दर्शाया हुआ है। उपर दी हुई पृष्ठ पंक्ति द्वितीय संस्करण की हैं।

इनमें से **प्रथम अशुद्धि** १२वें संस्करण तक रही, उसके बाद शताब्दी-संस्करण में शोधी गई। **दूसरी अशुद्धि** १८वें संस्करण में ठीक की गई। शेष अशुद्धियां वर्तमान **२४ संस्करण तक** छप रही हैं। २४वें संस्करण की पृष्ठ पङ्क्ति संख्या इस प्रकार है—

वाङ्म—पृष्ठ ११७, पं० ३। **ऋतमग्ने**—पृष्ठ १३४, पं० ५। ये दोनों अशुद्धियां २५ वें संस्करण में ठीक की गईं।

द्वितीय संस्करणस्थ संशोधनपत्रानुसार उत्तर संस्करण में पाठ शोधन न करने का फल यहां तक हुआ कि अशुद्ध पाठ के विषय में कई स्थानों पर टिप्पणियां दी गईं कि अमुक संस्करण में यह पाठ है। यथा—

विवाह-प्रकरण में '**इमाँल्लाजान्०**' मन्त्र में द्वितीय संकरण में **संवननं** के स्थान में **संवदनं** छप गया था। उसका संशोधनपत्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशोधन कर दिया था, परन्तु शताब्दी संस्करण में मूल पाठ में **संवदनं** पाठ छाप कर टिप्पणी दी है—"सं० १९३३ की संस्कारविधि में **संवननं** पाठ हैं"। १८वें संस्करण में मूल में **संवननं** पाठ छापकर टिप्पणी दी गई—"संस्कारविधि के कई संस्करणों में '**संवदनं** भी पाठ है।"

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि द्वितीय संस्करण के पश्चात् संशोधन करनेवाले महानुभाव अत्यन्त असावधान थे। उन्होंने द्वि० संस्करण-स्थ संशोधन-पत्र तक को देखने का कष्ट नहीं किया।

केवल द्वितीय संस्करण के संशोधनपत्र को नहीं देखा गया, ऐसी ही बात नहीं है, अपितु उत्तरवर्ती संस्करणों में दिये गये संशोधन-पत्रों पर भी ध्यान नहीं दिया गया। संशोधन पत्रों में ठीक किये गये अशुद्ध पाठ जो आगे छपते रहे, उनमें से कतिपय पाठों का संकेत हमने यथास्थान टिप्पणी में किया है। यथा—पृष्ठ ६०, २०५, २०७।

एक और भयानक प्रमाद—ऐसे ही एक भयानक प्रमाद का और उदाहरण देखिये। शताब्दी-संस्करण से लेकर आज तक संन्यास-प्रकरण के **यो विद्यात्०** और **सामानि यस्य०** मन्त्रों के नीचे टिप्पणी छप रही है—"(१) **और (२) मन्त्रों के हिन्दी अर्थ संवत् १९४१ की छपी संस्कारविधि में नहीं हैं**"।

हम पाठकों से निवेदन करेंगे कि वे संस्कारविधि के संवत् १९४१ के द्वितीय संस्करण में पृष्ठ २०८ के नीचे देखें कि उक्त दोनों मन्त्रों के अर्थ छपे हुये हैं वा नहीं? इतना ही नहीं, इस महती भूल की ओर हम सन् १९५० में अपने 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ के पृष्ठ ८१ पर सूचना दे चुके थे, पुनरपि सन् १९५० के पीछे सन् १९५२ आदि के छपे संस्करणों में उक्त टिप्पणी छप रही है। समझ में नहीं आता कि शताब्दी संस्करण के सम्पादक महोदय ने उक्त टिप्पणी कैसे लिख दी? इस टिप्पणी पर १८वें तथा २२वें संस्करण के संशोधक महानुभावों ने भी कोई ध्यान नहीं दिया। यह भी अशुद्धि २५वें संस्करण में दूर की गई।

२५वें संस्करण की लीला

वैदिक यन्त्रालय का २५ वां संस्करण हमारे द्वारा सम्पादित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा) संवत् २०२५ में छपे द्वितीय संस्करण के पश्चात् छपा है। इस संस्करण में हमारे संस्करण के अनुसार बहुत से पाठ शुद्ध किये गये हैं, पुनरपि इसमें बहुत से पाठ अभी तक मूल पाठ के विपरीत छप रहे हैं। इनकी सूची देकर हम अपने वक्तव्य का कलेवर बढ़ाना उचित न जानकर संकेतमात्र कर रहे हैं। हमारे द्वारा सर्वत्र शुद्ध मूल पाठ देने पर भी वैदिक यन्त्रालय के संशोधक पं० धर्मचन्द कोठारी ने उन पर पूरा ध्यान नहीं दिया, और बदले हुये पाठ ही छपवाये।

नया प्रक्षेप—२४वें संस्करण में वैदिक यन्त्रालय के संशोधक महोदय ने एक नया प्रक्षेप संस्कारविधि में दिया। उन्होंने स्वस्ति-वाचन एवं शान्तिकरण के जो मन्त्र ऋषि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में भिन्न प्रक्रिया में व्याख्यात किये हैं, उन मन्त्रों का वह अर्थ नीचे छाप दिया। स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण प्रकरण प्रकृत ग्रन्थ में प्रार्थनापरक हैं, इस पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। मेरे द्वारा और श्री पं० विश्वश्रवाः जी के समझाने पर भी वे न समझ सके, अपना हठ प्रदर्शित किया। इतना ही नहीं, वेदभाष्य से उदधृत मन्त्रार्थ के नीचे अथवा अन्यत्र कहीं पर यह सूचना भी नहीं दी कि **'ये मन्त्रार्थ मूल ग्रन्थ (संस्कारविधि) में नहीं हैं, हम ऋ० द० के वेदभाष्य से उद्धृत कर रहे हैं'**। उक्त प्रकार का संकेत न देने से **सभी पाठक यह समझेंगे कि ये मन्त्रार्थ संस्कारविधि के ही अंग हैं** (जो २४वें संस्करण तक नहीं छपे, अब छापे गये हैं)। इस प्रकार का भ्रम जनता में उत्पन्न करना कहां तक न्याय्य है, इस पर पाठक स्वयं विचार करें। हमारे लिखने का इतना ही प्रयोजन है कि वै० यं० के संस्करणों में जो नित्य नये प्रक्षेप वा पाठ परिवर्तन हो रहे हैं, उनसे ऋ० द० के ग्रन्थों का मूल स्वरूप ही नष्ट हो रहा है। इस ओर परोपकारिणी सभा ने कभी गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया।

यह है परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के साथ वर्ता जानेवाला प्रमाद। इतने भारी प्रमादों से छापे गये ग्रन्थों पर भी परोपकारिणी सभा अपने संस्करणों की प्रामाणिकता का ढोल पीटती है। और प्रायः सभी ग्रन्थों पर यह आशय छापती है कि परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण ही प्रामाणिक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा संस्करण

हमने रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित होनेवाले संस्कारविधि के संस्करणों में आरम्भ से ही वैदिक यन्त्रालय मुद्रित संस्करणों के सभी दोषों का परिमार्जन करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। हम ने रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण को तैयार करने के लिये निम्नलिखित कार्य किये थे—

१—सन् १९३५ में हस्तलेख की पाण्डुलिपि (रफ कापी) वा प्रेसकापी से मिलान करके रखी हुई प्रति से मिलान।

२—प्रमुख संस्करणों (जिनमें पाठभेद हुए हैं) से पाठों की तुलना।

३—उद्धरणों को मूल ग्रन्थों की पूरी तरह मिलान करके ठीक शुद्ध पते देने का प्रयास।

४—जिन ग्रन्थों के उद्धरण दिये गये हैं, उनके यदि एक से अधिक संस्करण छपे हैं तो यथासम्भव सभी संस्करणों को देखने का प्रयास किया है।

५—जिन उद्धरणों के पते द्वितीय संस्करण में नहीं दिये गये थे, और पीछे से संशोधकों ने दिये, उनके पते हमने नीचे टिप्पणी में दिये हैं। इस प्रकार हमने द्वितीय संस्करण के पाठ को पूर्ण रूप में सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

हमारे संस्करण का मूल आदर्श

हमारे संस्करणों का मूल आदर्श द्वितीय संस्करण है। उसमें कतिपय मुद्रण दोष की अशुद्धियों का शोधन तृतीय संस्करण से स्वीकार किया है। हस्तलेखों का पाठ केवल उन्हीं २-४ स्थानों पर स्वीकार किया है, जहां हस्तलेख का पाठ वस्तुतः शुद्ध था। ऐसे स्थानों पर हमने नीचे टिप्पणी दे दी हैं। यथा पृष्ठ २१ टि० १, पृष्ठ ५७ टि० १।[1] इस प्रकार हमारे संस्करण कतिपय स्थलों को छोड़कर द्वितीय संस्करण का ही अक्षरशः अनुसरण करते हैं।

१. यह पृष्ठ संख्या हमारे सं० २०३१ में प्रकाशित 'आर्यसमाज-शताब्दी-संस्करण की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विशेष स्थल—केवल एक स्थल ऐसा है, जहां द्वितीय संस्करण में उद्धृत मन्त्रपाठ को मुद्रित आकर ग्रन्थ के पाठ के अनुसार शुद्ध करना पड़ा। वह स्थल है—सीमन्तोन्नयन संस्कार में **राकामहं** से लेकर अगले मन्त्रों का पाठ। इस स्थल पर यह विषय पृष्ठ ६६ टिप्पणी १[1] में स्पष्ट कर दिया है।

उद्धृत पाठ की रक्षा—जहां पर उद्धृत पाठ वर्तमान में छपे ग्रन्थों में पाठभेद से मिलते हैं, उन्हें मूलवत् ही रखा है, और वर्तमान पाठ टिप्पणी में दर्शाया है[2]। उद्धरणों के पते देते समय भी इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि जिस आकर ग्रन्थ के एक से अधिक संस्करण छपे मिलते हैं, उनमें से जिस संस्करण में संस्कारविधिस्थ पाठ मिलता है, उसका निर्देश कर दिया है। यथा स्वस्तिवाचन में **त्वमग्ने यज्ञाना ँ होता०** इस साममन्त्र में ँकार किसी संस्करण में है, किसी में नहीं मिलता। इसी प्रकार साममन्त्रब्राह्मण के जो भी पाठ ऋषि दयानन्द ने दिये हैं, उनमें ँकार का निर्देश मिलता है। यह पाठ सत्यव्रत सामश्रमी के संस्करण में देखा जाता है। कलकत्ते से अभिनव छपे व्याख्याद्वय-सहित संस्करण में ँ के स्थान पर अनुस्वार का पाठ मिलता है।

———

१. द्र० पृष्ठ ३७७, टि० १।

२. वेदों के मन्त्रपाठ में पाठ-शुद्धि का विशेष ध्यान रखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट ५

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश का संक्षिप्त परिचय

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश की रचना पं० बालाजी विट्ठल गांवस्कर ने की है। यह मराठी भाषा में लिखा गया है। इस का प्रथम भाग वानप्रस्थ-संन्यास पर्यन्त सं० १९३८ में प्रकाशित हुआ था और दूसरा भाग जिस में 'अन्त्येष्टि-संस्कार-विधि है' सं० १९३९ में छपा था। इस के आरम्भ में उपोद्घात है। यह अत्यन्त उपयोगी है। अन्त्येष्टि संस्कारविधि को पृथक् छापने का प्रयोजन ग्रन्थकार ने श्मशान-भूमि में ले जाने की सुगमता वा सुभीता बताया है। पृथक् छापने का संभवतः यह भी प्रयोजन रहा हो कि उस समय श्मशान में गई हुई वस्तु को घर पर वापस लाना उचित नहीं समझा जाता था।

वेदोक्त संस्कार प्रकाश के मुख पृष्ठ पर निम्न लेख है—

"।। ओ३म् नमो जगदीश्वराय ।।

वेदोक्त संस्कार प्रकाश

हा ग्रन्थ

वेद व तदाधार भूत आश्वलायन, पारस्कर व

गोभिलीय गृह्य सूत्रादि आद्य, सर्व मान्य

सत्य शास्त्रां चा आधारे

मन्त्रार्थ व प्रमाण सहीत

पं० बाला जी विट्ठल गांवस्कर

आणि तयार करून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक कल्याणार्थ छापून प्रसिद्ध केले

मुम्बई

इण्डियन प्रिंटिंग छापाखान्यांत छापिला

व तेथें तो विकत मिळल

विक्रम संवत् १९३८ शालिवाहन शक १८०३

किंमत २।। रुपये

लगभग ऐसा ही मुख पृष्ठ का लेख द्वितीय भाग में भी हैं। निम्न अंश भिन्न है—

"विक्रम संवत् १९३९, शालिवाहन १८०४

किंमत ६।। आणे

(दोनी भाग मिळून किंमत २।। रुपये)"

इस ग्रन्थ के प्रथम भाग का गुजराती अनुवाद भी तत्काल ही प्रकाशित हो गया था। अनुवादक इसके बम्बई निवासी प्राणजीवन-दास काहनदास थे। द्वितीय भाग का गुजराती में अनुवाद सम्भवतः प्रकाशित नहीं हुआ था। प्रथम भाग के गुजराती संस्करण के मुख पृष्ठ पर निम्न लेख है—

"ओ३म् नमो जगदीश्वराय

वेदोक्त संस्कार प्रकाश

आ ग्रन्थ

वेद अने तदाधार भूत आश्वलायन पारस्कर

अने गोभिलीय गृह्य सूत्रादि आद्य

सर्वमान्य सत्य शास्त्रो आधारे

मंत्रार्थ अने प्रमाण सहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रची,

पंडित बाला जी विट्ठल गांवस्कर

एमणे प्रसिद्ध कर्यो छे

महाराष्ट्र भाषामांथी गुजराती भाषान्तर

परोपकार वुद्धि थी करी छापनार

प्राणजीवनदास कहानदास

सरकारी से० ग्रे० एँ० १० शालानो बड़ो शिक्षक

बिक्रम संवत १९३८ शालिवाहन शक १८०३

कीम्मत रु० २॥ ग्रढी"

इस मुखपृष्ठ में 'पण्डित बाळा जी बिट्ठल गांवस्कर' नाम देवनागरी ग्रक्षरों में छपा है, शेष सब गुजराती ग्रक्षरों में ।

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के मराठी ग्रौर गुजराती संस्करणों की उपलब्धि किस प्रकार हुई, इस का उल्लेख पूर्व (१११-११२ पर) किया जा चुका है ।

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश से तुलना

संस्कारविधि के प्रथम संस्करण ग्रौर वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश की विषय सूची इस प्रकार है—

संस्कारविधि प्र० सं०	**वेदोक्त-संस्कारप्रकाश**
उपोद्घात	उपोद्घात
सकल कर्मोपयोगी प्रार्थनामन्त्राः	सामान्य संस्कारविधि
ग्रथ गर्भाधान संस्कारविधि	विवाह संस्कारविधि
,, पुंसवन संस्कारविधिः	गर्भाधान संस्कारविधि
,, सीमन्तोन्नयन संस्कारविधिः	गृहाश्रम संस्कारविधि
,, जातकर्म संस्कारविधिः	पुंसवन संस्कारविधि
,, नामकरण संस्कारविधिः	सीमन्तोन्नयन संस्कारविधि
,, निष्क्रमण संस्कारविधिः	जातकर्म संस्कारविधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथअन्नप्राशन संस्कारविधिः	नामकरण संस्कारविधि
,, चूडाकरण संस्कारविधिः	निष्क्रमण संस्कारविधि
,, कर्णवेध संस्कारविधिः	अन्नप्राशन संस्कारविधि
,, उपनयन संस्कारविधिः	चूडाकरण संस्कारविधि
,, वेदारम्भ संस्कारविधिः	कर्णवेध संस्कारविधि
,, समावर्तन संस्कारविधिः	उपनयन संस्कारविधि
,, विवाह संस्कारविधिः	वेदारम्भ संस्कारविधि
,, गृहाश्रम संस्कारविधिः	समावर्तन संस्कारविधि
,, वानप्रस्थ संन्यासाश्रम संस्कारविधिः	वानप्रस्थ संन्यासाश्रम संस्कारविधि
,, मृतक संस्कारविधिः	अन्त्येष्टि संस्कारविधि

दोनों ग्रन्थों के संस्कारों की सूची समान है। संभवतः वेदोक्त-संस्कारप्रकाश के कर्त्ता बालाजी विट्ठल गांवस्कर ने आश्वलायन-सूत्री होने से आश्वलायन गृह्यसूत्रानुसार[1] विवाह संस्कार का प्रथम उल्लेख किया हैं। उन की दृष्टि यह है कि विवाह के पश्चात् ही तो गर्भाधानादि संस्कार सम्पन्न हो सकते हैं। ऋ० द० ने मनुस्मृति २।१६ के अनुसार निषेक (गर्भाधान) से श्मशान (मृतक) संस्कार पर्यन्त संस्कारों का निर्देश किया है। इस क्रम में यह दृष्टि कार्य कर रही है कि संस्कारों का प्रधान प्रयोजन आत्मा और शरीर को संस्कृत करना है। आत्मा और शरीर का संयोग गर्भाधान संस्कार से सम्पन्न होता है। यह क्रम-भेद तो दृष्टि-भेद के कारण है, परन्तु वेदोक्त-संस्कारप्रकाश के कर्त्ता का गृहाश्रम को स्वतन्त्र संस्कार मान कर वानप्रस्थ सन्यास को एक स्वीकार करके १६ संख्या की पूर्ति करना निश्चय ही संस्कारविधि के प्रथम संस्करण पर आधृत है। ऋ० द० ने इस भूल का संशोधित संस्करण में वान-प्रस्थ और संन्यास को पृथक् स्वीकार करके परिशोधन कर दिया है, परन्तु संस्कारविधि के संशोधित संस्करण में भी 'गृहस्थाश्रमविधि' के स्थान में 'गृहाश्रम संस्कारविधि' का उल्लेख होना निश्चय ही भूल है, क्योंकि इसे स्वतन्त्र संस्कार मानने पर १६ के स्थान में १७ संस्कार हो जाते हैं।

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में सभी संस्कारों के मूल प्रमाण-वचनों

१. अन्य कई गृह्यसूत्रों में भी विवाह संस्कार का प्रथम वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का संग्रह तथा संस्कारों में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों के संक्षिप्त अर्थ भी प्रत्येक भाग के अन्त में दिये हैं।

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश की रचना में ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से सहायता

वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक ने ऋ० द० कृत संस्कारविधि के प्रथम संस्करण (सं० १९३२), सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण (सं० १९३२) तथा पञ्चमहायज्ञविधि (सं० १९३४) से पर्याप्त सहायता ली है। यथा—

संस्कारविधि (प्र० सं०) और वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश

१—वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक ने संस्कारविधि के प्रथम संस्करण से पर्याप्त सहायता ली है। दोनों के आरम्भ में **चतुर्वेद मन्त्रों का संग्रह है**। यद्यपि मन्त्रों में पर्याप्त भिन्नता है, पुनरपि परम्परागत विद्वान् श्रौत और गृह्य कर्मों में अथर्ववेद के मन्त्रों का समावेश नहीं करते। अतः वेदोक्तसंस्कारप्रकाश में अथर्ववेद के मन्त्रों का संस्कार-कर्म में विनियोग ऋ० द० के मतानुसार ही किया गया है।

२—ऋ० द० ने संस्कारविधि के प्र० सं० में गृहस्थाश्रम को स्वतन्त्र संस्कार मानकर और वानप्रस्थ संन्यास को एक करके १६ संस्कार स्वीकार किये हैं (द्र०—संस्कारविधि प्र० सं० की विषय सूची)। इसी प्रकार वेदोक्तसंस्कारप्रकाश के रचयिता ने भी गृहाश्रम संस्कार को स्वतन्त्र मानकर तथा वानप्रस्थ संन्यासाश्रम को एक करके १६ संस्कार लिखे हैं (द्र०—पूर्व उल्लिखत वेदोक्त-संस्कार प्रकाश की विषय सूची)।

३—ऋ० द० ने संस्कारविधि (प्र० सं०) में संस्कारों में प्रयुक्त मन्त्रों के संक्षिप्त अर्थ लिखे हैं, उन्हीं अर्थों का अनुकरण प्रायः वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के कर्त्ता ने किया है।

दोनों में भेद—इस प्रकार संस्कारविधि (प्र० सं०) तथा वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में कुछ समानता होने पर भी लेखन में अत्यधिक भिन्नता है। संस्कारविधि के प्रथम संस्करण में विधि के रूप में गृह्य-सूत्रों के पाठ ही उद्घृत किये गये हैं। अतः उसके द्वारा जो व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मकाण्ड में कुशल न हो, वह संस्कार नहीं करा सकता। परन्तु वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में प्रमाणरूप में उद्धृत वचनों का पृथक् संकलन किया है तथा प्रत्येक संस्कार की आदि से अन्त तक सम्पूर्ण विधि क्रमशः दी है। अतः मराठी भाषा वा गुजराती भाषा जानने-वाला कोई भी व्यक्ति उससे संस्कार कराने में समर्थ हो सकता हैं। यथा सम्प्रति संस्कारविधि के संशोधित संस्करण से केवल आर्य भाषा जानने वाला भी संस्कार करा लेता है।

पञ्चमहायज्ञविधि और वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश

ऋषि दयानन्द ने पञ्चमहायज्ञविधि का एक संस्करण सं० १९३१ में प्रकाशित किया था। उसमें परम्परानुसार अघमर्षण मन्त्रों के पश्चात् सूर्योदय होने पर सूर्य की परिक्रमा के मन्त्र और उसे अर्घ्य देने का उल्लेख था।[1] इस में एक महती बाधा उपस्थित होती थी। प्राचीन परम्परा के अनुसार गायत्री के जप का काल सूर्योदय से पूर्व ही माना गया है परन्तु सूर्य की परिक्रमा के लिये सूर्योदयपर्यन्त रुकने से गायत्री जप के काल का उल्लंघन होता था। अतः ऋषि दयानन्द ने सं० १९३४ में पञ्चमहायज्ञविधि का जो परिशोधित संस्करण प्रकाशित किया, उस में सूर्य की परिक्रमा के मन्त्रों को हटाकर **मनसा-परिक्रमा** के ६ मन्त्र रख दिये। मनसा-परिक्रमा में सूर्योदय के साथ सम्बन्ध न होने से सूर्योदय से पूर्व सन्ध्या और गायत्री का जप संभव हो गया। यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि ऋ० द० के द्वारा लिखे गये अथर्ववेद के मन्त्रों का संध्या में विनियोग किसी प्राचीन सन्ध्या में नहीं है। **यह ऋ० द० की अपनी सूझ-बूझ का परिणाम** है। वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में भी गृहस्थाश्रम संस्कार के अन्तर्गत सन्ध्याप्रकरण में अथर्ववेदीय मनसापरिक्रमा के मन्त्र उद्धृत किये हैं। ये मन्त्र निश्चय ही वेदोक्त-संस्कार प्रकाश के कर्त्ता ने ऋ० द० कृत पञ्चमहायज्ञविधि से लिये हैं।

सत्यार्थप्रकाश (प्र० सं०) और वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश

ऋ० द० ने संस्कारविधि (प्र० सं०) में पठन-पाठन-विधि का उल्लेख नहीं किया था। वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में वेदारम्भ के अन्त

---

१. द्र०—पूर्व पृष्ठ ७५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पठन-पाठन-विधि का उल्लेख (पृष्ठ १३०-१३३) किया है। यह सम्पूर्ण पठन-पाठन-विधि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक ने सत्यार्थ-प्रकाश के प्रथम संस्करण के तृतीय समुल्लास से ली है।

इस प्रकार हमने अतिसंक्षेप से यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक ने ऋ० द० कृत संस्कारविधि (प्र० सं०) पञ्चमहायज्ञविधि (सं० १९३४) तथा सत्यार्थप्रकाश (प्र० सं०) से अनेक विषय उदारतापूर्वक स्वीकार करके अपने ग्रन्थ में सम्मिलित किये हैं।

एक दूसरे का निर्देश न करना

उपर्युक्त निर्देश से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश और संस्कारविधि (संशोधित सं०) के लेखक एक दूसरे के ग्रन्थों का पर्याप्त उपयोग करते हैं, पर दोनों ही एक दूसरे के नाम का उल्लेख नहीं करते। इसका क्या कारण है?

इसके परिज्ञान के लिये सब से प्रथम यह देखना होगा कि पं० बालाजी विट्ठल गांवस्कर का सम्बन्ध आर्यसमाज अथवा स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ था, अथवा नहीं।

सं० २०३८ के ज्येष्ठ मास में जब मुझे आर्यसमाज (काकड़-वाड़ी) बम्बई की साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही प्राप्त हुई, उस से पूर्व मुझे पं० बालाजी विट्ठल गांवस्कर तथा रा० रा० आत्माराम बापू दलवी (जिन्हें लेखक ने अपना ग्रन्थ समर्पित किया है) के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं था। मैं लेखक को उदारदृष्टि वाला जनहितवादी शास्त्रज्ञ व्यक्ति ही समझता था। परन्तु बम्बई आर्यसमाज की कार्यवाही पढ़ने से यह स्पष्ट हो गया कि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त थे और **रा० रा० आत्माराम बापू दलवी** तो बम्बई आर्यसमाज के वर्षों प्रधान और उपप्रधान रहे हैं। वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के गुजराती अनुवादक **श्री प्राणजीवनदास कहानदास** के बम्बई आर्यसमाज में १३ तथा २७ नवम्बर १८८१ को वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश अन्तर्गत विवाह और गर्भाधान संस्कार पर व्याख्यान हुये थे[1]। बम्बई आर्यसमाज की

१. द्र० 'ऋ० द० और आ० स० से संबन्द्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख' वेदवाणी मार्च १९८२ का अंक, पृष्ठ ९२-९३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६ अप्रेल १८८२ की कार्यवाही में लिखा है—'रा० रा० आत्माराम बापू दलवी ने वेंगुर्ला (जि० रत्नागिरि कर्नाटक) में वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के अनुसार पण्डित बालाजी के यहां हुए उपनयन संस्कार का वृत्तान्त सुनाया।' इसी प्रकार २४ मई १८८२ को बलसाड गांव के निवासी कवि कृष्णराम इच्छाराम शास्त्री ने 'गोमान्तक (गोवा) देश की यात्रा के प्रसङ्ग में वेंगुर्ला में [बालाजी] शास्त्री जी द्वारा कराये गये उपनयनसंस्कार का विवरण उपस्थित किया।' इन दोनों दिनों की कार्यवाही देखने योग्य है (द्र० वेदवाणी मार्च १९८२ पृष्ठ ७८-७९ तथा ८२-८३)। इन दिनों ऋषि दयानन्द बम्बई में ही विद्यमान थे।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के लेखक का ऋषि दयानन्द के साथ गहरा सम्पर्क था और यह सम्पर्क सम्भवतः सन् १८७५ के बम्बई वा पूना निवास के काल में हुआ था। यही कारण है कि वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश सर्वथा ऋषि दयानन्द की विचारधारा के अनुसार लिखा गया[1]।

अपने वेदोक्तसंस्कारप्रकाश में स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम के उल्लेख न करने में पं० बालाजी विट्ठल गांवस्कर का यह कारण रहा हो कि महाराष्ट्र में वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के अनुसार संस्कार करने कराने की प्रथा चल जाये। इस विचार से यदि देखा जाय तो ग्रन्थ में दयानन्द का उल्लेख करना उनके प्रयोजन का व्याघातक सिद्ध हो सकता था।

अन्त में हम यह निर्देश करना आवश्यक समझते हैं कि संस्कार-विधि और वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के विषय में ऊपर जो कुछ लिखा गया है, वह दोनों ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन का परिणाम है। **इस तुलनात्मक अध्ययन के विना वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश आर्य-समाजियों के लिये एक भयानक पुस्तक है।** सन् १९४४ में मैंने जब इस ग्रन्थ को प्रथमवार देखा था, तब मेरे मन की भी ऐसी ही स्थिति

१. वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश में प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर विवाह में एक कर्म ऐसा सम्मिलित हो गया था, जिसे ऋ० द० के विचार के अनुकूल नहीं कहा जा सकता है। परन्तु इस लेख का निराकरण लेखक ने स्वयं वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश के द्वितीय भाग में कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, क्योंकि उस से ज्ञात होता था कि ऋ० द० ने अपनी संस्कारविधि इस ग्रन्थ के आधार पर बनाई है। दूसरे शब्दों में ऋ० द० पर साहित्यक चोरी का अपराध लगाया जा सकता है। अतः मैंने अपने ऋ०, द० के ग्रन्थों के इतिहास' के प्रथम संस्करण में इस ग्रन्थ का संकेत भी नहीं किया। यही मनःस्थिति श्री पं० विश्वश्रवा जी की भी इस ग्रन्थ को देखकर हुई थी।

हमारे पास ऋ० द० के सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि और पञ्च-महायज्ञविधि के आद्य संस्करण विद्यमान हैं, और उनसे इस तुलना में अत्यधिक सहायता मिली है। यदि वे आद्य संस्करण हमारे पास न होते और आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई की सन् १८८१-८२ के अधिवेशनों की कार्यवाही हमें उपलब्ध न होती तो हम भी अन्त तक भटकते रहते और इस ग्रन्थ को एक भयानक ग्रन्थ ही समझते रहते।

इस महत्त्वपूर्ण **वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश** नामक ग्रन्थ का आर्य-भाषानुवाद शीघ्र (सन् १९८४ में) ही प्रकाशित हो जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट ६

यजुर्वेद-भाष्य और संशोधित सत्यार्थप्रकाश में मांस-भक्षण

ऋषि दयानन्द के **यजुर्वेभाष्य** अ० १३ मन्त्र ४७ से लेकर ५२वें मन्त्र तक के भाष्य में कुछ ऐसा लेख था, **जिससे मांस-भक्षण का समर्थनसा प्रतीत होता था**। ये पृष्ठ कम्पोज हो गये थे और छपने से पूर्व मुंशी समर्थदान, प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय की इन पर दृष्टि पड़ी। उन्होंने उन पृष्ठों को ऋषि दयानन्द के पास पुनः शोधनार्थ भेजा। इस विषय का मुंशी समर्थदान का कोई पत्र उपलब्ध नहीं हुआ, परन्तु ऋषि दयानन्द के पत्रों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन्हें पुनः शोधने के लिये मुंशी समर्थदान ने भेजा था।

१—ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेदभाष्य के १३वें अध्याय की प्रेस कापी के पृष्ठ ४५९ के दूसरी ओर (पीठ पर) निम्न पंक्तियां अपने हाथ से लिखी थीं—

"जैसा इन को शोध के भेजते हैं वैसा पुनः कम्पोज करके छपवा दो और जो कहीं शोधने में भूल रह गई तो तुम वहां शोध लेना, **जिससे मांस-भक्षण का अभिप्राय कुछ भी न रहे**। बाकी सब पत्रों का उत्तर कल भेजेंगे।"

यह लेख ऋषि दयानन्द ने फाल्गुन शु० ९ शनिचर सं० १९३९ (=१७ मार्च सन् १८८३) को लिख कर भेजा था। देखो अगला उद्धरण।

२—ऋषि दयानन्द अपने फा० शु० शनिचर सं० [१९३९] के पूर्ण संख्या ४२४ के पत्र में लिखते हैं—

"(८) हमने आज मन्त्र ४७ से लेकर ५२ मन्त्र तक के पत्रे शोधकर[1] आज आये और आज ही रजिस्ट्री कराकर भेज दिये हैं। **उनमें से जहां-जहां मांस खाने का विषय [था] काट दिया और उचित अर्थ कर दिया है।......यदि शीघ्रता से शोधने में मांस खाने में**

१. यहां 'पत्रे आज आये और शोधकर आज ही...' पाठ होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई रह गया है तौ उसको तुम कटवा देना और उचित धरवा ना।" ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६६९-६७०।

(क) कहीं-कहीं शीघ्रतावश अथवा अन्य कारण से वेदभाष्य में ऐसा अंश लिखा गया था, जिसे मांस-भक्षण के पक्षपाती 'वेद में मांस-भक्षण का विधान है' के रूप में उपस्थित कर सकते थे, अथवा 'ऋषि दयानन्द मांस-भक्षण के विरोधी नहीं थे' ऐसा कह सकते थे।

(ख) मुंशी समर्थदान जब से वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्ता हुए तब से उनका यही प्रयत्न रहा कि ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ शुद्धरूप में प्रकाशित हों। कोई ऐसा भ्रामक वचन न रहे जिसका ग्रन्थकार के अभिप्राय से भिन्न अर्थ निकाला जा सके। सत्यार्थप्रकाश के मुद्रणकाल में तो उन्होंने इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा था।

सत्यार्थप्रकाश के दसवें समुल्लास में मार्जन (हाशिये) पर बढ़ाया गया एक ऐसा पाठ था, जिसे मांसभक्षी प्रमाणरूप में उपस्थित कर सकते थे। उसके सम्बन्ध में मुन्शी समर्थदान ने १३-७-८३ को एक पत्र भेजा था, जिस का कुछ अंश इस प्रकार है—

"श्रीमहाराज नमस्ते

निवेदन यह है कि वेदभाष्य में जो मांस-भक्षण का विधान आया था उसको आप ने निकाल दिया था और मुझ को भी आज्ञा दी थी कि मांस का विधान न आये इस प्रकार से छाप दो सो मैंने छाप दिया था।[1] अब सत्यार्थप्रकाश के भक्ष्याभक्ष्य[2] का प्रकरण पाया इसमें भी आपने मांस खाने की आज्ञा स्पष्ट दी है।

प्रथम जब पुस्तक लिखा गया था तब तो मांस की आज्ञा नहीं दी, पीछे से शोधते समय आपने दी है ऊपर से आपने बनाया है।[3] इससे मेरी शक्ति नहीं कि मैं इसको काट दूं। इसलिये आप से निवेदन किया है। अब जैसी आपकी आज्ञा हो वैसा किया जाये। आपने ऐसी आज्ञा दी है कि जिन पशुओं को क्षत्रिय खेतों की रक्षा के लिये मारें

१. द्र०—यजुर्वेदभाष्य के सम्बन्ध में पूर्व उद्धृत संख्या १, २ के उद्धरण।
२. अर्थात् दसवां समुल्लास।
३. अर्थात् मूल पाठ पर ^ चिह्न बनाकर मार्जन पर लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा अन्य ऐसे कारणों से मारें तो उनका मांस खावे तो कुछ दोष नहीं है।[1]............"

ऋ० द० को लिखे गये पत्र और विज्ञापन भाग ३, पृष्ठ ४१३-४१४।

मुंशी समर्थदान ने सत्यार्थप्रकाश (संशोधित) की प्रेस कापी के जिस पाठ की ओर ऋ० द० का ध्यान आकृष्ट किया था। वह निम्न प्रकार है—

हस्तलिखित कापी के पृष्ठ १८३ का आरम्भ इस प्रकार होता है—

पंक्ति १—चाहे खायें चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें या जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानी नहीं होती।

पंक्ति २—किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है.........[1]

यहां प्रथम पंक्ति के **'खाये चाहें'** तथा **'वा जला देवें'** ये पद संशोधन के समय **पंक्ति के ऊपर** लिखे गये हैं। इनमें से **'खायें चाहे'** पद कटे हुए हैं। **'वा जला देवें'** पद न कटे हुए हैं और नाही द्वितीय संस्करण में छपे हैं। प्रथम पंक्ति का अन्तिम पद **'होती।'** पंक्ति के अन्त में मार्जन पर बढ़ा कर लिखा गया है। अर्थात् मूल में प्रथम पंक्ति **'नहीं'** पर समाप्त होती थी। द्वितीय पंक्ति के प्रथम **'किन्तु'** पद से पूर्व ⅹ ऐसा चिह्न देकर मार्जन (हाशिये) पर तीन पंक्तियों में निम्न पाठ लिखा हुआ है—

"प्रश्न—सब मांस भक्ष्य वा अभक्ष्य है (उत्तर) अभक्ष्यो ग्राम्यकुक्कुटाऽभक्ष्यो ग्राम्यशूकरः। जो ग्राम में कुक्कुट और सूकर तथा मांसाहारी सब पशु पक्षी तिर्यक् जो पेट से चलते हैं अशुद्धाहारी मत्स्यादि हैं वे सब अभक्ष्य और इन से भिन्न शुद्धाहार जांगल सब भक्ष्य हैं परन्तु यह बात राजवर्गी मनुष्यों के लिये है अन्य के लिये नहीं (प्रश्न) ग्राम के कुक्कुट आदि अभक्ष्य और वनस्थ भक्ष्य हैं इस में क्या युक्ति है?

---

१. यह सत्यार्थप्रकाश के हाशिये पर लिखे गये लेख का सारांश है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उत्तर) ग्रामस्थ कुक्कुट आदि उपकारक अशुद्धाहारी अभक्ष्य और जंगलवासी हानिकारक शुद्धाहारी भक्ष्य हैं।"[1]

प्रथम पंक्ति में ऊपर बढ़ाया हुआ पाठ और हाशिये पर लिखा तीन पंक्तियों का पाठ प्रेस कापी की प्रतिलिपि करनेवाले से भिन्न व्यक्ति द्वारा पतली कलम से लिखा हुआ है। ये पंक्तियां किसने लिखी और काटीं, इस पर आगे विचार किया जाता है—

सब से प्रथम इस विवाद को ला० मूलराज एम० ए० ने उठाया था और महात्मा मुंशीराम जिज्ञासु (श्री स्वामी श्रद्धानन्द) ने १० नवम्बर सन् १९१६ में जो **'वेद और आर्यसमाज'** शीर्षक लेख प्रकाशित किया था, उसमें इस पर विचार किया था।[2] तत्पश्चात् महात्मा हंसराज जी ने लाला मूलराज एम० ए० द्वारा लिखित **दशप्रश्नी** पुस्तिका (ट्रैक्ट) के उत्तर में लिखित **'दशप्रश्नी की समीक्षा'** नामक ट्रैक्ट में विचार किया है।[3]

महात्मा मुन्शीराम जिज्ञासु के लेख का सारांश—म० मुंशीराम-

---

१. द्रष्टव्य - श्री हरविलास सारडा कृत 'वर्क्स् आफ महर्षि दयानन्द' ग्रन्थ के पृष्ठ ७० के सामने सत्यार्थप्रकाश की प्रेस कापी के पृष्ठ १८३ की फोटो प्रिंट कापी।

२. म० मुन्शीराम के उक्त लेख को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपने 'आर्य-मर्यादा' पत्र के २६ दिसम्बर १९८२ के अंक के रूप में पुस्तकाकार छापा हैं। हमने भी इस लेख को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझ कर रामलाल कपूर ट्रस्ट की 'वेदवाणी' पत्रिका के फरवरी १९८३ के अंक में प्रकाशित किया है।

३. **'दशप्रश्नी'** नाम की हिन्दी पुस्तिका (ट्रैक्ट) 'दयानन्द निर्वाण अर्ध-शताब्दी अजमेर' (सन् १९३३) के अवसर पर श्री पं० विश्वबन्धु की ओर से बांटी गई थी। इसमें 'प्रश्न' किसी भक्त के हैं और 'उत्तर' लाला मूलराज के। यह २०×२६ अठपेजी आकार के १६ पृष्ठों में छपी है। मुखपृष्ठ पर लेखक का नाम नहीं है। छपने का काल मुखपृष्ठ पर 'दीपावली संवत् १९९० छपा है। अन्त के पृष्ठ पर 'दयानन्द प्रैस, चंगड़ मोहल्ला, लाहौर' छपा है। फोटोस्टेट कापी हमारे पास है। इस दशप्रश्नी का नवम प्रश्न और उसका उत्तर द्रष्टव्य है। इस प्रश्नोत्तर को तथा महात्मा हंसराज जी द्वारा लिखित समीक्षा को हम आगे दे रहे हैं। महात्मा हंसराज द्वारा लिखित **'दशप्रश्नी समीक्षा'** ट्रैक्ट भी हमारे पास विद्यमान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी ने इस पर विस्तार से विचार किया है और समर्थदान के पूर्व उद्धृत १७-७-८३ के पत्र को उद्धृत करके जो विस्तृत विचार प्रस्तुत किया है, उस का सारांश इस प्रकार है—

"सत्यार्थप्रकाश में जो पाठ और पंक्तियां बढ़ाई गई हैं, उसमें पं० ज्वालादत्त का हाथ था। जब समर्थदान को ऋ० द० ने हस्तलिखित पुस्तक भेजी थी तो उसमें मांस खाने की आज्ञायुक्त लेख नहीं था। उसे समर्थदान ने ऋषि की आज्ञा मांग कर काट दिया। 'किन्तु उस मनुष्य' इस वाक्य के आरम्भ में ဝ चिह्न देकर जो पाठ हाशिये पर लिखा है उसकी ऋ० द० की अगली इबारत के साथ कोई सम्बन्ध नहीं बनता।"

हमारा विचार म० मुंशीराम जी से दो बातों में भिन्न है—

१—ऊपर परिवर्धित पद तथा परिवर्धित पंक्तियां पं० ज्वालादत्त के हाथ की नहीं है। ऋ० द० के हाथ की लिखी हुई हैं। ऋ० द० के हस्तलेखों पर विशेषरूप से काम करने के कारण मैं बड़ी सूक्ष्मता से ऋ० द० के हस्तलेख को पहचानता हूं। बढी हुई पंक्तियों की भाषा भी ऋ० द० की है, अन्य की नहीं है।

२—मुन्शी समर्थदान के १३-७-८३ के पूर्व उद्धृत पत्र के '**प्रथम जब पुस्तक लिखा गया था तब तो मांस की आज्ञा नहीं दी पीछे से शोधते समय आपने दी है ऊपर से आपने बनाया है। इससे मेरी शक्ति नहीं कि मैं इसे काट दूं।**" पाठ का जो अभिप्राय म० मुंशीरामजी ने समझा है (जब समर्थदान को हस्तलिखित पुस्तक दी थी तब उसमें मांस खाने की आज्ञायुक्त लेख नहीं था) वह उक्त पत्र से कतई प्रकट नहीं होता। उसका तो सीधा सादा अभिप्राय है—"जब हस्तलेख लिखा गया, उस समय उसमें मांस खाने की आज्ञा नहीं थी, संशोधन करते समय आपने दी है।' यह आशय पत्र के '**शोधते समय ऊपर से बनाया है**' शब्दों से स्पष्ट है। इससे यह भी स्पष्ट है कि मुन्शी जी इस लेख को ऋ० द० के हाथ का लिखा हुआ मानते थे। अन्यथा 'मेरी शक्ति नहीं कि मैं इसे काट दूं' ऐसा न लिखते। मुन्शी समर्थदान का प्रबन्धकर्त्ता कार्यालय (बम्बई) तथा प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय के रूप में वर्षों ऋ० द० के साथ सम्पर्क रहा है। अतः मुंशी समर्थदान ऋ० द० के हस्तलेख को भली प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहचानते थे। यदि उक्त लेख ऋ० द० का न होता तो वे **'आपने लिखा'** के स्थान में **'आपने लिखवाया'** तथा **'आपने बनाया'** के स्थान में **'आपने बनवाया'** शब्दों का प्रयोग करते।

म० मुंशीराम जी के लेख से स्पष्ट है कि उन्होंने इसे पं० ज्वालादत्त का बढ़ाया हुआ सिद्ध करने के लिये पं० ज्वालादत्त के पत्रों के हस्तलेख से मिलान किया था। हो सकता है कि पं० ज्वालादत्त का हस्तलेख ऋ० द० के हस्तलेख से मिलता हो। इस साम्यता से म० मुंशीराम जी धोखा खा सकते थे, परन्तु मुंशी समर्थदान, जो वर्षों साथ रहने के कारण दोनों के हस्ताक्षरों से भली-भांति परिचित था, धोखा नहीं खा सकता था।

हमारे विचार में म० मुंशीराम जी ने इस प्रश्न पर जिस रूप में विचार किया है, उसका एक कारण यह भी है कि उन्हें 'वेदभाष्य में आये हुए मांस भक्षण के प्रकरण को मुंशी समर्थदान द्वारा लौटाना और ऋ० द० का उसे शोधकर भेजना' प्रकरण का परिज्ञान नहीं था।

अब मांस-भक्षण प्रश्न को उठाने वाले लाला मूलराज एम० ए० के संबन्ध में भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। क्योंकि अनेक लोग कहा करते हैं कि लाला मूलराज के मांसाहारी होने का ज्ञान होते हुए भी ऋ० द० ने उन्हें परोपकारिणी सभा का सदस्य और उपसभापति बनाया था।

हमारी तुच्छ मति में यह बात किसी प्रकार नहीं जमती, क्योंकि स्पष्ट वक्ता दयानन्द जब महाराणा सज्जनसिंह को एकलिंग महादेव के मन्दिर का महन्त बनने की प्रार्थना पर दो टूक उत्तर दे सकता था और जोधपुर नरेश को उसके वेश्यागामी होने का ज्ञान होने पर कठोर शब्दों में फटकार सकता था, तो उनकी तुलना में लाला मूलराज की कौन ऐसी बड़ी हस्ती थी, जिसके कारण उनके मांसाहार का ज्ञान होने पर भी उन्हें परोपकारिणी सभा का उपसभापति बनाते? वास्तविकता यह है कि लाला मूलराज ने अपने मांसाहारी होने की बात को सदा छिपाये रखा। इसमें उन के साथियों ने भी उनका साथ दिया। ऋषि दयानन्द को अन्त तक लाला मूलराज के मांसाहारी होने का ज्ञान नहीं हुआ। लाला मूलराज मांसाहारी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी कारण वे ऋ० द० द्वारा गोकरुणानिधि पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद करने के आदेश को अन्त तक टालते रहे। इस विषय के ऋ० द० के कई पत्र द्रष्टव्य हैं। यथा--**इसका अंग्रेजी तर्जुमा जल्दी करके हमारे पास रवाना कर दीजिये** (ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ४३८, भाग १, पृष्ठ ४८५, पं० ११-१२), "**प्रथम ही गोकरुणानिधि** की प्रति आप के पास इस अभिप्राय से भेजी है कि इसका बहुत अच्छा तर्जुमा अंग्रेजी भाषा में कर दीजिये......वह अंग्रेज राजपुरुषों......के अवलोकनार्थ विलायत तक भेजी जावे" (वही, पूर्ण संख्या ४५८, भाग २, पृष्ठ ५०३, पं० ५-८), "देश की उन्नति के वास्ते थोड़ा अवकाश निकालना चाहिये" (वही, पूर्ण संख्या ४७७, पृष्ठ ५२२, पं० ६-७), 'आपने अब तक[1] गोकरुणानिधि की अंग्रेजी नहीं की। हमें निराश होकर यहाँ बम्बई में और लोगों से **अङ्ग्रेजी बनवानी पड़ी**' (वही, पूर्ण संख्या ५२७, पृष्ठ ५६१, पं० १-२)।

ऋषि दयानन्द के जीवनकाल में तो क्या उनके स्वर्गवास के पीछे भी कुछ वर्षों तक उनकी यह हिम्मत नहीं हुई कि वे अपने मांसाहार सम्बन्धी विचारों को प्रकट कर सकें। इस विषय में पूर्व पृष्ठ १९८-१९९ देखें।

लाला मूलराज एम० ए० ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि पं० लेखराम के कारण सत्यार्थप्रकाश में मांसभक्षण के पक्ष को निकाल कर शाकाहार का सिद्धान्त जोड़ा गया।[2] परन्तु लाला लाजपतराय ने लिखा है—

"I remember when once in Ajmer Rai Mul Raj said that Swami Dayanand had changed his views on Vegetarianism under pressure from the jains, Tears flowed from Pandit Lekhram's eyes involun-

---

१. पहला पूर्ण संख्या ४३८ का पत्र ३ मार्च १८८१ का है और पूर्ण संख्या ५२७ का २९ अप्रेल १८८२ का। इस प्रकार थोड़े से पृष्ठों की गोकरुणानिधि का अंग्रेजी अनुवाद लगभग १४ महीनों में भी करके नहीं दिया।

२. द्र० 'परोपकारी' मार्च १९७९, पृष्ठ १३, कालम १। लेखक प्रा० श्री राजेन्द्र जिज्ञासु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

tarily. Whenever anybody attacked the personality of Swamiji, he could not contain himself."[1]

अर्थात् मुझे स्मरण है कि एक बार अजमेर में मूलराज ने कहा था कि स्वामी दयानन्द ने जैनियों के दबाव में शाकाहार सम्बन्धी अपने विचार बदले। यह सुनते ही पं० लेखराम के नयनों से टप-टप अश्रु गिरने लगे। जब कभी किसी ने स्वामीजी के व्यक्तित्व पर प्रहार किया, वह उसे सहन न कर सके।

इतना ही नहीं, सन् १९३३ में दयानन्द निर्वाण अर्धशताब्दी पर लाला मूलराज द्वारा लिखी गई 'दशप्रश्नी' नामक जो पुस्तिका बांटी गई थी उसमें पृष्ठ २० पर सत्यार्थप्रकाश के दसवें समुल्लास में लिखी गई मांस विषयक पङ्क्तियों को काटने का दोष मुन्शी समर्थदान पर लगाया है। और उसकी एक मनघड़न्त कहानी बनाकर लिखी है। उसका सार है "सन् १८९१ में मुन्शी समर्थदान लाला-मूलराल से मिले, उस समय उन्होंने कहा कि 'श्री स्वामीजी ने सत्यार्थ-प्रकाश के दूसरे संस्करण के भक्ष्य-अभक्ष्य सम्बन्धी दसवें समुल्लास में मांस खाने की इजाजत दी हुई थी। परन्तु क्योंकि उन दिनों वह (समर्थदान) मांस भोजन के विरोधी थे, उन्होंने स्वामीजी की अनुमति के विरुद्ध अपनी इच्छानुसार, उन पंक्तियों को छपने नहीं दिया।"[2]

उपर्युक्त उद्धरणों में दसवें समुल्लास में लिखे गये मांस भक्षण सम्बन्धी पंक्तियों के काटने या न छपने देने के लाला मूलराज ने तीन कारण बताए हैं। पाठक स्वयं सोचे कि एक झूठी बात को सिद्ध करने के लिये लाला मूलराज को कितने झूठे प्रपञ्च रचने पड़े। जहां तक मुंशी समर्थदान के विषय में कही गई बात है, उसे हम ऋषि दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य के १३वें अध्याय में आये मांसभक्षण विषयक टिप्पणी व पत्र (द्र० पूर्व पृष्ठ ३८८) और स्वयं मुंशी समर्थदान का पत्र (पूर्व पृष्ठ ३८९) को प्रमाण मानें या लालभुझक्कड़ लाला मूलराज

१. Lajpat Rai Autobiograhical writings page 74. प्रा० श्री राजेन्द्र जिज्ञासु कृत 'रक्त-साक्षी पं० लेखराम' के पृष्ठ ५१ से उद्धृत

२. द्र० दश-प्रश्नी, पृष्ठ १०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कल्पित सन् १८९१ की भेंट वार्ता को ? मनीषियों ने सच ही कहा है—झूठ के पांव नहीं होते ।

ऋ० द० बड़े शुद्ध-हृदय और सरलचित्त थे । **आत्मवत्सर्वभूतेषु** के अनुसार लाला मूलराज को भी वे अपने समान शुद्ध-हृदय और सरल-चित्त वाला समझते थे ।

ऋ० द० ने भारतीय नवयुवकों को कला-कौशल की शिक्षा देने के लिये जिन जर्मन प्रोफेसरों से पत्रव्यवहार किया था । उनमें से जी० वाइज नाम के प्रोफेसर ने इस कार्य में बहुत रुचि और उत्साह दिखाया, परन्तु इन्हीं लाला मूलराज की सम्मति को स्वीकार करके ऋषि दयानन्द ने प्रो० जी० वाइज को लिखा कि '**हमारी कमेटी और कई विशिष्ट व्यक्तियों की राय है कि नौजवान आर्यों को यूरोप में .....भेजना जरूरी नहीं है**' । यह अंश जी० वाइज ने अपने पत्र में उद्धृत किया है । (द्र० ऋ० को लिखे गये पत्र विज्ञापन पूर्ण संख्या १५६ भाग ३, पृष्ठ १४५, पं० ८-११) । इसी पत्र में जी० वाइज ने सलाह दी है—"**आप कमेटी की परवाह न करें**..." (वही, पृष्ठ १५०, पं० ३०) ।

हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि लाला मूलराज ब्रिटिश सरकार द्वारा ऋ० द० के प्रति नियुक्त गुप्तचर थे । अन्यथा इतने बड़े देशोन्नति के कार्यक्रम के लिये वे विपरीत सम्मति कभी न देते ।

अब '**दश-प्रश्नी**' में मांस-भक्षण के विषय में उठाये गये लाला मूलराज के आक्षेप और उसकी समीक्षा[1] में म० हंसराज जी ने जो लिखा है, उसे उद्धृत करके इस प्रकरण को समाप्त करते हैं—

नवें प्रश्न के उत्तर के विषय में

"नवें प्रश्न के उत्तर में राय साहिब इस बात पर बल देते हैं कि 'आज कल स्वामी जी के जो ग्रन्थ छपते हैं उनसे यह पता नहीं लगता कि कौन सा भाग स्वामी जी का लिखा हुआ है और कौन से भाग में दूसरों का हाथ है । इसके लिए उनकी पहली युक्ति यह है

---

१. दशप्रश्नी की समीक्षा ४ नवम्बर १९३३ में २०×३० अठपेजी आकार में गुलाबी रङ्ग के कागज पर लाहौर में छपी थी । अगला सन्दर्भ हमने इस के पृष्ठ १३-१४ से लेकर छाप रहे है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि पहले सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने लिखा था कि मांस तथा अन्य खाद्य पदार्थों का यज्ञ में होम के पश्चात् सेवन किया जाये। और पहली संस्कारविधि में यह लिखा था कि अन्नप्राशन संस्कार के अवसर पर बच्चों को तीतर का शोरवा पिलाना चाहिये'।[1]

[**समीक्षा**] इस बात के जतलाने के लिए राय साहिब की आवश्यकता नहीं थी, सनातनी पण्डित कालूराम और पं० अखिलानन्द ने भी कई बार यह जतलाया है, परन्तु स्वामी जी के विरुद्ध लिखनेवाले यह भूल जाते हैं कि संस्कारविधि में उस स्थल पर यह भी लिखा था कि **यह एकदेशी मत** है अर्थात् एक विशेष सूत्र-ग्रन्थ का मत है सब का नहीं. और स्वामी जी ने कई स्थलों पर मांसभक्षण का खण्डन भी किया है और राय साहिब ने भी उनके व्याख्यान सुने होंगे। स्वामी जी महाराज ने वेदभाष्यों को पत्रिकाओं में अपने जीवनकाल ही में कई बार नोटिस दिया कि उनके सत्यार्थप्रकाश[2] में गलत बातें छप गई हैं। उन्होंने गोकरुणानिधि पुस्तक को भी अपने जीवनकाल में ही प्रकाशित किया था, बल्कि सामान्य मांसभक्षण के विरुद्ध भी लिखा था। मुझे अच्छी तरह ज्ञात है कि **गोकरुणानिधि की हस्तलिखित कापी स्वामी जी के अपने हाथ से ठीक की हुई राय साहिब के पास विद्यमान थी और उन्होंने मुझे वह कापी दिखलाई थी।** उस अवस्था में क्या राय साहिब का कर्त्तव्य नहीं था कि वे स्वामी जी महाराज से निवेदन करते कि आप पहले मांस के पक्ष में थे और अब आप मांस का विरोध करते हैं। उनके जीवन में तो राय साहिब को यह साहस नहीं हुआ कि वे उनसे किसी प्रकार का यह प्रश्न करें और हमारे सामने आक्षेप पेश करते हैं। हमारा उत्तर तो यही है कि जो नोटिस स्वामी जी महाराज ने दिया है, वह ठीक है।

श्री स्वामी जी के पुस्तकों के सम्बन्ध में राय साहिब की दूसरी युक्ति यह है कि 'कार्य की अधिकता के कारण स्वामी जी संस्कृत में वेदभाष्य लिखवा देते और पं० भीमसेन और पं० ज्वालादत्त उसका

१. 'दश-प्रश्नी' पृष्ठ ९-१०।

२. यह संकेत सन् १८७५ में छपे सत्यार्थप्रकाश के सम्बन्ध में जानना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद हिन्दी में कर देते थे और यह कि स्वामी जी के देहान्त के बाद कुछ भाग संस्कृत से हिन्दी में किया गया ।"[1]

यह ठीक है कि स्वामी जी महाराज अपने हाथ से नहीं लिखते थे, बल्कि पण्डितों को लिखवाते जाते थे, परन्तु राय साहिब इस बात को भूल गए हैं कि स्वामी जी के पुस्तकों पर उनके अपने हाथों से संशोधन किए हुए विद्यमान हैं, जिन पुस्तकों का संशोधन उन्होंने स्वयं किया और उनमें कोई कांट छांट नहीं हुई उन पुस्तकों पर अविश्वास की मोहर कैसे लग सकती है ? आर्यसमाजियों की यह इच्छा रही है कि स्वामी जी के पुस्तकों को छपने से पहले असली कापी के साथ तुलना कर ली जाए । इस काम के लिये वह उपसभा नियत हुई थी, जिसका राय साहिब ने संकेत किया है । दो तीन वर्ष हुए कि एक उपसभा संस्कारविधि के संशोधन के लिए नियत हुई थी, और मुझे भी उसका सदस्य बनाया गया था । वर्तमान संस्कार-विधि का असली हस्तलिखित संस्कारविधि के साथ तुलना करके संशोधन किया गया । इस समय भी परोपकारिणी सभा इस बात में संलग्न है कि स्वामी महाराज के हस्तलिखित पुस्तकों को फोटो ली जाये, और सत्यार्थ-प्रकाश के पुस्तक की फोटो ली जा चुकी है। इससे स्पष्ट है कि परोपकारिणी सभा अपने कर्तव्य का पूरी ईमान-दारी से पालन कर रही है । राय साहब परोपकारिणी सभा के स्वयं कार्यकर्ता प्रधान है । और यदि वे अपना कुछ समय परोपकारिणी के कामों के लिए व्यय करें तो बहुत हितकर सेवा कर सकते हैं ।

तीसरी युक्ति मुन्शी समर्थदान भूतपूर्व मैनेजर वैदिक यन्त्रालय से सम्बन्ध रखती है । राय साहिब के कथनानुसार 'मुन्शी समर्थदान मांस के बहुत विरोधी थे और श्री स्वामी जी के लेख को इस विषय में उन्होंने काट दिया । १८९१ में मुन्शी समर्थदान के विचार में परि-वर्तन आ गया और उन्होंने राय साहिब के सामने अमृतसर में आकर बड़ा पश्चाताप प्रकट किया कि क्यों उन्होंने उन वाक्यों को जो मांस-भक्षण के पक्ष में थे, काट दिया ।"[2] परोपकारिणी का कर्त्तव्य है कि वह इस विषय में खोज करें ।[3] परन्तु क्या राय साहिब के मन में यह

---

१. दश-प्रश्नी, पृष्ठ १०–११ । २. द्र०—दश-प्रश्नी, पृष्ठ १० ।

३. खोज करने की कोई आवश्यकता नहीं है । राय साहब ने मुन्शी समर्थदान के विषय में जो कुछ लिखा है, सफेद झूठ है । मुन्शी समर्थदान ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार कभी नहीं आया कि मुन्शी समर्थदान जिसने श्री स्वामी दयानन्द के साथ गद्दारी (विद्रोह) की, वह राय साहिब के सामने भी उनको प्रसन्न करने के लिए झूठ बोलता हो।[1]

इस सारे प्रकरण से निम्न बातों पर प्रकाश पड़ता है—

१. यजुर्वेदभाष्य और सत्यार्थप्रकाश में जिस मांसभक्षण के प्रकरण से किञ्चिन्मात्र भी मांसभक्षण की अनुमति की गन्ध आती थी, उसे मुंशी समर्थदान ने ऋ०द० के द्वारा ही उचित संशोधन करवाया था।

२. लाला मूलराज ने भिन्न-भिन्न समय में सत्यार्थप्रकाश के मांस-भक्षण प्रकरण को हटाये जाने के भिन्न-भिन्न कारण बताये हैं। इस से स्पष्ट है कि लाला मूलराज जानबूझ कर गलत बयानी करते रहे।

३. लाला मूलराज में ऋषि दयानन्द के निधन के पश्चात् भी कुछ समय तक अपने मांसभक्षण की बात बताने की शक्ति नहीं थी।

४. ऋ० द० के जीवनकाल में अपने मांसभक्षी होने की बात ऋ० द० से छिपाये रहे।

———

सत्यार्थप्रकाश का मांसभक्षण विषय स्वयं नहीं काटा, अपितु स्वयं काटने में अपनी असमर्थता प्रक़ट की है। देखो पूर्व पृष्ठ ५७ पर छपा मुन्शी समर्थदान का १३–७–८३ के पत्र का अंश।

१. मुन्शी समर्थदान के झूठ बोलने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। लाला मूलराज ने ही समर्थदान के नाम से झूठी कहानी गढ़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट ७

ऋषि दयानन्द कृत पुस्तकों के पुराने विज्ञापन

ऋषि दयानन्द कृत मुद्रित पुस्तकों के विज्ञापन अनेक पुस्तकों के आद्यन्त में छपे हैं। उनमें निम्न पुस्तकों पर छपे विज्ञापन बहुत उपयोगी हैं—

१. आर्यसमाज बम्बई की पुरानी रिपोर्ट

२. वेदान्तिध्वान्तनिवारण प्र० सं० (सं० १९३१)

३. संस्कारविधि प्र० सं० (सं० १९३२)

४. यजुर्वेदभाष्य अङ्क १५ (आषाढ़ सं० १९३७)

५. यजुर्वेदभाष्य अङ्क ४०-४१ (सम्मिलित) श्रावण सं० १९३९

१—सं० १९३२ का विज्ञापन

यह विज्ञापन सं० १९३०[1] के माघ मास की अमावास्या (सन् १८७६) में **'आर्यसमाजना नियमो'** शीर्षक से छपी बम्बई आर्यसमाज की प्रथम ११ मास की रिपोर्ट के अन्त में छपा था—

विक्रय पुस्तकों

नीचे लिखेलां पुस्तको वहार कोट रामबाड़ी की पासे ईश्वरदास लायब्रेरी मांथी मलशे

सत्यार्थप्रकाश भाग बीजो	१-०-०[2]
वेदविरुद्ध-मत खंडन	०-४-०
वेदमंत्र व्याख्यान	०-१-०

यही विज्ञापन दामोदर सुन्दरदास धर्मसिंह कृत सन् १९३३ में छपे **'मुंबई आर्यसमाज नो इतिहास'** ग्रन्थ के ३८वें पेज पर भी उद्धृत है।

---

१. यहां गुजराती संवत् के अनुसार भी सं० १९३२ होना चाहिये।

२. यह मूल्य निर्देश क्रमशः रुपया आना पाई के हिसाब के अनुसार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—सं० १९३२ का विज्ञापन

यह विज्ञापन इसी संवत् के छपे वेदान्तिध्वान्तनिवारण के अन्त में इस प्रकार मिलता है—

विक्रेय पुस्तक

नीचे लिखे हुए पुस्तक बाहिर कोट में रामबाड़ी पास ईश्वरदास लायब्रेरी में मिलेंगे।

	रु०	आ०	पै०
सत्यार्थप्रकाश भाग दुसर	१	०	०
वल्लभमतखण्डन	०	४	०
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	०	२	०
आर्यसमाजनियमव्याख्यान	०	१	०
वेदमन्त्रव्याख्यान	०	१	०
सन्ध्योपासना	०	४	०
आर्यसमाज के नियम	०	०	६

विशेष—यही विज्ञापन सन् १८७६ के छपे **"सत्यासत्यविचार"**[1] के अन्त में भी छपा था।

३—सं० १९३३ का विज्ञापन

यह विज्ञापन सं० १९३२ लिखित एवं १९३३ में छपी संस्कार-विधि (प्रथम संस्करण) में विषय सूची के पृष्ठ की पीठ पर छपा था—

सूचना

विक्रीय पुस्तकों का नाम	मूल्य	
	रु०	आ०
१. संस्कारविधि······ (दयानंद स्वामी कृत)	१ —	८
२. सत्यार्थप्रकाश जिल्द साथ (दयानंद स्वा०)	३ —	४

---

१. यह बम्बई के 'लीलाधर हरिदास ठाकर का निबन्ध है। द्र० अगला परिशिष्ट ८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. आर्याभिविनय भाग २	(दयानंद स्वा०)	० —	८
४. सन्ध्याभाष्य	(दयानंद स्वा०)	० —	४
५. बल्लभाचार्यमत खंडन		० —	४
६. स्वामी नारायणमतखंडन		० —	४
७. वेदांतिध्वांती निवारण		० —	२
८. सत्यासत्यविचार(लीला धर) कृत		० —	४
९. वेदभाष्य(अर्थ द्वय सहित) १२ अंक	(दया०)	३ —	१२

ऊपर प्रदर्शित सब पुस्तक मुम्बई के **'आर्यसमाज'** तथा मुम्बई के 'कालका देवि का रास्ता पर रामबाडी के घर नं० ९६ के दुकानदार रा० रा० **'रामकृष्ण काशीनाथ कशेलकर'** वा अहमदावाद में **गुजराती वर्नाक्यूलर सोसैटी'** तथा काशी में 'बाबू व्रजभूषणदास की कम्पनी' इन के पास मिलेगी ।

४—सं० १९३६ का विज्ञापन

विज्ञापन

वर्णोच्चारणशिक्षा (सं० १९३६), संस्कृतवाक्यप्रबोध (सं० १९३६), और व्यवहारभानु (सं० १९३६) के टाइटल पेज चार पर निम्न विज्ञापन छपा हुआ मिलता है—

निम्नलिखित पुस्तक दूसरी बार सुगम आर्यभाषा में इस यन्त्रालय में छपेंगी ।

[१] सत्यार्थप्रकाशः । [२] वेदान्त ध्वान्ति निवारणम्
[३] आर्याभिविनय ॥

सत्यार्थप्रकाश में अब के बाइबल और कुरान के विषय में भी बहुत कुछ लिखा जायगा ।

सन्धिविषय (सन् १९३७ मार्ग) के अन्त में टाइटल पेज ४ पर उपर्युक्त विज्ञापन ही छपा है, परन्तु उस में

[४] **आर्य्योद्देश्यरत्नमाला** का नाम अधिक है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—आषाढ़ सं० १९३७ का विज्ञापन

निम्नलिखित पुस्तक इस वैदिक यन्त्रालय में उपस्थित हैं—

१—	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित ऋग् और यजुर्वेदभाष्य ३ वर्ष के	१७)
२	केवल ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	५)
३	सत्यार्थप्रकाश	२॥)
४	संस्कारविधि	१॥=)
५	आर्याभिविनय	॥)
६	संध्योपासन संस्कृत और भाषा	।)
७	सध्योपासन संस्कृत	≈)
८	आर्योद्देश्यरत्नमाला	—)॥
९	वेदान्तिध्वान्तनिवारण	=)
१०	भ्रान्तिनिवारण	।)
११	सत्यासत्यविवेक उर्दू	=)
१२	गोतम अहल्या और इन्द्र वृत्रासुर की सत्यकथा	—)
१३	वर्णोच्चारणशिक्षा	=)
१४	संस्कृतवाक्यप्रबोध	।—)
१५	व्यवहारभानु	।)
१६	शास्त्रार्थ-काशी संस्कृत व भाषा	=)
१७	,, ,, भाषा व उर्दू	=)
१८	वेदविरुद्धमतखण्डन	।)
१९	स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	—)
२०	स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	—)
२१	अमेरिका वालों का लेक्चर[1]	=)
२२	भ्रमोच्छेदन	—)
२३	मेला ब्रह्मविचार चांदापुर भाषा व उर्दू	।)

१. इस का उल्लेख ऋ० द० के ज्येष्ठ बदी १४ मंगलवार (२० मई ७९) मेरठ से लिखे गये पूर्णसंख्या २१४ के पत्र (भाग १, पृष्ठ २७०, पं० ३१) में मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी से मिलता जुलता विज्ञापन सं० १९३७ के छपे सत्यधर्म-विचार के अन्त में छपा है।

श्रावण सं० १९३९ का विज्ञापन

यजुर्वेदभाष्य अं० ४०—४१ (समि०) सं० १९३९ श्रावण शु० के टाइटल पेज नं० ३ पर छपा है।

विज्ञापन

३—जो लोग दाम देकर पुस्तक नहीं ले सकते ऐसे दीनमनुष्यों के निमित्त स्वामी जी महाराज ने नीचे लिखे तीनपुस्तकों के धर्मार्थ देने की आज्ञा की है। जो लोग लेना चाहें डाक व्यय भेज कर इसे यन्त्रालय से मंगवा लें।

सत्यार्थप्रकाश खण्डित (उसका कुछ भाग)	–)॥
ऋग्वेदभाष्य के नमूने का अंक	)॥
गौतम अहल्या की सत्यकथा	)॥

'भ्रान्तिनिवारण' सम्बन्धी विज्ञापन

[पूर्व पृष्ठ १६१, पं० १६ तथा पृष्ठ १६४ पं० ३०—३१ पर विज्ञापन]

भ्रांतिनिवारण के विषय में सब से प्रथम विज्ञापन आश्विन सं० १९३६ के यजुर्वेदभाष्य के ११ वें अंक के अन्त में निम्न प्रकार मिलता है—

"यह पुस्तक स्वामी जी ने आर्य भाषा में शंका समूह दूर करने के लिये कि जो बहुत लोगों का हुआ है बनाया है। आजकल बहुत से लोगों ने कि जिन्होंने वेद के आशय पर प्राचीन आर्ष ग्रन्थ नहीं पढ़े और केवल आधुनिक प्रचलित ग्रन्थों पर आश्रय किये बैठे हैं इस वेद-भाष्य पर अपनी आश्चर्यजनक सम्मति देते हैं। जैसे **पण्डित महेश-चन्द्र न्यायरत्न** और **पण्डित गोविन्दराम** इत्यादि ने वेदभाष्य के खण्डन पर पुस्तक बनाये हैं और **पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री** ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उसके खण्डन में थोड़े लेख अपने रिसाले 'बिरादरे हिन्द' में लिखे और पृथक् भी एक पुस्तक 'दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य रेवेयू' इस नाम से मुद्रित कराया है। पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न का पुस्तक सब से पीछे बना है और उसके पुस्तक में इतर सब पण्डितों की शंकाएं भी पाई जाती हैं इसलिये स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने केवल इसी पुस्तक को मुख्य समझ कर इस समस्त पुस्तक का खण्डन इस प्रकार किया है कि प्रथम उस पुस्तक का वाक्य फिर ऋषि मुनियों के प्रमाण देकर अपनी ओर से उसका खण्डन ॥ इस पुस्तक के अवलोकन से पक्षपात रहित मनुष्यों को किसी प्रकार की शंका न रहेगी। उचित है कि द्वेषरहित होकर लोग इस पुस्तक को शुद्धान्तः-करण से अवलोकन करें। यह पुस्तक देवनागरी लिपि में विलायती कागज पर स्वच्छता पूर्वक 'आर्य भूषण' यन्त्रालय शाहजहांपुर में मुद्रित हुवा है। डाक महसूल सहित मूल्य ।।—) भेज कर मंगालें ।।"

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट ८

ऋषि की सम्मति से छपवापे ग्रन्थ
तथा
पत्रव्यवहार में निर्दिष्ट ग्रन्थ

ऋ० द० की आर्ष ग्रन्थ छपवाने की इच्छा

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन तथा उनके स्वीकार पत्रों[1] के अवलोकन से विदित होता है कि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के छपवाने, उनकी व्याख्या करने कराने आदि की उनकी महती इच्छा थी। इसके लिये उन्होंने अनेक व्यक्तियों को प्रेरित किया, तथा अपने स्वीकारपत्रों में प्रथम उद्देश्य यही रक्खा। उनका लेख इस प्रकार हैं:—

"प्रथम—वेद और वेदाङ्गों वा सत्यशास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनाने, छापने छपवाने आदि में।"

उदयपुर के महाराजा को ऋषि ने एक विशेष पत्र लिखा था,

---

१. ऋषि दयानन्द ने दो बार स्कीकार-पत्र रजिष्ट्री कराये थे। प्रथम बार का १६ अगस्त १८८० ई० में मेरठ में रजिष्ट्री करवाया था। यह ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन में पूर्णसंख्या ३२८, भाग १, पृष्ठ ३८२–३८६। तक छपा है। दूसरा स्वीकार-पत्र ऋषि ने उदयपुर में २७ फरवरी सन् १८८३ ई० तदनुसार फाल्गुन कृष्णा ५ मंगलवार सं० १९३९ को रजिस्ट्री करवाया था द्र० पत्र और विज्ञापन, पूर्णसंख्या ६२५, भाग २, पृष्ठ ६५३–६५८)। यह परोपकारिणी सभा से अनेक बार छप चुका है। इसमें भूल से फाल्गुन कृष्णा के स्थान में शुक्ला ५ छप रहा है, वह अशुद्ध है। फाल्गुन शुक्ला ५ को २७ फरवरी नहीं थी, १३ मार्च थी। इस भूल का दुष्परिणाम यह हुआ कि सार्वदेशिक सभा ने सं० १९७८ में जो **आर्य डाइरेक्टरी** छपवाई थी उस में परोपकारिणी सभा की स्थापना की तारीख **२७** फरवरी के स्थान में **१३** मार्च लिख दी (द्र० पृष्ठ ७५, कालम १)। मैंने मन्त्री श्रीमती परोपकारिणी सभा का ध्यान इस अशुद्धि की ओर कई बार आकर्षित किया और **"आर्यमार्तण्ड"** (अजमेर) तथा "आर्य" (लाहौर) पत्र में भी इस विषय पर कई लेख लिख, परन्तु यह अशुद्धि अभी तक भी स्वीकारपत्र में उसी प्रकार छप रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें उन्होंने सवा लाख रुपये क्षात्रशाला में, पच्चीस हजार अनाथ आदि की पालना में और दस हजार रुपये प्राचीन आर्ष ग्रन्थ छपवाने में व्यय करने के लिये लिखा था। देखो पत्र-विज्ञापन पृ० सं० ७४५ भगा पृष्ठ २, ७५५ इससे स्पष्ट है कि उनके मन में प्राचीन आर्ष ग्रन्थ छपवाने की कितनी उत्कण्ठा थी।

भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और उसका गौरवमय इतिहास प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में ही निहित है। अतः उनके यथेष्ट प्रचार के विना भारत की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक उन्नति सर्वथा असम्भव है। इस लिये इस समय प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के सुन्दर और शुद्ध मुद्रण तथा उनके भाषानुवाद के प्रकाशन का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

आर्यसमाज तथा परोपकारिणी सभा ने बहुत कुछ कार्य किया, परन्तु स्वामीजी के इस विशेष कार्य की ओर सब उदासीन रहे। परोपकारिणी सभा के सन् १८८६ के अधिवेशन में प्राचीन आर्ष ग्रन्थ छपवाने का प्रस्ताव पास हुआ, तदनुसार शतपथ, निरुक्त, दश उपनिषद् मूल, अष्टाध्यायी, चारों वेद और उनकी मन्त्रानुक्रमणियां, बस ये गिनती के दस बारह ग्रन्थ इतने सुदीर्घकाल में छपे। आर्यसमाज ने अनेक गुरुकुल खोले, परन्तु उसने इस बात की कोई आवश्यकता नहीं समझी कि गुरुकुल में पढ़ाये जाने वाले ग्रन्थ कहां से मिलेंगे? आर्ष ग्रन्थों के अभाव में अनार्ष ग्रन्थ पढ़ाने पड़े। ऋषि दयानन्द अपनी दूरदर्शिता से इस कठिनाई को भले प्रकार जानते थे, इसीलिये उन्होंने आर्ष ग्रन्थों को छपवाने पर विशेष बल दिया। ऋषि ने २४ अप्रेल १८७९ को दानापुर के माधोलालजी को एक पत्र में लिखा था—

"आपके संस्कृत पाठशाला खोलने का विचार सुनकर मुझे बहुत हर्ष है पर इससे पूर्व कि आप इस सर्वोपयोगी कार्य को हाथ में लें, मुझे सूचना दें.................क्या अभी **आपके पास सब आवश्यक ग्रन्थ तैयार हैं**..................।"

पत्रऔर विज्ञापन, पूर्णसंख्या २०७, भाग १, पृष्ठ २५९; २६०।

इससे स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द गुरुकुल आदि खोलने से पूर्व उसकी पाठविधि के ग्रन्थों को तैयार करना आवश्यक कार्य समझते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। शोक से कहना पड़ता है कि आज तक इतने सुदीर्घ काल में आर्यसमाज की किसी संस्था ने[1] किसी आर्ष ग्रन्थ का उत्तम, शुद्ध और प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नहीं किया।

ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से कितने व्यक्तियों ने आर्ष ग्रन्थों का मुद्रण कराया होगा, यह अज्ञात है। हमें केवल योगदर्शन व्यास-भाष्य की एक पुस्तक ऐसी देखने को मिली है, जिस पर स्पष्ट शब्दों में **"दयानन्दसरस्वतीस्वामिनोऽनुमत्या"** शब्द छपे हुए हैं। इस पुस्तक के मुख पृष्ठ की प्रतिलिपि इस प्रकार है—

अथ पातञ्जलयोगसूत्रम् ॥

———

व्यासदेव कृत भाष्यसहितम् ॥

श्रीवाराणास्यां लाइट् यन्त्रालये मुंशी हरिवंशलालस्य

सम्मत्या गोपीनाथ पाठकेन मुद्रितम् ॥

———

तथा

दयानन्द सरस्वती स्वामिनोऽनुमत्या द्विवेदो-

पाह्व भैरवदत्त पण्डितेन शोधितम्

सम्बत् १९२९

BENARES

Printed at the Light Press, by Gopeeuath Pathuok

———

1872

विशेष—ऋ० द० ने प्राचीन ग्रन्थों के अनुसन्धान और उन्हें प्राप्त करने के लिये कितना श्रम किया। इस के परिज्ञान के लिये ऋ० द०

---

१. श्री पं० कृपारामजी (श्री स्वामी दर्शनानन्दजी)ने महाभाष्य काशिका आदि अनेक उपयोगी ग्रन्थ छपवाये थे, वह उनका व्यक्तिगत उद्यम था। श्री पं० भगवद्दत्तजी की अध्यक्षता में डी० ए० वी० कालेज लाहौर से कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पत्र और विज्ञापन, भाग ४ के आरम्भ में हमारा लिखा 'प्राक्कथन' पृष्ठ २५-३२ तक देखें।

ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार में निर्दिष्ट ग्रन्थ

१—पोपलीला

ऋषि दयानन्द के १३ मई सन् १८८२ को पं० सुन्दरलालजी के नाम लिखे हुए पत्र में **"पोपलीला"** नामक पुस्तक का उल्लेख है।

देखो—पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ५३४, भाग २, पृष्ठ ५२६, पं० १५।

यह **"पोपलीला"** हमारे देखने में नहीं आई। इस का उल्लेख शाहपुराधीश के आषाढ़ शु० ८, सं० १९३८ (१९३९) के पत्र में मिलता है। वहां उसे 'आप के किसी शिष्य की बनाई हुई' लिखा है (द्र० पत्र और विज्ञापन, पूर्णसंख्या २५८, भाग ३, पृष्ठ २४६, पं० २०-२२)। हां, १ जनवरी सन् १८८३ को प्रकाशित वैदिक यन्त्रालय प्रयाग के सूचीपत्र[1] में इसका उल्लेख अवश्य मिलता है। वहां केवल नाम निर्देश और मूल्य—) आना लिखा है और इसका कुछ भी वर्णन नहीं मिलता।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में विशेष परिचय पाने के लिसे ऋषि दयानन्द के अनन्यभक्त तथा ऋषि के पत्र और उनके सम्बन्ध की अनेकविध आवश्यक सामग्री के अन्वेषक खतौली (जि० मुजफ़्फ़र-नगर) निवासी श्री लाला मामराजजी को एक पत्र लिखा। जिसके उत्तर में आपने ता० २६-९-४५ को लाहौर से इस प्रकार लिखा—

१. यह सूचीपत्र भांवता जि० अजमेर के निवासी ऋषिभक्त पंडित धन्नालालजी के गृह में विद्यमान हैं। पण्डितजी ने ऋषि दयानन्द के नाम कई पत्र लिखे थे, उनमें से आषाढ कृ० ३० सं० १९४० (४ जुलाई १८८३) का एक पत्र मुद्रित हुआ है। उसी के आधार पर मैं ता० १-९-४५ को उनके गृह पर ऋषि दयानन्द के पत्र ढूंढने के लिये गया था। उनके कनिष्ठ पुत्र पण्डित मोहनलालजी ने बड़ी उदारता तथा स्नेहपूर्वक अपने पिताजी का समस्त पत्रव्यवहार तथा पुस्तक संग्रह मुझे दिखा दिया। उसी संग्रह को देखते समय मुझे उक्त सूचीपत्र मिला था। वहां से ऋषि दयानन्द का कोई पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पोपलीला कदाचित् मुंशी जगन्नाथ की लिखी हुई है और आर्य-दर्पण (?, आर्य भूषण) प्रेस शाहजहांपुर में छपी है। सन् २७ में मैंने फर्रुखाबाद में देखी थी, ऐसा मुझे कुछ याद सा हैं। आप फर्रुखाबाद के मन्त्री को पूछ लेंवें और निश्चय करके ही लिखें। उसके सम्बन्ध में मुझे और कुछ भी ज्ञात नहीं।"

तदनुसार २०-१०-४५ को मैंने एक पत्र श्री मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद को लिखा। उसमें **पोपलीला, गौतम-अहल्या की सत्यकथा** और सं० १९३१ वि० में छपे हुए **वेदभाष्य के नमूने के अङ्क** के विषय में पूछा कि ये पुस्तकें आप के समाज के पुस्तकालय में हैं या नहीं ?

इसके उत्तर में २३-१०-४५ को श्री रामचन्द्रजी मन्त्री आर्य-समाज फर्रुखाबाद ने इस प्रकार लिखा—

"आपका पत्र नं० ४४ ता० २०-१०-४५ का प्राप्त हुआ, उत्तर में निवेदन है कि यहां पुस्तकालय की सूची देखने से एक पुस्तक मिली और दो पुस्तकें पुस्तकालय में नहीं हैं। पोपलीला (जगन्नाथ कृत) मौजूद है, वह सन् १८८७ में वृजभूषण यन्त्रालय मथुरा की छपी हुई है।"

यह पत्र मुझे २६-१०-४५ को मिला। ता० २४-१०-४५ को अजमेर के वैदिक पुस्तकालय में भी मुझे यह पुस्तक देखने को मिल गई। उसके मुख पृष्ठ पर निम्न लेख है—

पोपलीला

अर्थात्

(असत्यमत खण्डन)

जगन्नाथ वेदमतानुयायी द्वारा विरचित और प्रकाशित

....

श्रीमथुराजी

पण्डित बालकृष्ण ने शोधकर निजप्रबन्ध से

व्रजभूषण यन्त्रालय में मुद्रित करी

MARCH

1887

प्रथम वार ।
१००० प्रति ।

मौल्य प्रति
पुस्तक ।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस से व्यक्त है कि यह पोपलीला पुस्तक ऋषि के निर्वाण के चार वर्ष बाद पहिली वार प्रकाशित हुई थी। अतः ऋषि दयानन्द के पत्र में उद्धृत "पोपलीला" पुस्तक या तो पत्र विज्ञापन में निर्दिष्ट **'पोपलीला'** से भिन्न पुस्तक है। अथवा मथुरा में छपा उक्त संस्करण पूर्वमुद्रित का पुनः संस्करण है। नये प्रकाशक ने अपने प्रकाशन की दृष्टि से 'प्रथमवार' का निर्देश किया हो, जैसा कि प्रायः सभी प्रकाशक करते हैं।

२—सत्यासत्यविचार

इस पुस्तक का भी उल्लेख ऋषि के पूर्वोक्त पत्र में ही मिलता है (देखो पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ५३४, पृष्ठ ५६६ पं० २५)। सं० १९३३ की संस्कारविधि (प्र० सं०) की विषय सूची के पृष्ठ की पीठ पर कुछ पुस्तकों का सूचीपत्र छपा है, उसमें इस पुस्तक का उल्लेख है और 'लीलाधर' नामक व्यक्ति की बनाई हुई लिखा है। इसका मूल्य ४ आना था। देखो पूर्व पृष्ठ ४०२।

अतः यह पुस्तक ऋषि दयानन्द कृत नहीं है। ऋषि के पत्रव्यवहार में इसका नाम देख कर किन्हीं का भ्रम न हो, अतएव इसका यहां उल्लेख करना आवश्यक समझा। इसके मुखपृष्ठ पर निम्न पाठ है—

सत्यासत्यविचार नामक

निबन्ध

जो कि लीलाधर हरिदास ठकर इनो ने आर्यसमाज में वांचा था

सो 'आर्यधर्म विवेचक फण्ड की व्यवस्थापक

मण्डली ने छापके प्रसिद्ध किया

मुम्बई

युनियन प्रेस में न्हा० रु० राणीना ने छापा है

सन् १८७६

इस निबन्ध के आर्यसमाज बम्बई के अधिवेशन में पढने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्री आर्यसमाज नो नियमो नाम से २०×३०=३२ पेजी आकार में छपी प्रारम्भिक ११ मास की रिपोर्ट में आर्यसमाज बम्बई में हुए भाषणों के विवरण में पृष्ठ ३१ पर निम्न प्रकार मिलती है—

"सत्यासत्य विचार बल्लभाचार्य जी उत्तपती भाग २ मां, लीलाधर हरिदास"।

'भाग २ मां' का तात्पर्य है—दो बार में पूरा निबन्ध पढ़ा गया।

'सत्यासत्य विचार' को सन् १८९४ में स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ने लखनऊ से छपवाया था ।

मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया ने २७ मार्च १८८३ के पत्र में ब्रह्मानन्द जी का [उदयपुर] पहुंचना लिखा है (द्र० पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ ३११, पं०१)। क्या ये ही सत्यासत्य विचार के प्रकाशक थे, यह अनुसन्धानीय है।

सत्यासत्यविचार का मराठी अनुवाद

लीलाधर हरिदासकृत निबन्ध का नरहरि विष्णु गोडसे ने मराठी भाषा में अनुवाद किया था। यह सं० १९५१, शके १८१६ में प्रकाशित हुआ था।

इस की प्रस्तावना में लीलाधर हरिदास का परिचय दिया है तदनुसार लीलाधर का जन्म सं० १८९७ में और मृत्यु १९४७ में हुई थी। हिन्दी में तीन आवृत्ति, गुजराती भी छपा[1]।

पृष्ठ ४ में लिखा है—

पुढे स्वामीं च्या ह्यांचा आणि इतर सत्यधर्म जिज्ञासु मंडलीच्या विचार ने मुंबई ये थें सं० १९३१ सालीं चैत्रशुद्ध १ स एक आर्यसमाज स्थापन करण्यांत आल्या त्या समाजास ह्यानीं तन मन धनाने फारच मदद के ली।

विशेष—यह टिप्पणी मेरे इस इतिहास के पुराने संस्करण में संलग्न थी। यह टिप्पणी मैंने कब लिखी यह स्मरण नहीं। जिस कागज की पीठ पर यह टिप्पणी लिखी है वह श्री प्रताप जी शूरजी के द्वारा २६-१०-५२ से २-११-५२ तक किये गये ब्रह्मपारायण यज्ञ

---

१. टिप्पणी की यह पंक्ति अस्पष्ट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ३०-१०-५२ के कार्यक्रम के विज्ञापन का है। मैं भी इसी यज्ञ में सम्मिलित हुआ था। अतः सम्भव है इसी समय मेरे गुरुभाई पं० पद्मदत्त जी त्रिवेदी ने सत्यासत्यविचार का उक्त मराठी अनुवाद दिखाया होगा और उसी समय मराठी अनुवाद से उक्त अंश मैंने संकलित किया होगा।

३—आर्यसमाजनियम-व्याख्यान

संवत् १९३२ के वेदान्तिध्वान्तनिवारण के प्रथम संस्करण के अन्त में विक्रेय पुस्तकों की एक सूची थी। उसमें "**आर्यसमाजनियम व्याख्यान** नामक पुस्तक का १ आना मूल्य छपा है (द्र० पूर्व पृष्ठ ४०१)॥ इस के लेखक का नाम अन्य किसी लेख से ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु व्याख्या की अन्तरङ्ग परीक्षा से यही विदित होता है कि इस व्याख्या के लेखक ऋषि दयानन्द ही थे। इसे हमने ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ९०८-९१८ तक छापा है। इस विषय में पत्र विज्ञापन भाग २ 'सम्पादकीय' का पृष्ठ २ तथा प्रस्तुत ग्रन्थ में पूर्व पृष्ठ २९० भी देखें।

४—नित्यकर्म व्यवहार, ५ उपकार सभा

श्री पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित, भाग २, पृष्ठ ३८७ पर दिल्ली दरबार (सन् १८७७) के समय मुन्शी अलखधारी को स्वामी जी ने जो पुस्तकें दीं उन में 'नित्यकर्म-व्यवहार' तथा 'उपकार सभा' पुस्तकों का भी उल्लेख है। ये नाम अन्यत्र देखने में नहीं आये। हो सकता है नाम लिखने में भूल हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट ९

ऋषि दयानन्द के सहयोगी पण्डित

ऋषि दयानन्द ने जितना महान् लेखन कार्य किया है, वह अकेले सम्भव नहीं था। उन्होंने अवश्य ही लेखन आदि कार्य के लिये कुछ पण्डित रक्खे थे। उनमें से केवल तीन पण्डितों का परिचय मिलता है। उनके नाम हैं—दिनेशराम, ज्वालादत्त और भीमसेन। ये तीनों श्री स्वामीजी द्वारा खोली गई फर्रुखाबाद की पाठशाला में पढ़े थे। इसके अतिरिक्त ब्र० रामानन्द भी स्वामीजी के साथ कुछ समय रहा था।

स्वामीजी को लेखन कार्य में बहुत कुछ इन्हीं पण्डितों के सहयोग पर अवलम्बित रहना पड़ता था। विशेषकर वेदभाष्य के हिन्दी अनुवाद और वेदाङ्गप्रकाश की रचना का भार तो विशेष रूप से इन्हीं पण्डितों पर था। इन पण्डितों की योग्यता कितनी थी, इनका स्वभाव कैसा था, इत्यादि विषयों में ऋषि के जीवनचरित तथा पत्रव्यवहार में जो कुछ वर्णन मिलता है, उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं। उससे पाठकों को भले प्रकार ज्ञात हो जायगा कि स्वामी दयानन्द को कैसे अल्पज्ञ और कुटिल प्रकृतिवाले मनुष्यों से काम लेना पड़ता था।

दिनेशराम

पं० दिनेशराम के विषय में श्री पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन चरित में निम्न वर्णन मिलता है—

"कुछ काल पश्चात् ज्येष्ठ मास सं० १९२७ में पाठशाला स्थापित हो गई थी। पं० दुलाराम जो फर्रुखाबाद की पाठशाला में पढ़ रहे थे, बुलाकर अध्यापक नियत कर दिया। महाराज को उनका नाम पसन्द न आया अतः उन्होंने दुलाराम की जगह 'दिनेशराम' नाम रख दिया।" (पृष्ट १९६)।

"ऐसे ही लोगों में एक पण्डित दिनेशराम था, इसका नाम दुलाराम था, स्वामीजी ने उसका दिनेशराम नाम रक्खा था। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फर्रुखाबाद की पाठशाला में सुबोध हो गया था और उन्होंने उसे कासगंज की पाठशाला में अध्यापक नियुक्त कर दिया था। वह था बड़ा कपटी "विषकुम्भं पयोमुखम्"। स्वामीजी के सामने उनकी भलाई और पीछे बुराई करता, वह कहा करता था कि मैं स्वामीजी के ग्रन्थों में इसप्रकार के वाक्य मिला दूंगा कि उन्हें प्रलय तक भी उनका पता न लगेगा। यह नहीं कह सकते कि उसे इस पाप कर्म में कोई सफलता हुई या नहीं ? स्वामीजी ने उसकी दुष्टता ताड़ली और उसे अलग कर दिया।" वही, जीवनचरित पृष्ठ ६०५।

यह वर्णन ७वीं बार काशी जाने अर्थात् कार्तिक सुदि ८ सं० १९३६ से वैशाख वदि ११ सं० १९३७ तक के मध्य का है। परन्तु भीमसेन के पूर्वोद्धृत (पृष्ठ २०९-२१०) पत्रों से विदित होता है कि वह सं० १९३८ तक कार्य कर रहा था। अतः सम्भव है स्वामी जी ने उसे पुनः रख लिया हो या जीवनचरित का उपर्युक्त लेख अस्थान में जुड़ गया हो।

पं० भीमसेन[1] और पं० ज्वालादत्त[2] के विषय में ऋषि दयानन्द की सम्मति

ऋषि दयानन्द ने पं० भीमसेन और ज्वालादत्त के विषय में अपने विभिन्न पत्रों में जो सम्मति लिखी थी, उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"आज अत्यन्त अयोग्यता के कारण भीमसेन को सब दिन के लिये निकाल दिया है। उसको मुख न लगाना। लिखे लिखावे तो कुछ ध्यान मत देना"। ऋ० द० के पत्र विज्ञापन पृष्ठ ६५०।

"**भीमसेन** को तुमने जैसा [बक] वृत्ति समझा वैसा ही हम भी बकवृत्ति और मार्जारलिङ्गी समझते हैं। वैसा ही उससे विलक्षण दम्भी क्रोधी, हठी और स्वार्थ साधन तत्पर **ज्वालादत्त** भी है। अब उनको निकाल देना वा न निकाल देना तुमने क्या निश्चय किया है।

१. पं० भीदसेन ने फर्रुखाबाद की पाठशाला में ४।। वर्ष तक अध्ययन किया था।

२. प० ज्वालादत्त भी फर्रुखाबाद की पाठशाला में बहुत वर्षों तक पढ़ता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी समझ में **भीमसेन** का छोटा भाई **ज्वालादत्त** है। यदि उसको निकाल दोगे तो भी कुछ बड़ी हानि न होगी। क्योंकि यह कभी मन लगाकर काम न करेगा और उसकी ऐसी दृष्टि कच्ची है कि शोधने में अशुद्ध अवश्य कर देगा।" ऋ० द० के पत्र-विज्ञापन पृष्ठ ४०५।

नोट—ऋषि दयानन्द को कैसे अयोग्य व्यक्तियों से काम निकालना पड़ता था, यह इन पत्रांशों से व्यक्त है। ऐसे दुष्ट हृदय के लोग उनके ग्रन्थों में जो कुछ मिलावट करदें वह कम है।

अन्य व्यक्तियों की सम्मतियां

१. रायबहादुर पं० सुन्दरलालजी ने १ जून सन् १८८२ में स्वामीजी को एक पत्र लिखा था' उसमें पं० भीमसेन के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"........एक अद्‌भुत बात यह हुई कि पण्डित देवीप्रसाद मन्त्री आर्यसमाज (प्रयाग) ऐसे विगड़ गये कि समाज से भी नाम कटा लिया और आपकी भी बुराई करने लगे। उनसे व्याकरण पढने का आरम्भ किया सो पढ़ना पढ़ाना तो क्या **आपकी बनाई पुस्तकों में भीमसेन से अशुद्धियां निकलवाया** करें और उनका ऐसा कुछ समझा दिया कि आप स्वामीजी से भी अधिक बुद्धिमान् पण्डित हो।...... ....ज्वालादत्त को मैंने लिखा था आने को राजी तो [है] पर तनखाह के वास्ते पेर फहलाता है। न मालूम अपनी इच्छा से वा भीमसेन के इशारे से .....।" पत्र विज्ञापन भाग ३, पूर्ण संख्या २५२, पृष्ठ २३८, पं० ७–पृ० २३९, पं० १७

२. स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने अपने १२ जुलाई १८८३ के पत्र में स्वामीजी को लिखा है—

"भीमसेन के होनेसे आपके पास कोई नहीं रहेगा।" पत्र और विज्ञापन भाग ३, पूर्ण संख्या ४०७, पृष्ठ ४१२, पं०१२।

इन सब उद्धरणों से भले प्रकार स्पष्ट है कि स्वामीजी महाराज के साथी पण्डित लोग कितनी कुटिल प्रकृति के थे। उन्हें स्वामीजी के कार्य से यत्किञ्चित् सहानुभूति नहीं थी। सहानुभूति होना तो दूर रहा, ये लोग अपनी नीच प्रकृति के कारण स्वामीजी के कार्य को भले प्रकार नहीं करते थे। इस विषय में हम स्वामीजी की यजुर्वेद-भाष्य में दी हुई टिप्पणी पूर्व उद्धृत कर चुके हैं। देखो पूर्व पृष्ठ १५७, पं० ३–७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं पण्डितों की अयोग्यता तथा कुटिलता के कारण स्वामीजी के स्वयं लिखे तथा इनके द्वारा लिखवाये ग्रन्थों में बहुत सी अशुद्धियां उपलब्ध होती हैं। स्वामीजी ने इन अशुद्धियों की ओर अनेक पत्रों में ध्यान दिलाया है। देखो पूर्व पृष्ठ १५५ पर दिये हुए ऋ० द० के पत्रों के उद्धरण।

इतना सब कुछ होते हुए भी परोपकारिणी सभा के अधिकारी इस ओर न स्वयं ध्यान देते हैं और न ध्यान दिलाने पर इन की समझ में कुछ आता है। मेरे पास परोपकारिणी सभा के मन्त्रीजी की लिखित आज्ञा सुरक्षित है, जिसमें उन्होंने मुझे ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका का प्रथम संस्करण से मिलान करके छापने को देने के लिये लिखा है। स्वामीजी के उपर्युक्त पत्रों से स्पष्ट है कि उन ग्रन्थों के प्रथम संस्करणों में ही बहुत अशुद्धियां रह गई थीं। तब भला उन्हीं के अनुसार छापने का आग्रह करना कहां तक उचित है, यह पाठक स्वयं सोच सकते हैं।

जिस समय मैं श्री स्वामीजी के ऋग्वेदभाष्य और मैक्समूलर द्वारा सम्पादित तथा तिलक वैदिक संस्था पूना द्वारा सम्पादित सायण के ऋक्संस्करणों की तुलना करता हूँ, तो मुझे रोना आता है। कहां तो ऋक्सायणभाष्य के ये सुन्दर संस्करण जिन पर लाखों रुपया व्यय किया गया, बरसों इनके सम्पादन में समय लगा और कहां परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित स्वामीजी कृत ऋग्वेदभाष्य। जिसमें प्रति पृष्ठ ही नहीं प्रति पंक्ति अशुद्धियों की भरमार है। परोपकारिणी सभा को स्वामीजी के ग्रन्थों का शुद्ध सम्पादन कराना क्यों अखरता है, समझ में नहीं आता? भला इससे अधिक मूर्खता क्या होगी कि न तो वह स्वयं स्वामीजी महाराज के ग्रन्थों का शुद्ध सुन्दर संस्करण प्रकाशित करती है और न किसी दूसरे को करने देती है। यदि कोई इसके लिये प्रयत्न करता है, तो उसके कार्य में सहयोग देना तो दूर रहा, उलटा उस कार्य में बाधा उत्पन्न करती है, अस्तु।

परमात्मा से प्रार्थना है कि वह परोपकारिणी सभा के समस्त सदस्यों के हृदय में ऐसी प्रेरणा करें कि जिस से वे **इस युग के महान् तत्त्ववेता ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का शुद्ध, सुन्दर और प्रामाणिक उत्तमोत्तम संस्करण प्रकाशित करने का प्रयत्न करें।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट १०

वैदिक यन्त्रालय का पुराना वृत्तान्त[1]

सन् १८८०—१८९३ तक

पिछले कागजों से ज्ञात होता है कि **श्री परमपद** प्राप्त श्री दयानन्द सरस्वती महाराज ने जब संवत् १९३३ में अयोध्या नगर में वेद-भाष्य का आरम्भ किया तो प्रथम **काशीस्थ लाजरस कम्पनी के यन्त्रालय** में उसके छापने का प्रबन्ध किया, प्रथम अपना एक मुन्शी उनके पास रखा जब उससे काम न चला तब उक्त कम्पनी को ही ३०) मासिक देने को ठहराया–इस से प्रबन्ध तो ठीक चला, परन्तु छपाई आदि के दाम बहुत लगने लगे, तब इसका प्रबन्ध बम्बई के **बा० हरिश्चन्द्रजी चिन्तामणि** के आधीन किया, परन्तु जब उन्होंने यथार्थ प्रबन्ध न किया और गड़बड़ की तो **मुन्शी समर्थदानजी** को इसके वास्ते नौकर रख बम्बई भेजा, यह चैत्र संवत् ३५ से फाल्गुन संवत् ३६ तक रहे–इधर तो इन्होंने बम्बई रहना अधिक स्वीकार न किया उधर स्वामी जी ने पठन पाठन विषयक पुस्तकें बनाने का आरम्भ किया तब यह विचारा कि अब छपने के लिये पुस्तक बहुत तय्यार होते हैं और छापने वाले धन भी अधिक लेते हैं फिर भी छापने में ठीक-ठीक स्वतन्त्रता नहीं होती कि जिस पुस्तक को जिस प्रकार जितने काल में चाहें छाप लें इसलिये अपना यन्त्रालय नियत किया जावे तो ठीक होगा इस विचार को स्वामीजी ने फर्रुखाबाद में प्रगट किया तो यन्त्रालय के वास्ते बड़े उत्साह से चन्दा एकत्र होना आरम्भ हुआ और स्वामीजी ने रायबहादुर पण्डित सुन्दरलालजी की सम्मति से संवत् ३६ माघ शुक्ला २ गुरुवार तारीख ११[2]-२-८० के दिन वैदिक यन्त्रालय[3] को काशी में खोला इस

---

१. यह वृत्तान्त हमने वैदिक यन्त्रालय की सन् १८९१, ९२, ९३ की सम्मिलित रिपोर्ट (पृष्ठ १–३) से अक्षरशः उद्‌धृत किया है ।

२. पं० देवेन्द्रनाथ संग्रहीत जीवनचरित पृष्ठ ५९६ में १२ फरवरी लिखा है । पंचाङ्ग के अनुसार माघ शुक्ला २ को फर्वरी की १२ ता० ही थी ।

३. ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के १२ वें अङ्क पर एक विज्ञापन छपा था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही अवसर पर श्रीमान् राजा जैकृश्नदासजी बहादुर (सी, एस, आई) ने टाइप के दो बक्स भेज दिये, पहिले मेनेजर इस यन्त्रालय के **मुन्शी बखतावरसिंहजी** नियत हुए, परन्तु जब इन्होंने यथोचित काम नहीं चलाया और आगे को नौकरी से इस्तीफ़ा दिया तब दिसम्बर ८० में (अगहन १९३७) **बाबू सादीरामजी** को मेनेजर नियत कर राय बहादुर पण्डित सुन्दरलालजी के आधीन रक्खा–इस प्रकार यन्त्रालय का काम ६[1] मास चला, परन्तु उक्त राय बहादुर काशी सम्भालने को बार-बार नहीं जा सकते थे अत एव उनकी सम्मति और सहायता के आश्रय यन्त्रालय चैत्र सु० १[2] सं० ३८ (ता० ३०-३-८१) को

उस में यन्त्रालय का नाम **"आर्यप्रकाश"** लिखा है। देखो ऋषि के पत्र और विज्ञापन भाग १, पृष्ठ ३१९, पं० ८। १३ फरवरी १८८० के पत्र में प्रथम-वार **'वैदिक प्रेस'** ('वैदिक यन्त्रालय') का उल्लेख मिलता है (द्र० पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३२३, पं० १९ तथा ३२४, पं० ११। वेदभाष्य के १३ वें अङ्क के अन्त में छपे विज्ञापन में **"आर्य प्रकाश" नाम बदलकर 'वैदिक यन्त्रालय" रखने का उल्लेख है** ।

१. यहां **'३ मास'** पाठ होना चाहिये, क्योंकि आगे मार्च के अन्त में यन्त्रालय को प्रयाग ले जाने का वर्णन है ।

२. पं० सुन्दर लाल के १ फर्वरी १८८२ के पत्र के अनुसार १ अप्रेल १८८२ को वैदिक यन्त्रालय प्रयाग आया था (द्र० पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ २१०, पं० ६-१०) ।

संवत् १९३७ चैत्र मास के ऋग्वेदभाष्य के २४-२५ (सम्मिलित अंक) के टाइटल पेज ३ पर वैदिक यन्त्रालय के स्थानान्तरण के विषय में निम्न विज्ञापन छपा था—

विज्ञापन

सब सज्जनों को विदित हो कि श्रीमत् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की आज्ञानुसार "वैदिक यन्त्रालय "जो बनारस में है। १ अप्रेल १८८१ ई० से प्रयाग मुहल्ला शाहगंज में उठ जायेगा और वेदभाष्य वा अन्य पुस्तकों के छपने आदि का काम जिस प्रबन्ध से यहां है वहां भी रहेगा अर्थात् जैसे वेदभाष्य आदि ग्रन्थ छप कर यहां से १ तारीख को भेजी जाती है वैसे ही वहां से भेजी जाया करेगी इसलिये जो महाशय इस वैदिक यन्त्रालय से पत्र व्यवहार आदि चाहैं निम्नलिखित पते से करें ।।

बनारस	लाला सादीराम, प्रबन्धकर्त्ता
ता० २७ मार्च सन् १८८१ ई०	वैदिक यन्त्रालय, शाहगंज प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयाग[1] में लाया गया–जब बाबू सादीरामजी मेरठ मुन्शी बखतावरसिंहजी से हिसाब समझने गये तो २ महीने **पंडित ज्वालादत्तजी** ने मेनेजरी की–तदनन्तर स्वामी जी ने **पण्डित दयारामजी** को मेनेजर रक्खा १४ मास तक रहे फिर जब उक्त रायसाहब की बदली रंगूनकी हुई और इस कारण पं० दयारामजी भी न रह सके तब २-७-८२ से **मुन्शी समर्थदानजी** को मेनेजर किया जब राय साहब रंगून से लौटकर आए और फिर अलीगढ़ बदल गए **और** स्वामीजी के पास मासिक नक्शे खर्चे आदि के समय पर न पहुँचे तो स्वामीजी ने मई सन् ८३ में यन्त्रालय की प्रबन्धकर्तृ सभा बनाई जिसके सभापति उक्त रायसाहबजी, मन्त्री पं० भीमसेनजी और यन्त्रालय के मेनेजर तथा अन्य समाजस्थ पुरुष सब ७ सभासद हुए जिनमें समयान्तर अदला बदली होती रही **मार्च सन् ८६ में मुन्शी समर्थदानजी** ने काम छोड़ दिया; इनके स्थान पर **पं० भीमसेनजी** काम करते रहे–जुलाई ८७ में जब **उक्त** राय साहब ने इसके प्रबन्ध से इस्तीफा दिया तो श्रीमती परो० स० ने अधिवेशन ३ में इसका प्रबन्ध श्रीमती प्र० नि० स० पश्चिमोत्तर व अवध के आधीन किया प्र० नि० ने **मुन्शी शिवदयालसिंहजी** को मई ८८ में मेनेजर किया, यह अगस्त ९० तक रहे इस ही वर्ष में प्र० नि० ने प्रबन्धकर्तृ सभा फिर से नियत की जो यन्त्रालय के अजमेर को आने से पहिले तक रही, मुन्शी शिवदयालसिंहजी के पीछे मेनेजरी का काम तीन मास **मुन्शी दरयावसिंहजी** ने किया तत्पश्चात् नवम्बर ९० से पं० **ज्वालादत्तजी** को यह काम सौंपा गया कि जो जनवरी ९१ तक करते रहे, जब **भक्त रेमलदासजी** नियत हुए इतने ही में अजमेर आने का काम आरम्भ हुआ और श्रीमती परोपकारिणी सभा ने वैदिक यन्त्रालय के नियम बनाये कि जिनके वास्ते प्रबन्धकर्तृ सभा संवत् ३[2] से ही बराबर प्रस्ताव कर रही थी तदनु-

१. ऋग्वेदभाष्य अंक २८-२९ (सम्मिलित) सं० १९३८ श्रावण शुक्ल १ के टाइटल पेज ३ पर एक विज्ञापन छपा है। उस में लिखा है—

"इस चौथे वर्ष का चन्दा ८ रु० वैदिक यन्त्रालय साहगंज प्रयाग में प्रबन्धकर्त्ता मेरे (दयाराम शर्मा के) नाम से कृपा करके शीघ्र ही भेज देवें।

इस से विदित होता है कि प्रयाग में वैदिक यन्त्रालय साहगंज मोहल्ले में था।

२. ऋ० द० के निधन से आरम्भ हुआ दयानन्दाब्द है। सम्प्रति यह ऋ० द० के जन्म काल से मनाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार श्रीमान् **पण्डित श्यामजी कृष्णवर्मा** इसके अधिष्ठाता नियत हुए और आर्य्यसमाज अजमेर ने प्रबन्धकर्तृ सभा नियत की **यन्त्रालय १-४-९३ को पूरे रूप से अजमेर आने ही पाया था** कि वह बखेड़ा पैदा हुआ जिसका वृत्तान्त लिखते बड़ा शोक उत्पन्न होता है और जिसका पूरा-पूरा ब्यौरा अखबारों द्वारा सर्वसाधारण को ज्ञात ही हो गया है इस कारण उसके लिखने की आवश्यकता नहीं इसका परिणाम यह हुआ कि जून से सितम्बर तक यन्त्रालय नाम को खुला परन्तु काम बहुत ही कम हुआ और अन्त को सितम्बर मास में श्रीमती परोपकारिणी सभा हुई तो श्रीयुत **पण्डित रामदुलारेजी बाजपेयी** इसके अधिष्ठाता हुए और **पण्डित यज्ञदत्तजी** स्थानापन्न मेनेजर हुए और अजमेर समाज के ७ सभासदों की प्रबन्धकर्तृ सभा हुई, इनके अधीन अब तक काम बराबर चल रहा है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तन परिवर्धन संशोधन

पृष्ठ १७, पं० २ के आगे बढ़ावें—

पं० लेखरामकृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ १७६ के अनुसार अद्वैतमत खण्डन पहले लाइट प्रेस में छपा तत्पश्चात् उसकी प्रतिलिपि 'कविवचनसुधा' पत्रिका के उक्त अङ्कों में छपा ।

पृष्ठ १७, पं० १० के आगे बढावें—

पं० लेखरामकृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ १५८-१५९ पर मुगल-सराय के किसी सज्जन का 'ज्ञानप्रदायिनी' पत्रिका (लाहौर) के सम्पादक के नाम लिखा हुआ एक पत्र छपा हैं । जो ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका चैत्र सं० १९२७ (अप्रेल सन् १८७०) के अंक में पृष्ठ ५७-६० तक छपा था । इस पत्र में लेखक लिखता है—

"यह महोदय दण्डियों (वेदान्ती साधुओं) के विरुद्ध भी एक और पुस्तक लिख रहे हैं । काशी के सब दण्डियों का यह कथन हैं—**पूर्णोऽहम्, सच्चिदानन्दोऽहम्** अर्थात् मैं पूर्ण और सच्चिदानन्द ब्रह्म हूं । दयानन्द सरस्वतीजी उनकी इस मूर्खता का खण्डन करके.................।" (वही पृष्ठ १५९)

इस से विदित होता है कि ऋ० द० ने **अद्वैतमतखण्डन** पुस्तक की रचना माघ सं० १९२६ में लिखी होगी अथवा लिख रहे होंगे । क्योंकि पत्र लेखक का पत्र चैत्र सं० १९२७ के 'ज्ञानप्रदायिनी' के अंक में छपा था ।

पृष्ठ १९ पं० ९ से आगे बढावें

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में अद्वैत का लक्षण लिखा है—**सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म** (पृष्ठ ४४, रा० ला० क० ट्र० शताब्दी सं० २) । यह ब्रह्म का लक्षण नवीन अद्वैत वादियों का है । ब्रह्म का सजातीय दूसरा ब्रह्म नहीं, जगत् के मिथ्या और आत्मा के ब्रह्मरूप होने से उनके मत में विजातीयद्रव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भी भेद शून्य ब्रह्म है। स्वगतभेद सावयाव द्रव्यों में होता है ब्रह्म निरवयव है। अतः वह स्वगतभेदशून्य भी है।

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण (सन् १८७५) में यह पंक्ति नहीं है। संशोधित सत्यार्थप्रकाश को रफ कापी और प्रेस कापी दोनों में यह वाक्य विद्यमान है। इस की आगे भाषा में जो व्याख्या की है वह हमारी समझ में नहीं आई।

पं० लेखरामकृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ २४१ में पं० दुर्गादत्त की बातचीत व शास्त्रार्थ सन्दर्भ में स्वामी जी कहते है—

"जैसा कि शंकराचार्य मानते हैं कि सजातीय-विजातीय भेद शून्य ब्रह्म है, वह मत मिथ्या है। हम उसको नहीं मानते। यहां केवल दूसरे ब्रह्म का निषेध है, न कि जीवन का भी।"

इस लेख के प्रसंग में सत्यार्थप्रकाश की **सजातीयविजातीय-स्वगतभेदशून्यं ब्रह्म** पंक्ति पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये। अष्टोत्तरशतनाममालिका के रचयिता पं० विद्यासागर जी ने इस पर कुछ विचार किया है, परन्तु वह पूरी तरह हमारे मन को सन्तोष न दे सका। अतः विद्वानों के विचारार्थ हमने इसका यहां निर्देश किया हैं।

पृष्ठ २०, पं० २— **५—सत्यार्थप्रकाश** इस प्रकार शोधे
पृष्ठ २०, पं० ३ — '११३९' मुद्रण दोष को '१९३२' इस प्रकार शुद्ध करें।

पृष्ठ २३, पं० १६ **'हुआथा'** से आगे बढावें—प्रथम संस्करण की हस्तलिखित कापी की जो फोटो कापी परोपकारिणी सभा के संग्रह में सुरक्षित है उसमें ऋ० द० के हाथ के संशोधन भी हैं, जो कि उत्तरोत्तर न्यून होते गये हैं। इस से भी श्री हरविलास शारदा का लेख अप्रामाणिक सिद्ध होता है।
पृष्ठ २५, पं० २२—'पृष्ठ ४४' के आगे बढावें-'पं० २४-२८'।
पृष्ठ ३०, पं० २१ के आगे बढावें—

सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ के ५ श्लोक

ऋषि दयानन्द ने आर्याभिविनय संस्कारविधि और ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के आरम्भ में तत्तद् ग्रन्थ से सम्बद्ध कतिपय श्लोक लिखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं वैसे ही सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के आरम्भ में लिखे थे, परन्तु वे एक स्वतन्त्र पृष्ठ पर लिखे होने से सन् १८७५ में मुद्रण में छूट गये। इसी कारण दूसरे संस्करण में भी नहीं छपे। जब हमने परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान प्रथम संस्करण की हस्तलिखित कापी की फोटो कापी देखी थी, तब हमें ये श्लोक मिले थे और हमने उसी समय उन्हें लिख लिया था। इन्हें हमने रामलाल कपूर ट्रस्ट से मुद्रित सत्यार्थप्रकाश के संस्करणों में छाप दिया है।

पृष्ठ ५३ टि० ३ जो पृष्ठ ५४ पर भी गई है-भूल से अशुद्ध लिखी गई हैं। **इसे निकाल देवें।** ऋ० द० द्वारा कराया कुरान का हिन्दी अनुवाद श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा कराये अनुवाद से ३ वर्ष पूर्व नहीं, १ वर्ष पश्चात् तैयार हुआ था।

पृष्ठ ६५, ६७, ६९, ७१ पर प्रारम्भ की पंक्ति (फोलियो) में **'तृतीय अध्याय'** के स्थान में **'चतुर्थ अध्याय'** होना चाहिये।

पृष्ठ ७८ 'वेदभाष्य का नमूना' से पूर्व पृष्ठ २९० पर छपा अंश छापना चाहिये था, जो छूट गया।

पृष्ट १११, पं० ४—**'वेदोक्ता-संस्करण-प्रकाश'** के स्थान में **'वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश'** पाठ होना चाहिये।

पृष्ठ १११, पं० २—**'निर्देश है'** पर टिप्पणी देवें—'द्र० ऋ० द० और आ० स० से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख, पृष्ठ ९८, तथा 'वेदवाणी' पत्रिका मार्च १९८२ का अंक, पृष्ठ ९८।

पृष्ठ १४० पं० ७—'ऋग्वेद का' के स्थान में 'ऋग्वेदभाष्य का' होना चाहिये।

पृष्ठ १५१, पं० ४—'हुआ है' के आगे बढावें-'भावार्थ भी **सहस्त्रियं** पाठ के अनुसार है-**पत्या सहस्त्री, स्त्रियासह पति**.........'।

पृष्ठ १५८, पं० २—श्लोक में **'नभस्ये'** शब्द का प्रयोग है। 'नभस्य' नाम भाद्रपद का है। आगे हिन्दी में **'श्रावण'** शब्द का उल्लेख किया है। अतः यहां **'नभसि'** पाठ होना चाहिये।

पृष्ठ १५९, पं० २—**'ोजी स्वामने'** के स्थान में 'स्वामी जी ने' शुद्ध पाठ होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ १५९, पं० १८—'न कि छप कर'। के आगे बढ़ावें—'पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ३६५—'स्वामी जी ने आर्योद्देश्यरत्नमाला......। १५ अगस्त सन् १८७७ तदनुसार श्रावण सुदी ७ सं० १९३४ को लिखी ।...... १२ सितम्बर सन् १८७७ को छप कर तैयार हो गई।'

पृष्ठ १८४, पं० ४-६ 'चिरकाल तक......वे ठीक हैं' ऐसी ही आशंका के विषय में ऋ० द० का लेख देखिये—

(१) 'ऐसे कामों में ठीक करने से बड़ी हानि होती है, क्योंकि पाखण्डियों को तो होसला होता जाता है और आर्य लोगों के चित्तों में भ्रम का संचार होने लगता है। इसलिये आप अब इस के (प्रश्नोत्तरी के उत्तर के] छापने में ढील न करें।" पत्र विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ५७५, पं० १०-१२।

(२) 'आर्यदर्पण में जो जगन्नाथदास ने लिखा है, उस का उत्तर आप बहुत उत्तमरीति से लिखें। कुछ दबना मत। **खूब टुकड़े-टुकड़े उड़ा दो**। ऐसा न होगा तो वे बंध न होंगे।' पत्र विज्ञापन भाग २, पृष्ठ ५७४, पं० ८-१० ।

पृष्ठ १८८, पं० ४—**द्वितीयायां गुरौ वारे** अर्थात् ज्येष्ठ कृष्णा २ गुरुवार। आगे परिशिष्ट १ में भ्रमोच्छेदन के हस्तलेख के विवरण के अन्त में ऋ० द० के अपने हाथ का लेख है—

'शुक्र मास सं० १९३७ कृष्ण पक्ष २ मंगलवार १९३७।" शुक्र= ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया को बुधवार था। संभव है मंगलवार को द्वितीया का योग हो।

पृष्ठ १९४, पं० २७—'पृष्ठ १८७' के स्थान में 'पृष्ठ २८७' शोधें।

पृष्ठ २४६, पं० १७ 'फर्रुखाबाद का इतिहास' -इस पर टिप्पणी—फर्रुखाबाद के इतिहास के लेखक ने अगला उद्धृत पाठ दयानन्ददिग्विजयार्क भाग २, पृष्ठ १४० से लिया है ।

पृष्ठ २५९, पं० ७—'चैत्र शु० ५, ६' यहां चैत्र शु० ४-५ चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द- दिग्विजयार्क (प्रथम संस्क० सं० १९३८) प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८४ में लिखा है—मिती चैत्र सुदी चौथ व पच्चमी संवत् १९३४ विक्रमी मुताबिक तारीख १९ व २० मार्च सन् १८७७ ई० को… …।'

पृष्ठ २५९, पं० पं० १०—'रहे।' पर टिप्पणी देवें द्र० ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ८२०, पं० ६ तथा पं० देवेन्द्र-नाथ सं० जीवनचरित, ३९१, ३९२।

पृष्ठ ३५९, पं० १२—'५ दिन रहेगा' के स्थान में '७ दिन रहेगा' शोध कर टिप्पणी देवें—द्र० ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ८२, पं० २१; पृष्ठ ८३, पं० १२ तथा भाग ४, ५५८, पं० २।

पृष्ट २७१, पं० २-६ के प्रकरण में जोड़े—नई जानकारी के अनुसार स्वामी जी के व्याख्यानों को लिखने वाले श्री महादेव मोरेश्वर कुण्टे और श्री गणेश जनार्दन आगाशे दो व्यक्ति थे। द्र० वेदवाणी नवम्बर १९८३ का दयानन्द अंक, पृष्ठ, ३३।

पृष्ठ २८८ पर मोटे टाइप में छपी '३, ४, ५, ६' संख्याओं के स्थान में '२, ३, ४, ५' संख्यायें होनी चाहिये।

पृष्ठ २८९, पं० २, ७—ऋग्वेद ६१ के सूक्तों' के स्थान में '६—ऋग्वेद के ६१ सूक्तों' पाठ होना चाहिये।

पृष्ठ २९०, पं० १—'**तृतीय अध्याय का**' के स्थान में **चतुर्थ** '**अध्याय पृष्ठ ७८** का' पाठ होना चाहिये।

पृष्ठ २९५, पं० ३१ 'पृष्ठ ८' के स्थान में 'पृष्ठ ३००' शोधें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित वा प्रसारित प्रामाणिक ग्रन्थ

वेद-विषयक ग्रन्थ

१. **ऋग्वेदभाष्य**—(संस्कृत हिन्दी वा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित) —प्रतिभाग सहस्राधिक टिप्पणियां, १०-११ प्रकार के परिशिष्ट व सूचियां। प्रथम भाग ३५-००, द्वितीय भाग ३०-००, तृतीय भाग ३५-००।

२. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण**—ऋषि दयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण। प्रथम भाग अप्राप्य है। द्वितीय भाग मूल्य २५-००

३. **तैत्तिरीय-संहिता**—मूलमात्र, मन्त्र-सूची-सहित। ४०-००

४. **अथर्ववेदभाष्य**—श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्यायकृत। ११-१३ काण्ड ३०-००। १४-१७ काण्ड २४-००; १८-१९ वां काण्ड २०-००; बीसवां काण्ड २०-००।

५. **माध्यन्दिन—(यजुर्वेद) पदपाठ**—शुद्ध संस्करण। २५-००

६. **गोपथ ब्राह्मण (मूल)**—सम्पादक श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि। अब तक प्रकाशित सभी संस्करणों से अधिक शुद्ध और सुन्दर संस्करण। मूल्य ४०-००

७. **वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा**—युधिष्ठिर मीमांसक लिखित वेद-विषयक १७ विशिष्ट निबन्धों का अपूर्व संग्रह। मूल्य ३०-००

८. **ऋग्वेदानुक्रमणी**—वेङ्कट माधव कृत। इस ग्रन्थ में स्वर छन्द आदि आठ वैदिक विषयों पर गम्भीर विचार किया है। व्याख्याकार—श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि। उत्तम-संस्करण ३०-००, साधारण २०-००।

९. **ऋग्वेद की ऋक्संख्या**—युधिष्ठिर मीमांसक मूल्य २-००

१०. **वैदिक-छन्दोमीमांसा**—युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य १५-००

११. **यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा**—लेखक पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय। बढ़िया जिल्द २०-००, साधारण १६-००।

१२. **वैदिक-पीयूष-धारा**—लेखक श्री देवेन्द्रकुमारजी कपूर। चुने हुए ५० मन्त्रों की प्रतिमन्त्र पदार्थ पूर्वक विस्तृत व्याख्या, अन्त में भावपूर्ण गीतों से युक्त। उत्तम जिल्द १५-००; साधारण १०-००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मकाण्ड-विषयक ग्रन्थ

१३. **बौधायन-श्रौत-सूत्रम्** (दशपूर्णमास प्रकरण)—भवस्वामी तथा सायण कृत भाष्य सहित (संस्कृत) ४०-००

१४. **दर्शपूर्णमास-पद्धति**—पं० भीमसेन भाषार्थ सहित। २५-००

१५. **कात्यायनगृह्यसूत्रम्**—मूलमात्र १५-००

१६. **संस्कार-विधि**—शताब्दी संस्करण, ४६० पृष्ठ, सहस्राधिक टिप्पणियां, १२ परिशिष्ट। मूल्य लागतमात्र १२-००, राज-संस्करण १५-००। सस्ता संस्करण मूल्य ५-२५, अच्छा कागज सजिल्द ७-५०।

१७. **वैदिक-नित्यकर्म-विधि**—सन्ध्यादि पांचों महायज्ञ तथा बृहद् हवन मन्त्रों के पदार्थ तथा भावार्थ व्याख्या सहित। यु० मी० मूल्य ३-०० सजिल्द ४-००। **मूलमन्त्रपाठमात्र** ०-७५

शिक्षा-निरुक्त-व्याकरण-विषयक ग्रन्थ

१८. **वर्णोच्चारण-शिक्षा**—ऋ० द० कृत हिन्दी व्याख्या मूल्य ०-६०

१९. **शिक्षासूत्राणि**—आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र शिक्षा-सूत्र ५-००

२०. **निरुक्त-श्लोकवार्त्तिकम्**—केरलदेशीय नीलकण्ठ गार्ग्यविरचित एक मात्र मलयालम लिपि में ताडपत्र पर लिखित दुर्लभ प्रति के आधार पर मुद्रित। आरम्भ में उपोद्घात रूप में निरुक्त-शास्त्र विषयक संक्षिप्त ऐतिह्य दिया गया है (संस्कृत)। सम्पादक—डा० विजयपाल विद्यावारिधिः। उत्तम कागज, शुद्ध छपाई तथा सुन्दर जिल्द। मूल्य १००-००

२१. **निरुक्त-समुच्चय**—आचार्य वररुचि विरचित (संस्कृत)। सं—युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य १५-००

२२. **अष्टाध्यायी**—(मूल) शुद्ध संस्करण। मूल्य ३-००

२३. **धातुपाठ**—धात्वादिसूची, शुद्ध संस्करण। मूल्य ३-००

२४. **अष्टाध्यायीशुक्लयजुःप्रातिशाख्ययोर्मतविमर्शः** (संस्कृत)—डा० विजयपाल विद्यावारिधि। मूल्य ५०-००

२५. **वामनीयं लिङ्गानुशासनम्**—स्वोपज्ञ व्याख्यासहितम्। ८-००

२६. **अष्टाध्यायी-भाष्य**—(संस्कृत तथा हिन्दी) श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत। प्रथम भाग २४-००, द्वितीय भाग २०-००, तृतीय भाग २०-००।

२७. **संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि**—लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। प्रथम भाग १०-००, द्वितीय भाग १०-००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८. The Tested Easiest Method of Learning and Teaching Sanskrit (First Book)—यह पुस्तक श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु कृत **'बिना रटे संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि'** भाग १ का अंग्रेजी अनुवाद है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश करने वालों के लिये यह आधिकारिक पुस्तक है। कागज और छपाई सुन्दर, सजिल्द। मूल्य २५-००

२९. **महाभाष्य**—हिन्दी व्याख्या, यु० मी०। प्रथम भाग ५०-००, द्वितीय भाग २५-००, तृतीय भाग २५-००

३०—**उणादिकोष**—ऋ० द० स० कृत व्याख्या, तथा पं० यु० मी० कृत टिप्पणियों, एवं ११ सूचियों सहित। अजिल्द १०-००, सजिल्द १२-००

३१. **दैवम् पुरुषकारवार्त्तिकोपेतम्**—लीलाशुकमुनि कृत। १०-००

३२. **भागवृत्तिसंकलनम्**—अष्टाध्यायी की प्राचीन वृत्ति। ६-००

३३. **काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यानम्**—संस्कृत रूपान्तर। मूल्य १५-००

३४. **संस्कृत-धातुकोश**—पाणिनीय धातुओं का हिन्दी में अर्थ निर्देश। सं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य १०-००

अध्यात्म-विषयक ग्रन्थ

३५. **आर्याभिविनय** (हिन्दी)—स्वामी दयानन्द। गुटका सजिल्द मूल्य ४-००

३६. Aryabhivinaya—English translation and notes (स्वामी भूमानन्द) दोरङ्गी छपाई। अजिल्द ४-००, सजिल्द ६-००

३७. **विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम्** (**सत्यभाष्य सहितम्**)—पं० सत्यदेव वासिष्ठ कृत आध्यात्मिक वैदिक भाष्य (४ भाग)। प्रति भाग १५-००; पूरा सेट ६०-००।

३८. **श्रीमद्भगवद्-गीता-भाष्यम्**—श्री पं० तुलसीराम स्वामी कृत व्याख्या सहित। मूल्य ६-००

नीतिशास्त्र-इतिहास-विषयक ग्रन्थ

३९. **शुक्रनीतिसार**—व्याख्याकार श्री स्वा० जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती। विस्तृत विषय सूची तथा श्लोक-सूची सहित। उत्तम कागज, सुन्दर छपाई तथा जिल्द सहित। मूल्य ४५-००

४०. **विदुरनीति**—युधिष्ठिर मीमांसक कृत प्रतिपद पदार्थ और व्याख्या सहित। मूल्य २०-००

४१. **सत्याग्रह-नीति-काव्य**—आ० स० सत्याग्रह १९३९ ई० में हैदराबाद जेल में पं० सत्यदेव वासिष्ठ द्वारा विरचित। हिन्दी व्याख्या सहित। मूल्य ५-००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४२. **संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास**—युधिष्ठिर मीमांसक कृत **अप्राप्य**। नया संस्करण छप रहा है।

४३. **संस्कृत व्याकरण गणपाठ की परम्परा और आचार्य पाणिनि**—लेखक—डा० कपिलदेव शास्त्री एम० ए०। सजिल्द १५-००

४४. **ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन**—इस बार इस में ऋषि दयानन्द के अनेक नये उपलब्ध पत्र और विज्ञापन संगृहीत किये गए हैं। इस बार यह संग्रह चार भागों में छप रहा है। प्रथम दो भागों में ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन आदि संगृहीत हैं। तीसरे और चौथे भाग में विविध व्यक्तियों द्वारा ऋ० द० को भेजे गये पत्रों का संग्रह है। प्रथम भाग—३५-००, दूसरा भाग ३५-००, तीसरा भाग ३५-००, चौथा भाग ३५-००

४५. **विरजानन्द-चरित**—लेखक—पं० भीमसेन शास्त्री एम० ए०। नया परिवर्धित और शुद्ध संस्करण। मूल्य ३-००

४६. **ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत-साहित्य को देन**—लेखक—डा० भवानीलाल भारतीय एम० ए०। सजिल्द १५-००

४७. **ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास**—लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक। नया परिशोधित परिवर्धित संस्करण। मूल्य ४०-००

४८. **ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन**—इस बार पूना प्रवचन मूल मराठी से अनूदित एवं बम्बई प्रवचन सहित तथा विविध सूचियों, बढ़िया कागज और जिल्द से युक्त। मूल्य ३०-००

४९. **दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह** १०-००। दयानन्द प्रवचन संग्रह १०-००

५०. **कन्योपनयन-विधि**—'कन्योपनयन-निषेध' का खण्डन। महाराणी शंकर शर्मा। मूल्य ६-००

५१. **सत्यार्थप्रकाश**—३५०० टिप्पणियों और १४ विविध प्रकार के परिशिष्टों सूचियों के सहित १४०० पृष्ठ। सजिल्द ३०-००

दर्शन-आयुर्वेद-विषयक ग्रन्थ

५२. **मीमांसा-शाबर-भाष्य**—आर्षमतविमर्शिनी हिन्दी व्याख्या। व्याख्याकार—युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम भाग—मूल्य ४०-००; द्वितीय भाग ३०-००; तृतीय भाग ५०-००; चौथा भाग यन्त्रस्थ।

५३. **नाडी-तत्त्वदर्शनम्**—श्री पं० सत्यदेव जी वासिष्ठ। ३०-००

रामलाल कपूर ट्रस्ट

बहालगढ़, जिला—सोनीपत (हरियाणा) १३१०२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

073803

Accession on
Class on 7-3-84
Cat. on 13-3-84
Tag etc 14-3-84
Checked 15-3-84
Any Other

Entered in Database
Signature with Date

073803
15.1,Y9RS

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar